स्वामी सर्वानन्द जी के चरणों में
श्रद्धा सुमन
सम्पादक:
प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज के

श्री चरणों में

श्रद्धा सुमन

-: सम्पादक :-

प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

प्रकाशक :- स्वामी स्वतन्त्रानन्द शोध संस्थान अबोहर-१५२११६

प्रकाशक :—
स्वामी स्वतन्त्रानन्द शोध संस्थान
अबोहर—१५२११६
प्रथम संस्करण : अक्तूबर ९१
मूल्य : १५०/—

प्राप्ति स्थान :—

१. दयानन्द मठ, चम्बा

२. दयानन्द मठ, घण्डरां, ज़िला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश

३. आचार्य जगदीश जी, दयानन्द मठ, दीनानगर (१४३५३१)

४. मधुर प्रकाशन, आर्यसमाज बाज़ार सीताराम, दिल्ली-६

५. समर्पण शोध संस्थान, साहिबाबाद, ज़िला

६. गाज़ियाबाद उ०प्र०

७. आचार्य सुभाष जी गुरुकुल रार्मलिंग येड़शी

८. जिला धारनशिव (महाराष्ट्र)

मुद्रक :

फोटोकम्पौजिंग :

चित्रगुप्त प्रिंटिग प्रेस,
५३९, कुंचा पातीराम, बाजार सीताराम,
दिल्ली-६ दूरभाष : ७३१५५५

विषय सूची

द्वितीय खण्ड

तृतीय परिच्छेद

चतुर्थ परिच्छेद

पञ्चम परिच्छेद

इतिहास–खण्ड तृतीयं

खण्ड चतुर्थ

खण्ड पञ्चम

खण्ड षष्ठ

महर्षि दयानन्द सरस्वती

आमुख

महर्षि पातञ्जलि के अष्टांग योग को ऋषि मुनियों ने मुक्तिसोपान बताया है। अष्टांग योग में यम नियमों का क्या स्थान है? यह बताने की आवश्यकता नहीं है। यदि मुझे कोई कहे कि यम् नियमों की व्याख्या करके इनका मर्म समझाओं तो मैं कहूंगा कि यम नियमों का साकार रूप देखना चाहो तो परमहंस स्वामी सर्वानन्द जी महाराज का दर्शन कर लें, सब कुछ समझ में आ जावेगा। उनका सम्पूर्ण व्यवहार इन्हीं की व्याख्या है। हाड मांस का यह चलता फिरता पुतला यम नियमों का मूर्त्त स्वरूप है। सत्य अहिंसा आदि की इन्होंने ऐसी सिद्धि प्राप्त की है कि घोर नास्तिक व अधार्मिक व्यक्ति को भी इसके लिए इनके सामने शीश झुकाना पड़ता है।

महर्षि दयानन्द जी ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में लिखा है कि **अत्यन्त पुरुषार्थ का नाम सन्तोष है।** मैं कहा करता हूं कि जिसके सन्तोष की परिभाषा अत्यन्त पुरुषार्थ है उसके पुरुषार्थ की परिभाषा क्या होगी? अत्यन्त पुरुषार्थ क्या होता है? इस आर्षवचन के भाष्यकार का नाम महामुनि स्वामी सर्वानन्द जी महाराज है। मुट्ठी भर हडिड्यों का यह पिंजर इस ९१ वें वर्ष की आयु में प्रातः दो ढाई बजे से रात्रि ग्यारह बजे तक अपने तोपवन में कभी धारणा, ध्यान में लीन है तो कभी साधुओं, ब्रह्मचारियों की सुधि लेने में, अब रोगियों की सेवा में तो थोड़ी देर बाद गऊओं की पीठ पर हाथ फेर रहा है। श्री महाराज कभी ब्रह्मचारियों को पढ़ा रहे हैं तो कभी गोशाला में गोबर उठा रहे हैं। अब पत्र व्यवहार में लगे है तो थोड़ी देर में औषधालय व फार्मेसी जा रहे हैं। अब स्वाध्याय कर रहे हैं और कुछ समय के पश्चात् आश्रम की व्यवस्था के लिए आचार्य जी व अन्य महात्माओं से विचार विमर्श हो रहा है।

'कुर्वन्नेवहे कर्माणि जिजीविषेच्छतं...
आदि वेद की पवित्र ऋचाओं की छाया में पलने वाले इस महापुरुष ने वेद-प्रचार व लोकोपकार के लिए अपना सुख साज वार दिया घर बार तज दिया। मात पिता के प्यार के तार को तोड़ दिया। इस महामुनि को रोगियों का मल मूत्र उठाते हुए तनिक भी ग्लानि नहीं होती। **'श्रद्धा समुन'** में इसी महामानव के जीवन का प्रकाश है।

'श्रद्धा-सुमन' ग्रन्थ की कहानी भी बड़ी लम्बी व रोचक है। यहां हम इतना ही निवेदन करेंगे कि वैदिक यतिमण्डल गत पांच छः वर्षों से श्री महाराज के अभिनन्दन की बात चलाता रहा है। इसी उपलक्ष्य में एक बृहद अभिनन्दन ग्रन्थ लिखने का कार्य इस लेखक को सौंपा गया। पूज्य स्वामी जी ने आग्रहपूर्वक मुझे लिखा कि मेरे जीवन काल में मुझ पर कोई पुस्तक न छापी जावे। लेखक को अपनी लेखनी को रोकना पड़ा। सन् १९९० में पुनः यतिमण्डल ने अपना निश्चय दोहराया। कुछ साधुओं ने जैसे-तैसे स्वामी जी की स्वीकृति ले ली। श्रद्धेय स्वामी जी ने अनमने मन से स्वीकृति दे तो दी परन्तु अपने बारे कुछ भी बताने से इन्कार कर दिया। कार्य लगभग पूरा हो गया तो आपने श्री

स्वामी सुमेधानन्द जी महाराज चम्बा को व लेखक को फिर एकएक रोषपूर्ण पत्र लिखकर ग्रन्थ के प्रकाशन से रोक दिया। ये दोनों पत्र **'राम कहानी'** के आरम्भ में दिये गये हैं।

पुनः कुछ भक्तों ने लोकहित में महाराज से विनती की कि हमें अपनी श्रद्धा का प्रकाश करने दें। राजस्थान आर्य प्रतिनिधि सभा के मंत्री स्वामी सुमेधानन्द जी ने विशेष प्रयास किया। स्वामी जी के जवानी के साथी वयोवृद्ध स्वतंत्रता सेनानी आर्य भजनोपदेशक श्री पं० आशानन्द जी की विनीत विनती का आदर करते हुए आपने अपने जीवन की तीन चार (केवल तीन चार ही) घटनायें बताने की कृपा की।

श्री स्वामी जी अपने जीवन काल में अपनी जीवनी क्यों नहीं छपने देना चाहते? पूज्यपाद स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज एक कहानी सुनाया करते थेः—

'अन्त भला सो भला'

इसके अनुसार स्वामी जी किसी के जीवन काल में उसकी जीवनी छापने को ठीक नहीं समझते थे। इसी के अनुसार स्वामी सर्वानन्द जी अपने जीवन काल में अपना जीवन चरित्र छापने का विरोध करते रहे। आप्त पुरुषों के वचनों को झुठलाया नहीं जा सकता तथापि हमने कहा कि अपवाद रूप में पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने भी तो लोकहित में हैदराबाद के आर्य सत्याग्रह के निजाम राज्य की सभा द्वारा नियुक्त सब सर्वाधिकारियों के संक्षिप्त जीवन लिखे व छपवाए।

'श्रद्धा सुमन' के प्रकाशन में विलम्ब होता गया। इसका कारण लेखक का प्रमाद नहीं। लिखने पढ़ने में हमने कभी प्रमाद किया ही नहीं। इसमें विलम्ब होता देखकर हमने स्वामी जी महाराज के जीवन पर एक युवकोपयोगी सचित्र पुस्तक **'एक प्रेरक जीवन'** छपवा दी। आर्य जनता में इसका बहुत अच्छा स्वागत हुआ।

इस युग की एक पूजनीय विभूति के जीवन संबंधी इस ग्रन्थ को पाठकों के हाथ में पहुंचाते हुए हमारा रोम रोम पुलकित हो रहा है। ऐसे महापुरुष पर लेखनी उठाना हमारे लिए परम सौभाग्य की बात है। अनेक धर्म प्रेमियों की यह उत्कट इच्छा थी कि यह करणीय कार्य होना ही चाहिए। यह किन्हीं पूर्वजन्म के हमारे शुभकार्मों का फल समझिए कि ऐसे सब सज्जनों की यह चाह रही कि यह कार्य हमीं करें

इस ग्रन्थ की रचना करते हुए श्री महाराज के जिन-जिन भक्तों ने अपने अपने संस्मरण देकर हमें सहयोग दिया, वे सब धन्यवाद के पात्र है। स्थान-स्थान पर उन सबके नाम दिये गये हैं। अपने संस्मरण लिखवाने के लिए हम विशेष रूप से आभारी हैः— ज्ञान समुद्र आचार्य प्रियव्रत जी वेदावाचस्पति, स्वामी विद्यानन्द जी देहली, सेवामूर्त्ति श्री स्वामी सदानन्द जी मैंगलूर (कर्नाटक), पूज्य पं० शान्ति प्रकाश जी, श्री पं० आशानन्द जी, मेरे अग्रज प्रिं० यशपाल जी, श्री आचार्य सुभाष जी महाराष्ट्र, श्री आचार्य नेरन्द्र भूषणजी केरलीय, सुप्रसिद्ध आर्य कवि व विद्वान् प्रो० उत्तम चन्द्र जी 'शरर',

ब्र० श्री जीवानन्द जी झज्जर, स्वामी सुमेधानन्द जी महाराज दयानन्द मठ चम्बा, श्री आचार्य महावीर जी, ब्र० श्री रवीन्द्र जी शास्त्री के।

पूज्य स्वामी जी महाराज के सुशिष्य व हमारे स्नेही श्री आचार्य जगदीश जी ने इस संबंध में जो सहयोग किया वह अकथनीय है। उनको किन शब्दों में धन्यबाद दूं? ग्रन्थ के पृष्ठ अपनी मूकवाणी से उनके सहयोग व उद्योग की कथा सुना रहे हैं। सच्ची बात तो यह है कि यह ग्रन्थ यदि आपके हाथों तक पहुंच पाया है तो इसका श्रेय आचार्य जगदीश जी व स्वामी सुमेधानन्द जी महाराज को ही मिलना चाहिए। श्री पं० राजपाल जी शास्त्री सञ्चालक मधुर प्रकाशन व श्री शेखर जी शास्त्री दयानन्द मठ दीनानगर ने पाण्डुलिपि व प्रूफ़ को एक-एक बार पढ़ने का कृपा की। वे भी हम सबके धन्यवाद के पात्र है।

ग्रन्थ को अन्तिम रूप देने के लिए मैंने कुछ दिन श्री स्वामी जी के तपोवन में निवास किया। यहां मठ के सब विद्यार्थियों ने बड़ा स्नेह व सहयोग दिया। ब्र० रामचन्द्र पाटील व छोटे ब्र० ओमप्रकाश को उनके धर्मभाव के लिए मैं आशीर्वाद देता हूं।

'श्रद्धा सुमन' अभिनन्दन ग्रन्थों की परम्परा से बहुत कुछ हटकर लिखा गया है। समीक्षक इसे कुछ भी कहें मैं स्वयं ही यह मानकर चला कि अभिनन्दन ग्रन्थ नहीं रचना। यह **श्रद्धा सुमन** है। इसमें अभिनन्दन ग्रंथों जैसी पुनरुक्ति नहीं मिलेगी। हां! कहीं-कहीं कुछ पुनरुक्ति है। सिद्धान्त खण्ड में आचार्य पं० युधिष्ठिर जी, श्री आचार्य सुधाकर जी चतुर्वेदी, श्री स्वामी विद्यानन्द जी, श्री पं० शान्ति प्रकाश जी, दिवंगत आचार्य उदयवीर जी सरीखे मर्मज्ञ विद्वानों के लेख हैं। इतिहास खण्ड में आचार्य प्रियव्रत जी व श्री पं० मेहन्द्र कुमार जी शास्त्री आदि के प्रेरणाप्रद लेख है। हमने आर्यसमाज विश्वेश्वरपुरम बैंगलूर, आर्य केन्द्रीय सभा देहली व आर्य सन्देश देहली की स्मारिकाओं व अंकों का भी भरपूर लाभ उठाया। एतदर्थ उनका आभार मानना हमारा कर्त्तव्य बनता है।

हमने आज तक घर में बैठे बैठे दस-बीस पुस्तकें देखकर या पत्रों द्वारा प्राप्त सामग्री के आश्रय कोई भी जीवनी नहीं लिखी। रक्त साक्षी पं० लेखराम जी को अपना आदर्श मानकर हमने पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज के जीवन की सामग्री की खोज में दूर-दूर तक यात्राएं की है। कशमीर से कन्या कुमारी तक के भक्तों के संस्मरण घर में बैठे बिठाए ही नहीं आ गये। लेखिक ने इसी उद्देश्य से श्री महाराज के जन्म स्थान की भी यात्रा की।

श्री स्वामी जी महाराज की जीवनी लिखने में एक कठिनाई तो यह सामने आई कि उनके जन्म स्थान पर उनसे बड़ी आयु का एक भी व्यक्ति अब जीवित नहीं। श्री महाराज का जन्म कब हुआ? यह निश्चित करना ही कअिन हो गया। स्वामी जी महाराज को अपने आरम्भिक जीवन के सन् सम्वत् ठीक-ठीक याद नहीं। सौभाग्य से हमारे पास एक ऐसा सूत्र है जिसने इस समस्या का समाधान करने में सहायता दी। स्वामी जी महाराजा को स्वामी

श्रद्धानन्द जी महाराज की संन्यास दीक्षा देखने का सौभाग्य प्राप्त है। सन् १९१७ ई० की यह ऐतिहासिक घटना उन्हें आज भी याद है। स्वामी सर्वानन्द जी के बाल्यकाल के एक सखा श्री मणिराम (सेवा निवृत्त सैनिक) ने कुछ समय पूर्व मठ में बताया था कि श्री महाराज का जन्म सन् १९०० के आसपास का है। ऐसे ही आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् श्री पं० निरञ्जनेदव जी इतिहास केसरी ने बताया कि वह जब स्वामी जी के चरणों में मठ में आए तब (१९४१ ई० में) श्री स्वामी जी कोई चालीस वर्ष के थे। इससे स्वामी जी के जन्म के वर्ष की गुत्थी सुलझ गई। आपने स्कूली शिक्षा कब छोड़ी? यह भी आपको ठीक-ठीक याद नहीं। स्वामी जी को ऐसा याद पड़ता है कि स्वामी श्रद्धानन्द जी के संन्यास के समय से स्कूल की पढ़ाई छोड़कर समाज के कामों की लटक लग गई थी।

स्वामी जी के जीवन की बीसियों प्रेरणप्रद घटनायें हम इस ग्रन्थ में नहीं दे पाए। लेखक की भी कुछ सीमाएं होती हैं। ग्रन्थ का आकार न बढ़ जावे, इसलिए लेखनी को रोकना पड़ा। मैं श्री स्वामी जी के सम्पर्क में तब आया जब आप अभी महात्मा रामचन्द्र के रूप में दयानन्द मठ के सब कार्यों का सञ्चालन करते थे। तब से लेकर आज पर्यन्त मैं आपके जीवन की एक-एक घटना को अपने हृदय पर अंकित करता चला आया हूं। एक-एक घटना की जांच पड़ताल का पूरा-पूरा प्रयास किया है।

तथापि हमारे पाठक यह मत भूलें कि इस ग्रन्थ का सम्पादक व जीवनी लेखक एक अल्पज्ञ जीव है। जीव की प्रत्येक कृति में दोष का रह जाना सम्भव है। इस संस्करण में जो भी दोष रहेगा गुणियों के सुझाने पर अगले संस्करण में सुधार कर लिया जायेगा। यह जीवन चरित्र बारम्बार छपेगा, आबाल बृद्ध इससे प्रेरणा पायेंगे— ऐसे मुझ दृढ़ विश्वास है। आचार्य प्रियव्रत जी व श्री मेहन्द्र कुमार जी शास्त्री के लेख विलम्ब से प्राप्त होने के कारण अस्थान पर छपने का हमें खेद हैं।

इस ग्रन्थ का नामकरण हमारे सारे परिवार ने मिलकर क्रिया और जीवन चरित्र का नामकरण मेरी सुपुत्री कु० कविता आर्या व कु० प्रियाका आर्या ने किया। हम सब साथ-साथ सभी घटनाओं को पढ़ते गये और प्रत्येक घटना पर विचार करते रहे। आमुख के ये शब्द श्री स्वामी जी की कुटिया के बरामदे तथा मठ के कमरा नं० एक में लिखे गये हैं। महात्मा रामचन्द्र के रूप में श्री महाराज ई कमरे में रहा करते थे अत: आमुख लिखने के लिए यही दो स्थान मैंने चुने।

गुरु पूर्णिमा श्री स्वामी जी महाराज का
विक्रम सम्वत् २०४८ चरण सेवक
दयानन्द मठ, राजेन्द्र 'जिज्ञासु'
दीनानगर —१४३५३१

लौहपुरुष स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी महाराज

पूज्य स्वामी सर्वानन्द

महाराज के प्रति

खण्ड (१)

ब्रह्मचारी सिञ्चति सानौ रेतः पृथिव्यां तेन जीवन्ति प्रदिशश् चतस्रः।।*

ब्रह्मचारी अपने तेज से धरती की दशों दिशाओं को सींच देता हैं। वह अपनी सेवा साधना से सब ओर जीवन का सञ्चार कर देता है।

सम्पादक
प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

सर्वानन्द प्रशस्तिदशकम्

गुणोपेतो बालः कृषकयदुवंशेऽभवदयम्,
सुपित्रा-मात्रावै सरलविहितं नामकरणम्।
लसन् रामश्चन्द्रो निजभूमिं च जननीम्,
यतिस्सर्वानन्दो ललितशुभबाल्ये मधुवचः।।१।।

भावार्थः— गुणी बालक ने क़िसान यादववंश में जन्म लिया। माता-पिता ने उसका सार्थक सरल नाम रखा। बालक रामचन्द्र जननी और जन्मभूमि को अपने गुणों से सदा अलंकृत करता था। साधु स्वभाव सर्वानन्द सुन्दर कल्याणप्रद बालकाल में बहुत मधुर बोलता था।

समानस्साकं शैशव-सुसमये क्रीडनपरः,
बलिष्ठः कौमारे बहुविविध व्यायामविधिना।
श्रुति स्मृत्यध्येतुं ननु पठन-युक्तो व्रतधरः,
यतिस्सर्वानन्दोऽपरपर विद्यासु निपुणः।।२।।

भावार्थः— य़ति सर्वानन्द शैशवकाल में समान आयु वाले साथियों के साथ खेलने में संलग्न रहते थे और कुमार अवस्था में प्राचीन तथा अर्वाचीन व्यायाम के तरीकों से बलशाली शरीर वाले थे, विद्याव्रती यह वेदादि शास्त्रों के पढ़ने में दत्त-चित रहते थे, अतः लौकिक-पारलौकिक विद्याओं में अति निपुण हो गये।

अयं शुद्धो भूत्वा तदनु ननु सन्ध्यां च विदधत्,
वशी कृत्वा कामं निजमनसि ज्ञाने धृतमनः।
सुशिक्षाभिर्नित्यं गुरुशरण पूतश्च चरितः,
यतिस्सर्वानन्दो रचयतु च विश्वं सुचरितम्।।३।।

भावार्थः— तपस्वी सर्वानन्द सदा शरीर- मन-वस्त्रों से शुद्ध होकर सन्ध्या करते थे। फिर सब इच्छाओं को मन में अवरुद्ध कर मन को केवल ज्ञान में संलग्न करते थे। इस महात्मा का गुरु-शरण में जाने से पवित्र चरित्र बना। अब यह भी पावन चरित संसार की रचना करे।

गुरूणां प्रत्यक्षे बहु-पटु-वटून्पाठ्यति यः,
पुनर्वैद्यो जातोऽयमिह च स्वतन्त्रानन्ददयया।
असाध्ये रोगे यो निखिलजन सेवामृतकरः,
यतिस्सर्वानन्दोऽपहरतु च दुःखं बहुविधम्।।४।।

भावार्थः— पूज्य स्वामी सर्वानन्द महाराज जी ने अपने गुरुजनों के समक्ष बहुत से योग्य शिष्यों को पढ़ाया। फिर आचार्य प्रवर स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी की कृपा से योग्य वैद्य बन गये। असाध्य रोगी मनुष्यों को रोग मुक्त करने से ये पीयूष-पाणि कहलाने लगे। जनता के विविध दुःखों को यह परोपकारी मुनि सदैव दूर करता रहे।

महाशान्तो योगी जगति समदर्शी च मनुजः,
क्रिया योगी साधुर्ददतु शुभसंकल्पमिहनः।
दृढ़े संकल्पे वै भवति सुख सिद्धिर्जनहिता
यतिस्सर्वानन्दो विदिशतु योगं सुखकरम्।।५।।

भावार्थः— समदर्शी, महाशान्त, मननशील, महामानव, सरलस्वभाव कर्मयोगी सर्वानन्द स्वामी हमें इस संसार में शुभ संकल्प देवें। जिस दृढ़ शिवसंकल्प से हमें जनहितकारिणी सुखसिद्धि की उपलब्धि होवें। यह सन्त सदैव हमें सुखदायी राजयोग का मार्गदर्शन करता रहे।

महायोगिन्! वाचि त्वयि वसति वीर्यं सुबहुलम्,
अयि स्वामिन्! क्लेशं खलुजगति दग्ध्वाभवशिवः।
विधाताथत्राता ननुनय सुदूरं हि दुरितम्,
मुनिस्सर्वानन्दो विजयतु जगत्यां च दुरिते।।६।।

भावार्थः— हे महायोगी तेरी वाणी में ही बहुत शक्ति निहित है। इसलिए तुम जन कष्टों को संसार में भस्मीभूत कर कल्याणकारी कहलाओ तथा पापों को दूर कर निर्माता तथा जगरक्षक बनकर सर्वसुखदाता मुनिवर संसार की बुराईयो पर विजय प्राप्त करो।

रुचीनां वैचित्र्यादपि रचय नीडं जनहितम्,
फलानां दातृत्वाद्वितनय विभूतिं सुखदा।
इयं काम्यासिद्धिस्तव भवतु लोकाय सुखदा,
मुनिससर्वानन्दो जयतु भववैरे च कुटिले।।७।।

भावार्थः— हे मुनिवर! आप जन-सुखदाता हो। आप कर्मानुसार फलों के दाता होने के कारण वरदात्री विभूति को विस्तृत कीजिए। यह आपकी कमनीया कामना लोक के लिए सुख देने वाली बने। और आप संसार के कुटिल वैर पर विजय प्राप्त करें।

यदेच्छा भोगस्यात्र जनयति मोहं भवजुषाम्,
तदातुष्टो योगी क्वचिदपि च मोहं न कुरूते।
ससारे संसारे च भवरसमुक्तो मुतिनरः,
मुनिस्सर्वानन्दो विजयतु संसारे रसभरे।।८।।

भावार्थः— जब सांसारिक मनुष्यों की इच्छा मोह में लिप्त होती है, तब योगी प्रवर मोह से निर्लिप्त होता है। आप कामरस पूर्ण संसार में संयमी जन रस विमुक्त रहो। हे! सर्वानन्द। परमानन्द में लीन आप कामुक लोक पर विजयी बनो।

इदं तथ्यं जानाति जगति मनीषा हि महताम्,
यदास्थायी लोकश्च भवति विनाशेन सहितः।
तदेच्छा युक्तास्यात्र भवतु कथं दुस्तरपरे,
मुनिस्सर्वानन्दो विजयतु लोकेऽति दुरिते।।९।।

बड़ों की प्रत्युत्पन्न प्रतिभा इस सच्चाई को भली-भांति जानती है कि यह लोक विनाशवान है। इसलिए कठिनता से पार होने वाले इस जगत में रहने की जीवन् मुक्त की अभिलाषा नहीं होती। प्रभुरस भोगी योगी इस पाप मुक्त जग पर हे! परम सन्त आप विजय प्राप्त करो!

स्मरं हत्वा स्वामी निसति च पापादति बहिः,
महद्धैर्य्यं धृत्वा प्रभवति स मोक्षाय गतिमान्।
सुविधाविस्तारं निगमनिधि ज्ञानं च तनवन्,
मुनिस्सर्वानन्दो जयतु भुविधर्मं प्रकटयन्।।१०।।

भावार्थः— मननशील मनस्वी स्वामी सर्वानन्द कामादि शत्रुओं को विनष्ट करके निष्पाप होकर धर्म का अवलम्बन कर, मोक्ष की ओर अग्रसर होते हुए वेदनिधि ज्ञान और सत्य विद्या का विस्तार करते हुए, धरती पर धर्म का प्रचार एवं प्रसार करते हुए सभी दिशाओं में विजय प्राप्त करो।

—श्री महेन्द्र कुमार शास्त्री, दिल्ली

प्रभु-चरणों में

उपकार तुम्हारे इतने हैं....

उपकार तुम्हारे इतने हैं, जिनको मैं गिना नहीं सकता।
कण-कण में आप समाये हो, जग को मैं दिखा नहीं सकता।।

क्या अनुपम, अद्भुत, देन तेरी, दाता हो दीख नहीं पड़ते।
सब काम पूर्ण कर देते हो, कर्त्ता हो, कर्म नहीं करते।
तुम सर्वाधार बने जग के मैं तुमको भुला नहीं सकता,.

जब चिड़िया चहक-चहक गाती, मीठी सी तान सुना जातीं।
जब भोर की किरणें आकर के, निज स्वर्ण प्रभा फैला जातीं।
आनन्द विभोर हुआ मन तब, अनुभव को बता नहीं सकता..

रोते को कभी हंसा देते, हंसते को कभी रुला देते।
सब खेल तुम्हारे अद्भुत हैं, भोले हम समझ नहीं पाते।
हो पारब्रह्म परमेश्वर तुम, कोई तेरा पार न पा सकता..

दो आंख दिए, दो कान दिए, रसना रसभरी बना डाली।
दो हाथ दिए, दो पैर दिए, अद्भुत यह देह रचा डाली।
सब चकित देख कौशल तेरा, तू अद्भुत खेल दिखा सकता..

क्या नहीं दिया तूने हमको, हम खुद ही लेना भूल गये।
हर भूल पे समझाया तूने, हम खुद ही खुद को भूल गये।
इस भूल-भुलैय्या से हमको, बस तू ही पार लगा सकता..

ठोकर खाकर जो चेत गये, वे द्वार तुम्हारे आये हैं।
जो तुमसे दिल की कहते हैं, वे दिलवाले भी आये हैं।
तेरे द्वार पे आकर के कोई, खाली हाथों नहीं जा सकता..

क्या अद्‌भुत महिमा जाल तेरा, रंगों-रंगों की क्यारी हैं।
आश्चर्य चकित सब देख रहे, तेरी रचना बलिहारी है।
बीता है अनहद काल प्रभु, कोई पार न तेरा पा सकता..

ये धवल हिमाच्छादित पर्वत, यह कल-कल, छल-छल, नदियों का।
कहीं मोती टंगे तृणों पर हैं, कहीं नृत्य मयूर, मृग छौनों का।
कर रहा सृष्टि का नव श्रृंगार, तुझसा कर्त्ता नहीं हो सकता..

कहीं झूम रही डाली-डाली, रस भरे रंगीले फूलों की,
कहीं अमृत निर्झर झरता है, गुंजन गूंज है भौरों की।
तू सुन्दरता का मानदण्ड, कोई तेरा भेद न पा सकता..।

जब आंख से आंसू बहते हैं, मन विह्वल सा हो जाता है।
खुद की करनी आती है याद, मन धिक्-धिक् हमको करता है।
तू फल का दाता है भगवन्, मैं दोष तुम्हें नहीं दे सकता..

जैसा बोया, वैसा काटा, अब पछताने से क्या होगा।
शुभ कर्मों की बहती नदियां कुछ कण चखले फिर क्या होगा।
प्रभु! सुपथ दिखानेवाला है, हमको पथ दीख नहीं पड़ता..

क्या कहे, सुनाए, गुण तेरे, अब 'नीर' मूक बन बैठा है।
क्या खोज रहा उसको बाहर, वह तेरे अन्दर बैठा है।
उस निर्विकार की महिमा का, साकार, न वर्णन कर सकता..

—महावीर 'नीर' विद्यालंकार
गुरकुल कांगड़ी, हरिद्वार

शत्-शत् वन्दन

एक सन्त जो सेवा में दिन रात रमा है।
शत्रु मित्र की संज्ञाओं से दूर खड़ा है।।
जो विरक्त है वीतराग है सदा शान्त है।
किसी प्रलोभन से भी होता नहीं भ्रान्त है।।
सत्य दया से जिसका मानस ओत प्रोत है।
जिसका जीवन आदर्शों का सतत् स्रोत है।।
जिसके मन में रागद्वेष का भाव नहीं है।
क्षोभ नहीं दु:खों से सुख का चाव नहीं है।।
जो स्वतन्त्रानन्द स्वामी का परं शिष्य है।
दयानन्द का भक्त, आर्यों का भविष्य है।।
तप:पूत योगी कर्मठ साधु अलबेला।
जन समूह मिलकर भी जो जचे अकेला।।
सरल सरल मन जिसका, सरस-सरस है जीवन।
उस संन्यासी सर्वानन्द को शत्-शत् वन्दन।

रचयिता:— प्राध्यापक उत्तमचन्द जी 'शरर' पानीपत (हरियाणा)

यह आर्यसमाज के लिए गौरव का विषय है

संन्यासी हो जाने के अनन्तर तो स्वामी जी महाराज आर्यसमाज के प्रतिष्ठित नेताओं में से एक हो गये हैं और कुछ अंशों में तो वे आर्यसमाज के सर्वश्रेष्ठ संन्यासी और नेता माने जाते हैं। आप पूर्णरूप से निस्पृह व्यक्ति' हैं, किसी के प्रति किसी प्रकार का राग-द्वेष आपके मन में नहीं है। किसी प्रकार का लोभ-लालच आप में कतई नहीं है। सर्वथा निष्पक्ष व्यक्ति हैं। पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा आपने सर्वतो-भावेन त्याग रखी है। आर्यसमाजों के उत्सवों पर आपको बड़े आदर से आमन्त्रित किया जाता है। आपके प्रवचन बड़ी श्रद्धा से सुने जाते हैं।

आप शब्दाडम्बर में न पड़कर बड़े नपे-तुले भाव-भरे शब्दों में बड़ी स्पष्टता और सरलता के साथ अपनी बात लोगों को कहते हैं। श्रोताओं पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ता है।

आर्य-समाज के संन्यासीवर्ग और नेतृवर्ग में ऐसा उच्च-कोटि का संन्यासी व नेता उपलब्ध है। यह सारे आर्यजगत् के लिए अभिमान और गौरव की बात है।

विद्यामार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत वेद वाचस्पति पूर्व आचार्य श्रीमद्दयानन्द उपदेशक विद्यालय लाहौर तथा विश्वविद्यालय गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार

मानो वेद झूठा पड़ गया

लेखकः श्री स्वामी विद्यानन्द जी सरस्वती—देहली

कर्मयोगी स्वामी सर्वानन्द जी

'प्रत्यक्ष' का लक्षण करते हुए महर्षि गौतम ने अपने न्यायदर्शन में लिखा है— **'इन्द्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यम्'** — प्रत्यक्ष ज्ञान शब्द निरपेक्ष होने से अव्यपदेश्य होता है। पेड़ा, बरफी, कलाकन्द आदि सभी में मधुर रस का अनुभव होता है। परन्तु प्रत्येक के माधुर्य में अन्तर होता है। भोक्ता उस माधुर्य के परस्पर अन्तर का बोध अन्य को नहीं करा सकता। इसी कारण भोक्ता का वह ज्ञान अव्यपदेश्य अथवा शब्द द्वारा अबोध्य है। मैंने पूज्यपाद स्वामी जी को बहुत निकट से देखा है— उनका प्रत्यक्ष किया है। इसलिए वे क्या हैं, 'न शक्यते वर्णयितुं गिरा तद्'।

राम और लक्ष्मण जनक की वाटिका में घूम रहे थे। वहीं एक ओर सीता भी अपनी सखियों के साथ विहार कर रही थी। एक सखी सीता के पास से हट कर राम-लक्ष्मण की ओर चली गई। जब लौटी तो बड़ी पुलकायमान थी। सखियों ने जब उससे उसकी अत्यधिक प्रसन्नता का कारण पूछा तो वह बोली— "कैसे बताऊं! 'गिरा अनयन, नयन बिनु वाणी'। जिन्हें देख कर मैं इतनी प्रसन्न हो रही हूं, उन्हें मेरी आंखों ने देखा है किन्तु वे बोल नहीं सकतीं। और जो बोल सकती है, उस वाणी ने देखा नहीं। इसलिए मैं अपनी प्रसन्नता का कारण कैसे बताऊं? स्वामी जी के व्यक्तित्व और कृतित्व को उनके पास रह कर अनुभव किया जा सकता है, जाना या बताया नहीं जा सकता।

मानो वेद झूठा पड़ गया

दृश्य १— दोपहर का भोजन स्वामी जी महाराज अपने हाथ से परोसते हैं। बारी-बारी अपनी थाली लेकर ब्रह्मचारी स्वामी जी के पास आते हैं और स्वामी जी महाराज मातृवत् स्नेह से हरेक की थाली में दाल-सब्ज़ी और रोटी रखते जाते हैं। पास ही एक प्यारी सी बिल्ली आकर बैठ जाती है, अपना भोग्य पाने की आशा में। स्वामी जी प्रायः पहले उसी को भोग लगाते हैं। बिल्ली भी इसे अपना अधिकार मानती है। कभी-कभी जब वह अपने को उपेक्षित अनुभव करती है तो वह कूद कर स्वामी जी की गोद में जा बैठती है। स्वामी जी उसे हटा कर झिड़क देते हैं तो वह 'सामृतैः पाणिभिर्घ्नन्ति गुरवो न विषोक्षितैः' सत्यार्थ-प्रकाश में उद्धृत इस वचन को स्मरण करके स्वामी जी की डांट का बुरा नहीं मानती और स्थितप्रज्ञ की भांति 'सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ' की भावना से धरने पर बैठ जाती है और अपनी मांग पूरी होने पर वहीं एक ओर बैठकर सबके साथ 'सहनाववतु सह नौ भुनक्तु' का पाठ करती है। उसकी यह बाल लीला देखते ही बनती है।

एक दिन इसी प्रकार हम सब भोजनशाला में बैठे भोजन कर रहे कि एक

व्यक्ति ने आकर सूचना दी कि पंजाब के स्वास्थ्य मंत्री (Health Minister) सरदार शीशपाल सिंह अपने दल-बल के साथ अपनी चिकित्सा के सिलसिले में आये हैं। और कोई होता तो मंत्री का नाम सुनते ही नंगे पैरों दौड़ जाता। परन्तु मां बच्चे को दूध से हटा कर कैसे कहीं जा सकती थी? स्वामी जी ने कह दिया कि उन्हें आदरपूर्वक बिठाओ। हम बच्चों को भोजन कराके आयेंगे। ऐसा ही हुआ।

दृश्य २– एक दिन इसी प्रकार भोजन काल में सूचना मिली कि एक गौ खड़ी-खड़ी गिर पड़ी है। और हमने देखा कि स्वामी जी सब कुछ छोड़ कर भाग खड़े हुए, जैसे कभी श्रीकृष्ण सुदामा का नाम सुनते ही सिंहासन छोड़कर मुख्य द्वार की ओर दौड़ गये थे। सीधे गौ के पास पहुंचे। तत्काल किसी को डाक्टर को लिवा लाने के लिए भेजा। डाक्टर के आने तक स्वामी जी गौ को प्यार से सहलाते रहे। हम लोग भी वहां खड़े रहे। डाक्टर ने आवश्यक उपचार किया। स्वस्थ होने पर गौ उठकर खड़ी हुई। उसने सिर घुमा कर इधर-उधर देखा तो पाया कि एक ओर पास ही उसका नन्हा सा बछड़ा खड़ा है, और दूसरी ओर स्वामी जी महाराज। गौ स्वामी जी की ओर गई और उनकी बगल से लग कर खड़ी हो गई। स्वामी जी भी उस पर हाथ फेरने लगे। वेद में कहा है –"अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या"(अथर्व ३/३०/१) हे मनुष्यो! तुम एक दूसरे से ऐसी प्रीति करो जैसी गौ अपने बछड़े से करती है। मुझे ऐसा लगा जैसे आश्रमस्थ पशुओं के प्रति स्नेह और सेवा भाव से प्रभावित गौ ने 'वत्सं जातमिवाघ्न्या' प्रभु के इस कथन को चुनौती दे डाली। 'तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आंखन की देखी।'

मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि ऋषि-मुनियों के आश्रमों में पशुओं के प्रति वहां रहने वाले तपस्वियों के इसी प्रकार के स्नेहसिक्त व्यवहार के कारण वहां के वातावरण में सांस लेने वाले शेर और बकरी एक घाट पानी पीते होंगे। योगदर्शन के अनुसार 'अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः' (२/३५) –अहिंसा में पूर्व की स्थिति हो जाने पर योगी के सामीप्य में शाश्वत विरोधी प्राणियों का वैर छूट जाता है, साधारण विरोधी का तो कहना ही क्या?

स्वभाव से शान्त, किन्तु वज्रादपि कठोर

चार या पांच वर्ष पहले की बात है। पंजाब में मारकाट हो रही थी। ऐसे में बावा आमटे अपनी मंडली के साथ वहां पदयात्रा कर रहे थे। श्री कृष्ण जन्माष्टमी से अगले दिन वे दीनानगर में दयानन्द मठ में भी पहुंचे और अपना सन्देश दिया। मैंने कहा कि अहिंसा के द्वारा स्वयं (भगवान् कृष्ण देश की ९० प्रतिशत जनता के लिए तो "श्रीकृष्णस्तु भगवान्– दूसरी ओर भी स्वयं)' पांच गांव न ले सके और भगवान् राम तो एक इंच धरती भी नहीं चाहते थे, मात्र अपनी पत्नी वापिस चाहते थे, किन्तु हिंसा के बिना उसे भी न पा सके। इस पर स्वामी जी उन लोगों को संबोधित करके बड़े तेजस्वी स्वर में बोलेः– "हम लोग तो मर रहे हैं। अहिंसा का उपदेश उनको दो, जो हमें मार रहे हैं।"

पंजाब सरकार ने बहुत चाहा, यहां तक कि गुरुदासपुर के डिप्टी कमिश्नर ने स्वयं

आग्रहपूर्वक कहा कि दयानन्द मठ की सुरक्षा के लिए अपेक्षित सिक्योरिटी की व्यवस्था की जाये। परन्तु स्वामी जी ने इससे स्पष्ट इंकार कर दिया। फिर भी किसी ने मठ की ओर आंख उठा कर देखने का साहस नहीं किया।

न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का वार्षिक निर्वाचन आर्य कालिज पानीपत में श्री स्वामी जी महाराज की अध्यक्षता में हो रहा था। श्री जगदेव सिंह सिद्धान्ती, और स्वामी इन्द्रवेश जी के बीच संघर्ष था। सन् १९७३ के सितम्बर मास की बात है। मैं उस समय कालिज़ का प्रिंसिपल था। बड़े कांटे की लड़ाई थी। दोनों ओर की सेनायें डटी खड़ी थी और सेनयोरूभयोर्मध्ये स्वामी जी खड़े थे, किन्तु वे मध्यस्थ थे,अर्जुन की तरह युयुत्सु नहीं थे। मतगणना के समय विवाद हो गया। दिल्ली से मुझे प्रो० शेर सिंह जी का फोन आया कि आप स्वामी जी से कह दें कि वे सिद्धान्ती जी के पक्ष में निर्णय की घोषणा कर दें। प्रो० शेरसिंह उन दिनों केन्द्रीय सरकार में मंत्री थे। उन्हें विश्वास था कि स्वामी जी इसमें ननुनच नहीं करेंगे। मैंने संदेश पहुंचा दिया। परन्तु स्वामी जी ने ऐसा करने से स्पष्ट इंकार कर दिया।

अपनी बात

स्वामी जी महाराज काम करने वालों का मान करते हैं। उन्हें प्रेरणा देते उनका उत्साह बढ़ाते और हर प्रकार की सहायता प्रदान करते हैं। मैं कई वर्ष से अस्वस्थ चल रहा हूं। पिछले ६ मास से तो बिस्तर पर ही हूं। फिर भी यदि मैं अपने लेखनकार्य में प्रवृत्त रहा तो यह पूज्य स्वामी जी महाराज की प्रेरणा 'चरैवेति चरैवेति' का परिणाम है। काफी अस्वस्थ रहने की स्थिति में भी यदि मैं सत्यार्थ प्रकाश जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ का महाभाष्य लिखने का कार्य कर सका तो इसका पूरा श्रेय स्वामी जी को है, जिनके आशीर्वाद व शुभकामनाओं का टानिक मुझे प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों रूपों में मिलता रहा। उसके अभाव में मैं कभी का बैठ गया होता। इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है।

डी-१४/१६ माडल टाउन दिल्ली — विद्यानन्द सरस्वती

और पीला पत्ता हरा हो गया

लेखकः प्राध्यापक उत्तमचन्द्र जी 'शरर' पानीपत (हरियाणा)

मेरे मकान का प्रागंण कुछ विशाल। मैंने देखा, साथ के मकान में खड़े नीम के वृक्ष से एक पीला पत्ता धीरे-धीरे नीचे आया और आंगन ने उसे प्रसन्नतापूर्वक शरण दे दी। नीम का वृक्ष किसी अन्य मकान में खड़ा है। छाया भी उसी को देता है, परन्तु उसी का पीला पत्ता मेरे मकान के प्रागण में विश्राम पाता है? क्या विडम्बना है? मेरी भृकुटी तनी परन्तु आंगन तो जैसे उसके स्वागत को उत्सुक था।

कुछ ऐसी, या इससे भी अधिक उदारता मैंने एक सन्त हृदय में पाई। नैरोबी से रोगी होकर लौटा, तो जिगर के दोष से भूख विदा हो चुकी थी, कुछ खाने के लिए क्षुधा ही नहीं थी, शरीर में रक्त बनना समाप्त और मैं मृतप्राय हो गया। चण्डीगढ़ में आर्यसमाज के एक भजनोपदेशक ने चेतावनी दी कि अब आपके जीवन के दिन गिनती के रह गये हैं। समझता मैं भी था परन्तु क्या किया जाए?

सौभाग्य से आर्यसमाज दीनानगर के निमंत्रण पर मुझे वहां जाना पड़ा। दीनानगर में स्वामी जी के दर्शनों की चाह तो जागती ही है। सायंकाल को मठ में पहुंचा। कंकाल मात्र, पीला मुख, अस्थिपंजर शेष। स्वामी जी ने देखा तो उद्विग्न हो उठे, तत्काल शरीर का परीक्षण किया और विह्वलता से औषधालय खोला। मैंने स्वामी जी की वह विह्वलता हृदय से अनुभव की। कोई माता अपने पुत्र के लिए इतनी विह्वल क्या होगी?

औषधि दी गई। प्रयोग विधि बताई और मैं बदले में रुखा धन्यवाद देकर लौट आया। औषधि का प्रभाव तो होना था, क्योंकि उसके साथ पूज्य स्वामी जी की शुभकामनायें जुड़ी थीं। कुछ ही दिनों में मैं स्वास्थ्य लाभ करने लगा, और आज जो मैं जीवित हूं यह प्रभु कृपा और इस सन्त की शुभकामनाओं का परिणाम है।

प्रांगण ने भी पीले पत्ते को शरण दी थी, सन्त ने भी अपने विशाल-हृदय में आश्रय दिया परन्तु आंगन पीले पत्ते को शरण देकर हरा न कर सका। सन्त की कृपा से पीला पत्ता पुनः हरा हो गया। गोस्वामी तुलसीदास जी ने ठीक ही लिखा है:—

> सन्त हृदय नवनीत समाना
> कहा कविन्हं पर मर्म न जाना
> निज परिताप द्रवेन व नीता।
> पर दुःख द्रवहिं सन्त पुनीता।।

मैंने कभी अपने ग्राम में पं० रामचन्द्र जी सिद्धान्त शिरोमणि का सत्य के विषय पर प्रवचन सुना था। तब मेरे मस्तिष्क को उस भाषण ने जीत लिया था। अब वही पं० रामचन्द्र जी, श्रद्धेय स्वामी सर्वानन्द जी के रूप में दीनानगर में मिले और उनके प्रेम ने मेरे हृदय को जीत लिया। श्रद्धा का स्रोत मन में उमड़ रहा है जिससे जीवन सरस हो गया है।

न जाने कितने पीले पत्ते इस सन्त के विशाल हृदय में स्थान पाकर नवजीवन को प्राप्त कर पाए हैं। सचमुच सन्त हृदय की विशालता आश्रय तो देती ही है, जीवनदायिनी भी है। ऐसे सन्त प्रवर को मेरा श्रद्धा युक्त प्रणाम!

"संस्मरणों के झरोखे से"

श्री स्वामी सुमेधानन्द,
दयानन्दमठ, चम्बा

पूज्य गुरुदेव एक निःस्पृह सन्त हैं। वे मान-अपमान से ऊपर उठ गए हैं। जिस लोकेषणा की प्राप्ति हेतु लोग लालायित रहते हैं, उसकी उन्होंने कभी भी कामना नहीं की। बाहर से साधारण से दिखने वाले पूज्य गुरुदेव सचमुच असाधारण व्यक्तित्व के स्वामी हैं। वे निष्काम कर्मयोगी, परोपकारी, दयालु व उदार हैं। अपनी एवं मठ की प्रशंसा उन्होंने कभी नहीं करवाई। संस्मरणों के झरोखे से उनके व्यक्तित्व की कुछ झलकियां पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूं।

(१) आजकल धार्मिक संस्थाएं भी व्यावसायिक उपक्रमों का भरपूर विज्ञापन करती हैं। किन्तु पचास वर्ष बीतने पर भी पूज्य गुरुदेव ने आज तक दयानन्द मठ फार्मेसी का विज्ञापन नहीं छपवाया। मठ द्वारा संस्थापित संस्कृत विद्यालय को

सरकार अनुदान देना चाहती थी किन्तु गुरुदेव ने अस्वीकार कर दिया। अनुदान के कागजात लेकर आए शिक्षा अधिकारी कहने लगे– "महाराज! बार-बार अधिकारी स्वयं अनुदान देने इस प्रकार नहीं आएंगे", तो सन्त का उत्तर था कि स्वयं प्राप्त सरकारी अनुदान को अस्वीकार करने वाले भी पुनः आपको नहीं मिलेंगे। लोभ तो इन्हें छू भी न सका। अधिकारी नतमस्तक होकर चले गए।

(२) मठस्थ लोगों की वे कैसी रक्षा करते हैं और सभी अन्तेवासी उन पर कितना भरोसा करते हैं उसकी झांकी देखिए। मठ में एक बूढ़े संन्यासी स्वामी सुव्रतानन्द जी रहते थे। बहुत लम्बी संध्या किया करते थे। एक दिन मैं पूछ बैठा कि स्वामी जी! बड़ी लम्बी संध्या करते हो। उत्तर देने लगे कि प्रार्थना लम्बी करता हूं। मैंने कहा भला क्या प्रार्थना करते हो। वे कहने लगे कि श्री स्वामीजी जिस प्रकार से हम सबकी रक्षा करते हैं वह विलक्षण है। जब कभी वे अस्वस्थ हो जाते हैं तो चिंता हो जाती है और यह सोचकर तो एक सिहरन-सी पैदा हो जाती है कि कहीं इन्हें कुछ हो गया तो हमारा क्या बनेगा। अतः देर-देर तक प्रभु से प्रातः-सायं की वेला में प्रार्थना किया करता हूं कि प्रभो! मुझे स्वामी जी से पूर्व ही उठा लेना। जब तक जिऊं उनकी छत्र-छाया में ही जिऊं। उन्हें दीर्घ-जीवन दो मेरे प्रभु! ऐसी प्रार्थना बूढ़े स्वामी जी किया करते थे।

(३) "क्षमा बड़न को चाहिए, छोटन को उत्पात" के अनुसार वे तो क्षमा करना जानते हैं। दूसरे के उत्पात, अपराध पर ध्यान भी नहीं देते हैं। झलकियां प्रस्तुत हैं–

(अ) आत्माराम पाचक बड़ा ही निकम्मा व्यक्ति था, वाणी में तो उसके संयम था ही नहीं। जो जी में आया कह देता। अनेक बार स्वामीजी महाराज के साथ बहस करते हुये कह देता– "तूसी की जाणदे हो। त्वानू कुछ पंता नहीं"। इस पर मैंने कभी भी स्वामीजी महाराज को रोष करते नहीं देखा अपितु मुस्कुराते ही देखा।

(ब) महाराष्ट्र के एक व्यक्ति श्री रामचन्द्र राव मठ में आए। उन्होंने मेरे साथ ही संन्यास लिया था। संन्यासी बनने पर उनका नाम स्वामी स्वात्मानन्द हुआ। सन् १९७० की घटना है। वे और दीनानगर के श्री पं० धर्मपाल जी फार्मेसी का सामान खरीदने अमृतसर गए। श्री रामचन्द्र राव, जो उस समय फार्मेसी के मुख्य कार्यकर्त्ता थे। सामान खरीदने हेतु तीन-चार हजार रुपये भी ले गए थे। श्री राव की असावधानी से सारा रुपया खो गया। सायंकाल मुंह लटकाए हुये जब मठ पहुंचे तो पूछने पर पता लगा कि रुपया गुम हो गया। श्री राव, श्री धर्मपाल एवं हम सभी सोच रहे थे कि पूज्य स्वामी महाराज बहुत नाराज होंगे व डांट भी पड़ेगी। डरते-डरते वे स्वामीजी के पास पहुंचे व सहमे हुये जब यह कहा कि रुपया तो गुम हो गया तो पूज्य गुरुदेव तत्क्षण बोल उठे– कोई बात नहीं। अब बीते हुये पर सोच करना व्यर्थ है। हां, भविष्य में सावधानी से रहने का

संकल्प अवश्य करना चाहिए। फिर एक ब्रह्मचारी को बुलाया उससे गिलास मंगाया व श्री राव को दूध डालकर पीने के लिए पकड़ाते हुये कहने लगे– दूध पिओ व आराम करो। कितनी निःस्पृहता है। श्री राव के मुंह से निकल पड़ा– ये आदमी नहीं, देवता हैं, देवता।

(स) जम्मू के एक स्वामी सुबोधानन्द जी थे। क्रोधी स्वभाव के व बड़े बातूनी। उन्हें अधरंग की बीमारी हो गई। ब्रह्मचारियों से कहते रहते– "मेरी पत्नी बड़ी पति परायण है मेरा बेटा गाजियाबाद में इंजिनियर है, बड़ा आज्ञाकारी है। उन्हें पता लगे कि पिता जी बीमार है तो दौड़ कर सेवा करने आयें। यहां तो मेरी कुछ भी सेवा नहीं हो रही है। उनकी यह बातें श्री स्वामी जी महाराज के पास पहुंची। सबने सुझाव दिया कि स्वामी जी क्यों न इन स्वामी जी को गाजियाबाद इनके पुत्र व पत्नी के पास भेज दिया जाये। पूज्य स्वामीजी ने स्वीकृति प्रदान कर दी। केरल प्रदेश का एक ब्र० पुरुषोत्तमन था, उसके साथ इन्हें भेज दिया गया, पुरुषोत्तमन ने बताया कि इन्हें देखकर बेटा तो छुप गया व इनकी पत्नी कहने लगी कि आप मठ से क्यों आगए? तुम्हारा बेटा तो कहीं दूर चला गया है और मैं स्वयं बीमार रहती हूं। अतः यहां सेवा कौन करेगा? उसी समय उन्हें वापस कर दिया। घर में बिठाया तक नहीं। जब मठ लौटे तो ब्रह्मचारी सब समाचार जानकर उन स्वामीजी की हंसी करने लगे किन्तु पूज्य गुरुदेव कहने लगे कि इन्हें कुछ न कहें। इन्होंने बिना विवेक व वैराग्य के ही संन्यास ले लिया, इसीलिए ऐसी घटनाएं इनके जीवन में घटती रहती हैं। इनके दोषों पर ध्यान न देना चाहिए। उन्होंने उन्हें क्षमा कर दिया।

(४) तुलसीदास ने कहा –"परहित सरस धरम नहीं भाई"
किसी अन्य ने कहा –"सेवा धर्मः परमगहनः"
श्री कृष्ण ने कहा– "परित्राणाय साधूनां...संभवामि युगे युगे।"

पूज्य गुरुदेव भी संभवतः साधुओं, सज्जनों वेद प्रचारकों, वेदाध्ययन में रत ब्रह्मचारियों के कल्याणार्थ ही अवतरित हुये हैं। सेवा का उनका कीर्तिमान शायद ही कोई भंग कर सके। मठ में अनेक साधू-महात्माओं, धर्म प्रचारकों की अन्त समय तक जो सेवा हुई, वह अवर्णनीय है।

श्री स्वामी भूमानन्द जी, श्री स्वामी सुधानन्द जी, श्री स्वामी सुव्रतानन्द जी, श्री स्वामी सुबोधानन्द जी, श्री ब्र० कुन्दन लाल, सुश्री शान्ता बहिन जी चम्बे वाली, श्री स्वामी सम्पूर्णानन्द जी, श्री पं० देवप्रकाश जी, श्री पूरण चन्द वानप्रस्थी सभा मुख्तारे आम एवं श्री स्वामी शंकरानन्द जी की अन्त समय तक जो सेवा सुश्रूषा हुई, दीनानगर वाले उसके साक्षी हैं। सेवा करने में उनकी बराबरी कोई नहीं कर सकता, उक्त सभी स्वामी लोग प्रायः इतने रुग्ण हुये थे कि बिस्तर में ही टट्टी-पेशाब करते थे।

(५) वे शारीरिक सुखों से ऊपर उठ चुके हैं। जब उनसे कहा जाता है कि अब गाड़ी ले लें तो तत्काल कहते हैं कि सड़क पर जितनी भी गाड़ियां दौड़ रही हैं, सभी अपनी ही हैं। जिसको इशारा करें वही बिठा लेता है। अतः मठ का पैसा व्यर्थ

क्यों खर्च किया जाए। जब उनसे कहते हैं कि महाराज वर्षा ऋतु में मच्छर हो जाते है। अतः मच्छरदानी ले लें तो कहते हैं कि क्या आवश्यकता है, मिट्टी का तेल शरीर पर मल लेता हूं तो मच्छर पास भी नहीं फटकते। फिर मच्छर दानी की क्या आवश्यकता है।

उदारता इतनी अधिक कि आश्चर्य होता है। एक बार चम्बा आए। हमारी एक छात्रा प्रमदा जो अत्यधिक मेधावी व गुणवती थी, बहुत बीमार हो गई। उसे पी० जी० आई० चंडीगढ़ ले गए। जब गुरुदेव चम्बा पधारे तो मैंने कह दिया कि महाराज प्रमदा बहुत बीमार हो गई है, उसके जीवन व मृत्यु के बीच संघर्ष चल रहा है। इस समय चंडीगढ़ है। तुरन्त मुझे आदेश दिया कि प्रातः ही चंडीगढ़ चले जाओ और उसका जीवन बचाने के लिए जो भी हो सके, करो। जितना पैसा लगे, हम लगाएंगे। चंडीगढ़ जाते हुये मठ से पैसे लेते जाना। यह सुनने को न मिले कि रुपये के अभाव में वह बेटी दम तोड़ गई। इससे अधिक उदारता का दूसरा उदाहरण और क्या मिलेगा।

उनका एक अटूट सिद्धान्त है कि जिसे एक बार अपना लो, फिर उसे छोड़ना नहीं चाहिए। और इसीलिए उन्होंने जिसे एक बार अपनाया बाद में वह चाहे अनुचित व्यवहार भी करने लगा किन्तु स्वामी जी महाराज ने उसे स्वयं नहीं छोड़ा। उनके अनन्त गुण हैं। इसीलिए उनके नेतृत्व में दयानन्द मठ, दीनानगर, दयानन्द मठ चम्बा, वैदिक यतिमंडल ये सभी संस्थाएं यश की भागी बनी हुई हैं। प्रभु से प्रार्थना है कि वह पूज्य गुरुदेव को रोग रहित दीर्घ जीवन दें ताकि उनकी छत्र छाया व कुशल नेतृत्व में हम सभी उनके पग-चिन्हों पर चलते हुये अपने जीवन को धन्य कर सकें। श्रद्धेय गुरुदेव के चरणों में सुमेधानन्द का शत-शत प्रणाम।

ओ३म्

"गुरुपाद पंकजों में मेरा नमन"

आचार्य महावीर सिंह, एम० ए०,
दयानन्द मठ, चम्बा

गुरुओं के भी गुरु पूज्य चरण श्रद्धेय श्री स्वामी जी महाराज का अभिनन्दन हो रहा है, यह हम सभी के लिए हर्ष का विषय है। इस अवसर पर लेख लिखे जा रहे हैं। कोई कविताओं के माध्यम से पूज्य चरणों में अपनी प्रणति समर्पित कर रहा है। भावनाओं के भ्रमर में मैं भी भ्रमित हुआ। नवनीत वत् एक विचार आया कि मैं भी कुछ लिखूं परन्तु क्षणादनन्तर ही कवि कालिदास का कथन स्मरण हो आया—

"क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्प विषयामति"

मैंने भी सोचा, अरे! कहां तो उज्ज्वल चरित्र के धनी, तपोनिष्ठ, दृढ़व्रती, त्यागी, तपस्वी, परोपकार परायण, प्राणी मात्र के दुःखों को अपनी झोली में समेट कर उनके लिए सुखों का उत्सर्जन करने वाले भव्य भावनाओं से भाषित हमारे पूज्य स्वामी जी महाराज और कहां थोड़ी- थोड़ी बातों में भी विचलित होने वाली पारद्वत् चंचल तेरी बुद्धि। अरे पगले! क्या इसी के बल पर तू उस उज्ज्वल चरित्र के विषय में कुछ लिख सकता है। बस अन्तःकरण से एक ही उत्तर निकला नहीं, नहीं! नहीं!! तो फिर किस तरह अपनी पुष्पाञ्जलि, अपनी

प्रणति श्री चरणों मे अर्पित करुं। निराशा के इस घटा टोप अंधेरे में एक बिजली-सी चमकी और अन्तःकरण से आवाज आई कि अरे बावले! और न सही पर उस कल्प वृक्ष की छाया में बिताए क्षणों की सुखानुभूति को तो स्मरण कर ही सकता है। बस फिर क्या था आंखें चमक उठीं और अपने हृदय के उद्गारों को लेखबद्ध करने के लिए उत्साहित हो उठा। वेद की सूक्ति है– "देवानाम् सख्य–मुपसेदिमा वयम्"– हम लोग दिव्य पुरुषों की संगति में रहें। वे सौभाग्यशाली हैं जिन्हें देव जनों की संगति प्राप्त होती है। कहा भी है कि – "सत्संगति कथय किम् न करोति पुंसाम्।" भजन की भी एक पंक्ति है– आते-जाते सत्संग में इंसान बदल जाते हैं। इस सत्संगति की कामना तो सभी करते हैं किन्तु यह किन्हीं सौभाग्यशाली को ही प्राप्त होती है। मैं उन्हीं सौभाग्यशालियों में हूं जिन्हें यह सौभाग्य मिला है।

मैंने देव पुरुषों की केवल संगति हीं नहीं की अपितु उनके चरणों में बैठकर सुख-समृद्धि व ज्ञान भी प्राप्त किया है और कर रहा हूं, जीवन-निर्माण किया है और कर रहा हूं, उनके आशीर्वादों से नहाया हूं और नहा रहा हूं, उनका कृपा प्रसाद पाया और पा रहा हूं तथा उनकी पवित्र छत्रछाया में रहा हूं और अब भी रह रहा हूं। गुरु जनों के स्नेह-सरोवर में निमंञ्जन कर रहा हूं, जिसमें लोग एक डुबकी मात्र लगाने के लिए भी तरसते हैं। जिस सुमनोरम ऊषाकाल में मेरे भाग्य-भास्कर ने अपनी प्रथम किरणों से गुरुचरणों में प्रथम प्रणाम किया था, जब मैं उस प्रभात को नमन करने के लिए अतीत की ओर झांकता हूं तो बहुत पीछे दृष्टि दौड़ानी पड़ती है। सालों पीछे की पर्तें खोलता चला जाता हूं। एक नहीं, दो नहीं, पूरे २२ वर्ष हो गए हैं। १५ वर्ष की आयु में मठ में आया था आज सैंतीस वर्ष का हो गया हूं। इन बाईस वर्षों में मुझे पूज्य स्वामी जी के चरणों में रहने का सौभाग्य मिला है। उस उज्ज्वल चरित्र की अनेक झांकियां देखी हैं, जिससे उनके तप, त्याग व आदर्श जीवन की स्वच्छ झलक मिल जाती है। ये दिखाई देने में भले ही सांधारण सी दिखती थीं किन्तु इन्होंने मेरे जीवन को अत्यन्त प्रभावित किया है।

पाठक! क्या ये अविस्मरणीय घटनाएं नहीं है। श्रावणी, दीपावली व ऋषिबोध पर्व पर जब पूज्य स्वामी जी महाराज यज्ञशाला में कथा करने आते थे तो हम ब्रह्मचारियों को ऐसा लगता मानों यह कोई महान ऋषि हों, हमारा माथा श्रद्धा से झुक जाता था। वे कब सोते हैं, कब उठ जाते हैं कब स्वाध्याय या ध्यान करते हैं, यह तो हम कभी भी न जान पायें। हम तो जब भी उठे उन्हें उठा ही पाया। हां तो मैं कथा के दिनों की बात कर रहा था। प्रातः ही संध्या-हवन की घंटी बजती और हम संध्या-हवन में बैठ जाते। हमें वहां बिठाकर स्वयं स्वामी सुबोधानन्द जी (जो अधरंग के मरीज थे) का शौच का कमोड उठाकर निकासी में फेंक आते। यह स्वामी सुबोधानन्द जी उन दिनों उठने में असमर्थ थे और बिस्तर में ही शौच करते थे। पूज्य स्वामी जी ने वह समय इसलिए चुना था कि कथा के बाद यदि कमोड उठाया तो ब्रह्मचारी मुझसे वह बर्तन ले लेंगे। और वह नहीं चाहते थे कि बाल बटु प्रातः ही

इस कार्य में लगें। यह लगभग १९७० की बात है। उन दिनों मठ में शौचालय नहीं बने थे। सेवा का यह कितना अनुपम उदाहरण था।

स्वामी सुबोधानन्द जी, स्वामी सम्पूर्णानन्द जी, स्वामी शंकरानन्द जी एवं आत्माराम पाचक कुछ ऐसे लोग मठ में थे, जो अत्यधिक क्रोधी स्वभाव के थे। किन्तु पूज्य स्वामीजी महाराज ने कभी भी उनके प्रति रूखा व्यवहार नहीं किया। जब कभी उन्हें कोई कहता कि स्वामी जी महाराज इन लोगों को मठ में रखने से क्या लाभ तो वे उनके सद्गुणों का बखान करने लग पड़ते। किन्तु ऐसा कभी भी नहीं सोचा कि इन्हें मठ से हटा देते हैं जबकि उन्होंने पूज्य स्वामीजी के प्रति दुर्व्यवहार करने में कमी नहीं छोड़ी, आत्माराम पाचक से तो सभी तंग थे। बड़ा ही कटु व्यक्ति था। जब कोई उसकी शिकायत को लेकर जाता तो प्रायः कह देते कि देखो! प्रभु ने इसे तुम्हारे तप की परीक्षा लेने भेजा है। जब यह क्रोध करता है उस समय यदि तुम संयम रख सको तो समझो कि तुम क्रोध पर विजय प्राप्त कर रहे हो। आत्माराम के कारण तो तुम्हारी पग-पग पर परीक्षा होती रहती है। अतः इसे यत्नपूर्वक मठ में रखो, संभवतः ऐसे उदारचरित महामानव के लिए ही कवि ने लिखा है।-

विकार हेतो सहित विक्रियन्ते, येषां न चेतांसि त एव धीरा।

घटनाओं का एक जाल सा है। उनका तो एक-एक व्यवहार वर्णनीय है। वे हम ब्रह्मचारियों का उत्साह भी खूब बढ़ाया करते थे और अब भी बढ़ाते रहते हैं। एक बार मैं किसी कार्यवश घरोटा गांव गया था। वापसी पर सड़क पर पड़े रुपयों पर मेरी दृष्टि पड़ी, संभवतः वे सौ से अधिक रुपये थे। इधर-उधर नजर दौड़ाई तो दूर एक व्यक्ति को साइकिल पर शहर की ओर जाते देखा। यह सोचकर कि शायद वह रुपये उसकी जेब से गिर गए होंगे, मैंने अपनी साईकिल उसके पीछे दौड़ाई किन्तु वह बहुत आगे निकल गया था। उन रुपयों को देखकर मेरे मन में कुछ भी विकार नहीं आया क्योंकि पूज्य स्वामी जी महाराज हमारे जीवन-निर्माण हेतु प्रायः सदुपदेशों की अमृतवर्षा करते ही रहते थे, फलस्वरूप हमारे मन में आदर्श ब्रह्मचारी बनने की भावना ही बलवती बनी रहती थी। मठ लौटने पर मैंने वह रुपये पूज्य श्री स्वामीजी महाराज के चरणों में रख दिये और निवेदन किया कि न जाने रास्ते में किसके रुपये गिरे थे, आप इन्हें संभालें व जो उचित हो, वह करें। पूज्य स्वामीजी महाराज ने उस धन का घृत व सामग्री मंगवाकर एक यज्ञ करवा दिया। मेरे जीवन की यह एक सामान्य घटना थी। प्रायः सभी के जीवन में ऐसी घटनाएं घटती रहती हैं। परन्तु पूज्य गुरुदेव ने तो इस घटना को अपने प्रवचनों में ही सम्मिलित कर लिया, जिसमें प्रशंसापूर्वक कहते थे कि हमारा ब्रह्मचारी कितना निस्पृह है। इससे मुझे कितनी प्रेरणा मिलती रही है, यह मेरा अन्तःकरण ही जानता है।

पूज्य स्वामी जी महाराज द्वारा दिए संस्कार इतने प्रबल बने कि बाद में यही घटना मेरे पुत्र ऋषिकुमार में भी संक्रमण कर गई। बच्चों के साथ खेलते हुये पांच-छः वर्ष की आयु

में उसे साठ रुपये मिले। उसने वे रुपये सीधे हमें लाकर दे दिए। जब कोई भी उन रुपयों का स्वामी न मिला तो पूज्य स्वामी सुमेधानन्द जी के परामर्शानुसार उन साठ रुपये की घृत-सामग्री लेकर यज्ञ कर दिया गया।

पूज्य स्वामीजी महाराज की कृपाओं, उनके उज्जवल जीवन के विविध पक्षों का कहां तक वर्णन करूं। सोचता हूं कि शास्त्रों में कल्पवृक्ष का जो वर्णन मिलता है क्या वह सशरीर पूज्य गुरुदेव के रूप में तो अवतरित नहीं हो गया? उनसे मिलकर सभी तो सफल मनोरथ होकर लौटते हैं। ब्रह्मचारी विद्वान बन कर। रोगी नीरोग बनकर एवं पुत्रदा वटी द्वारा सन्तानार्थी संतान प्राप्त करके सफल मनोरथ होते हैं। उन्हें किसी से ग्लानि, घृणा, द्वेष नहीं है। उनके लिए सब समान हैं। "आत्मवत् सर्व भूतेषु यः पश्यति स पण्डितः" हितोपदश की इस उक्ति के अनुसार वे भेदभाव से ऊपर उठ गए हैं।

वे त्याग की प्रतिमूर्ति हैं। स्वयं फटे-पुराने वस्त्र पहन कर काम चला लेते हैं। किन्तु अन्यों को नवीन वस्त्र देते रहते हैं। अन्यों को मलाई युक्त दूध व दही देते हैं किन्तु स्वयं रूखी-सूखी रोटी खाकर रह जाते हैं। अन्यों के रहने का पूर्ण प्रबन्ध करते हैं किन्तु स्वयं साधारण ढंग से रहते हैं। उनके पास किसी भी चीज़ की कमी नहीं फिर भी स्वयं खाली के खाली हैं। क्योंकि उनका तो सर्वस्व ही परार्थ के लिए है। ऐसे हैं हमारे पूज्य गुरुदेव। उनके चरणों में मेरा शत बार नमन है।

निराश्रितों के आश्रय हमारे पूज्य स्वामी जी

लेखकः– श्रीमान् आचार्य आर्य नरेश जी प्रधान, आर्य प्रतिनिधि सभा, हिमाचल प्रदेश

मैं राजकीय सेवा से त्यागपत्र देकर आर्ष पाठविधि से देव-वाणी का अध्ययन करने के लिए गुरुकुल कालबा में प्रविष्ट हुआ। महर्षि का जीवन चरित्र पढ़कर मेरे विचारों में ऐसा परिवर्तन आया था। गुरुकुल कालबा में ब्रह्मचारियों को अपने भोजन की व्यवस्था आप करनी पड़ती है। मेरे पास कुछ पैसा था, वह मैं समाप्त कर चुका था। कुछ मूल्यवान् और सामान था, वह भी बेच दिया। अब मेरे पल्ले कुछ भी नहीं था।

मेरा यह संकल्प था कि अब घर से कुछ भी आर्थिक सहयोग नहीं लेना। तो फिर कैसे काम चले? ग्राम में भिक्षा के लिए अलख जगाता रहा। तभी पता चला कि ग्राम में कुछ परिवारों में एक रोग फैला है। इस कारण भिक्षा करने से कुछ संकोच-सा होने लगा। जो छात्रवृत्ति मुझे मिल रही थी, उससे काम न चलता था। गृहस्थों को कष्ट देते हुये भी सकुचाता था। कोई उपाय नहीं सूझ रहा था।

तभी मुझे रोहतक जाना पड़ा। पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज से वहां भेंट हो गई। अपने आप स्वामी जी ने कहा, किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो बताना। एक दिन गुरुकुल में बैठे-बैठे स्वामीजी को पत्र लिखकर कुछ सहायता मांगने का विचार आया। बस, डरते-डरते पचास रुपये मासिक की सहायता की विनती की। विनती क्या की .... संकेत-मात्र

किया। प्रतिमास संक्षिप्त प्रेरणाप्रद उपदेश के साथ पचास रुपये आते रहे। जब तक आवश्यकता रही पूज्य स्वामी जी मुझे छात्रवृत्ति देते रहे।

मुझे इसी बात पर आश्चर्य सा होने लगा कि इस सरल पवित्र आत्मा को साधारण ढंग से कहे गये अपने शब्दों का कितना सामीप्य है! किस दृढ़ता से इस यति ने अपने कहे हुये शब्दों को मूर्त्त रूप दिया। यही तो एक सच्चे साधु के लक्षण हैं। आज तो यह देखा जाता है कि ठोक-ठोक कर बात करने वाले लोग न जाने कितने आश्वासन देते हैं परन्तु पूरा एक भी नहीं कर पाते। परीक्षा की कसौटी पर बड़े-बड़े नेता भी खरे नहीं उतरते। पूज्य स्वामीजी के आर्थिक सहयोग व वैचारिक भोजन ने मुझे महाभाष्य पूरा करने के लिए निश्चिन्त कर दिया। श्रीस्वामी जी महाराज के प्रताप व प्रभाव से मैंने भी यह निश्चय किया कि गुरुकुल से निकलकर मैं भी वैदिक धर्म के लिए समर्पित ब्रह्मचारियों के भरण-पोषण के लिए ऐसे ही सहयोग किया करूंगा। ईश्वर की कृपा से मैं इस ज्ञान-यज्ञ के प्रसार के लिए कुछ कर सका। इसमें मेरा क्या है? यह श्रद्धास्पद स्वामी जी का रचाया हुआ यज्ञ है।

अध्ययन काल में अथवा अब प्रचार करते हुये जब भी मेरा मठ में जाना हुआ, पूज्य स्वामी जी से सदैव अद्भुत प्रेरणा प्राप्त हुई। उनकी एक बात मेरे लिए अविस्मरणीय रहेगी कि सदा आर्यसमाज की सेवा करना परन्तु परस्पर की गुटबन्दी में कभी मत पड़ना। दलबन्दी से सदा दूर रहना। जब जब मुझे कोई समस्या आती है तो मैं उन्हीं का मार्ग दर्शन लेकर आगे बढ़ता हूं। जब मुझे आर्य सज्जनों ने मेरे बारम्बार रोकने पर भी हिमाचल आर्य प्रतिनिधि सभा का प्रधान बना दिया तो मैंने श्री रोशनलाल जी को सभा का कार्यकर्त्ता प्रधान बनाकर प्रचार कार्य में ही अधिक शक्ति लगाने को श्रेयस्कर जाना। जिस दिन मैं प्रचार न कर पाऊं मुझे ऐसा लगता है कि मैं गृहस्थों का भोजन करने का अधिकारी नहीं। ऐसी स्थिति में मैं किसी परिवार के बच्चों को ही पकड़कर कुछ समझाने का यत्न करता हूं।

स्वामी जी सदा निराश्रित संन्यासी महात्माओं व उपदेशकों को आश्रय देते हैं। एक बार डलहौजी की प्रचार यात्रा में मुझे एक बड़े सर्प ने काट खाया। तब मुझे किसी सगे-संबंधी व माता-पिता का ध्यान न आया। पूज्य स्वामी जी व दयानन्द मठ की याद आई। मैं मठ में पहुंचा। उन दिनों की उनकी सेवा को आजीवन नहीं भूल सकता। विष को उतारनें के लिए काली मिर्च व गो घृत देते रहे। एक दिन मैंने कहा, "स्वामी जी सर्प के काटने के कारण मैं कार्य तो कुछ कर नहीं पा रहा फिर इतना घी पचेगा कैसे?" एक सच्ची माता का हृदय लिए हुये आपने मुझे डांटकर कहा, "पी लो, पी लो, तुम जवान हो। सब पच जावेगा।"

मेरी दृष्टि में आर्यप्रचारकों के भोजन आदि का विशेष ध्यान रखने वाला पूरे आर्य जगत् में एक ही महापुरुष है और वे हमारे स्वामी जी हैं। मैं कुटिया के सामने के कमरों में ठहरा था। कुटिया से आवाज़ लगाकर बुलाते। कड़े वाला गलास भर भर कर दूध का पिलाते

जाते। १½ लीटर दूध तो पीना ही पड़ता था। यदि न पीता तो एक ही बात कहते, "पी लो, बहुत घूमते हो। उपदेशकों को स्वास्थ्य का भी ध्यान रखना चाहिए। यह परम आवश्यक है।" यह स्नेह मेरे साथ ही नहीं, सभी के लिए आपके हृदय में ऐसे ही भाव भरे हैं। मैं अपने इस सच्चे मार्गदर्शक के विषय में अधिक क्या लिखूं। उनका जीवन तो मिश्री की डली के समान है, जीवन के जिस भी पक्ष को लो, आपका व्यवहार सभी के लिए अनुकरणीय है।

जब गृह-त्याग कर वेद-प्रचार के लिए कटिबद्ध हुआ था तब अनेक हितैषियों ने निरुत्साहित किया। "क्या करने जा रहे हो? रोगी होने पर कौन पूछेगा? बुढ़ापे में कहां जाओगे?" है कोई ठिकाना? मेरे नयन सजल हो गये। आगे क्या लिखूं? प्रचार क्षेत्र में अठारह वर्ष हो चुके हैं। पूज्य स्वामी जी की छत्र-छाया में कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। कभी पछतावा नहीं हुआ। परमेश्वर का विश्वास लिए हुये ऋषि की राह पर पग बढ़ाए जा रहा हूं।

यहां यह बताना भी रुचिकर ही होगा कि मेरे ज्येष्ठ भ्राता तुल्य श्री राजेन्द्र 'जिज्ञासु' जी ने ही मेरा श्री स्वामी जी महाराज से परिचय करवाया था। आप ही ने मुझे मठ से जोड़ा था। आपने पूज्य श्री स्वामी जी महाराज के बारे में मुझे जो कुछ कहा, मैंने इस ज्ञानवृद्ध वयोवृद्ध तपस्वी को वैसे ही पाया। आज इसी वटवृक्ष के नीचे हम उनके आशीर्वादों की ठण्डी छाओं का आनन्द भोग रहे हैं। यति मण्डल के संस्थापक अध्यक्ष पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज का अभिनन्दन शत शत वन्दन।

सरल होते महात्मा, बात यह सुनने में आती है।
मगर सच तो है ये इनकी बड़ी ही वज्र छाती है।।
तभी तो दुर्जनों के तीर से तीखे कुवचनों से।
महात्माओं की छाती तो कभी बिंधने न पाती है।।

घर का मोह छोड़ बैठे तो, सारा जग परिवार हो गया।
जो था कभी क्षुद्र नद वह अब, विस्तृत पारावार हो गया।।
द्वेष घृणा अभिमान, ईर्ष्या, कपटादिक को स्थान कहां अब।
ओत-प्रोत मानस मन्दिर में, इतना पावन प्यार हो गया।।

कविरत्न प्रकाशचन्द्र जी

द्वितीय खण्ड

राम कहानी

जीवन–दर्शन

"महापुरुष तो बड़े उत्तम धर्मयुक्त पुरुषार्थ से होता है।"[2]

सम्पादक :– प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

प्रथम परिच्छेद

दयानन्द मठ दीनानगर
२–१२–८६

सेवा में
श्रीमान् प्रा० जिज्ञासु जी,
सादर नमस्ते!

आपका कृपा पत्र मिला। ड्राफ़्ट भी मिल गया है जिसके लिए धन्यवाद। जिस कार्य में, जिन बातों में, मुझे बिल्कुल रुचि नहीं है, जो मुझे बुरी लगती हैं, वे बातें, वह कार्य आप लोग करने लगे हैं।

मैं अपने आपको किसी अभिनन्दन का पात्र नहीं समझता, मिलने वालों से मैंने कहा है कि प्रचार के लिए दान एकत्रित भले ही कर लें। अन्त में अभिनन्दन नहीं चाहिए।

आजकल अभिनन्दन की परम्परा बहुत आरम्भ हो गई है। मैं उस परम्परा में नहीं हूं। मनुष्य का धर्म है यथा शक्ति कार्य करना फिर उसके लिए अभिनन्दन चाहना गिरावट है। आप कई वर्ष से एक सप्ताह मुझे अबोहर में आने के लिए कह रहे हैं। शीतकाल के पश्चात् सम्भव है आ सकूं।

सबको यथायोग्य नमस्ते। बम्बई में क्या दवा भेजनी है लिखने की कृपा करें।

भवदीय
सर्वानन्द

दयानन्द मठ दीनानगर
१२–१०–९०

सेवा में,
श्रीमान् जिज्ञासु जी,
सादर नमस्ते।

ईश्वर से परिवार की दीर्घायु तथा उत्तम स्वास्थ्य की कामना करता हूं। स्वामी सुमेधानन्द या अन्य किसी ने आपको मेरा जीवन-चरित्र लिखने के लिए प्रार्थना की है। पूज्य स्वामी जी महाराज3 में आपकी बहुत श्रद्धा थी और है। आपने बहुत श्रद्धा और परिश्रम से उनका बहुत बड़ा जीवन-चरित्र लिखा है। मठ से आपका बहुत ही स्नेह है जिसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। मुझसे भी आपका बहुत स्नेह है और मेरा भी आपसे स्नेह है। किन्तु जीवित लोगों का जीवन-चरित्र लिखने की प्रथा नहीं है बल्कि जीवित लोगों का जीवन-चरित्र लिखने से लोगों में उनके प्रति घृणा और हीन भावना उत्पन्न हो जाती है। इसलिए आप जो कुछ लिख रहे हैं, उससे घटनायें सुरक्षित तो हो जावेंगी किसी समय उसका लाभ भी होगा किन्तु जीवन-चरित्र प्रकाशित करना सर्वथा उचित नहीं है। आशा है आप मेरे विचारों से सहमत हो सकेंगे। सब मठ निवासियों की सादर नमस्ते।

भवदीय
सर्वानन्द

जन्मभूमि-कुल-युग वार्ता

भारत भूमि परमेश्वर की एक अद्भुत देन है। यह ठीक है कि आज यह देश अपने स्वार्थी, कुटिल, पदलोलुप, धनलोलुप व महाभूठे राजनेताओं के कुकृत्यों के कारण नरक बन चुका है। अपने नागरिकों के चारित्रिक पतन के कारण यह देश अपने प्राचीन गौरव को खो चुका है परन्तु कभी यह देश संसार का सिरमौर था। यह देश जगतगुरु कहलाता था। ज्ञान विज्ञान का प्रकाश प्रसार यहीं से सारे विश्व में हुआ था। अभी कल की बात है कि सन् १९२३-२४ ई० में देहली से खाजा हसन निज़ामी की एक पुस्तक के पीछे एक विज्ञापन छपा था कि आर्यों की मान्यता है कि पृथ्वी गोल है इसको युक्ति व प्रमाणों से भुलाने वाली यह बेजोड़ पुस्तक पढ़िए।

गलेल्यो व ब्रूनों जैसे वैज्ञानिकों को ईसाई धर्म गुरुओं ने क्या-क्या यातनायें नहीं दी थीं? किस लिए? उनका दोष यही तो था कि पृथ्वी को वे गोल मानते थे और इस आर्यावर्त देश में पृथ्वी संबंधी विद्या का नाम ही भूगोल था। बड़े-बड़े वैज्ञानिकों व ऋषियों-मुनियों को जन्म देने के कारण हमारा देश विश्व में पूजा जाता था। गये बीते युग में भी इस देश ने बड़े-बड़े महात्माओं, त्यागी, तपस्वी, बलिदानी महापुरुषों को जन्म देकर संसार में अपनी गौरवगरिमा को फिर से प्राप्त करने का क्रम आरम्भ किया।

उन्नीसवीं शताब्दी में प्राचीन ऋषि मुनियों की परम्परा में एक बाल ब्रह्मचारी, ब्रह्मवेत्ता, प्रतापी तेजस्वी महर्षि दयानन्द को जन्म देकर यह धरती धन्य हो गई। धरा धाम पर उस निष्कलंक सत्यनिष्ठ योगी के पाण्डित्य व चरित्र की धूम मच गई। जर्मनी व पाताल देश (अमरीका) के ज्ञानी, ध्यानी व विचारक उस वेद वेत्ता की ज्ञान-प्रसूता वाणी पर मुग्ध होकर उसके गीत गाने लगे।

अपने देश वासियों में नवचेतना का सञ्चार करने के लिए ऋषिवर ग्राम-ग्राम, नगर-नगर, डगर-डगर विचरण करते रहे। वेद-ज्ञान की निर्मल गंगा को प्रवाहित करते हुये अखण्ड ब्रह्मचारी, परोपकारी दयानन्द २४ दिसम्बर सन् १८७८ ई० को हरियाणा प्रदेश के रिवाड़ी नगर में पधारे। यहां पर ऋषि ने १७ दिन तक अमृत वर्षा की।

यहां के राजा युधिष्ठिर सिंह जी ने ऋषि को रिवाड़ी पधारने का निमन्त्रण दिया था। राव युधिष्ठिर सिंह ने अपने क्षेत्र के लोगों में ऋषि के आगमन की सूचना प्रसारित की। दूर-दूर से श्रद्धालु भारी संख्या में ऋषि के उपदेशामृत का पान करने के लिए आए। हरियाणा के लोक कवि श्री पं० बस्ती राम जी ने भी ऋषि के दर्शन यहीं किए थे। पं० बस्तीराम जी यहां ऋषि दरबार में अपनी रसभरी वाणी से भजन भी सुनाया करते थे। अपना एक स्वरचित भजन गाया जिसमें उस समय का चित्र खींचा गया है कि कहां-कहां से दूरस्थ नगरों व ग्रामों से श्रद्धालु ऋषि-दर्शन के लिए उमड़ घुमड़ कर आए। उस भजन की अन्तिम पंक्ति है:— **'बस्तीराम ऋषि का चेला इक तारे पर गावे से'**

इस रिवाडी नगरी से कोई ५० किलोमीटर की दूरी पर सासरोली नाम का एक छोटा सा स्टेशन पड़ता है। सम्भव है तब सासरोली ग्राम

से भी कोई भाग्यशाली पुरुष रिवाड़ी में ऋषि का सिंहनाद सुनने गया हो। सासरोली ग्राम रोहतक जिला में पड़ता है। ऋषि की इस यात्रा के कोई पैंतीस वर्ष पश्चात् सासरौली के एक परमोत्साही चौधरी महाशय जुगलाल ने अपने ग्राम में वैदिक धर्म का नाद बजाया। इस चरित्रवान्, परोपकारी महाशय जुगलाल के पुरुषार्थ से सुधार व उपकार का बड़ा कार्य हुआ। आपने १९१२ में आर्यसमाज की अग्नि-परीक्षा के काल में वीर लेखराम का झण्डा उठाया।

इसी सासरोली ग्राम में ऋषि की इस रिवाड़ी यात्रा के कोई २२ वर्ष पश्चात् राव रघुनाथ सिह जी के सुपुत्र श्री हरदयाल सिंह जी के घर सौभाग्यवती माता फूलां देवी जी की कोख से अप्रैल सन् १९०१ में एक बालक ने जन्म लिया। इस बालक का नाम माता ने रामचन्द्र रखा। यही बालक आज स्वामी सर्वानन्द जी महाराज के नाम नामी से विख्यात है।

जन्म के वर्ष संबंधी विचार

राम के परिवार की कुछ और चर्चा करने से पूर्व यहां राम के जन्म के वर्ष पर कुछ विचार करना आवश्यक है। राम के कुल में इस समय राम से बड़ा कोई व्यक्ति भी जीवित नहीं है। उनके ताऊ के एक पुत्र सिंहराम हैं। वह राम से बहुत छोटे हैं। उनके मत के अनुसार रामचन्द्र जी का जन्म सन् १९०४-५ में हुआ। राम के एक बाल्यकाल के सखा श्री चौधरी रूपचन्द से हम मिले। उन्हें अपनी ही जन्म तिथि व वर्ष का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं। उनसे जो एतद्विषयक वार्ता हुई उसके अनुसार भी हमारे चरित्र नायक सन् १९०४ ई० के आसपास जन्में परन्तु, यह सब कुछ अनुमान से ही कहा जा रहा है। आज से कुछ वर्ष पूर्व एक संस्कृत पत्रिका में श्री आचार्य रामानन्द जी का स्वामी सर्वानन्द जी पर एक लेख छपा था। उसमें भी स्वामी जी के जन्म के संबंध में कुछ ऐसा ही विचार प्रकाशित किया गया।

हम इस मत से कतई सहमत नहीं है। कारण? कुछ वर्ष पूर्व स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के संन्यास आश्रम में प्रवेश की चर्चा चली तो स्वामी सर्वानन्द जी ने हमें बतलाया था कि स्वामी जी की संन्यास-दीक्षा का दृश्य आज भी मेरी आंखों के सामने खिच जाता है। आपने आंखों देखा वह सब वृत्तान्त हमें सुनाया। इसके पश्चात् भी कई बार अपने संस्मरण सुनाते हुये आपने लेखक को व अपने और भी कई भक्तों को इस ऐतिहासिक घटना के संस्मरण सुनाये हैं। उस घटना का आप एक सजीव चित्र खींच कर रख देते हैं। उससे पता चलता है कि आप तब १५-१६ वर्ष के अवश्य होंगे।

फिर विचार आता है कि संभव है असाधारण स्मृति का बालक होने के कारण आप को यह दृश्य आज भी ज्यों का त्यों वैसा ही याद हो। इस बात की जांच के लिए लेखक ने आपसे पूछा कि आप इस दीक्षा में किस के साथ गये थे। आपने बताया मैं तो गुरुकुल कांगड़ी का उत्सव देखने गया था। वहीं पता चला कि स्वामीजी संन्यास ले रहे हैं। जब वह मायापुर वाटिका में संन्यास दीक्षा के लिए गये तब एक लम्बी शोभा यात्रा निकली। ''मैं (राम) भी उसमें सम्मिलित हो गया। मैं अपने घर से अकेला ही गुरुकुल कांगड़ी गया था। घर वालों ने मार्ग-व्यय देकर जाने दिया।''

-अब हमारे सुविज्ञ पाठक स्वयं निर्णय कर लें कि राम तब कितने वर्ष के होंगे। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने सन् १९१७ में काषाय वस्त्र धारण किए थे। जब स्वामी सर्वानन्द जी ने प्रथम बार हमें अपनी कुटिया के बाहर तख्त-पोश पर बैठे उस दीक्षा समारोह का वृत्तान्त सुनाया हम उसी दिन से इस मत के हो गये कि आपका जन्म विक्रम सम्वत् १९५७–५८ (सन् १९०० या १९०१) का है।

कुछ वर्ष पूर्व मठ में सासरोली ग्राम का स्वामी जी का एक पुराना साथी संगी आया। आचार्य श्री जगदीश जी ने बताया कि वह व्यक्ति सेना में रहा था। उसने कहा था कि स्वामी जी महाराज की और उसकी आयु लगभग एकसी है। अपनी आयु के हिसाब से उसने श्री रामचन्द्र का जन्म सन्१९०१ का बताया। यह कथन यथार्थ है । उस सज्जन का नाम श्री मनीराम था। उसने कहा था कि स्वामी जी मुझसे दो वर्ष बड़े हैं। वह सेना से सेवामुक्त होकर पैंशन पा रहा था। उसकी जन्मतिथि आदि का उसके पास प्रामाणिक Record रिकार्ड था। वह अब इस संसार में नहीं है।

इससे हमारी धारणा की पुष्टि हो गई। अतः अब हमारा यह सुनिश्चित मत है कि बालक रामचन्द्र का जन्म अप्रैल सन् १९०१ (वैशाख मास विक्रम सम्वत् १९५८) में हुआ था।

यह वह युग था जब भारतीय राजनैतिक वातावरण में गर्मी आ चुकी थी। यह बाल, पाल, लाल का युग था। चापेकर बन्धुओं ने ईयर्स्ट व रैण्ड नाम के दो अंग्रेज़ों को पूणा में गोली मार कर भारतीय राजनीति को एक नया मोड़ दिया। इन सगे तीन भाइयों ने मातृभूमि के लिए फांसी दण्ड पाकर भारतीय नवयुवकों को क्रांतिपथ का पथिक बना दिया। यह युग श्यामजी कृष्ण वर्मा का युग था। गोरे शासक श्यामजी कृष्ण वर्मा से थर-थर कांप रहे थे।

धार्मिक दृष्टि से भी यह काल इतिहास में एक विशेष महत्त्व रखता है। आर्यसमाज के इतिहास में वह युग 'महात्मा मुंशीराम काल' कहलाता है। रक्तसाक्षी पं० लेखराम का मार्च सन् १८९७ ई० में लाहौर में बलिदान हुआ था। उनके बलिदान ने आर्यों में एक अदम्य उत्साह पैदा कर दिया। इसी काल में सन् १९०० (१९५७ विक्रमी की पौष मास की पौर्णमासी के दिन) एक तपस्वी ब्रह्मचारी केहरसिंह ने तीव्र वैराग्य से संन्यास धारण करके प्राण पुरी नाम पाया। यही महात्मा आगे चलकर स्वामी स्वतंत्रानन्द के नाम से विख्यात हुये। ऋषि दयानन्द की शिष्य परम्परा में और आर्यसमाज के इतिहास में आप प्रथम विद्वान् व नेता थे जिन्होंने संन्यास धारण किया। इससे पूर्व भी कुछ एक महानुभावों ने आर्यसमाज में संन्यास तो लिया परन्तु वे इस कोटि के विद्वान् व नेता नहीं थे।

इसी काल में अगले ही वर्ष विक्रम सम्वत् १९५८ तदनुसार सन् १९०१ ई० के अक्टूबर मास में आर्यसमाज के एक दीवाने सेवक और असाधारण विद्वान् पं० कृपाराम शर्मा ने धन-वैभव पर लात मार कर संन्यास धारण करके दर्शनानन्द नाम पाया। इसी वर्ष में हमारे चरित्र-नायक का जन्म आर्यसमाज के इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। इसे भी एक

संयोग ही समझा जावेगा कि लौह पुरुष स्वामी स्वतंत्रानन्द जी की संन्यास दीक्षा के कुछ ही मास पश्चात् विधाता ने उनके उत्तराधिकारी को जन्म दिया। इसे हम शास्त्रीय भाषा में ऐसे कह सकते हैं कि साधु स्वतन्त्रानन्द के जन्म लेने के शीघ्र पश्चात् उनके सुशिष्य ब्र० रामचन्द्र का माता की कोख से जन्म हुआ।

रामचन्द्र जी के दादा श्री रघुनाथ के पांच पुत्र थे। (१) बुद्धराम जी (२) सुर्जन सिंह जी (३) रामजीलाल जी, (४) हरदयाल सिंह जी तथा (५) किशनलाल जी।

श्री बुद्धराम के चार पुत्र जन्मे। अब सभी दिवंगत हो चुके हैं। इनके नाम इस प्रकार से थेः– श्री भाईधन, श्री माडूराम, श्री शोचन्द, श्रीमोलड़।

इन चारों में श्री माडूराम साधु बन गये। आपका नाम माडूदास हो गया था। साधु रूप में एक बार दयानन्द मठ दीनानगर भी गये थे।

श्री राम के दूसरे ताया श्री सुर्जन सिंह के कोई सन्तान नहीं थी। तीसरे ताऊ श्री रामजीलाल के सुपुत्र श्री सिहराम अभी हमारे मध्य हैं। आपकी आकृति स्वामी सर्वानन्द जी महाराज से बहुत मिलती-जुलती है। यह भी एक बार श्री महाराज के दर्शन करने मठ में गये थे।

श्री रघुनाथ के चौथे पुत्र श्री हरदयाल सिंह हमारे चरित्रनायक के पूज्य पिताजी थे। आपकी सन्तानों का पूरा व्योरा देने से पूर्व श्री राम के चाचा किशनलाल की चर्चा कर लें। इनका एक पुत्र हुआ। उसका नाम देवीसहाय था। बड़ा सुन्दर था। उसकी मृत्यु हो गई। किशनलाल जी की दो पुत्रिया इस समय भी हैं। एक का नाम है नीमो देवी और दूसरी का नाम सरिती देवी।

श्री हरदयाल जी के दो पुत्र हुये। बड़े का नाम श्री रिछपाल सिंह था और छोटे का नाम रामचन्द्र रखा गया।

श्री हरदयाल की तीन पुत्रियां थीं सबसे बड़ी भोली देवी थी। भोली देवी अपने पिता की दूसरी सन्तान थी और भाई रिछपाल से छोटी थी। राम, भोली के पश्चात् तीसरे नम्बर पर जन्मे थे। राम के पश्चात् मेघां देवी व भगवानी देवी। दो और बहिनों ने जन्म लिया था। तीनों बहिनों की सन्तानें हैं। अच्छे घरों में सबका विवाह हुआ। राम की अपनी बहन मेघाँ से आकृति इतनी मिलती थी कि दोनों एक से ही दिखाई देते थे।

रामचन्द्र जी के भ्राता श्री रिछपाल के भी आगे दो ही पुत्र हैं। बड़े का नाम मातूराम जी व छोटे का श्री अमीर सिंह। एक पुत्री भी थी। उसका नाम छन्नकौर देवी था। रिछपाल जी की मृत्यु सन् १९७७ में हो गई।

श्री मातूराम व अमीर सिंह का परिवार सुखी व सम्पन्न हैं। वैसे तो इस ग्राम में भी अब शिक्षा का बड़ा प्रचार हो रहा है। बहुत से लोग सेना में हैं व रह चुके हैं। श्री अमीरसिंह भी सेना से सेवामुक्त हैं तथापि इस ग्राम के लोग बाहर बहुत कम आते-जाते हैं। ग्राम के लोग यदा-कदा श्री महाराज के दर्शनार्थ मठ में जाया करते हैं। नई पीढ़ी के लोग जो चालीस वर्ष तक के होंगे, उनमें से पन्द्रह-बीस ही होंगे जिन्होंने स्वामी जी महाराज को देखा है। श्री अमीर सिंह

की पुत्री कु० सन्तोष एम० ए०, बी० एड० के अतिरिक्त पं० रामचन्द्र जी के ज्येष्ठ भ्राता के पौत्र-पौत्रियों में से किसी ने भी स्वामी जी के कभी दर्शन नहीं किए। कारणमात्र यही है कि इस ग्राम के लोग यात्रा कम करते हैं।

ग्राम के बच्चे-बच्चे को पता है कि हमारे ग्राम में एक बहुत तपस्वी, विद्वान्, महात्मा का जन्म हुआ है और उस महात्मा का नाम अब स्वामी सर्वानन्द जी महाराज है। ग्राम निवासी यह भी जानते हैं कि किस मकान में पण्डित रामचन्द्र जी का जन्म हुआ।

वह घर अब उस रूप में नहीं रहा

यह खेद का विषय है कि वह मकान अब उस रूप में नहीं रहा। यह एक स्वाभाविक सी बात है। पहले यह कच्चा था फिर पक्का बनाया गया। अब इस पक्के घर में भी परिवार के लोग नहीं रहते। अब सारा परिवार खेतों में अपने टयूबवैलों के पास नये मकान बना कर रहने लग गया है। यह बड़े सौभाग्य का विषय है कि परिवार के सब लोगों को यह निश्चित ज्ञान है कि हमारे पूज्य स्वामी जी का जन्म इस घर के किस कमरे में हुआ। वह कमरा अब नहीं है परन्तु पं० रामचन्द्र जी की माता व ताईयां सबको यह बताया करती थी कि राम इस मकान में यहां जन्मे थे। वह कमरा तो ढह चुका है परन्तु उस ऐतिहासिक स्थान को देखकर हमारा हृदय पुलकित हो गया।

परिवार की प्रत्येक पीढ़ी में एक साधु

हमारे राम ने यदुवंशी कुल में जन्म लिया। योगेश्वर कृष्ण के वंशजों के इस कुल की एक सजीली परम्परा है। इस इतिहास पर उन्हें बड़ा अभिमान है कि हमारे कुल में प्रत्येक पीढ़ी में एक व्यक्ति साधु बनता आया है। **हमें ग्राम में बताया गया कि राम के दादा श्री रघुनाथ** के एक सगे भाई केवलराम बाल ब्रह्मचारी रहे। वह संन्यासी हो गये।

वह रघुकुल और यह रघुकुल

त्रेतायुग के हमारे प्यारे व पूज्य मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी रघुकुल में जन्मे थे। इस युग के श्री रामचन्द्र जी भी रघुकुल में ही जन्मे। त्रेतायुग के रघुकुल में कोई साधु-महात्मा बनने की रीति रही हो, ऐसा वाल्मीकि रामायण में तो वर्णन मिलता नहीं। न ही कोई और प्रमाण उपलब्ध है। हरियाणा के इस रघुकुल में यह परम्परा देखकर हमें भी अचम्भा होता है। रघुकुल की इस रीति पर किस आर्य को गर्व न होगा? रघु के इस कुल में आगे भी कोई संन्यास लेगा? यह कहना तो कठिन है। संन्यास धारण करना कोई बच्चों का तो खेल नहीं। हमारे राम ने स्वामी सर्वानन्द जी के रूप में देश-धर्म को कई अच्छे-अच्छे तपस्वी, यशस्वी, संन्यासी देकर रघुनाथ के कुल को चार चांद लगा दिये हैं।

राम की आरम्भिक शिक्षा

राम को कुछ समय ग्राम में भी पढ़ने का अवसर मिला। ऐसा ग्राम के कुछ लोगों व पारिवारिक जनों ने बताया परन्तु राम के ही बाल्यसखा नम्बरदार रूपचन्द ने बताया कि ग्राम में तब स्कूल नहीं था। संभव है कि ग्राम के पण्डित से अक्षर-अभ्यास किया हो। राम को भाड़ली की प्राथमिक पाठशाला में प्रविष्ट करवाया गया। यह ग्राम सासरोली से चार किलो मीटर की दूरी पर है। यहां से प्राईमरी

पास करके राम ने रोहतक के जाट स्कूल में प्रवेश पाया। उस युग में छोटे-छोटे विद्यार्थियों को अपने सिरों पर पुस्तकें रखकर पैदल ही दूर-दूर जाना पड़ता था। विद्या प्राप्ति के लिए राम को कितना तप करना पड़ा, इसका अनुमान आज की पीढ़ी नहीं लगा सकती। तब न गाड़ी थी और न लारी थी। टांगे भी सब ग्रामों में आ जा नहीं सकते थे। साईकिल का आविष्कार तो हो चुका था परन्तु सासरोली का क्षेत्र बड़ा रेतीला है। सड़कें भी नहीं। आज भी ऐसे क्षेत्र में जहां पक्की सड़क न हो तो साईकिल लेकर चलना एक विपदा सिद्ध होता है।

सदा टोली के संग

श्री स्वामी विद्यानन्द जी व श्री रूपचन्द नम्बरदार स्वामी श्री सर्वानन्द जी(श्री पं० रामचन्द्र जी) के बाल्यसखा हैं जिनसे लेखक ने भेंट करके उनके बाल्यकाल की कुछ जानकारी प्राप्त की। दोनों का यह कहना है कि राम के साथ सदैव मित्रों, प्रेमियों की एक टोली रहती थी। स्कूल जाते हों वा स्कूल से आते हों, उनके साथ एक दल होता था, जो उनके कहे अनुसार ही चलता था।

राम बड़े अच्छे खिलाड़ी थे। मित्रों को खेलें भी खिलाते तथा सत्संग भी लगाया करते । ग्राम के फर्श पर राम एक ऊंचे स्थान पर बैठकर भजन गाते। सभी मिलकर गायत्री आदि मन्त्रों का पाठ करते। राम अपने दल को सदा अच्छी-अच्छी बातें सिखाते, बुराइयों से बचाते और व्यसन (यदि किसी को हो तो) छुड़वाते।

इसी कारण नम्बरदार रूपचन्द्र जी अपनी इस वृद्ध अवस्था में राम को अपना गुरु कहकर पुकारते हैं। नम्बरदार भाव विभोर होकर अपनी सन्तान व ग्राम के युवकों व बच्चों को अपने प्यारे सखा व पूज्य गुरु की मीठी-मीठी कहानियां सुनाते नहीं थकते।

श्री रूपचन्द जी सुनाते हैं कि रामचन्द्र जहां विद्याप्रेमी थे, वहां उस अवस्था में भी एकान्त प्रेमी भी बहुत थे। स्कूल से आकर वह वन में वृक्षों के नीचे बैठकर बहुत ध्यान से पढ़ा करते थे। वह जंगल तो अब भी है परन्तु अब वहां इतने वृक्ष नहीं रहे।

राम ने विद्या का बड़ा प्रचार किया। उन्हीं दिनों जब वह अभी न विद्वान् बने थे और न संन्यासी। सभी ग्रामवासियों को विद्या प्राप्ति की प्रेरणा देते थे। नम्बरदार ने कहा कि मुझे पढ़ाने वाले रामचन्द्र ही थे नहीं तो मैं कहां कुछ पढ़ पाता। स्कूल से आते-जाते रास्ते में भी हमें राम अच्छी-अच्छी बातें सुनाया करते थे।

रामदरबार:— राम जब ऊंचे स्थान पर बैठकर अपनी बाल सभा लगाते तो राम दरबार को देखकर माता फूलां देवी फूली न समाती थी और सदा ही यह कहा करती थी कि मेरा **'चन्दराम'** एक दिन सम्राट् बनेगा। सचमुच अपनी जननी के निधन से थोड़ा समय पूर्व राम संन्यास धारण करके परिव्राट् बन गये। यह स्मरण रहे कि माता अपने सुत को लाड से **'चन्दराम'** भी कहा करती थी। इसी कारण राम के भाई सिंहराम के व अन्य वृद्धों के मुख से अब भी रामचन्द्र की बजाए 'चन्दराम' निकल आता है।

हमने नम्बरदार जी से पूछा क्या राम ने बचपन में कभी झूठ भी बोला? चौधरी रूपचन्द्र बोले, "राम कभी भी झूठ नहीं बोलते

थे। वह उस समय ही बड़े सत्यवादी, पूर्ण धर्मात्मा थे।'' फिर पूछा, ''क्या राम ने बचपन में कभी गाली भी दी?'' आपने कहा,"रामचन्द्र ने कभी भी किसी को गाली नहीं दी। उनमें कोई भी खोट, कोई बुराई और कोई दोष कतई नहीं था। इनमें इतना सेवा भाव था कि कुएं पर जल खींचती हुई लड़कियों को कह देते थे कि लाओ मैं आपको जल खींच दूं।"इस क्षेत्र के कुएं इतने गहरे होते हैं कि जल खींचना बड़ा कष्टप्रद कार्य होता था। कुएं में झांकते हुये ही डर-सा लगता है। राम की बाललीला की कुछ रोचक घटनाएं आगे देते हैं।

राम की बाल-लीला

राम के ज्येष्ठ भ्राता कभी-कभी मठ में आया करते थे। श्री पं० रामचन्द्र जब स्वामी सर्वानन्द बन गये तब भी वह मठ में आते रहे। कभी-कभी एक सप्ताह तक भी मठ में रहे। कभी-कभी मठ के लोग उन्हें घेर कर श्री महाराज के बाल्यकाल की बातें पूछा करते थे। श्री आचार्य जगदीश जी ने उनके द्वारा सुनाई गईं राम की बाल-लीला की कुछ घटनाएं हमें सुनाईं।

राम परिवार के सबसे प्यारे थे

सारा परिवार इन्हें बहुत प्यार करता था। राम का हावभाव स्वभाव ही कुछ ऐसा था कि इस बालक की मोहिनीमूर्त पर सब मोहित थे। राम की कोई बात भी मोड़ी न जाती थी। यदि कभी कोई बात न मानी जा सके तो राम अपने बालहठ से मनवा के छोड़ता था।

राम जब रोहतक के स्कूल से आता था तो आकर पहले दूध की हांडी की ओर जाया करता था। सारी मलाई को बड़े चाव से खा जाया करता था। दूध, मलाई और घृत आदि राम को बहुत प्रिय थे। सारी मलाई चट कर जाने की राम की बाल-लीला माता-पिता जी को बहुत अच्छी लगती थी। दूध-घी की घर में कमी तो थी नहीं।

राम तेरी पुस्तक कहां गई?

उन दिनों ग्रामीण लोगों में विशेष रूप से किसानों के पास इतने साधन कहां थे। अभावग्रस्त तो परिवार नहीं था तथापि कुछ सीमायें थीं। राम यदा-कदा कहता मुझे पुस्तक लेकर दो, तभी मैं स्कूल जाऊंगा। घर वाले कहते पुस्तक तो तुम्हें लेकर दी थी, कहां गुम कर दी?

राम का सीधा सा उत्तर होता था, ''अमुक सहपाठी को दे दी। हम तो ले लेंगे। वह कहां से लेगा? उसके घर वाले तो पुस्तक क्रय नहीं कर सकते।''

ऐसा एक बार नहीं, कई बार हुआ। हमें अपने लाडले राम की बात माननी पड़ती थी।

चाबी का लट्ठा

आज से कोई चालीस वर्ष पहले तक ''चाबी का लट्ठा'' नाम का एक कपड़ा बड़ा लोकप्रिय था। यह बढ़िया कपड़ा खाते पीते सम्पन्न लोग ही क्रय करते थे। एक बार राम पर चाबी के लट्ठे की धुन सवार हो गई। यह घटना ऐसी है कि तब सासरोली ग्राम में महिलायें हाथ से ही वस्त्र सिया करती थीं। कपड़े सीने वाली मशीनों का रिवाज नहीं था।

सासरोली से कोई छः-सात कोस पर कोई कपड़े सीने वाली मशीन ले आया। सब ओर

यह समाचार फैल गया कि एक मशीन आई है जो उसी समय कपड़ा सी देती है और पहना देती है। राम ने भी मशीन की प्रसिद्धि व सिद्धि की कहानी कहीं से सुन ली। बस फिर क्या था, घर आकर परिवार के लाडले ने कहा, "मैंने चाबी के लट्ठे की कमीज़ सिलानी है और सिलानी भी मशीन से है। यह पहनकर ही स्कूल जाऊंगा अन्यथा स्कूल ही नहीं जाऊंगा।"

राम के ज्येष्ठ भ्राता ने बताया पहले तो चाबी के लट्ठे की मांग ही कुछ कम न थी और साथ सात कोस पर जाकर मशीन की सिलाई की आधुनिक मांग और भी परेशान करने वाली परन्तु क्या करते राम की बाल-लीला थी। राम ने मांग मनवा कर छोड़ी। चाबी का लट्ठा घर वालों ने कहीं से लाकर दिया। राम स्वयं सात कोस पर मशीन से कमीज सिलवाने गये। वही कमीज पहनकर राम स्कूल गये।

राम कल का घोड़ा देखने गया

साईकल का नया-नया प्रचलन हुआ। सासरौली के आस-पास कहीं कोई व्यक्ति एक साईकल ले आया। यह समाचार उस क्षेत्र में फैला तो बहुत से बच्चे व बड़े-बूढ़े भी इस नये आविष्कार को देखने उस ग्राम में जाने लगे। "कल का घोड़ा" देखें, आओ कल का घोड़ा देखकर आयें यही आवाज़ सब गली-मुहल्ले के बच्चे लगाते रहते। राम तब प्राथमिक स्कूल में पढ़ते थे। एक दिन स्कूल जाने का समय हुआ तो राम ने घर वालों से कहा, "मैं स्कूल न जाकर आज कल का घोड़ा देखने जाऊंगा।" राम 'कल' का घोड़ा देखने गये और सारा दिन घोड़े को ही देखते रहे। सायंकाल राम घर लौटे और घर आकर बताने लगे कि मैं 'कल' का घोड़ा देख आया हूं। वह कुछ भी खाता-पीता नहीं। मनुष्य उस पर बैठकर जहां चाहे उसे ले जा सकता है।

राम तब भी गो-सेवक थे

राम के ज्येष्ठ भ्राता ने यह भी बताया था कि आप घर के कृषि-संबंधी किसी भी कार्य में रुचि नहीं लेते थे। घर वाले भी कोई आग्रह नहीं करते थे कि खेती में कटाई-बिजाई आदि में सहयोग करें। घर वाले भी इसी बात से प्रसन्न थे कि राम पढ़ाई में अच्छी रुचि ले रहा है। घर के एक ही कार्य में राम की रुचि थी और उसे वह बिना कहे किया करते थे।

यह कार्य था गो-सेवा का। जब कभी मन में आता गऊओं को खोलकर चराने ले जाते। स्कूल में अवकाश के समय तो सारा-सारा दिन भी गऊओं को चराते रहते।

बाल्यकाल में केवल एक ही बार दण्डित हुए

पूज्य स्वामी जी बाल्यकाल में ही बड़े सुशील बालक थे। परिवार में यदि सबके प्यारे थे तो विद्यार्थी के रूप में गुरुजनों के भी अत्यन्त प्रिय रहे। क्या कभी आपको शरारत के कारण या न पढ़ने के कारण अथवा स्कूल का काम न करने पर दण्ड भी मिला?

इस प्रश्न के उत्तर में एकबार श्री महाराज ने बताया था, "हां! एक बार और केवल एक ही बार मुझे दण्ड मिला था।" वह घटना ऐसी घटी। राम प्राथमिकशाला में पढ़ते थे। श्री तोताराम रोहतक के अध्यापक थे। आर्य विचारधारा के ब्राह्मण थे। बालकों में ब्रह्मचर्य पालन का बड़ा प्रचार किया करते थे।

इन्होंने राम से कहा, "जा पहाड़े कहलवा।"

राम ने सबको पहाड़े कहाने आरम्भ किये। एक लड़का पीछे-पीछे पहाड़े नहीं बोलता था।

राम ने उसे रोड़ा (पत्थर) दे मारा। रोड़ा उसके पांव पर जा लगा। उसके पैर से रक्त बहने लगा। अध्यापक जी पीछे ही खड़े थे। राम को यह पता न था। उन्होंने राम को ठोकर मारी। राम नीचे गिर गया। "तुम्हें पहाड़े कहाने के लिए भेजा था या बच्चों को मारने के लिए?" ऐसा अध्यापक ने राम से कहा। बस, यही एक मार है जो मैंने कभी किसी भूलचूक के लिए अपने विद्यार्थी-जीवन में खाई।

शास्त्रार्थ होता रहता था, राम ही विजयी होते थे

श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज के बाल्यकाल के एक सखा अब संन्यासी हैं और अपने जन्म-स्थान के क्षेत्र में ही रहते हैं। वह अब स्वामी विद्यानन्द जी के नाम से जाने जाते हैं। लेखक को आपने राम के बाल्यकाल की कई घटनायें सुनाईं। आपने कहा कि राम पर जब वैदिक धर्म का रंग चढ़ा तो आप सब युवकों के जीवन सुधार, परोपकार व वैदिक धर्म के प्रचार की धुन में मग्न रहते थे।

स्वामी विद्यानन्द जी ने बताया कि मैं पौराणिक विचारों को मानने वाला था। मेरे साथ राम का शास्त्रार्थ होता रहता था। हम दोनों के शास्त्रार्थ में राम ही सदा विजयी होते थे। यह बात उन्होंने श्री परमानन्द वसु की उपस्थिति में मुझे बताई। आपने राम की सुशीलता के बारे बहुत कुछ सुनाया।

राम बड़े प्रभुभक्त थे

आपने बताया कि राम की प्रवृत्ति तभी अत्यन्त परोपकारमयी थी। इनका मन प्रभु भक्ति में बहुत लगता था। राम इस रंग में ऐसे रंगे हुये थे कि आंखें बन्द करके बहुत लम्बे-लम्बे समय तक ईशोपासना व भजन में लगे रहते। कई साथी युवक तब इनका उपहास भी उड़ाया करते थे परन्तु इन पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं था। यह अपने मार्ग पर अडिग रहे।

राम आसपास भी प्रचार करते-करवाते थे

स्वामी विद्यानन्द जी ने बताया कि राम आसपास के क्षेत्र में भी वेद-प्रचार करते व करवाते थे। सेवाभाव इनमें तब भी ऐसे ही था। किसी का कार्य करके, किसी भले कार्य में सहयोगी बनकर व किसी को सुख पहुंचाकर इनको तब भी बहुत आत्म-शान्ति प्राप्त होती थी।

राम खिलाड़ी भी अच्छे थे

स्वामी जी ने बताया कि राम का शरीर गठीला व बड़ा फुर्तीला था। दौड़ लगाने में सबसे आगे रहते थे। कबड्डी के खेल में भी इनकी रुचि थी। उन दिनों हरियाणा के ग्रामीण बालक जो-जो खेलें खेला करते थे, राम उन सबमें अच्छी रुचि लेते थे और एक सुदक्ष खिलाड़ी माने जाते थे।

यदि बड़ा भाई खाने के लिए रूठ जाता

परिवार के लोग बताते हैं कि हमारे बड़े यह बताया करते थे कि राम बाल्यकाल में बड़े हंसमुख थे। कभी-कभी राम के ज्येष्ठ भ्राता

खाने की किसी वस्तु पर रूठ जाया करते थे। ऐसे अवसर पर राम उसकी कटोरी भी उठाकर खा जाते और हंसते रहते। राम की मीठी-मीठी मुसकान पर सभी पारिवारिक जन मुग्ध हो जाते। भाई भी राम की ऐसी शरारत से खीजता व लड़ता नहीं था।

यदि पिता जी कुछ कहते

लेखक ने राम के मित्रों व राम के एक भाई सिंहराम जी से पूछा, "क्या राम के पिता श्री हरदयाल सिंहराम को कभी डांट-डपट करते वा क्रुद्धित होते थे? पिताजी के क्रुद्धित होने पर क्या राम सामान्य बालकों का सा व्यवहार करते थे?"

सभी का एक ही उत्तर था कि राम आकृति से भी बहुत सुन्दर थे, स्वभाव भी बड़ा मीठा था और व्यवहार ऐसा था कि राम को सभी जन बड़ा स्नेह करते थे। यदि पिता जी कभी कुछ कहते भी तो राम रुष्ट नहीं होते थे। शान्ति से पिता जी की बात सुन लिया करते थे।

राम को पशुओं से प्रेम था

राम के मित्र श्री रूपचन्द नम्बरदार ने बताया कि राम को कुत्ता रखने, बिल्ली पालने व गऊ-बैल की सेवा की विशेष रुचि थी। तीव्र गति से दौड़ने वाले बैल राम को बहुत भाते थे। राम का एक काला कुत्ता था। बड़ा निडर व चौकस था। एकदिन बाद दोपहर राम ने रूपचन्द से कहा कि चलो, कुत्ते को वन में घुमा लावें। खेतों में से जा रहे थे कि एक भेड़िया उधर से आ गया। भेड़िये ने किसी की एक बकरी दबोच ली। राम ने मित्र से कहा, "भाई बकरी बचानी चाहिए।" मित्र रूपचन्द ने कुत्ते को संकेत किया। कुत्ता भेड़िये पर झपटा। बकरी के लिए दोनों में युद्ध छिड़ गया। कुत्ते ने भेड़िये के मुख से बकरी को खींचा तो बकरी बीच में से कट गई। भेड़िया अपना आधा भाग लेकर भाग गया। कुत्ता बकरी को बचा तो न सका। भेड़िये के मुख से छुड़वा तो न सका परन्तु, कुत्ते ने अपना साहस व शौर्य तो दिखा दिया। ऐसा था हमारे राम का कुत्ता। भेड़िया आया और दोनों मित्र वहीं डटे रहे। कितने साहसी थे।

'गुरुजी, गाय मारेगी।'

नम्बरदार रूपचन्द जी ने बताया कि एकबार हम गुरुजी (राम) के साथ झाड़ली से पढ़कर घर लौट रहे थे। मार्ग में एक गाय खड़ी थी। हम जानते थे कि वह गाय मारने वाली है। रूपचन्द ने राम से कहा, "गुरुजी, गाय तो मारेगी।"

राम ने कहा, "नहीं मारेगी"। यह कहकर गऊ भक्त राम ने गाय से कहा, "गऊ माता रास्ता दे दे, बच्चों को मारा नहीं करते।" यह कहकर राम आगे बढ़े और हमें कहा, 'चलो आओ।"

गऊ ने रास्ता छोड़ दिया। सब बालक वहां से आगे बढ़े। यह घटना बालक राम का कोई चमत्कार नहीं है। न ही हम सृष्टि-नियम विरुद्ध किसी चमत्कार में विश्वास रखते हैं। यह राम के साहस का एक चमत्कार अवश्य है। राम के मन में तभी गऊ के लिए कितनी भक्ति थी, यह इस घटना से स्पष्ट है।

जब सांड लड़ रहे थे

श्री रूपचन्द ने बताया कि राम सबको मिलकर रहने का उपदेश दिया करते थे।

सबके झगड़े निपटाते थे। ग्राम में कभी झगड़ा होने ही न देते थे। मनुष्य की तो क्या राम तो पशुओं तक के झगड़े सुलझा दिया करते थे। एक बार दो सांड लड़ रहे थे। उधर से राम आ निकले। और लोग तो वहां खड़े यह तमाशा देख रहे थे। राम ने आगे होकर दोनों सांडों को अलग-अलग करके उनका **युद्धविराम करवा दिया। राम के लिए यह एक स्वाभाविक क्रिया थी।**

बैलों का दौड़ना ऐसा भाया कि बस रुकवा ली

एक घटना है तो बहुत बाद की परन्तु सासरोली से संबंधित होने से यहीं देनी उचित है। एकबार श्री पं० रामचन्द्र जी सिद्धान्तशिरोमणि सासरोली की ओर बस में कहीं जा रहे थे। बस में बैठे थे कि खेतों में बैलों की एक जोड़ी दिखाई पड़ गई। बैलों की दौड़ राम को ऐसी भाई कि बस रुकवा कर बैलों को देखने व प्यार करने के लिए उतर पड़े। यह घटना श्री अमीरसिंह ने सुनाई।

राम खेलें भी करवाते थे

पीछे हमने स्वामी विद्यानन्द जी के संस्मरण देते हुये लिखा है कि राम एक सुदक्ष खिलाड़ी थे। चौधरी रूपचन्द जी ने बताया कि राम खिलाड़ी तो थे ही, वह हम सबको जहां पढ़ाते, उपदेश देते वहां खेलें भी करवाया करते थे। ऊंची कूद (High Jump) के लिए रस्सी लगाकर हमें कहते इसके ऊपर से कूदो। राम हमें कुश्तियों के दाव-पेच भी सिखाते। और भी सब प्रचलित खेलें करवाते और शरीर को बलवान् बनाने की प्रेरणा दिया करते थे।

पं० रामचन्द्र जी जब सासरोली आते

परिवार वालों ने बताया कि गृह-त्याग के पश्चात् राम जब-जब पं० रामचन्द्र जी के रूप में ग्राम में आए तो घर वालों को कभी भी अपने वस्त्र धोने को नहीं दिये। आप ही अपने वस्त्र धोया करते थे।

राम यहां रात्रि में कब उठते, यह भी पता नहीं। उन्हें दो बजे, तीन बजे प्रातःकाल ही अपने नित्य नियम में लगे हुये हमने कई बार देखा। ऐसा ग्रामवासी बताते हैं। वह प्रातःकाल सबसे पहले ग्राम के बाहर अपने एक पैतृक कुएं पर स्नान करने के लिए आ जाते थे। यह कुआं अब भी है। अब इस पर ट्यूब वैल लग चुका है। यहां राम के समय का एक पीपल का वृक्ष है। **राम के हाथ से लगाया गया नीम का एक पेड़ था, वह काट दिया गया है।**

गुरुदेव शिष्य के जन्म-स्थान पर पधारे

ग्रामवासियों ने यह बात बड़े गर्व से कही कि पूज्यपाद स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज भी हमारे ग्राम में आए थे। गुरु की जन्म-स्थली की यात्रा तो शिष्य लोग किया ही करते हैं। राम को बनाने वाले महान् गुरु स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज सन् १९४० में सासरोली पधारे। यह मठ की स्थापना के तीन वर्ष पश्चात् की बात है। उस समय उनके साथ स्वामी कर्मानन्द जी लोहारू वाले व एक भजनोपदेशक भी थे। लगभग एक सप्ताह पूज्य स्वामी जी राम की जन्म-स्थली को अपने उपदेशों से तृप्त करते रहे। राम के घर पर भी श्री महाराज का आतिथ्य-सत्कार हुआ।

राम के विशेष मित्र

श्री रूपचन्द जी नम्बरदार ने बताया कि उनके अतिरिक्त पं० अमीलाल, जी जगराम नम्बरदार व श्री गोपाल नम्बरदार राम के विशेष सहयोगी व मित्र थे। खाचरोली के श्री दीपचन्द्र जी जिन्हें दिलीपचन्द्र भी कहा जाता था, राम के घनिष्ठ मित्रों में से एक थे। वह हाईस्कूल में भी राम के सहपाठी थे। उनके विचार भी बहुत ऊंचे थे। वह भी श्रीमद्दयानन्द उपदेशक विद्यालय लाहौर में पढ़े फिर पांडीचेरी अरविन्द -आश्रम में चले गये। वहीं रहे और कुछ समय पूर्व खाचरोली आ गये। गत अगस्त मास में उनका निधन हो गया। उस महात्मा के पवित्र जीवन पर भी इस क्षेत्र को बड़ा अभिमान है।

बड़े भाई की अन्तिम मठ-यात्राएं

१ श्री राम के ज्येष्ठ भ्राता श्री रिछपाल मठ में राम से मिलने यदा-कदा जाते रहते थे। उनकी अन्तिम दो यात्राओं की जानकारी उनके सुपुत्रों ने दी। सन् १९७४ के जनवरी मास में वह अपने छोटे सुपुत्र श्री अमीरसिंह को साथ लेकर मठ पहुंचे। दो दिन वहां रहे। यह १९-२० जनवरी की बात है।

इसके पश्चात् आप सन् १९७६ में भी मठ में गये थे। अगले वर्ष आपका निधन हो गया।

जब ग्रामवासियों की स्वामीजी से बात न हो सकी

ग्राम की चर्चा के साथ यहां ग्राम संबंधी एक घटना का उल्लेख अत्यावश्यक है। सन् १९७४ की बात है। आपको झज्जर में न्यायाधीश के न्यायालय में अपना वक्तव्य देने के लिए बुलाया गया। स्वामी जी के नाम पैतृक-भूमि चली आ रही थी। उसका स्थानान्तरण श्री रिछपाल के पुत्रों के नाम होना था। स्वामी जी मठ से गुरुकुल झज्जर पहुंचे। ग्राम की बहुत सी लड़कियाँ, देवियां व अन्य पुरुष भारी संख्या में पूज्य स्वामी जी के दर्शन करने के लिए झज्जर की तहसील में पहुंचे। गुरुकुल की गाड़ी पर स्वामी जी सीधे न्यायालय में आए। तहसीलदार पंजाब में रह चुका था। उसने जज को बताया कि देश के बहुत बड़े महात्मा स्वामी सर्वानन्द जी आ रहे हैं। न्यायाधीश ने स्वामी जी से कहा, ''क्या मैं आपसे कुछ कह सकता हूँ?'' स्वामी जी ने कहा, ''हमसे क्या पूछना है। आप किसी का बुरा न किया करें। सबका भला सोचा करें। अपना कर्तव्य निभायें'' उसने फिर कहा, ''इस भूमि का क्या करना है?''

स्वामी जी ने कहा, ''हमारा इससे कुछ संबंध नहीं हैं यह जिसका भी अधिकार बनता है उसके नाम कर दें''

न्यायालय से बाहर निकले ही थे कि गुरुकुल वाले अपनी जीप में बैठाकर उन्हें गुरुकुल ले आये। ग्राम की देवियां निराश घरों को लौटीं। ग्राम वाले आज पर्यन्त गुरुकुल को यह उपालम्भ देते हैं। स्वामी जी ने भी नहीं कहा कि रोको मैं इनसे कुछ बात कर लूं।

द्वितीय परिच्छेद

वैदिक धर्मी बनने की कहानी

श्री स्वामी जी के स्वभाव से सभी श्रद्धालु परिचित ही हैं। वे अपने बारे में कोई चर्चा करते ही नहीं। कोई बात छेड़ी भी जावे तो पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के ढंग से ही चर्चा का विषय बदल देते हैं। आप स्वयं लोक-कल्याण के लिए अपने वैदिक धर्मी बनने की कहानी लिखते तो बड़ा अच्छा होता। हम जो कुछ खोज कर पाए हैं, वह संक्षेप से यहां भेंट करते हैं।

सासरोली में एक सच्चे देशभक्त, ऋषि दयानन्द जी के पक्के श्रद्धालु और वैदिक धर्म के दृढ़ अनुयायी चौधरी जुगलाल जी होते थे। आप पहले सेना में थे। इसी कारण सेना से निकाले गये कि वह कट्टर आर्यसमाजी हैं। पूज्यपाद स्वामी श्री सर्वानन्द जी ने लेखक को बताया था कि महाशय जुगलाल सन् १९१२ में सेना से वैदिक धर्मी होने के अपराध में निकाले गये।

सासरोली ग्राम के वृद्धों ने इस आर्यपुरुष की सेवाओं के लिए उसकी बड़ी प्रशंसा की और सबने कहा कि वह एक आदर्श मानव थे। इस ऋषि भक्त के सत्संग से हमारे चरित्र नायक आर्य विचार धारा से विभूषित हुए। राम का घर भी चौधरी जुगलाल के घर के पास था। आपकी पुत्री के विवाह-संस्कार पर देहली के आर्य पण्डित मथुराप्रसाद जी आए। उनके प्रचार का सब पर बड़ा प्रभाव पड़ा। भजन गाते, शंका समाधान करते और सत्यार्थ-प्रकाश की बातें सुनाते। चौधरी जुगलाल जी के प्रचार व लग्न से कई लोग आर्य बन गए। एकबार गुड़गाँव के महाशय बहुतराम जी का चौपाड़ पर प्रचार करवाया गया। राम ने इनसे यज्ञोपवीत लिया। दिन प्रतिदिन लग्न बढ़ती ही गई।

झाड़ली के पश्चात् रामचन्द्र जाट हाई स्कूल रोहतक में प्रविष्ट हुए। सासरोली में जन्मा प्रथम व्यक्ति जो हाई स्कूल तक पहुंचा वह राम ही तो था। राम से पहले सासरोली के किसी व्यक्ति ने हाईस्कूल का मुंह न देखा था। तब इस स्कूल में वैदिक धर्म का बड़ा प्रचार था। सन्ध्या-हवन के मन्त्र सिखाए व याद करवाए जाते थे। जाट हाईस्कूल आर्यसमाज के प्रचार का सुदृढ़ गढ़ था। रामचन्द्र इस वातावरण में और भी पक्के हो गये। स्कूल में दिलीप जी व रामचन्द्र ही दैनिक प्रार्थना:—

'हे दयामय हम सबों को शुद्धताई दीजिए

करवाया करते थे। चौधरी बलदेव, चौ० कृपाल सिंह (उ० प्र० के थे) व चौ० रतीराम बारी-बारी मुख्याध्यापक रहे। आपका चौधरी छोटूराम जी से वादविवाद भी हुआ करता था। राम ने यहां बहुत कुछ सीखा।

स्वामी श्रद्धानन्द जी की संन्यास-दीक्षा में

पूज्य स्वामी जी महाराज ने इतिहास बनते भी देखा है और बिगड़ते हुए भी देखा है। आर्य-समाज के इतिहास में कई नये अध्याय जोड़कर आपने इतिहास बनाया भी है। वैसे तो लाहौर रहते हुए आपने राष्ट्रीय स्वाधीनता-संग्राम का प्रचण्ड रूप देखा। अनेक ऐतिहासिक घटनायें आपकी आँखों के सामने वहां घटित हुईं परन्तु अपने जीवन में जो पहली ऐतिहासिक घटना आपने देखी वह स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की संन्यास दीक्षा थी।

आहा! वह कैसी शुभ घड़ी थी और वे नयन कितने भाग्यशाली थे, जिन्होंने १२ अप्रैल सन् १९१७ को मायापुर वाटिका कनखल में महात्मा मुन्शीराम जी को संन्यास आश्रम में प्रविष्ट होते देखा।

हमारे पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज भी उन्हीं भाग्यशाली आत्माओं में से एक हैं जिन्होंने यह समारोह देखा। आप तब १७वें वर्ष में प्रवेश कर चुके थे। युवक थे। मन में भरपूर उत्साह था। सेवा की अथाह लग्न थी। यह लग्न और श्रद्धा आपको उस वर्ष गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिकोत्सव पर ले गई।

वहां जाने पर यह पता चला कि महात्मा मुन्शीराम संन्यास ले रहे हैं। श्रद्धालुओं की भारी भीड़ के साथ आप भी महात्माजी के सर्वमेध यज्ञ को देखने गये। तरुण हृदय राम पर इस घटना की कितनी गहरी छाप लगी इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है। राम ने प्रथम बार ही तो किसी को काषाय वस्त्र धारण करते हुए अर्थात् संन्यास की दीक्षा लेते देखा और संन्यास लेने वाला भी कोई साधारण व्यक्ति नहीं था। युग-पुरुष श्रद्धानन्द का संन्यास भारतीय सांस्कृतिक इतिहास की एक विशेष घटना है।

हमें कभी भी महाराज से यह पूछने का साहस तो नहीं हुआ कि इस दृश्य को देखकर आपके मन में क्या-क्या तरंगें उठीं परन्तु हमारी ऐसी सोच है कि जन्म-जन्मान्तरों से भक्तिभाव व सेवाभाव को लेकर जन्में इस संस्कारी जीव के मन में तब एकदिन संन्यास लेने का विचार अवश्य आया होगा। ऐसे भावनाशील उत्साही युवक के लिए ऐसी सोच एक स्वाभाविक सी बात है। श्री आचार्य जगदीश जी ने बताया कि उन्होंने यह प्रश्न गुरुदेव से एकबार पूछ ही लिया। स्वामी जी ने बड़ी सरलता से उत्तर दिया कि नहीं तब मेरे मन में संन्यास का विचार नहीं आया था। इसके पश्चात् भी आपको पूज्य स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज को कई बार सुनने का व उनके दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। परन्तु, सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्वामी जी संबंधी दूसरा संस्मरण आपका लाहौर का है।

स्वामी श्रद्धानन्द जी बलिदान का मुकट पहनने से पूर्व नवम्बर मास में अन्तिम बार लाहौर आए। आर्यसमाज वच्छोवाली का वार्षिकोत्सव था। प्रातःकाल की वेला में स्वामीजी का मार्मिक उपदेश हुआ। ब्र० रामचन्द्र श्रोताओं में सबसे आगे, स्वामी जी महाराज के ठीक सामने बैठे थे। स्वामी जी के उस प्रवचन का सार आज भी आपके हृदय पर अंकित है। हम इस ऐतिहासिक प्रवचन के सार को यहां देने का लोभ संवरण नहीं कर सकते। यह बड़े महत्व की बात है कि स्वामी जी महाराज ने अपने इस प्रवचन में शरीर के छूटने की बात कही और एक मास के भीतर ही कायर क्रूर हत्यारे की गोलियां खाकर वे वीर-गति पा गये। देह का त्याग तो करना ही था परन्तु शूरता की शान श्रद्धानन्द को अपने व्यक्तित्व व कृतित्व के अनुरूप ही मृत्यु प्राप्त हुई। स्वामी जी ने तब कहा था—

"आर्य-समाज ने बहुत कार्य किया है। महर्षि दयानन्द जी ने जो कुछ लिखा व कहा, उस पर आर्य-समाज ने आचरण करने का यत्न किया है, तथापि हम उनका बताया हुआ कार्य

पूरा नहीं कर पाए। हमने इस कार्य को करना है और अवश्य पूरा करना है। शुद्धि का कार्य अति महत्त्वपूर्ण है। यह आर्य-समाज के लिए एक परम आवश्यक कार्य है। महर्षि दयानन्द जी ने वैदिक धर्म के द्वार सबके लिए खोल दिये हैं।

गुरुकुल का कार्य भी देश व समाज के हित के लिए बड़ा आवश्यक है। देशोन्नति व उत्तम संतान-निर्माण का यही मार्ग है। ऋषि द्वारा बतलाई गई शिक्षा-विधि वैज्ञानिक व हितकर है।

आर्यों का आचरण आर्यसमाज के दश नियमों के अनुसार होना चाहिए। इससे व्यक्ति में बल आएगा और व्यक्ति दृढ़ आर्य बनेंगे। आर्यों का जीवन उच्च व पवित्र होना चाहिए।

यह शरीर जीर्ण, शीर्ण व निर्बल हो गया है। यह रोगों का घर बन गया है। पता नहीं मैं आपसे फिर मिल सकूंगा कि नहीं।"

महर्षि दयानन्द जन्म-शताब्दी महोत्सव

वैसे तो श्री राम ने गुरुकुल कांगड़ी का उत्सव या कई बड़े-बड़े धार्मिक सम्मेलन देखे थे परन्तु अब राम को एक और ऐतिहासिक पर्व या महासम्मेलन देखने का गौरव प्राप्त हुआ। शताब्दियों के पश्चात् भारत की मथुरा नगरी में एक ही झण्डे तले और एक ही विचार संस्कार वाले लाखों आर्यों का इकट्ठ हुआ। सम्राट हर्ष के पश्चात् प्रथम बार भारत में यह दृश्य देखा गया।

यह ठीक है कि कुम्भ के मेले पर हरिद्वार उज्जैन व नासिक आदि नगरों में भी लाखों हिन्दू एकत्र होते हैं परन्तु मेले के जमघट तथा महासम्मेलन में बड़ा अन्तर होता है। कुम्भ की भीड़ का न लक्ष्य एक और न विचार-संस्कार एक। लाखों आर्य नर-नारी स्वामी श्रद्धानन्द जी व महात्मा नारायण स्वामी जी के नेतृत्व में मथुरा नगरी में ऋषिवर दयानन्द की जन्म-शताब्दी मनाने पहुंचे। उस स्वर्गीय दृश्य का वर्णन करने की यहां कोई आवश्यकता नहीं। प्रेम की गंगा बह रही थी। आर्यकुमार, युवक, स्त्रियां पुरुष झूम-झूम कर यह गा रहे थेः—

वेदों का डंका आलम में बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने

और

दयानन्द के वीर सैनिक बनेंगे।
दयानन्द का काम पूरा करेंगे।।

हमारे चरित्रनायक श्री रामचन्द्र जी ने श्री कृष्ण की जन्मस्थली पर जोश व उत्साह का ठाठें मारता समुद्र देखा। श्रद्धा संजीव होकर वहां झूम रही थी। साहित्य-कानन की कोकिल आचार्य चमूपति जी के कवि हृदय को मथुरा में गुरु महाराज विरजानन्द की कुटी व मथुरा की गलियों के कण-कण में ऋषि दयानन्द जी के जन्म की गाथा (आचार्य की कोख से ऋषि जन्म की कहानी) पूछते पुछाते देखा।

एक-एक आर्य के हृदय में अरमानों का तूफान उठ रहा था। रक्त साक्षी लेखराम के सपने साकार करने का व्रत लिया जा रहा था। हमारे राम किससे पीछे थे? स्वभाव में कोलाहल तो कभी रहा नहीं। चुपचाप कार्य करने व आगे बढ़ने की राम की नीति रीति रही है। बस, यहां आकर संकल्प रूप बीज का अंकुर उपजा। आपने संस्कृत का विद्वान् बनने और वेद आदि शास्त्रों का अध्ययन करके ऋषि-ऋण चुकाने का दृढ़ निश्चय कर लिया

पूज्यपाद स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के दर्शन कैसे हुये?

युवक रामचन्द्र भक्तिभाव से अपने मित्रों सहित मथुरा नगरी में ऋषि की जन्म-शताब्दी पर गया था। वहां आर्य-जगत् के उस समय के सब विद्वानों, संन्यासियों व नेताओं के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। १९२५ ई० में इसी शताब्दी के महोत्सव पर आपने आजन्म ब्रह्मचारी स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के प्रथम दर्शन किए परन्तु दूर से ही।

जब देहली में पटौदी हाऊस में ज्योति पाठशाला में आप संस्कृत के अध्ययन के लिए प्रविष्ट हुये तब आपको दूसरी बार पूज्य स्वामीजी के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह भेंट आपके लिए अविस्मरणीय घटना सिद्ध हुई। उन दिनों रामचन्द्र सार्वदेशिक सभा के कार्यालय के ऊपर एक कमरे में रहा करते थे। नीचे सभा के कार्यालय में एक ही लिपिक श्री रघुनाथ प्रसाद पाठक कार्य किया करते थे। सभा का कार्यालय उन दिनों रामलीला मैदान वाले भव्य-भवन में नहीं था।

आर्यसमाज चावड़ी बाज़ार का वार्षिकोत्सव आ गया। उत्सव परेड ग्राऊण्ड में हुआ। तभी रामचन्द्र एडवर्ड पार्क में एक पुस्तक पढ़ रहे थे। पूज्य स्वामी जी महाराज अपनी गज-गामिनी गति से उधर आ निकले और पूछा, "क्या पढ़ रहा है?"

राम चन्द्र जी ने कहा, "कौमुदी।"

स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज थोड़ी दूरी पर जाकर घास पर लेट गये। राम साधु के मुख- मण्डल की लालिमा को देखकर और उनके सूर्य समान तेज को देखकर चकित हो गया। बाल ब्रह्मचारी के चेहरे से तेज बरस रहा था। राम सोचने लगा कि लोग देवताओं की कहानियां सुनाया करते हैं। देवता ऐसे ही होते होंगे? इनसे बड़ा देवता और क्या होगा?

राम के नयनों में महाराज की मोहिनी मूर्त्त समा गई। स्वामी जी ने क्यों पूछा कि क्या पढ़ रहे हो। इस बात पर राम विचारता रहा परन्तु उसे यह समझ न आया कि स्वामी जी ने किस लिए ऐसा पूछा। जब जीवन ही गुरु के आदेश पर भेंट कर दिया तब भी राम ने कभी स्वामी जी से यह न पूछा कि महाराज आपने ऐसा प्रश्न क्यों किया था? राम का स्वभाव ही कुछ ऐसा रहा है कि गुरुजी से उनके बारे में प्रश्न कम ही पूछते थे और गुरुजी का स्वभाव भी ऐसा कि अपने संबंध में चर्चा सुनी अनसुनी कर देते थे। राम गुरुजी से कभी बाद में यह प्रश्न पूछते तो श्री महाराज का उत्तर निश्चय ही सब आस्तिकों के लिए बड़ा शिक्षाप्रद होता परन्तु राम ने ऐसा प्रश्न करने की कभी सोची ही नहीं।

पूज्य स्वामी जी लाहौर के शाही-किला में एक काल कोठरी मे देश की स्वाधीनता के लिए यातनायें सहते रहे। वहां क्या-क्या बीती, यह साधु ने कभी नहीं सुनाया और राम से अधिक उनके निकट और कौन था? राम ने भी गुरुजी से कभी न पूछा कि आपके साथ वहां क्या-क्या बीती?

इसे हम राम का दोष तो नहीं कह सकते। यह तो प्रवृत्ति का प्रश्न है। सच्चे साधुओं की प्रवृत्ति कुछ ऐसी ही हुआ करती है। ये लोग अपनी ही धुन के होते हैं। भले ही राम ने काषाय वस्त्र सन् १९५५ में धारण किये परन्तु राम बाल्यकाल से ही साधु-स्वभाव रखते थे।

श्रीमद्दयानन्द उपदेशक विद्यालय लाहौर में प्रवेश

गुरु–चरणों में आ गये

पीछे बताया जा चुका है कि राम जाट हाई स्कूल में पढ़ते हुये और दृढ़ वैदिक धर्मी बन गये। इनके पूर्व जन्म के संस्कारों पर कुछ राख-सी पड़ चुकी थी। इस जन्म में भाग्य से जो ऋषि दयानन्द के विचार मिल गये। सज्जनों का सत्संग प्राप्त हो गया तो देव-वाणी संस्कृत के अध्ययन की ऐसी प्यास भड़की कि इन्हें न दिन को चैन और न रात को नींद।

स्कूल में भी बड़े योग्य विद्यार्थी थे। खिलाड़ी भी थे। प्रधान अध्यापक के प्रिय छात्र थे। उसने भी बड़ा समझाया कि बी० ए० कर लो फिर संस्कृत पढ़ लेना परन्तु इनका मन बी० ए०, एम० ए० करने से उचाट हो चुका था। राम का कहना था कि बी० ए० के पश्चात् कहां संस्कृत पढ़ी जावेगी? यही इनके मित्र श्री दिलीप का विचार था। बी० ए० करके तो फिर नौकरी ही करनी पड़ेगी। नौकरी करते-करते विचार ही बदल जावेंगे। देववाणी के दुलारे ने इसी विचार से राम ने नवमी कक्षा में ही स्कूल छोड़ दिया।

संस्कृत के अध्ययन की कहानी

संस्कृत पढ़ने के लिए श्री राम को कई स्थानों पर जाना पड़ा। उन दिनों खुर्जा में संस्कृत की पढ़ाई का बहुत अच्छा प्रबंध था। संस्कृत-शिक्षा की दृष्टि से खुर्जा भी एक छोटी काशी थी। राम को खुर्जा का पता स्वामी सत्यानन्द जी से ही चला था। राम खुर्जा न जाते यदि उन्हें श्रीमद्दयानन्द उपदेशक विद्यालय लाहौर में प्रवेश मिल जाता परन्तु वहां प्रवेश न मिला। यह सारी कहानी पाठक आगे पढ़ेंगे। राम खुर्जा गये परन्तु प्यास न बुझी। गुरु जो मिले उनकी सेवा जी-जान से की। खुर्जा में राम अध्ययन न कर पाए। इसका एक कारण यह भी था कि तब पौराणिक जाति-पाँति का बोल बाला था। राम का जन्म किसी तथाकथित ब्राह्मण के घर में नहीं हुआ था। कुछ समय खुर्जा में थोड़ी शिक्षा प्राप्त कर आपने खुर्जा छोड़ दिया।

किरठल (उ० प्र०) में स्वल्प-काल के लिए संस्कृत अध्ययन के लिए आप रहे। वहां भी आपकी तृप्ति न हुई। फिर पता चला कि देहली में पटौदी हाऊस में ज्योति पाठशाला में पढ़ाई का अच्छा प्रबन्ध है। दो रुपये मासिक व्यय हुआ करेंगे। राम के मन में तो संस्कृत के उच्च अध्ययन की उत्कट इच्छा थी। वह इसके लिए सब कष्ट झेलने के लिए तैयार थे। आप देहली आ गये। ज्योति पाठशाला में प्रवेश ले लिया। बड़ी लग्न से पढ़ते रहे। उन दिनों आप सार्वदेशिक सभा के तत्कालीन कार्यालय के ऊपर एक कमरे में रहा करते थे। कार्यालय में उन दिनों स्वर्गीय रघुनाथ प्रसाद जी पाठक लिपिक के रूप में कार्य करते थे। विशारद की पढ़ाई करते हुये सामाजिक गतिविधियों में भी आपकी रुचि बनी रही।

देहली में आपको स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज व श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के व्याख्यान सुनने व दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह क्या कोई कम उपलब्धि थी? यह भी तो एक अविस्मरणीय शिक्षा सिद्ध हुई।

स्वामी सत्यानन्द जी का पत्र आया

मथुरा शताब्दी पर श्रीमद्दयानन्द उपदेशक विद्यालय की स्थापना का निश्चय हो चुका था। राम भी यह सब सुन चुके थे। संस्कृत की धुन में स्कूल छोड़कर घर आ गये। स्वामी सत्यानन्द जी को एक पत्र लिखा कि स्कूल छोड़कर संस्कृत पढ़ना चाहता हूं, कहां जाऊं? उनका घर के पते पर पत्र आया कि उपदेशक विद्यालय खुलने वाला हैं, आपको वहां प्रवेश मिल जावेगा। पत्र में यह वाक्य पढ़कर मैं चकित रह गया, "आपको वहां प्रवेश मिलेगा।" 'आप ' शब्द का प्रयोग उनका बड़प्पन ही तो था।

श्री दिलीप को तो प्रवेश मिल गया। दिलीप जी ने ही लाहौर से सूचना दी कि तुम्हें प्रवेश नहीं मिल सकता। कारण? तुम्हारा बालकाल में विवाह हो गया। राम का उस युग की रीति के अनुसार आठ वर्ष की आय में ही विवाह हो गया था। दोनों भाइयों का एक ही समय में विवाह हो गया था। राम को तव इतनी समझ ही न थी कि विवाह का अर्थ क्या है। वह लड़की पीहर में ही रहती थी। जब राम को यह सूचना मिली कि विवाहित होना मेरे संस्कृत पढ़ने में बाधक है तो आपके दिल पर क्या बीती? यह बता पाना अति कठिन है।

राम प्रातः सायं प्रभु से प्रार्थना करता कि हे प्रभो या तो मैं मर जाऊं या वह लड़की वहीं मर जावे। संस्कृत अध्ययन की ऐसी चाह! घरवालों ने कहां फंसा दिया? यही सोचते रहते। क्या यह नर-तन ऐसे ही व्यर्थ जावेगा?

विधि का विधान देखिए कि उसी वर्ष उस लड़की का निधन हो गया। इनके घर में भी पता चला। इन्होंने झट से अपने मित्र दिलीप को एक पत्र डाल दिया कि अब तो पूछो क्या प्रवेश मिलेगा? अब मैं विवाहित नहीं हूं। वह बंधन कट गया है। स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज ने स्वीकृति दे दी। राम को प्रवेश मिल गया। राम लाहौर पहुंच गये।

उन दिनों प्रायः विद्यार्थी सिद्धान्त विशारद व सिद्धान्त भूषण से आगे नहीं पढ़ते थे। राम पहले विद्यार्थी थे जो 'सिद्धान्त शिरोमणि' बने। शिवदत्त जी व चन्द्रभानु जी दूसरे बैज में सिद्धान्त शिरोमणि हुये। नरदेव जी व सत्यदेव जी तीसरे बैज में थे। इस प्रकार लाहौर में आपका कोई सहपाठी न था। कारण आप अकेले ही सिद्धान्त शिरोमणि कक्षा में पढ़ा करते थे। १९३२ ई० में स्नातक बन गये। यह है संक्षेप में आपके उपदेशक विद्यालय में प्रवेश की कहानी।

यहां यह उल्लेख कर देना भी आवश्यक है कि यदि इस बार राम के मित्र श्री दिलीप प्रयत्न न करते और स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज तत्काल प्रवेश की स्वीकृति न देते तो राम के जीवन की धारा फिर किस दिशा को बहती, यह अनुमान लगाया जा सकता है। घर वाले इनके दूसरे विवाह की सोच रहे थे। उसी घर में उस लड़की की एक बहिन थी। लड़की के माता-पिता चाहते थे कि उसका राम से विवाह हो जावे। राम ने दिलीप जी को यही तो लिखा था कि हमने जो सोचा था, तुम तो उस पथ पर चल रहे हो परन्तु मैं यदि घर पर रहा तो मुझे गृहस्थी बना दिया जावेगा। ईश्वर की कृपा हुई राम को भी प्रवेश मिल गया और उसकी मनोकामना पूरी हो गई।

विद्यालय में पढ़ते हुये आपने बड़ी श्रद्धा से आचार्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी की सेवा की। उनकी आज्ञा के पालन में आप सदा तत्पर रहते थे। स्वामी जी की समीपता के कारण आप स्वामी जी महाराज के निकटस्थ सब विद्वान् महात्माओं यथा स्वामी वेदानन्द जी, श्री आचार्य चमूपति जी आदि के प्यारे बन गये।

ब्र० रामचन्द्र अपने एक गुरु की दृष्टि में

राम विद्यार्थी के रूप में कैसे थे? इस संबंध में हम ब्र० रामचन्द्र के एक गुरु के कुछ संस्मरण उन्हीं के शब्दों में यहां उद्धृत करते है। सौभाग्य से राम के पूजनीय गुरुओं में से एक श्रद्धेय आचार्य प्रियव्रत जी इस समय भी हमारे मध्य हैं, आपने अत्यन्त कृपा करके अपने संस्मरण हमें भेजे हैं।आप लिखते हैं:—

''जब मैंने उपदेशक महाविद्यालय में अध्यापन का कार्य आरम्भ किया तब वे उपदेशक महाविद्यालय की सर्वोच्च कक्षा सिद्धान्त शिरोमणि के द्वितीय खण्ड में अध्ययन कर रहे थे। मैंने इनको केवल एक वर्ष ही पढ़ाया। उस समय के मेरे उनके संबंध में जो अनुभव है उसमें मैंने उन्हें पाया कि ये एक बड़े विनम्र, शान्तस्वभाव तथा विद्यालय के सब नियमों का बड़ी निष्ठा और तत्परता से पालन करने वाले छात्र थे।

अपने गुरुजनों का बहुत बड़ा आदर और सम्मान करते थे। उनकी सब प्रकार की सेवा करने के लिए उद्यत रहते थे। मेरे प्रति भी इनके बड़े आदर व सम्मान के भाव थे। जो भी काम मैं इनको कह देता था, उसे बड़ी श्रद्धा के साथ करते थे। वहुत वार तो मेरे कुछ कहने के बिना भी ये स्वयं पूछते रहते थे कि आचार्य जी मैं आपका अमुक काम कर दूं, अमुक काम कर दूं। ये मेरे घर के लिए वाज़ार से सब्ज़ियां भी खरीद कर ला देते थे। गेहूं भी पिसवा लाते, दूध भी लाकर दे देते थे। कभी-कभी तो वड़ा आग्रह करके मेरे वस्त्र भी धो देते थे। अपने सभी गुरुओं के प्रति इनका इसी प्रकार का आदर और श्रद्धायुक्त व्यवहार रहता था।

अपने अध्ययन में भी बड़ी ही तत्परता से लगे रहते थे। जो कुछ पढ़ाया जाता था, उसे ध्यानपूर्वक समझ के साथ सुनते थे तथा कोई बात स्पष्ट न होने पर उसके संवंध में निःसंकोच होकर शंकायें भी करते थे। अगले दिन नया पाठ आरम्भ होने पर विगत दिवस के पाठ के संबंध में जब इनसे कुछ कहा जाता था, उसका भली-भांति उत्तर देते थे, जिसे सुनकर बड़ा सन्तोष होता था।

मैंने इनको सिद्धान्त शिरोमणि के पाठ्यक्रम में महाकवि बाणभट्ट का 'हर्षचरित' पढ़ाया था। उस जटिल संस्कृत में लिखित ग्रन्थ को ये भली भांति आत्मसात कर लेते थे। उसके साथ ही मैंने इनको उक्त पाठ्यक्रम में अथर्व वेद भी पढ़ाया था। उस ग्रन्थ को भी इन्होंने बड़ी निष्ठा और तत्परता के साथ पढ़ा था तथा शंका समाधान के साथ उस ग्रन्थ का भी अध्ययन करते थे।

ग्रन्थ अध्ययन के अतिरिक्त पढ़ने के समय प्रसंगवश सामयिक राजनीति तथा ऋषि दयानन्द की विभिन्न मान्यताओं और सिद्धान्तों के संबंध में भी चर्चा चल पड़ती थी। इस चर्चा में ये भांति-भांति के जिज्ञासापूर्ण प्रश्न पूछा करते थे। और मैं इनकी जिज्ञासाओं का पूरा समाधान करने का पूरा प्रयत्न करता था।

श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज का, जो कि उस समय उपदेशक महाविद्यालय के आचार्य थे, इनके प्रति बड़ा प्रेम था और ये भी स्वामी जी के प्रति अगाध श्रद्धा रखते थे।

उपदेशक विद्यालय से सिद्धान्त शिरोमणि की उपाधि प्राप्त करने के अनन्तर ये स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के आदेशानुसार प्रचार इत्यादि का कार्य करते रहे और कालान्तर में पंजाब के दीनानगर (जिला गुरदासपुर) में स्वामी जी महाराज की दयानन्द मठ संस्था के स्थापित हो जाने पर वहां कार्य करने लगे और उक्त संस्था के प्रबंध और सञ्चालन का समग्र भार आपने सम्भाल लिया।

आगे चलकर इस मठ का कार्य करते हुये आपने संन्यास आश्रम में प्रवेश कर लिया और आर्य-जगत् में स्वामी सर्वानन्द जी के नाम से प्रख्यात हो गये।''

श्रद्धेय आचार्य प्रियव्रत जी ने अपने एक पुराने शिष्य के बारे में बड़े नपे तुले शब्दों में गागर में सागर भरकर रख दिया है। आचार्य जी के एक-एक वाक्य को पढ़कर ऐसा लगता है कि महान् गुरु को अपने महान् शिष्य के व्यक्तित्व पर आज अभिमान हो रहा है। आचार्य जी की उपरोक्त पंक्तियों से यह भी प्रमाणित होता है कि राम विवेक से अपने लिए एक लक्ष्य निश्चित कर चुके थे और वे तीव्र गति से लक्ष्य सिद्धि की ओर बढ़ रहे थे। उस समय वैदिक धर्म के संबंध में अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त करने में तो जी-जान से लगे ही हुये थे साथ ही सेवा-भाव तब भी इनमें कूट-कूट कर भरा हुआ था। आचार्य जी ने यह बात विशेष रूप से लिखी है कि ''बहुत बार तो मेरे कुछ कहने के बिना भी ये स्वयं पूछते रहते थे कि आचार्य जी मैं आपका अमुक काम कर दूं, तमुक काम कर दूं।'' इससे यह सिद्ध होता है कि राम को विद्यार्थी काल में ही सेवा की न बुझने वाली प्यास लगी हुई थी।

खिलाड़ियों में सर्वश्रेष्ठ

पूज्य स्वामी जी की कृष-काया को देखकर कोई यह अनुमान नहीं लगा सकता कि आप कभी सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी भी रहे होंगे। श्री स्वामी जी अब भी चलते हैं तो उनके शरीर में बड़ी फुर्ती दिखाई देती है। आज से बीस-तीस वर्ष पूर्व तो हम देखा करते थे कि स्वामी जी प्रातः भ्रमण के लिए जब निकलते थे तो उनके साथ चलने वाले को भाग कर उनके साथ पग मिलाना पड़ता था। वे प्रातः-सायं ऐसे ही मीलों सैर करते थे। अब भी उनका यही नियम है। हां! अब चाल में गति कुछ धीमी हो गई है।

खेल-कूद प्रतियोगिता में

सन् १९२८ में तत्कालीन पंजाब की राजधानी लाहौर में विशाल स्तर पर खेलकूद प्रतियोगिता का आयोजन हुआ। इसमें देहली से लेकर पेशावर तक के खिलाड़ियों ने भाग लिया। पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी ने श्रीमद्दयानन्द उपदेशक विद्यालय के ब्रह्मचारियों को भी इसमें भाग लेने के लिए भेजा। राम भी अपने विद्यालय का प्रतिनिधित्व कर रहे थे।

स्वर्गीय पं० हरपाल सिंह जी शास्त्री ने लेखक को बताया था कि जब पूरे पंजाब से आए हुये हृष्ट-पुष्ट, हट्टे-कट्टे युवक प्रतियोगिता के लिये मैदान में उतरे तो हमारे राम को

देखकर सबको आश्चर्य सा हो रहा था कि यह दुबला-पतला युवक यहां किस लिए आया है? यह क्या करेगा? आकृति से ही पता लग रहा था कि यह कोई हरियाणा का ग्रामीण युवक है, जो संस्कृत का विद्यार्थी है। पं० हरपाल जी यह भी बताते थे कि हमें यह तो पता था कि हमारे राम का शरीर ब्रह्मचर्य तप से तपा हुआ है और वज्र के समान है परन्तु यह तो हमें भी आशा न थी कि इस प्रतियोगिता में गुरुदेव स्वामी स्वतंत्रानन्द जी का हनुमान हमारा राम आज सबको पछाड़ देगा। संभव है दूरदर्शी,अनुभवी व पहलवानों एवं खिलाड़ियों के संरक्षक व पारखी हमारे पूज्य स्वामी जी को यह आशा रही हो कि राम ही जीतेगा परन्तु वहां उपस्थित जन-समूह को तो खिलाड़ियों के मध्य राम का होना कुछ हास्यास्पद ही लगता था।

लम्बी दौड़ प्रतियोगिता में राम सर्वप्रथम आए। पुरस्कृत हुये। सब देखकर दंग रह गये। एक और दौड़ हुई। राम उसमें भी सर्वप्रथम आए।

फिर 'पिल्लो फ़ाईटिंग' प्रतियोगिता आरम्भ हुई। यह प्रतियोगिता देखने ही वाली थी। पूज्य स्वामी जी तो बस इतना ही बताते है कि मैं जीत गया परन्तु प्रत्यक्षदर्शी पं० हरपाल जी तो इसका वर्णन करते हुये रोमाञ्चित से हो गये। बड़े लम्बे-चौड़े शरीर के प्रतियोगी युवक थे। पश्चिमी पंजाब के सुडौल शरीर वाले मुसलमान युवकों का खेल भी देखने योग्य था। राम ने अपनी फुर्ती, धैर्य, साहस व प्रवीणता का प्रदर्शन करके सब दर्शकों को चकित कर दिया। इस प्रतियोगिता में भी राम प्रथम आए।

बस, यह जानिए कि यह प्रतियोगिता भी ऐसी ही थी जैसे पहलवान चन्दगीराम व मेहरदीन का मल्ल-युद्ध। कृशकाय राम क्योंकर जीत गये? इनमें क्या विशेषता थी? अपने-अपने ढंग से दर्शक टिप्पणियां कर रहे थे। राम शाकाहारी है इसलिए सबको पिछाड़ गया। कोई यह कहता था कि यह गुरुकुल का ब्रह्मचारी है इसलिए सबसे आगे निकल गया। कुछ भी हो राम की जीत को एक व्यक्ति की जीत न समझा गया यह एक व्यक्तित्व की जीत थी। यह एक सामान्य खिलाड़ी की जीत न थी, यह एक जीवन पद्धति की जीत थी। आर्यमात्र को इस जीत पर अपार हर्ष हुआ। राम ऐसी विशिष्टता प्राप्त करके भी पूर्ववत्शान्त भाव से विचरते देखे गये। किसी ने भी उन्हें इस विजय के, इस सम्मान के मद में इतराते नहीं देखा। राम के व्यवहार से ऐसा प्रमाणित हो रहा था मानों यह उसकी जीत नहीं श्रीमद्दयानन्द उपदेशक विद्यालय की जीत है।

सभा में सभी को भाए राम

सन् १९३५ में पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज ने श्रीमद्दयानन्द उपदेशक विद्यालय के आचार्य-पद से त्याग पत्र दे दिया। विद्यालय को एक अध्यापक की भी आवश्यकता थी। पंजाब सभा में दो दल थे। महाशय कृष्ण पार्टी व स्नातक पार्टी में किसी भी एक विद्वान् के नाम पर सहमति नहीं हो पा रही थी। जिसका भी नाम प्रस्तावित किया जाता, उसी पर कभी स्नातक पार्टी और कभी महाशय पार्टी के लोग आपत्ति कर देते।

पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी के स्थान पर श्रद्धेय आचार्य प्रियव्रत जी को आचार्य बनाया

गया। उधर श्री पं० नरदेव जी जैसे गम्भीर विद्वान् का निधन होने से उनका स्थान रिक्त हो गया। आचार्य प्रियव्रत जी व विद्यालय के सभी शुभचिन्तक चाहते थे कि पं० नरदेव जी के स्थान पर उन जैसा ही कोई विद्वान् लिया जावे। दोनों पक्षों के मतभेद इतने उग्र थे कि कोई निर्णय नहीं हो पा रहा था।

इसी विवाद में किसी ने श्री पं० रामचन्द्र जी सिद्धान्त शिरोमणि के नाम का सुझाव दिया। इस प्रस्ताव को स्नातक पार्टी ने सहर्ष स्वीकार किया। महाशय पार्टी को भी पं० रामचन्द्र जी के नाम पर कोई आपत्ति नहीं थी। यह एक विचित्र बात थी कि मतभेद के उस काल में भी राम एक ऐसे विद्वान् थे जिनके नाम पर दोनों पक्षों में सहमति थी। उनके नाम का प्रस्ताव सबको स्वीकार्य था। राम को उपदेशक विद्यालय का अध्यापक नियुक्त कर दिया गया। राम को इस निर्णय की पूर्व सूचना न थी। वे तो सरगोधा में वेद-प्रचार के लिए गये हुये थे। वहीं आर्य प्रतिनिधि सभा का तार पहुंचा कि लाहौर पहुंचे।

लाहौर पहुंचकर आपने एक अनुशासित सेवक के रूप में अपना नया पद सम्भाल लिया। आचार्य प्रियव्रत जी को यह सन्तोष हुआ कि उन्हें एक तपस्वी, विद्वान् सहयोगी मिल गया, जो विद्यालय की रीति-नीति व परम्पराओं से पूर्णरूपेण परिचित था। विद्यार्थियों को यह सन्तोष हुआ कि उन्हें एक गम्भीर विद्वान् गुरु की सेवायें प्राप्त हुई और दोनों पक्षों को यह सन्तोष था कि सभा की इस महान् संस्था को ऋषि के रंग में रंगी हुई एक निर्मल आत्मा की सेवायें प्राप्त हुईं।

जब पं० रामचन्द्र बड़े रुग्ण हो गये

हैदराबाद सत्याग्रह की तैय्यारियां चल रही थीं। सभा पर तब स्नातक पार्टी का अधिकार था। पं० रामचन्द्र जी बहुत रुग्ण हो गये। कई मास तक आपको ज्वर रहा। बहुत उपचार करवाया परन्तु रोग ने पीछा न छोड़ा। श्री पं० ठाकुरदत्त जी मुलतानी से भी चिकित्सा करवाई गई। किसी की औषधि से कुछ भी लाभ न हुआ।

इतने कष्ट में भी श्री पं० रामचन्द्र जी घर न गये। इससे हम उनके मनोबल का अनुमान लगा सकते हैं। श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज का पत्र आया कि लताले चला जा। गुरुजी का आदेश पाकर आप लताला (जिला लुधियाना) चले गये। घर पर सूचना भी न दी कि मुझे ज्वर है।

तब आप शारीरिक दृष्टि से बहुत निर्बल हो गये। सब आर्य विद्वानों को व नेताओं को आपके स्वास्थ्य के बिगड़ने पर गहरी चिन्ता थी। श्री पं० बुद्धदेव जी ने आपसे कहा, शरीर भी प्रभु की धरोहर है। इसकी रक्षा करना भी धर्म है। आप अवकाश लेकर स्वास्थ्य की सुधि लें। पं० बुद्धदेव जी के आग्रह से आपने सभा से अवकाश ले लिया।

आप लताला चले गये। स्वामी स्वतंत्रानन्द जी की ननिहाल यहीं थी। यहीं आपका लालन-पालन हुआ था। यहीं एक उदासी साधुओं के डेरा के महात्मा विष्णुदास जी के सत्संग से पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी को वैदिक विचार मिले थे। इसी डेरे में पं० रामचन्द्र जी आ गये। पं० विष्णुदास जी का वैद्यक का ज्ञान बड़ा गहरा व सूक्ष्म था। आपने

पं० रामचन्द्र जी का प्रातः का मूत्र रखवाया। नाड़ी भी देखी। जिगर ख़राब था। ज्वर तो था ही नहीं। सात दिन तक महात्मा विष्णुदास जी ने आपको जोशान्दे दिये। इससे ज्वर व कब्ज़ सब अपने आप दूर हो गये। ठीक होने के कुछ दिन पश्चात् पण्डित जी लाहौर लौट आए। लाहौर के बड़े-बड़े डाक्टर जिसकी चिकित्सा करके हार गये, एक साधु के औषधि उपचार से वह रोगी अब पूर्णतया स्वस्थ था। पं० विष्णुदास जी की आयु उस समय सत्तर वर्ष से कुछ ऊपर थी।

आयुर्वेद व यूनानी चिकित्सा पद्धति का अध्ययन

भारत-वर्ष में वैद्यक का इतिहास अति प्राचीन है। ईश्वर का अनादि नित्य ज्ञान वेद ही इस विज्ञान का आदि स्रोत है। इस देश में वैद्यक धंधे के रूप में कभी प्रचलित नहीं रहा। वैद्यक व धर्मोपदेश एक दूसरे के पूरक रहे हैं। इसलिए आयुर्वेद शास्त्र भी वेद शास्त्र का उपदेश देने वाले ब्राह्मणों की निधि रहा है। जैसे शास्त्र का उपदेश यहां बिक्री की वस्तु नहीं था, इसी प्रकार वैद्यक शास्त्र जन-सेवा का साधन माना जाता था। त्यागी, तपस्वी, ब्राह्मण ही इसके अधिकारी रहे।

अभी कल तक की बात है कि इस देश के लोग यह मानते थे कि लोभी वैद्य की औषधि नहीं लग सकती। परोपकारी साधु महात्मा की बताई व दी हुई औषधि ही लगती है। यह ठीक है लोभियों पाखण्डियों ने वेद शास्त्र को अपनी बपौती या जागीर बनाकर धर्म का बड़ा ह्रास कर दिया। ऐसे ही वैद्यक शास्त्र औषधि जिसके भी पास थी, उसने आगे किसी को न बताई और अंग्रेजी शासन काल में वैद्यक भी एक धंधा बनकर हमारे सामने आ गया। वैद्यक का ज्ञान धनोपार्जन का साधन नहीं, यह मान्यता लुप्त होती गई।

फिर भी आज पर्यन्त जन-साधारण में यह विश्वास है कि वैद्यक का ज्ञान तो तभी फलदायी है, यदि यह साधुओं के पास हो। स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज जब उपदेशक विद्यालय के आचार्य थे तभी उन्होंने एक आश्रम बनाने की योजना अपने मन में बना ली थी। संस्था बनाने के लिए वे यदा-कदा अपने प्रियतम शिष्य राम से भी विचार विमर्श किया करते थे। स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज स्वयं एक असाधारण योग्यता के वैद्य हकीम थे। आपने सुन सुना कर के नहीं प्रत्युत्त गुरुमुख से आयुर्वेद व यूनानी ग्रन्थों का वर्षों तक अध्ययन किया था।

श्री स्वामी जी समझते थे कि साधु को वैद्यक का भी ज्ञान हो तो परोपकार व धर्म प्रचार का बड़ा काम हो सकता है। जिस संस्था का वे निर्माण करने जा रहे थे, वे चाहते थे कि उसके द्वारा भी परोपकार की दृष्टि से राम को वैद्यक व यूनानी का सूक्ष्म ज्ञान होना चाहिए। राम जब उपदेशक विद्यालय में पढ़ते थे तभी पूज्य श्री स्वामी जी ने उनकी वैद्यक की शिक्षा का भी प्रबंध कर दिया। इसके लिए राम को तब कहीं विद्यालय से बाहर भेजने की आवश्यकता ही नहीं थी। पूज्य स्वामी जी ही इस कार्य में सक्षम थे। उनके पास तिब्ब व आयुर्वेद के सभी प्रामाणिक ग्रन्थ थे।

स्वामी जी महाराज पं० रामचन्द्र जी को सभा से अवकाश दिलवा कर अमृतसर भी इसी

उद्देश्य से भेजते रहे। वहां वैद्य तिलकराम जी ब्रह्मचारी, स्वामी जी के अनन्य भक्त थे। उनसे औषधियों का निर्माण करना सीखते रहे। अमृतसर में ही एक अच्छे विद्वान् उदासीन साधु पं० राम स्वरूप जी से पं० रामचन्द्र जी ने चरक पढ़ा। श्री पण्डित जी समाज मन्दिर में ही वैद्य तिलकराम जी के पास रहते थे। कुछ समय अमृतसर से निकलने वाले पत्र 'सन्त समाचार' के कार्यालय में भी रहे। कई वर्ष तक सर्दियों में पण्डित रामचन्द्र जी अमृतसर जाते रहे। आयुर्वेद का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त करने के लिए आपने सतत् साधना की। पं० रामचन्द्र जी ने आयुर्वेद के अध्ययन के लिए कितना तप किया इसका अनुमान आज का /Collegiate) (कालेज का छात्र) नहीं लगा सकता।

आपको प्रातः-काल चार से पांच बजे तक गुरुजी चरक पढ़ाया करते थे। इसके पश्चात् समय नहीं देते थे। प्रातः चार बजे पढ़ने के लिए रामचन्द्र जी को इससे भी बहुत पहले उठना पड़ता था। पं० रामस्वरूप जी केवल चरक पढ़ाते अन्य ग्रन्थ वैद्य तिलकराम जी से पढ़ते रहे।

एक बार किसी प्रसंग में पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी ने हमें बताया कि आपने पं० विष्णुदास जी लताला वालों से भी आयुर्वेद का अध्ययन किया था। वहां भी पूज्य स्वामी जी ने ही आपको भेजा था। पाठक अन्यत्र भी पढ़ेंगे कि महात्मा विष्णुदास जी अपने समय के आयुर्वेद के एक शिरोमणि विद्वान् थे। वहां कितनी देर अध्ययन किया, यह नहीं बताया।

पं० रामचन्द्र जी का यह अध्ययन यहीं समाप्त नहीं होता। सन् १९४१ में जब आप गुरुजी के आदेश पर मठ में आ गये तो यहां भी आयुर्वेद व यूनानी के ग्रन्थों का पठन-पाठन चलता रहा । श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज मठ में बाद दोपहर दो घण्टे तक आपको पढ़ाया करते थे। उर्दू तथा फारसी में छपे तिब के (युनानी के) सभी प्रामाणिक ग्रन्थ पं० रामचन्द्र जी ने गुरुमुख से पढ़े। नित्य औषधालय में सैंकड़ों रोगियों की सेवा करना, मठ के सभी कार्यों को करना, देखना व सम्भालना, स्वयं औषधियों का निर्माण करना और साथ-साथ पढ़ना भी कितना बड़ा तप है। ये सब कुछ किसके लिए? दीन-दुखी की सेवा के लिए। मेरे व आपके लिए। परोपकार के लिए। संसार के लिए। प्रभु की सन्तान के कल्याण के लिए।

हृदय में सत्य वैदिक ज्ञान का पावन उजाला हो।
न हो आलस्य यम, नियमादि का व्रत पूर्ण पाला हो।।
परम उत्साह सेवा धर्म का नूतन निराला हो।
कथन कृति एक हो तब आर्यों का बोल बाला हो।।

कविरत्न 'प्रकाशचन्द्र'

तृतीय परिच्छेद

पं० रामचन्द्र काल की कुछ झाँकियाँ

खानकी हैड की अविस्मरणीय यात्रा

सन १९२७ ई० की घटना है। राम अभी विद्यार्थी ही थे। पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज ने आपको खानकी हैड (पश्चिमी पाकिस्तान) के आर्यसमाज में भेजा। उपदेशक विद्यालय में अवकाश था। चनाब नदी पर यह हैड था। यहां से कई नहरें निकलती थीं। राम वहां अकेले गये।

श्री मूलचन्द्र जी शर्मा एस० डी० ओ० आर्यपुरुष थे। यह देहली निवासी थे। स्वामी जी ने उन्हें एक पत्र भी लिख दिया था। चनाब नदी के बीच में झौंपडी (HUT) बनी हुई थी। वहां बहुत ठण्डी-ठण्डी पवन चलती रहती थी। दिन को श्री राम भ्रमण करते। प्राकृतिक दृश्यों का आनन्द लूटते। यहां एक द्वारपाल (Gatekeeper) से भेंट करके राम जी को विशेष प्रसन्नता हुई। इसका एक कारण विशेष था।

यह द्वारपाल सेवा मुक्त होने पर भी वहीं रहता था। उसे छोड़ा हीं नहीं गया। इस व्यक्ति ने महर्षि दयानन्द जी महाराज के गुजरांवाला में दर्शन किये थे। ऋषि का वहां ब्रह्मचर्य पर बड़ा शास्त्रोक्त प्रभावशाली व्याख्यान हुआ था। आर्य पुरुष जब कभी खानकी हैड प्रचारार्थ जाते तो उससे अवश्य मिला करते और ऋषि-दर्शन की कहानी पूछते। राम जैसा ऋषि-भक्त भला उस द्वारपाल का सत्संग क्यों न करता। उससे दोहरा दोहरा कर ऋषि-दर्शन की कहानी सुनकर अपनी न बुझने वाली प्यास को शान्त करना चाहा।

राम ने पूछा, "तो ऋषि दीखने में कैसे थे?"

उसने कहा, **"स्वामी वेदानन्द जी जैसी आकृति थी। गोल-गोल मुखड़ा था।"**

अब भी श्री स्वामी सर्वानान्द जी महाराज जब-जब ऋषि के ब्रह्मचर्य व तप तेज पर कुछ कहते हैं तो उस गेटकीपर के ये शब्द अवश्य दोहराते हैं कि स्वामी वेदानन्द जी जैसी आकृति थी। गोल-गोल मुखड़ा था।

कुछ दिन के पश्चात् पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज भी खानकी पहुंच गये। ढपई ग्राम (लेखराम नगर कादियां के समीप)जिला गुरदासपुर के प्रसिद्ध आर्य ठेकेदार सरदार वसाखासिंह जी भी वहीं रहते थे। वहां का आर्यसमांज मंदिर आप ही का बनवाया हुआ था। आप महात्मा मुंशीराम काल से ही सक्रिय समाज सेवा करते चले आ रहे थे। स्वामी स्वतंत्रानन्द जी के भी अनन्य भक्त थे। आपने पूज्य स्वामी जी को पांच सहस्र (५०००-००) रुपये की राशि श्रीमद्दयानन्द उपदेशक विद्यालय के लिए दान दी। आज इस राशि का मूल्य चार लाख समझिए।

यह राशि एक स्थिरनिधि के रूप में थी। सरदार वसाखासिंह जी की चाह थी कि इस

राशि से उपदेशक विद्यालय में अरबी पढ़ाने की व्यवस्था की जावे ताकि आर्यसमाज में धर्मवीर लेखराम जी जैसे सुयोग्य शास्त्रार्थ महारथी उत्पन्न होते रहें। वैदिक धर्म व इस्लाम पर तुलनात्मक साहित्य छपता रहे। सत्य-असत्य का निर्णय युक्ति व प्रमाणों से हो। इसी से मुसलमानों की मतांधता दूर होगी और परस्पर प्रेम बढ़ेगा।

स्वामी स्वतंत्रानन्द जी ने यह राशि राम को सौंप दी।

यह एक अपूर्व घटना थी

रामने इससे पहले कभी इतनी बड़ी राशि देखी ही न थी। इसलिए पाँच सहस्र रुपये का देखना व सम्भालना राम जी के लिए एक अपूर्व घटना थी। श्री मूलचन्द शर्मा ने भी श्री महाराज से पूछा, "क्या भेंट दें?"

स्वामी जी ने कहा, "कुछ नहीं चाहिए।"

राम को इतनी बड़ी राशि सौंपकर स्वामी जी कहीं आगे चले गये और कहा, "अभी यहीं रुको।"

स्वामी जी कुछ दिन के पश्चात् लौटे तो राम ने गुरुजी के आने पर सुख का साँस लिया। वह रुपये के कारण बड़े परेशान थे। इतना रुपया! इसे सम्भालना एक झंझट ही तो था।

राम ने कहा, "महाराज! यह लीजिए अपनी धरोहर। मैं इसे कहां सम्भालता फिरूँ? मैं तो तंग आ गया। मैं क्या करूँ?"

स्वामी जी ने कहा, "अच्छा! तेरी इच्छा।"

स्वामी जी ने राशि ले ली और लाहौर लौट आए। राम छुट्टियों की समाप्ति तक वहीं रहे। इस घटना से पता चलता है कि गुरुजी ने सब प्रकार के सामाजिक कार्यों व लोक-व्यवहार की सब छोटी बड़ी बातों का राम को आरम्भ से ही प्रशिक्षण देना आरम्भ कर दिया था।

इसी राशि और इसी योजना का परिणाम था कि आर्यजाति को श्री पं० शिवदत्त जी मौलवीफ़ाजिल व पं० शान्ति प्रकाश शास्त्रार्थ महारथी सरीखे कई नामी विद्वान् प्राप्त हुए जिनका इस्लामी साहित्य पर असाधारण अधिकार देखकर मौलाना सनाउल्ला जैसे मौलवी भी चकित होते थे।

जब स्नातक बने तो गुरुजी ने पूछा

पूज्य स्वतन्त्रानन्द जी महाराज गुणियों के विलक्षण पारखी थे। उनकी दिव्यदृष्टि ने आपको उपदेशक विद्यालय में थोड़े ही दिनों में पहचान लिया था। आपको मानवनिर्माण कला के उस शिल्पी ने गढ़-गढ़ कर बनाया था। तब अधिकांश उपदेशक सिद्धान्तभूषण परीक्षा के पश्चात् कार्यक्षेत्र में उतर आते थे। श्रीराम पहले ऐसे स्नातक थे जिन्होंने सिद्धान्त शिरोमणि किया।

पूज्य स्वामी जी आपके मनोभावों को भलीभांति जानते थे फिर भी पूछा, "अब क्या करोगे?"

शिष्य ने सिर झुकाकर कहा, "वेद-प्रचार।"

श्री महाराज खेमकरण से एक थैला और एक आसन लाए थे, वे दोनों वस्तुयें शिष्य को भेंट कर दीं और सबसे पहले गोजरा जिला लायलपुर में प्रचार करने भेजा।

मठ के स्तम्भ रूप वयोवृद्ध सेवक वैद्य साईंदास जी की जन्म स्थली यही गोजरा कस्बा है। श्री स्वामी रुद्रानन्द जी महाराज व पं० मनसाराम जी वैदिकतोप भी वहां पहुंचे। ये दोंनो विद्वान् तो अपने समय के माने हुए शास्त्रार्थ महारथी व निर्भीक वक्ता थे। दोनों ही लौहपुरुष स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के शिष्य थे।

पं० रामचन्द्र जी का व्याख्यान हुआ। अभी पन्द्रह मिनट ही बोले थे कि भाषण की सामग्री समाप्त हो गई। उपदेशक विद्यालय से निकलने पर यह आपका प्रथम व्याख्यान था। जब व्याख्यान के लिए सामग्री ही नहीं तो क्या करते? बैठ गये।

सामग्री समाप्त होने का तो कोई कारण नहीं था। उस युग के सिद्धान्तविशारद व सिद्धान्तभूषण स्नातकों ने धार्मिक जगत् में हलचल मचा रखी थी। श्री पं० चन्द्रभानु जी, पं० शान्तिप्रकाश जी शास्त्रार्थ महारथी इसका प्रमाण हैं। हमारा मत है कि इसका एक मनोवैज्ञानिक कारण था। श्रीमान् पं० मनसाराम जी वैदिकतोप व स्वामी रुद्रानन्द जी जैसे असाधारण विद्वानों की उपस्थिति के अतिरिक्त इसका कोई और कारण नहीं था।

ये दोनों महारथी इस बात को समझ गये। दोनों ने श्री पं० रामचन्द्रजी को बहुत प्रोत्साहन दिया। आगे चलकर दोनों ने श्री राम को आर्यसमाज के गौरव-गगन में चमकते देखा तो वे भी यह देखकर बड़े प्रसन्न होते थे।

भोजन का जो स्वाद उस दिन आया फिर नहीं आया

जब रामचन्द्र जी स्नातक बनकर प्रचारार्थ भ्रमण पर रहते थे, उन दिनों पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने इन्हें कहीं सुदूर स्थान पर किसी ग्राम में प्रचार के लिए भेजा। सर्दी के दिन थे। मार्ग में किसी गांव में रात पड़ गई। प्रातः से कुछ नहीं खाया था।

एक व्यक्ति से यह मिले और कहा, "मैं आर्य हूँ। वेद-प्रचार के लिए निकला हूँ। भोजन करना है।"

उसने कहा, "मेरे पास बाजरे की एक रोटी है। रोटी भी एक दिन पहले की है।"

पं० रामचन्द्र जी ने कहा, "वही दे दो।"

लस्सी भी उसने दी। नमक-मिर्च लस्सी में डालकर एक रोटी बासी खाकर भूख को शान्त किया। श्री स्वामी जी कभी कभी यह घटना भोजन के प्रसंग में सुनाया करते हैं कि जो स्वाद उस दिन उस बाजरे की रोटी का आया, वह फिर कभी नहीं आया।

उसी सज्जन ने बिस्तर दिया। आग जला दी। वहीं आप सो गये और फिर अगले दिन आगे चल पड़े।

उस युग के उपदेशकों ने धर्मप्रचार के लिए कितने कष्ट झेले हैं, यह घटना उसीका एक प्रमाण है। कष्ट सहकर वे पक्के होते गये। तप की भट्टी से वे कुन्दन बनकर निकले।

राम इस दृष्टि से धन्य थे कि गुरुवर ने जो कोई भी आज्ञा दी आपने शिरोधार्य करके अपना कर्त्तव्य निभाया। दुःख आया या सुख आया, आप कभी पीछे नहीं हटे।

पुलकित-हृदय

महात्मा रामचन्द्र सिद्धान्तशिरोमणि श्रीमद्दयानन्द उपदेशक विद्यालय लाहौर के स्नातक बनकर पंजाब के ग्रामों व नगरों में वेदप्रचार की अलख जगाते विचरण कर रहे थे। सभा ने जहां भी जाने को कहा, ग्राम हो वा कस्बा, झोंपड़ी हो अथवा गगनचुम्बी अट्टालिका, आप सहर्ष वहीं जाने को तैयार रहा करते थे

एक बार आप को खैरपुर टामवाले (बहावलपुर राज्य) में जाने का अवसर प्राप्त हुआ। आपने वहां धर्म का प्रचार किया। वहां प्रचार करते हुए आपको एक अलौकिक आनन्द की अनुभूति हुई। इस ग्राम की यात्रा करके तरुण रामचन्द्र का हृदय पुलकित हो उठा। लाहौर लौटकर आपने बड़े गर्व से आचार्य प्रवर पं० चमूपति जी से कहा, "मैं आपके ग्राम की यात्रा कर आया हूँ।" साहित्य-कानन की कोकिल कविहृदय चमूपति क्या कुछ कम थे। झट से बोल उठे, "तो पण्डित जी आप हमारे पूज्य पुरोहित हो गये। हमारे घर चलें। हम आपको भोजन करवायेंगे।।"

श्री पं० रामचन्द्र जी मनीषी चमूपति जी के इस आग्रह को देखकर चकित रह गये। बहुत न की परन्तु आचार्य चमूपति अपनी बात से न टले। पं० रामचन्द्र जी को लेकर अपने घर जाकर देवी जी से कहा, "पंडित जी, अब हमारे पुरोहित हो गये। आप खैरपुर वेद प्रचार करके आए हैं।"

पं० चूमपति जी के श्रद्धा से भरपूर हृदय का चित्र खींचते हुये पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज जब यह घटना सुनाया करते हैं तो स्वयं बहुत भावुक हो जाते हैं। भावभरित हृदय से फिर आप पं० चमूपति जी की चारित्रिक विशेषताओं का बड़े अनूठे ढंग से वर्णन किया करते हैं।

चलते चलते इतनी भूख लगी

श्री पं० बलराज जी भजनोपदेशक ने 'रामचन्द्र काल' की पूज्य स्वामी जी महाराज की लग्न व उत्साह की एक घटना सुनाई। एकबार आप पं० रामचन्द्र जी के साथ हिमाचल के एक आर्यसमाज में प्रचार करने जा रहे थे। मार्ग में कहीं कई मील तक पैदल चलना पड़ा। पर्वतों पर तो चढ़ाई-उतराई है, भूख वैसे ही लग जाती है। पं० राम चन्द्र जी व बलराज जी दोनों ही तब जवान थे। बड़ी भूख लगी। मार्ग में कुछ भी खाने को न मिला। क्या करें।

मक्की का एक खेत देखकर यह विचार बना कि इसमें ही घुस जाओ। मक्की के कुछ कच्चे भुट्टे तोड़-तोड़ कर खा लेते हैं। खेत का स्वामी आ गया तो कहेंगे कि पैसे ले-ले, जितने मांगेगा दे देंगे और तो भूख से बचने का कोई उपाय था नहीं।

दोनों खेत में घुस गये। लगे भुट्टे तोड़-तोड़ कर खाने। अभी भुट्टे खा ही रहे थे कि खेत के पास एक व्यक्ति पहुंचा। उसने इन्हें देखकर कहा, "आप कौन हैं?" इन्होंने विचार बनाया कि चुप रहना ही ठीक है। भूख मिटजावेगी तो बात करेंगे। खेत का स्वामी है तो मुंह मांगे पैसे मिलने पर प्रसन्न हो जावेगा। वह व्यक्ति थोड़ा रुक कर चलता बना।

यह भी पेट भर कर अपनी राह हो लिए। जहां पहुंचना था, पहुंच गये। अब आर्यसमाज के मंत्री जी का अता-पता पूछा। मंत्री जी को सूचना थी ही कि सभा से दो महानुभाव प्रचारार्थ पहुंच रहे हैं। मंत्री जी मिले तो ये उन्हें देखकर हैरान सा हो गये और वह भी इन्हें देखकर हैरान हो रहे थे। खेत के बाहर खड़े जिस व्यक्ति ने आवाज़ें दीं थी कि तुम कौन हो? वह मंत्री जी ही तो थे। उन्हें क्या पता कि ये मेरे ही अतिथि हैं। बातचीत की तो पता चला कि मंत्री जी को भी भूख ने तंग कर रखा था। मंत्री जी भी भुट्टे खाना चाहते थे परन्तु मंत्री जी खेत के भीतर न गये। मंत्री जी ने इन्हें खेत वाले समझ लिया।

जवानी में कितने कष्ट सहकर हमारे चरित्रनायक ने कैसे-कैसे कार्य किया। रामचन्द्र काल की यह घटना उसी का एक उदाहरण है। वास्तव में उस काल में सब प्रचारकों व कार्यकर्त्ताओं में सेवा की एक होडसी लगी हुई थी।

जब भूख ने इतना तंग किया कि निढ़ाल से हो गये

जब स्वामी जी आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के रिसीवर बनाए गये थे, उन दिनों पुराने उपदेशकों के तप-त्याग की प्रशंसा करते हुये आपने श्री पं० मनसाराम जी वैदिकतोप के जीवन की एक घटना सुनाई। पं० मनसाराम जी सभा के कार्यक्रम पर कोटली-मीरपुर से झेलम की प्रचार-यात्रा पर थे। श्री पं० रामचन्द्र जी भी साथ ही थे। पं० मनसाराम जी शरीर से कुछ भारी थे और रामचन्द्र जी तो शरीर से दुबले-पतले ही थे। प० मनसाराम ने कहा, पं० जी भूख बहुत सता रही है। अब तो आगे चलना बड़ा कठिन है।

भूख तो रामचन्द्र जी को भी सता रही थी परन्तु कर ही क्या सकते थे। मार्ग में खाने को कुछ मिलने का प्रश्न ही न था। पं० रामचन्द्र जी ने कहा, "तो क्या किया जावे?" पं० मनसाराम जी को एक उपाय सूझा। आपने कहा "पण्डित जी! यह सामने ही लसूढ़े का पेड़ खड़ा है। इस पर लसूढ़े लगे हुये हैं। इसकी लकड़ी कच्ची होती है। आप का शरीर भारी नहीं है। आप इस पर चढ़कर मेरे लिये कुछ लसूढ़े नीचे फेंके। आप ऊपर ही तोड़-तोड़ कर खाते जाइए। मैं ऊपर चढूंगा तो मेरे भार से इस वृक्ष की कच्ची कोमल शाखायें टूट जावेंगी।

पं० रामचन्द्र जी को यह बात जंच गई। आप ऊपर चढ़ गये। पं० मनसाराम जी के लिए पके हुये लसूढ़े नीचे फेंकते गये और आपने कुछ ऊपर ही खा लिए। इस प्रकार अपनी भूख मिटाकर दोनों धर्म योद्धा अपने पथ के पथिक बने। ऐसे समाज-सेवकों का ऋण क्या कोई चुका सकता है? न जाने श्री महाराज के जीवन में ऐसी कितनी घटनायें घटीं। आपने कभी भी कष्टों का रोना नहीं रोया।

देवतास्वरूप भाई परमानन्द जी ने राम से कहा

देवतास्वरूप श्री भाई परमानन्द जी गुरुदत्त भवन स्वामी 'स्वतंत्रानन्द जी महाराज के पास प्रायः आते रहते थे। श्री राम सिद्धान्त शिरोमणि कक्षा में पढ़ते थे। एकदिन भाई जी आए। उन्होंने आपको कोई पुस्तक पढ़ते देखा

तो कहा, "क्या पढ़ रहे हो?" आपने कुछ उत्तर दिया तो पूज्य भाई जी ने कहा, "पंचतन्त्र भी पढ़ा है या नहीं?"

भाई जी ने तब श्री राम से कहा, "हिन्दू यदि पंचतन्त्र को पढ़ते तो किसी आततायी से मार न खाते। पंचतन्त्र के होते कोई मार खा जावे। यह हो नहीं सकता।"

भाई जी ने फिर कहा, "इतने बड़े-बड़े ग्रन्थ पढ़ते हो, क्या कोई नीति का बड़ा ग्रन्थ भी आपके पास है?" राष्ट्र और जाति के लिए तिल-तिल जलने वाले और परोपकार के लिए सर्वस्व आहूत कर देने वाले देवतास्वरूप भाई परमानन्द जी के सम्पर्क में आना व उनका प्यार पाना निश्चय ही श्री राम के लिए बड़े गौरव की बात थी।

श्री हरिप्रसाद जी वैदिकमुनि ने आपसे कहा

श्री पं० आर्यमुनि जी महामहोपाध्याय के सहपाठी व दर्शनों के भाष्यकार श्री हरिप्रसाद जी वैदिकमुनि ने उन्हीं दिनों ब्र० रामचन्द्र जी से पूछा, "क्या पढ़ते हो?" इन्होंने बताया "प्राचीन आर्षग्रन्थ और महर्षि दयानन्द जी के सभी ग्रन्थ।"

वे बोले,"जाओ स्वामी वेदानन्द जी से जाकर कहो कि ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों के चारों ओर अभेद्यकिता बना सकते हो तो यह काम करो। क्या बच्चों में बैठ कर जीवन नष्ट कर रहे हो। तुम क्यों नहीं स्वामी जी से यह कहते ? कार्य वह करो जो करना चाहिए।"

ब्र० रामचन्द्र जी ने कहा, "आप ही उनको ऐसा कहें।"

'जो जावे कुल्लू सो बने उल्लू'

श्री पं० शान्तिप्रकाश जी, पं० मुनीश्वरदेव जी आदि सब पुराने विद्वानों से हम सुनते आए हैं कि उपदेशक महानुभाव जब किसी नगर व प्रदेश में प्रथम बार प्रचारार्थ जाया करते थे तो जाने से पूर्व स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी से उस क्षेत्र के बारे में जानकारी प्राप्त करके जाते। स्वामी जी सारे देश में कई बार भ्रमण कर चुके थे। अतः उन्हें देश के प्रत्येक भाग के संबंध में सब प्रकार की जानकारी थी।

एक बार कुल्लू में महामारी फैली। आर्यसमाज की ओर से पीड़ितों की सहायता की व्यवस्था की गई। श्री पं० रामचन्द्र जी सिद्धान्तशिरोमणि को भी गुरु जी ने दो अन्य साथियों के साथ वहां भेजा। इससे पहले आप कभी कुल्लू नहीं गये थे इसलिए स्वामी जी ने इन्हें जाते हुये कहा— **'जो जावे कुल्लू सो बने उल्लू'**।

इस लोकोक्ति का भाव हिमाचल के इस पर्वतीय क्षेत्र के सामाजिक व आर्थिक इतिहास से परिचित लोग जानते हैं। उल्लू बनने से बचने का भी तो कोई उपाय रहा होगा?

श्री स्वामी जी महाराज ने उपाय भी बताया कि कहीं भी अकेले मत जाना। जहां भी जाओं तीनों इकट्ठे जाना। स्वामी जी महाराज के इस निर्देश व उपदेश को ध्यान में रखकर श्री पं० रामचन्द्र जी व उनके दोनों साथी कभी भी एक दूसरे से पृथक् न हुये। तीनों इकट्ठे ही घूमते, प्रचार करते व सेवा कार्य के लिए आते-जाते।

पंजा साहिब में राम ने प्रचार कर दिखाया

पंजा साहिब सिखों का प्रसिद्ध तीर्थ है। वहां कुछ सिख भाई ही आर्यसमाज का प्रचार न होने देते थे। पं० रामचन्द्र जी वहां गये तो एक आर्यपुरुष ने प्रचार करवाने में अपनी असमर्थता प्रकट की। पण्डित जी वहां बाजार में से निकल रहे थे कि एक स्थान पर बड़ी भीड़ थी। यह भी आगे होकर देखने लगे कि यहां है क्या? वहां एक व्यक्ति पीड़ा से व्याकुल होकर चिल्ला रहा था। उसका मूत्र रुका हुआ था। तब डाक्टर यहां वहां कहां थे। पण्डित जी ने कहा, ''मैं इसे ठीक कर दूं क्या?'' लोगों ने कहा, ''कुछ कर सकते हो तो कीजिए।'' पंडित जी ने पास ही किसी से कापूर लिया और उसके मूत्र इन्द्रिय के आगे रखा। उसको खुलकर मूत्र आ गया। वह रोगी सिख ही तो था। उन्हें पता चला कि यह देवता पुरुष आर्यसमाज के उपदेशक हैं। उन्होंने प्रचार की व्यवस्था की। पंडित जी ने वेदामृत की वर्षा करके सबको तृप्त किया।

वीतरागी स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज के संग

श्री पं० रामचन्द्र जी को श्रीमद्दयानन्द उपदेशक विद्यालय में पढ़ते हुये और फिर आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब की सेवा करते हुये बड़े-बड़े पूज्य महात्माओं के समीप आने व उनकी सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज जैसे वीतराग साधु के भी आप कृपापात्र बने।

एकबार श्री स्वामी जी के साथ हमारे चरित्रनायक मुजफरगढ़ (पश्चिमी पंजाब) की प्रचार यात्रा पर गये। वहां स्वामीजी एक टांगे पर बैठे। टांगे वाला बड़ा खीजा। स्वामी जी महाराज ने समाज मंदिर पहुंच कर उसे दो रुपये दिये तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ। उन दिनों दो का मूल्य बहुत था।

यह भी स्मरण रहे कि टांगे वाले के साथ स्वामी जी की एक ऐसी घटना अलीगढ़ में भी घटी थी। उस टांगेवाले का नाम अब्दुल्ला था, जो बाद में हीरानन्द बनकर समाज की सेवा करता रहा।

राम सर्दाई (ठण्डाई) बना सकते हो?

इसीप्रकार यात्रा में मुजफरगढ़ में एकदिन श्री स्वामी जी ने पं० रामचन्द्र जी से कहा, ''राम सर्दाई बनानी आती है क्या?''

पण्डित जी ने कहा, ''हां! स्वामी जी बना सकता हूं।''

स्वामी जी को सर्दाई बड़ी भाती थी। गर्मियों के दिन थे। भक्त को आज्ञा दे दी, ''अच्छा फिर राम बनाओ सर्दाई।''

पंडित जी ने बड़ी श्रद्धा से पूज्य स्वामी जी महाराज को सर्दाई घोट कर पिलाई।''

राम जैसा श्रद्धालु, विनम्र और प्रतिक्षण सेवा में तत्पर भक्त जब साथ हो तो किस बात की कमी रह सकती थी। राम महात्मा जी की रुचि को जानते ही थे। सर्दाई घोटकर पिलाते तो पूज्य स्वामी जी महाराज अपने आशीर्वादों की वृष्टि करते न थकते।

अब जब कभी स्वामी सर्वानन्द जी महाराज से स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज का

कोई संस्मरण सुनाने को कहा जावे तो आप अत्यन्त भावविभोर होकर उनके साथ इस मुजफरगढ़ की यात्रा की कहानियां सुनाया करते हैं। पूज्य स्वामी जी को आपकी बनाई सर्दाई बहुत अच्छी लगी, इसका स्मरण करके आप अब भी झूम उठते हैं। अपने एक पूज्य संन्यासी के प्रति आपकी ऐसी श्रद्धा हम सबके लिए एक उदाहरण है।

धर्म धुन में मगन लगन कैसी लगी

पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज ने पं० रामचन्द्र जी व पं० आशानन्द जी भजनीक को झंग मग्याना (पश्चिमी पंजाब) का कार्यक्रम दिया। दोनों महानुभाव वहां पहुंचे। आर्यसमाज झंग ने प्रचार करवाया। झंग में प्रचार करने के पश्चात् वहां के मंत्री जी ने कहा कि अब आप चेला ग्राम में प्रचार करने के लिए जावें। यह ग्राम वहां से नौ मील की दूरी पर था।

पं० रामचन्द्र जी ने अपना बिस्तर सिर पर उठाया और पं० आशानन्द जी भी बिस्तर उठाकर साथ हो लिये। पैदल ही जाना था। जाने का और कोई साधन ही न था।

ग्राम में आर्यसमाज के प्रधान श्री मक्खनलाल जी एक प्रतिष्ठित भूपति थे। आर्यसमाज के बड़े निष्ठावान् सेवक थे। घास-फूस के छप्पर के नीचे इनका स्वागत किया। प्रचार का बड़ा अच्छा प्रबंध किया।

एक सप्ताह तक प्रातः-सायं प्रचार होता रहा। दिनभर श्री मक्खन लाल जी और पं० रामचन्द्र जी की धर्मचर्चा व शंका-सामधान होता रहता था। उन दिनों दो आर्य कहीं भी इकट्ठे बैठ जावें तो शंका-समाधान अवश्य करते थे।

श्री मक्खनलाल जी ने इनके भोजन व सुख-सुविधा का पूरा पूरा ध्यान रखा। पं० रामचन्द्र जी ने इन पर ऐसी छाप छोड़ी कि जब ये दोनों महानुभाव चेला ग्राम से विदा हुये तो श्री पं० आशानन्द जी के अनुसार श्री मक्खनलाल जी की आंखों से टप-टप अश्रु गिरने लगे परन्तु इन्हें तो चलना था कहावत भी है:— जोगी चलते भले, नगरी बस्ती भली। यही मक्खनलाल जी हिसार आर्यसमाज के भी कई वर्ष प्रधान रहे।

राम सबसे न्यारे थे

प्रसिद्ध विद्वान् श्री स्वामी मुनीश्वरानन्द जी ने बताया कि जब मैं उपदेशक विद्यालय में पढ़ता था तब श्री पं० रामचन्द्र जी वहां आया ही करते थे। मुझे तब आपने लघु कौमुदी (विद्यालय में यह नहीं पढ़ाई जाती थी) पढ़ाई थी। एक कमरे में हम बैठ जाते थे और पण्डित जी बड़े स्नेह व योग्यता से पढ़ाते थे।

विद्यार्थी-काल से ही आप की सरलता व त्याग का सब पर बहुत प्रभाव था। आप अपनी नियमबद्धता के लिए बहुत प्रसिद्ध थे। आप अपने अवकांश के समय विश्राम नहीं करते थे। आर्यसमाज के प्रचार में ही लगाते थे।

पूज्य स्वामी स्वतत्रांनन्द जी महाराज से तिब (यूनानी चिकित्सा) के ग्रन्थ हमारे सामने ही पढ़ा करते थे। हम सभी तभी आपको बड़ी पूज्यदृष्टि से देखा करते थे।

राम की मौलिकता का एक उदाहरण

आचार्य हरिदेव जी सिद्धान्तभूषण देहली ने अपने संस्मरण सुनाते हुये कहा कि मैं पूज्य स्वामी जी का शिष्य रहा हूं। इनके गुणों व व्यक्तित्व के संबंध में मैं क्या कहूं। ये तो जवानी में ही ऐसे साधुस्वभाव व सौम्यमूर्ति थे। सैद्धान्तिक चिन्तन बहुत किया करते थे। इनमें दार्शनिक ऊहापोह की प्रवृत्ति है। विचारों में मौलिकता है। एकबार एक व्यक्ति ने इनसे शंका की थी कि कर्म का फल कर्म स्वयं देता है, कर्म फल व्यवस्था के लिए नियामक प्रभु की आवश्यकता नहीं है,

श्री पं० रामचन्द्र जी ने उसे समझाया कि कर्म दो प्रकार के होते है एक स्वगत और दूसरे परगत। स्वगत कर्म वे हैं जिनका प्रभाव कर्त्ता तक ही सीमित है जैसे किसी ने अपने हाथ पर चाकू मारा और घायल हो गया या आग में हाथ डाला और हाथ जल गया ऐसे कर्मों में कर्म का फल तत्काल मिल गया। यह हम मान लेते हैं।

परगत कर्म वे हैं जिनका दूसरों से संबंध है जैसे दूसरे को चाकू मारा वह घायल हो गया या उसे आग में फेंका वह जल गया। ऐसे कर्म का फल कर्त्ता को अपने आप तो मिलता नहीं। व्यवस्थापक नियामक के बिना परगत कर्मों का फल तो मिल नहीं सकता। राज्य का दण्ड-विधान दण्ड देता है तो ईश्वर का भी विधान व व्यवस्था है। इस उत्तर से वह सज्जन पूर्णतया सन्तुष्ट हो गये। कर्मों की उन दो श्रेणियों का यह नामकरणं भी बहुत बढ़िया है।

आर्यसमाज के इतिहास की एक स्वर्णिम घटना

प्रथम बार महाराष्ट्र के धारूर कस्बा में श्री आचार्य कृष्ण जी (स्वामी श्री दीक्षानन्द जी) से हमने यह घटना सुनी फिर और भी कई पुराने विद्वानों के श्रीमुख से इसे सुना। घटना इस प्रकार से है:—

मुलतान जिला पश्चिमी पंजाब के एक ग्राम में एक आर्योपदेशक प्रचारार्थ गये। ग्राम में दो-चार घर ही आर्यों के थे। अधिकांश जनसंख्या मुसलमानों की थी। ग्राम के आर्यबंधुओं ने प्रचार करवाने में असमर्थता प्रकट की। वहां प्रचार करवाना बड़ा असम्भव था। कारण यह था कि उस ग्राम में एक बड़ा दुष्ट मुसलमान रहता था। उसका बड़ा आंतक था। जब कभी आर्यसमाज के प्रचार की व्यवस्था की गई, वह ईंट-पत्थरों की वृष्टि करवा देता।

उस आर्योपदेशक ने कहा, "अच्छा! जब कभी वह रुग्ण हो, आप आर्य प्रतिनिधि सभा को तार देकर मुझे बुलवायें। ईश्वर कृपा से फिर प्रचार कार्य में कभी विघ्न नहीं पड़ेगा।

वहां के आर्यों ने हां कर दी परन्तु सोचा भी कि इससे क्या होगा। कुछ ही समय बीता कि वह दुष्ट रुग्ण हो गया। रोग भी बड़ा भयंकर लगा। आर्यों ने तार देकर अपने पूज्य विद्वान् को बुलवा लिया। पण्डित जी ने कहा, "मुझे उस रोगी का घर दिखा दो।"

आर्यों ने उस दुष्ट पापी का घर दिखा दिया। उस रोगी को उसके घरवाले भी छोड़ गये। अचेत पड़ा था। मलमूत्र से उसका

बिस्तरा भी गन्दा हुआ पड़ा था। आर्य विद्वान् ने उसको साफ़ किया। थोड़ी-थोड़ी देर बाद औषधि देनी आरम्भ की। उसका सिर दबाते रहे। धीरे-धीरे वह सचेत होने लगा। कुछ समय के पश्चात् सुधि लौटी तो अपने पास बैठे अपरिचित सेवक को देखकर पूछा, "तुम कौन?"

वह बोला, "मैं एक आर्यसमाजी।"
"यहां कैसे?" रोगी चिल्लाया।

"यहां के आर्यसमाजियों ने तुम्हारे रुग्ण होने का समाचार देकर मुझे तुम्हारी सेवा के लिए बुलवाया है।" आर्यसमाज के उपदेशक के ये शब्द सुनकर उस दुष्ट का हृदय परिवर्तित हो गया। दानव से मानव बनने की घड़ी आ गई। प्रायश्चित के अश्रु बहाए। आर्यसमाज का प्रचार करवाया। वर्षों का विघ्न दूर हुआ। वेद-प्रचार में वह सहायक बना और यही कहता रहा कि मुझे क्या पता था कि वैदिकधर्म के दीवाने ऐसे 'फरिश्ता सीरता' (देव पुरुष) होते हैं।

यह उपदेशक थे श्री पं० रामचन्द्र जी सिद्धान्त शिरोमणि। पूज्य पं० रामचन्द्र जी के सुशिष्य श्री पं० हरिदेव जी सिद्धान्त भूषण ने बताया कि यह घटना लालियां की है। लालियां मुलतान जिला में नहीं था। इतिहास शास्त्र के संबंध में एक उक्ति विश्व प्रसिद्ध है:—

"History repeats itself. अर्थात् इतिहास अपने आपको दोहराया करता है। दक्षिण भारत में भी एकबार महामारी फैली तो आर्यसमाज के हुतात्मा श्री भाई श्यामलाल जी वकील ने एक रक्त-पिपासु मुसलमान की इसी प्रकार से सेवा करके उसे अपना अनन्य भक्त बना लिया था। पहले वही व्यक्ति उनको जान से मार देने के षड्यन्त्र रचता रहता था।

उपरोक्त घटना के विषय में इतना निवेदन करना आवश्यक कि हमने आज पर्यन्त पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी के श्रीमुख से इस घटना की प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष चर्चा कभी नहीं सुनी। हां! इस घटना के संबंध में एक बार पूछा तो आपने इतना अवश्य कहा, "हां! ऐसी घटना घटित हुई थी।"

संसार में देखा जाता है कि जीव अपनी अल्पज्ञता के कारण धन, यौवन, विद्या, पद, प्रतिष्ठा का अभिमान कर बैठता है। कुछ मनुष्यों की पुण्य कर्मों में प्रवृत्ति होती है परन्तु उनमें भी यह न्यूनता आ जाती है कि वे अपने किएं हुए पुण्य कर्मों पर बड़ा अभिमान करते हैं। इससे भी गिरने की संभावना हो जाती है। पूज्य श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज ऐसे महापुरुषों में से हैं जिन्होंने विद्या आदि गुणों पर तो क्या अभिमान करना है कभी भी अनजाने से अपने द्वारा किए गये व किए जा रहे पुण्य कर्मों पर तनिक भी अभिमान नहीं किया। अब की तो बात ही छोड़िये, राम के रूप में भी किसी ने उन्हें किसी बात पर इतराते नहीं देखा। तभी तो देश-विभाजन से कुछ वर्ष पूर्व शास्त्रार्थ महारथी श्री पं० शान्ति प्रकाश जी ने रिफार्मर उर्दू साप्ताहिक में श्रीमद्दयानन्द उपेदशक विद्यालय लाहौर के संबंध में एक लेख में यह लिखा था कि इस विद्यालय ने आर्यसमाज को महात्मा रामचन्द्र सिद्धांत शिरोमणि जैसे तपःपूत दिये हैं।

यह लेख हमने रिफार्मर की फाईलों में जेल में पढ़ा था। भरी जवानी में राम इतने महान् थे कि उनका ही एक साथी, एक पूज्य विद्वान् उनके गुणों व चरित्र पर मोहित होकर उनके बारे में ऐसे शब्द लिखता है—यह कोई साधारण बात नहीं है।

जब पं० रामचन्द्र जी ने सभा कार्यालय में धमकी दी

एकबार श्री पं० निरञ्जनदेव जी आदि कुछ उपदेशक सभा कार्यालय के लिपिकों व कर्मचारियों के व्यवहार पर रोष प्रकट कर रहे थे। स्वामी जी ने उनकी बातों को ध्यान से सुनकर कहा, "इस स्थिति के लिए उपदेशक भी कुछ उत्तरदायी हैं। उपदेशक वर्ग अपनी प्रतिष्ठा व अस्तित्व का स्वयं ही कुछ ध्यान नहीं रखता। यदि उपदेशक वर्ग स्वाभिमान का परिचय दे और अपने महत्व को दर्शाये तो कार्यालय के क्लर्क आपत्तिजनक व्यवहार क्यों करें?

अपनी बात को स्पष्ट करते हुए स्वामी जी ने अपना एक उदाहरण दिया। आपने कहा जब मैं लाहौर में सभा में सेवा करता था तो सभा के क्लर्क श्री मुन्शीराम ने ऐसा व्यवहार किया जो अच्छा नहीं था। मुझे भी उनके व्यवहार पर आपत्ति थी। तब मैंने कहा, "इस कुर्सी में ही कोई ऐसा दोष है कि जो भी इस पर बैठता है, उसी का व्यवहार अशोभनीय हो जाता है। मैं तो इस कुर्सी को ही अब आग लगाऊँगा।"

पं० रामचन्द्र जी के ये शब्द सुनकर सारे कार्यालय में सन्नाटा सा छा गया। राम व्यर्थ की कभी बात ही नहीं करते। अब कार्यालय वालों को होश आया कि राम ने जो धमकी दी है तो यह अपने कहे के अनुसार कोई पग भी उठा सकता है। एक मुन्शीराम जी ही नहीं सारे कार्यालय स्टाफ को अपने व्यवहार को बदलना पड़ा। पं० रामचन्द्र जी ने कुर्सी तो क्या जलानी थी, कार्यालय स्टाफ को झंझोड़ना ही तो था सो वे सब झकझोरे गये। ऐसा तभी सम्भव हो पाया जो एक विद्वान् ने नैतिक साहस का परिचय दिया। स्वामी जी ने पं० निरञ्जनदेव जी को यही कहा कि उपदेशक वर्ग अपने आप को समझे। यह घटना आचार्य जगदीश जी ने सुनाई।

पं० रामचन्द्र की वाणी व जीवन का प्रभाव

इसी ग्रंथ में पाठक आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध विद्वान, कवि व पत्रकार प्रा० उत्तमचन्द जी 'शरर' के लेख **'और पीला पत्ता हरा हो गया'** पढ़ चुके हैं। 'शरर' जी ने अपनी युवावस्था का एक संस्मरण दिया है। श्री पं० रामचन्द्र जी सिद्धान्त शिरोमणि एकबार 'शरर' जी के जन्मस्थान सीतपुर डेरा मुज़फ्फरगढ़ पश्चिमी पंजाब में प्रचारार्थ गये। वहां आपने 'सत्य' विषय पर एक व्याख्यान दिया।

प्रा० शरर जी लिखते हैं, "तब मेरे मस्तिष्क को इस भाषण ने जीत लिया।" जब प्रा० शरर जी जैसा स्वाध्यायशील व तार्किक विद्वान् यह कहता है कि इस व्याख्यान ने मेरे मस्तिष्क को जीत लिया। तो हमारे पाठक यह अनुमान लगा सकते हैं। कि यह व्याख्यान कितना प्रभावशाली व विद्वतापूर्ण होगा।

'शरर' जी तब भी कोई कच्चे व बच्चे न थे। बड़े स्वाध्यायशील थे और विधर्मियों से शास्त्रार्थ भी किया करते थे। श्री 'शरर' जी के इस संस्मरण से स्पष्ट है कि पं० रामचन्द्र जी की वाणी व पाण्डित्य की तब अच्छी ख्याति थी।

तब भी श्रोता आपके शब्दों से इतने प्रभावित नहीं होते थे जितने कि आपके जीवन से, ऐसा श्री पं० आशानन्द जी, श्री पं० शान्तिप्रकाश जी व पुराने आर्यपुरुष सुनाया करते हैं। आजकल की भाषा में जिसे Public speaker (सार्वजनिक वक्ता) कहा जाता है, वह तो आप न हैं और न कभी थे। तब भी आप के जीवन का लोगों पर प्रभाव पड़ता था और आज भी आप अपने सत्कर्मों से अपना अभिप्राय प्रकट करते हैं।

वैसे यह भी ध्यान रहे कि 'सत्य' आपका प्रिय विषय है। इस विषय पर बोलते हुए आप अपना हृदय ही उंडेल दिया करते हैं। इस विषय पर हमने आपको एक से अधिक बार प्रवचन देते हुए सुना है। एकबार आर्यसमाज नयाबांस, देहली में प्रातःकाल सत्य पर बोलते हुए ऐसी मार्मिक घटनाएं सुनाईं कि श्रोता झूम उठे। आपका एक-एक शब्द हृदय की गहराइयों से निकल रहा था। आपने सबके हृदयों को छूते हुए कहा, यदि आज से ही सभी सामाजिक कार्यकर्त्ता सत्य का पालन व असत्य का परित्याग कर दें तो कल से देख लेना कि केवल एक सद्गुण सत्य के धारण करने के कारण सब ओर आपकी धूम मच जावेंगी।

वैर ईर्ष्या से जो कोसों दूर है।
प्यार से जिसका हृदय भरपूर है।।
रस कहीं से छेदिए, बरसायेगा।
दिल है क्या मानो मधुर अगूंर है।।
हरना है तो दुखियों के दुख हरना सीखो।
भरना है तो भव्य भाव उर भरना सीखो।।
करना है तो बन्धु! भलाई करना सीखो।
तरना है तो भव सागर से तरना सीखो।।

कविरत्न 'प्रकाशचन्द्र'

चतुर्थ परिच्छेद

कैसी थी वह शुभ घड़ी

श्रीमद्दयानन्द मठ की स्थापना व उन्नति

यह ठीक-ठीक बता पाना तो अब कठिन है कि पूज्य स्वामी जी श्री स्वतंत्रानन्द जी महाराज के मन में श्रीमद्दयानन्द मठ की स्थापना का विचार कब उत्पन्न हुआ परन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि श्री महाराज के मन में यह शुभ विचार सन् १९३२ के आसपास बहुत उमड़-घुमड़ कर आया कि आर्यसमाज का एक ऐसा साधु-आश्रम होना चाहिए, जहां साधुओं, वानप्रस्थियों का निर्माण भी हो और उनकी वृद्ध एवं रुग्ण अवस्था में उनके विश्राम व सेवा-सुश्रूषा की अच्छी व्यवस्था हो।

स्वामी जी का यह दृढ़ मत था कि विरक्त साधु, महात्मा ही धर्म-प्रचार का कार्य सुन्दर रीति से कर सकते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि वे गृहस्थी उपदेशकों को धर्म-प्रचार के अधिकारी न मानते थे। स्वामी जी महाराज ने स्वयं आर्यसमाज को भारत-विख्यात कई गृहस्थी उपदेशक विद्वान् दिये। धर्मवीर लेखराम जी का उन्होंने जीवन-चरित्र तो लिखा ही, आप पं० लेखराम जी के जीवन की घटनायें जिस अनूठी शैली में सुनाया करते थे, उसके प्रभाव को हम शब्दों में बता पाने में असमर्थ हैं। दयानन्द मठ की स्थापना के आधारभूत विचार व मठ के उद्देश्य को समझने के लिए हम यहां पूज्य स्वामी जी महाराज के एक लेख से कुछ पंक्तियां यहां देना आवश्यक समझते हैं। अपने एक ऐतिहासिक लेख में आप लिखते हैं:—

"मेरी अपनी सम्मति इस विषय में स्पष्ट है। मैं इसे कई बार व्यक्त कर चुका हूं कि उपदेशक का कार्य वानप्रस्थी व संन्यासी ही कर सकते हैं तथा यह उनका ही कार्य है। गृहस्थी यदि इस कार्य को करता है तो वह इन दोनों में से एक को अवश्य बिगाड़ेगा अर्थात् यदि वह उपदेशक के कार्य को पूरे दायित्व से करेगा तो आवश्यक है कि उसका गृहस्थ ठीक न रहे और यदि गृहस्थ का पूरा ध्यान रखे तो वह उपदेशक के कार्य को करते हुये अवश्य कुछ असावधानी बर्तेगा। ये दोनों कार्य एक ही समय में होने कठिन ही नहीं, असम्भव हैं। मेरे ऐसे ही विचार व्यक्त करने पर एक प्रसिद्ध देशभक्त ने, जो आर्यसमाज के पुराने सेवक हैं[4], बाद में मुझे कहा था कि स्वामी जी! "गृहस्थी Public man (सार्वजनिक कार्यकर्त्ता) दोनों कार्यों को बिगाड़ता है। गृहस्थी सामाजिक कार्यकर्त्ता न तो अपने परिवार को भली प्रकार से सम्भाल सकता है और न ही सार्वजनक कार्य अच्छी प्रकार कर सकता है। आपने जो यह कहा है कि वह एक कार्य को ख़राब करता है, आपने अत्यन्त घटा कर कहा है। भविष्य में यही कहा करें कि वह दोनों कार्यों को खराब करता है। पाठक विचार लें कि यह सत्य है वा नही।"[5]

मठ की स्थापना करते हुये संन्यासी का, जो आदर्श मठ के संस्थापक के मस्तिष्क में था, वह भी उन्हीं के शब्द में यहां देते हैं। मठ के इतिहास को लेते हुये इसे दृष्टि में रखना परम आवश्यक है। आपने इसी लेख में लिखा था:—

"मैं ऐसे कई महात्माओं को जानता हूं, जो अच्छे पढ़े-लिखे हैं तथा जिन्हें कोई व्यसन भी नहीं है। जिनका निर्वाह केवल भिक्षा पर ही है। यदि उनको कोई भोजन का निमंत्रण भी दे तो वे इन्कार कर देते हैं। यही नहीं कितने ऐसे ग्राम हैं, जहां लोग उनको भली प्रकार से जानते हैं, वहां उनको भिक्षा के लिए कोई कठिनाई नहीं होती। वे वहां अधिक समय नहीं ठहरते हैं। उनका विचार है कि प्रत्येक वर्ष में न्यून से न्यून तीन-चार मास ऐसे स्थान पर भिक्षा मांगनी चाहिए, जहां उनका कोई हितैषी (प्रिय) न हो और गृहस्थी खुले हृदय से उनका अपमान भी कर सकें।"[6]

इस लेख की समाप्ति पर श्री स्वामी जी महाराज ने एक बड़ा मार्मिक वाक्य लिखा है:—

"जब तक हम स्वयं नीचे न हों, सेवा करना असम्भव है।"[7] मठ की स्थापना के लिए श्री स्वामी जी महाराज को कई स्थानों पर आर्यों ने निमंत्रण दिया परन्तु दीनानगर में अमृतसर से पठानकोट जाने वाले राजमार्ग पर स्वर्गीय शास्त्रार्थ महारथी श्री स्वामी योगेन्द्रपाल जी की कुटिया 'देव भवन' में सन् १९३७ में आपने दयानन्द मठ की स्थापना कर दी।

जब मठ की स्थापना की जा रही थी तो कई आर्यबंधुओं ने मठ की स्थापना का विरोध किया। पत्रों में लेख भी छपते रहे। आपत्ति करने वालों का आक्षेप यह था कि ऋषि दयानन्द ने मठ का विरोध किया है। इसलिए उनके नाम पर मठ की स्थापना करना उचित नहीं। श्री स्वामी जी का कहना था कि ऋषि ने मठ पतियों की दूषित वृत्तियों, प्रमाद व पाखण्डों का विरोध किया, न कि संस्थाओं का। रक्त साक्षी पं० लेखराम लिखित जीवन-चरित्र में स्पष्ट आता है व ऋषि ने भी कहा था कि जब कुम्भ के मेला पर लाखों लोगों के समक्ष ऋषि ने सिंहनाद किया तो अपने मठ पर **'पाखण्ड मर्दन'** पताका फहराई।

जब मठ की स्थापना के विरोध में लेख छपे तो स्वामी श्री स्वतंत्रानन्द कतई उत्तेजित न हुये। वे शान्त रहे। धीरे-धीरे मठ के नाम का विरोध अपने आप शान्त हो गया। जैसा कि पीछे संकेत दिया जा चुका है मठ की स्थापना का विचार स्वामी जी के मन में लाहौर में उपजा था। तब आप अपने जिन निकटस्थ भक्तों व सहयोगियों के साथ इस संबंध में चर्चा किया करते थे, उनमें से एक आपके प्रियतम शिष्य श्री पं० रामचन्द्र जी भी एक थे।

ऊबड़-खाबड़ थोड़ी सी भूमि में आकर यतिव्रति महान् ने आकर डेरा लगा दिया। आजन्म ब्रह्मचारी हमारे लौह पुरुष स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज स्वयं कस्सी लेकर भूमि के ऊंचे-ऊंचे टीलों को समतल करने के लिए नित्यप्रति श्रम किया करते थे। शीघ्र ही श्री स्वामी जी ने राम को सूचित किया कि अब संस्था ने जन्म ले लिया है। आप भी आजावें। गुरु आज्ञा को शिरोधार्य करके सन् १९४१ में रामचन्द्र जी भी मठ में आ गये। तब मठ के पास न तो इतनी भूमि, उद्यान व खेत थे और न ही आसपास आज जैसी चहल पहल

थी। अब तो नगर मठ से आगे तक फैल चुका है। तब तो मठ के आसपास किसी ने किसी ग्राम का रास्ता पूछना हो तो बताने वाला कोई न मिलता था। रामचन्द्र जी भी इस तपोवन में आकर डट गये। जंगल में मंगल हो गया। थोड़े ही समय में मठ की कीर्ति धरती तल के सब आर्यों तक पहुंच गई। पं० रामचन्द्र जी के आने पर ही मठ की विधिवत् समिति बनाई गई। आप ही को मठ का प्रथम मंत्री नियुक्त किया गया।

हम मठ की चर्चा करते हुये कुछ दुविधा में पड़े रहे कि मठ का पूर्वकाल का इतिहास दें अथवा न दें। दें तो कहां तक व कितना दें? क्या केवल 'स्वामी सर्वानन्द काल' ही दें? बहुत विचार करने पर यह निश्चय किया कि 'स्वामी स्वतंत्रानन्द काल' की भी कुछ चर्चा करनी आवश्यक है। एक तो वर्तमान को समझने के लिए अतीत का अवलोकन करना ही पड़ता है दूसरा इसलिए भी कि पं० रामचन्द्र जी मठ की स्थापना के समय से ही तो गुरुदेव का संकेत पाकर मठ में आ गये थे। इसलिए आर्यसमाज की इस बिश्व-ख्याति की संस्था की नींव में जहां तपोनिधि स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज जैसी विभूति का तपत्याग है वहां स्वामी जी के परम प्यारे शिष्य 'रामचन्द्र सिद्धांत शिरोमणि' की भरी जवानी भी तो है।

राम के बिना क्या कोई स्वामी जी (स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज) के व्यक्तित्व व सेवाओं की पूरी चर्चा कर सकता है? कदापि नहीं। ऐसे ही मठ के स्वामी स्वतंत्रानन्द काल की कहानी राम के बिना सर्वथा अधूरी है। राम के साथ-साथ स्वामी जी को दो और अथक निष्ठावान् सेवक मिल गये। एक वैद्य साईंदास जी और दूसरे श्रीकुन्दनलाल जी मुसाफिर। इस प्रकार त्रिमूर्ति ने मठ के आरम्भिक काल में इस संस्थान की उन्नति के लिए जो कार्य किया उसका दूसरा एक भी उदाहरण हमें आर्यसमाज के इतिहास मे नहीं मिलता।

इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति से काम नहीं लिया जा रहा। महाविद्यालय ज्वालापुर, गुरुकुल सिकन्दराबाद, गुरुकुल कांगड़ी, गुरुकुल वृन्दावन व पोठोहार इन सब संस्थाओं के लिए बड़ी-बड़ी पूजनीय विभूतियों ने जीवन खपा दिये। उन पर हमें पूरा-पूरा अभिमान है। मठ की विशेषता तो यह है कि इस संस्था का आर्यजगत् में कहीं भी किसी से कोई टकराव न हुआ। इसके जन्मदाता ने कभी इसके लिए भिक्षा की झोली न पसारी और मठ के भीतर सब प्रकार से शान्ति रही। कारण मठ का विधान ही ऐसा है। पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी से कई व्यक्ति आकर मठ का विधान मांगते थे तो वे कहा करते थे कि मठ का विधान हम हैं। अध्यक्ष के मार्गदर्शन में सब मठवासी अपना-अपना कार्य करते जाते हैं। दोनों समय यज्ञ-हवन-सन्ध्या तो होते ही हैं। स्वाध्याय व धर्मग्रन्थों के पठन-पाठन की भी जिज्ञासुओं के लिए पूरी-पूरी व्यवस्था है। यहां यह उल्लेखनीय है कि पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज को मठ में इतना टिकना नहीं मिलता था। इधर मठ की स्थापना हुई और उधर आर्यसमाज ने विश्व के सबसे बड़े धनियों में से एक हैदराबाद के निज़ाम उस्मान अली से टक्कर लेने का निश्चय कर लिया। स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज को सर सेनापति

नियत किया गया। जीवन की अन्तिम वेला तक वे तो देश-विदेश में वैदिकधर्म-प्रचार, सभा-संस्थाओं के सञ्चालन, नेतृत्व करने व संघर्षों में लगे रहे। मठ की सारी व्यवस्था उनके जीवन काल में ही पं० रामचन्द्र जी किया करते थे।

मठ की एक प्रबंध समिति परामर्श देने के लिए है। इसमें पूज्यपाद महात्मा नारायण स्वामी जी, महाशय कृष्ण जी व स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ जैसे महापुरुष रहे हैं। पं० रामचन्द्र जी मठ के मंत्री के रूप में सेवा करते रहे। मठ विदेशी सरकार की आंख में खटकता था। क्रान्तिकारी यहां आकर शरण लेते रहे। स्वामी श्री स्वतंत्रानन्द जी भारत छोड़ों आन्दोलन में द्वितीय विश्व युद्ध के दिनों में सरकार का कोप-भाजन बने। पं० रामचन्द्र जी तब भी निर्भीकता से गुरु की अनुपस्थिति में भी मठ को सुचारु रूप से चलाते रहे।

मठ की गतिविधियों का विस्तार होता गया। पहले तो साधुओं व वानप्रस्थियों के प्रशिक्षण व पठन-पाठन की व्यवस्था की गई फिर आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब ने मठ में दयानन्द संस्कृत विद्यालय स्थापित कर दिया। २४ अगस्त १९५३ को श्री पं० भीमसेन जी विद्यालकांर ने इसका उद्‌घाटन किया। यह विद्यालय आज़ पर्यन्त संस्कृत व वैदिक धर्म की रक्षा व प्रसार के लिए कार्य कर रहा है। पं० रामचन्द्र जी इस विद्यालय में अध्यापन कार्य करते रहे। सभा पर इस विद्यालय का नाममात्र का भार रहा है। मठ अपने साधनों से ही इसे चला रहा है। पं० रामचन्द्र जी अध्यापक के रूप में किस कोटि के गुरु थे इसके संबंध में बहुत कुछ लिखा व कहा जा सकता है। इस संबंध में हम यहां केवल एक पुरानी घटना देना ही पर्याप्त समझते हैं।

राम का न्याय—एक महत्त्वपूर्ण घटना

पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी के जीवन काल में मठ में एक छोटी सी घटना घटी। घटना साधारण होने पर भी विशेष है। अंग्रेजी में किसी विद्वान का एक कथन है "Great things are little for the little men. Little things are great for the great men." अर्थात् छोटे व्यक्तियों के लिए बड़ी-बड़ी घटनायें भी छोटी होती हैं परन्तु बड़े व्यक्तियों के लिए छोटी-छोटी घटनाएं भी बड़ी होती हैं।

स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज जब मठ में होते थे तो ब्रह्मचारियों के मध्य कोई-सा भी विवाद हो तो पं० रामचन्द्र जी उन्हें स्वामी जी के पास भेज दिया करते थे। स्वामी जी की अनुपस्थिति में तो सब प्रबंध उन्हें ही करना होता था। एक बार दो ब्रह्मचरियों में कुछ झगड़ा हो गया। उस दिन स्वामी जी मठ में नहीं थे, इसलिए यह झगड़ा श्री पं० रामचन्द्र जी को ही निपटाना था। दोनों ब्रह्मचारियों को पण्डित जी ने अलग-अलग बुलवा कर सब बात पूछी।

एक से पूछा, ''आपका किस बात पर झगड़ा हुआ?''

उसने कहा, ''दूसरे ने मुझे तू कहा।''

पण्डित जी ने कहा, ''तू कहना कोई इतना बुरा तो नहीं कि इसी पर तुम झगड़ पड़ो। हम भी तो तुम्हें कह देते हैं। भगवान् को भी तू कहकर पुकार लेते है।''

दूसरे से पूछा कि आपने इसे तू क्यों कहा? उसने कहा महाराज वैसे ही मेरे मुख से निकल गया।

पण्डित रामचन्द्र जी ने कहा, ''क्यों निकला?''

ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया, ''महाराज यहीं मठ में सुनते रहते हैं, अतः अभ्यास हो गया।''

पं० रामचन्द्र जी ने कहा,"अच्छा! तू कहना आप लोगों ने हमसे सीखा है। बच्चे जो भी भूल व कुचेष्टाएं करते हैं तो यह बच्चों का दोष नहीं, माता पिता व आचार्य का दोष है। आज से मैं कभी भी आप लोगों को तू कहकर नहीं पुकारूंगा।"तब से लेकर आज तक आपने कभी भी ब्रह्मचारियों को 'तू' कहकर नहीं बुलाया। मठ से जो स्नातक बनकर निकलते हैं, उन्हें स्वामी जी सदा ''शास्त्री जी'' कहकर संबोधित किया करते हैं। यह है श्री राम का अद्भुत न्याय।

उपदेशक विद्यालय दीनानगर

आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब ने स्वामी सर्वानन्द काल में मठ में फिर से अपना उपदेशक विद्यालय खोला। स्वामी जी इसमें कुछ अध्यापन कार्य करते रहे। सभा पर इस विद्यालय का कुछ भी आर्थिक भार नहीं था। महाराष्ट्र प्रदेश के नवस्थापित गुरुकुल रामलिंग के आचार्य सुभाष, मठ के इन्हीं दो विद्यालयों की देन हैं। किसी भी विद्यालय, स्कूल व गुरुकुल से निकले सभी विद्यार्थी तो समाज-सेवक, देश-भक्त व परोपकारी तो हो नहीं सकते। मठ के ये विद्यालय भी इस नियम का अपवाद नहीं है, फिर भी मठ से निकले हुये अनेक शास्त्री, आचार्य उत्तीर्ण स्नातक देश के विभिन्न भागों में समाज की अच्छी सेवा कर रहे हैं।

मठ का अपना विशाल पुस्तकालय है। स्वामी सर्वानन्द काल में तो पुस्तकालय का इतना विस्तार हुआ है कि इसके लिए मठ की नई पाकशाला के ऊपर एक भव्य-भवन का निर्माण करवाना पड़ा। चौधरी रामसिंह जी व आचार्य देवप्रकाश जी का भी बहुत सा पुस्तकालय मठ में आ गया है। कोई अनुभवी व उत्साही शोधकर्त्ता मठ में बैठ जावे तो इस पुस्तकालय का दूर-दूर तक के अनुसंधान कर्त्ताओं को लाभ पहुंचे।

अन्य आर्यसंस्थाओं व आश्रमों की भांति ही मठ के उठने-बैठने के नियम आर्ष-परम्परा के अनुसार हैं। कोई नये नियम तो हैं नहीं। सब आश्रमवासी प्रभात वेला में उठते हैं। कोई रोगी वा बाहर से आया हुआ कोई आलसी अपवाद बन जाता है। संध्या, स्वाध्याय व सत्संग के लिए उत्तम वातावरण है। यही कारण है कि कई साधु ब्रह्मचारी जो इस आश्रम का नाम पढ़-सुनकर यहां राह चलते हुये इसके अन्दर एकबार आ गये, वे इसके संस्थापक व मठ के वर्तमान आचार्य पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज के जीवनों की छाप से वैदिक धर्म के रंग में रंगे गये।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि आर्यसमाज के प्रथम ८० (अस्सी) वर्षों के इतिहास में स्वामी स्वतंत्रानन्द जी ने आर्यसमाज को जितने संन्यासी, वानप्रस्थी, विद्वान् व ब्रह्मचारी दिये, इतने और कोई महात्मा न दे पाए। आश्चर्य तो इस बात का है

कि इस गये-बीते युग में स्वामी सर्वानन्द जी महाराज ने तो अपने गुरुदेव का रिकार्ड भी तोड़ दिया है और नया कीर्तिमान स्थापित कर दिया हैं। इस गौरवपूर्ण उपलब्धि का कारण जो कोई जानना चाहे तो हम यही कहेंगे कि श्री स्वामी जी गुरुदेव की मर्यादाओं का कड़ाई से पालन कर रहे हैं। उनका उठना, बैठना, रीति-नीति और व्यवहार एक आदर्श संन्यासी का जैसे होना चाहिए वैसे ही है। श्री महाराज के आत्मा की निर्मलता सबको प्रभावित करती है।

पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी के समय में मठ में प्रातराश नहीं मिलता था। साधन ही नहीं थे। स्वामी सर्वानन्द काल में सभी को प्रातराश मिलता है। दोपहर १२ बजे भिक्षा का भोजन किया जाता है। परिचित-अपरिचित कोई भी भोजन के समय पहुंच जावे, सबको भोजन मिलता है। रात्रि का भोजन मठ की पाकशाला में बनता है। रात्रि के भोजन का समय भी निश्चित है। यात्रियों को ठहरने पर विस्तर चारपाई सब मिल जाते हैं।

जब स्वामी स्वतंत्रानन्द जी पर विदेशी सरकार ने प्रतिबंध लगा रखे थे, उन दिनों मठ में एक साधु-सम्मेलन भी हुआ था। तब स्वामी वेदानन्द जी ने यह निर्देश दिया था कि सब साधु व सत्संगी सर्दी का बिस्तरा साथ लावें। अब तो ऐसी कोई कमी नहीं है। तब भी किसी से मठ के लिए कुछ न मांगा जाता था और आज भी मठ के लिए कभी अपील नहीं की गई।

आज भी मठ के सामने स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज का यह कथन आदर्श है:—

"हम किसी का दिया नहीं खाते। हम किसी का काम नहीं करते। हम परमेश्वर का काम करते हैं और उसी का दिया खाते हैं।"

अपने जीवन में संस्थापक ने लाखों को ठुकराया और उसी परम्परा को आगे स्वामी सर्वानन्द जी चला रहे हैं। जीवनी में पाठक ऐसी अनेक घटनायें पढेंगे कि स्वामी जी ने मठ में आया हुआ धन भी लौटा दिया।

स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के महाप्रयाण के पश्चात् नई पाकशाला का निर्माण किया गया। ब्रह्मचारियों व साधुओं के लिए कई नये कमरे बनवाए गये। फार्मेसी के ऊपर भी यात्रियों के लिए भवन का निर्माण करवाया गया। वृद्ध व रोगी साधुओं के लिए फलश का शौचालय बनवाया गया। मठ का सर्वांगीण विकास हुआ है आगे भी हो रहा है। मठ के निर्माण व उन्नति की चर्चा के प्रसंग में जब हम मठ के नियमों व परम्पराओं का उल्लेख करते हैं तो मठ की एक विशेषता का वर्णन करना भी आवश्यक हो जाता है। मठ में आरम्भिक काल से ही जहां धार्मिक जगत् के बड़े-बड़े नेता मठ में आते रहे हैं वहां संयुक्त पंजाब की सरकार के लौह पुरुष चौधरी छोटूराम सरीखे राजनेता भी स्वामी स्वतंत्रानन्द जी के दर्शन करने आया करते थे। देश के विभाजन के पश्चात् भी प्रान्त के मुख्यमंत्री, मंत्री लोग आते रहे हैं और अव भी सब प्रकार के राजनेता पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी के दर्शन करने व आशीर्वाद लेने लिए आते रहते हैं।

राजनेताओं को भी मठ में आकर लकड़ी के उन्हीं बैंचों पर बैठना पड़ता है जिनपर अन्य

दर्शक नित्य आकर बैठते हैं। यहां राजा-रंक सबके साथ एक समान व्यवहार होता है। चौधरी छोटूराम जैसे रोबीले राजनेता जब गुरुवर स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज की कुटिया में चटाई पर बैठकर उनसे विचार-विमर्श करते थे तो प्राचीनकाल के ऋषियों के आश्रमों में राजाओं के आगमन का दृश्य उपस्थित हो जाया करता था। स्वामी सर्वानन्द जी महाराज बताया करते हैं कि सरदार प्रतापसिंह कैरों हों वा ला० भीमसेन सच्चर, सभी राजनेता इन्हीं लकड़ी के बैंचों पर आकर श्रद्धापूर्वक बैठा करते थे।

मठ में आने-जाने वाले प्रायः यह दृश्य देखते रहते हैं कि पूज्य स्वामी सर्वानन्द की सर्दियों में कुटिया के बाहर धूप में व गर्मियों में कुटिया के समीप वृक्ष के नीचे चटाई पर बैठकर स्वाध्याय करते व पत्रों का उत्तर देते हैं। मिलने वाले भी आकर वहीं भूमि पर बैठ जाते हैं। एकबार एक बहुत बड़े साम्यवादी विचारक (वह मठ में प्रायः आते ही रहते हैं) ने पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी से कहा कि पुस्तकों व भाषणों में साम्यवादी जो समानता की बातें करते हैं, वे समता मूर्तरूप में मंठ में ही देखने को मिलती है। यहां सब बिना भेद-भाव के पंक्ति में बैठकर एक-सा भोजन (नित्य) करते हैं। राजा हो वा रंक सब उसी लकड़ी के बैंच पर आकर बैठते हैं। स्वामी जी सभी को एक-सा प्यार, सत्कार देते हैं। भारत में ऐसे भी कई डेरे व आश्रम हैं, जो सीधा ईश्वर तक पहुंचाने का दावा करते हैं परन्तु इन डेरों में पशिचमी देशों व अमरीका के लोगों के आवास का विशेष प्रबंध है परन्तु स्वामी स्वतंत्रानन्द जी के तपोवन में ऐसा कोई भेद नहीं।

एक विदेशी राबर्ट मैथ्यू ने अपनी मठ की यात्रा में स्वयं ऐसा वर्णन किया है। श्री राबर्ट ने पंक्ति में बैठकर भिक्षा का भोजन करके अपने आपको धन्य-धन्य समझा।

एक पादरी जी कभी-कभी ज़िला गुरदासपुर में आते रहते हैं। वह जब भी दीनानगर आते हैं स्वामी सर्वानन्द जी के चरणों में आकर मठ में ही रात्रि विश्राम करते हैं। केरल के कई पादरी कारों में मठ में आते रहे। वे किस उद्देश्य से आते रहे, यह तो पता नहीं परन्तु स्वामी सर्वानन्द जी महाराज के तपोनिष्ठ व्यक्तित्व व प्यार की छाप लेकर ही मठ से जाते थे।

इससे पूर्व के हम दयानन्द मठ के औषधालय, फार्मेसी की उन्नति का यहां उल्लेख करें, मठ की शाखाओं का कुछ वर्णन यहीं करते हैं। स्वामी स्वतंत्रानन्द जी के जीवनकाल में रोहतक में दयानन्द मठ स्थापित हो गया था। वहीं आर्यप्रतिनिधि सभा हरियाणा ने 'सिद्धान्ती भवन' में अपना स्थायी कार्यालय बना दिया है। पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी ने उक्त सभा के शताब्दी समारोह के अवसर पर पुस्तकालय-भवन की आधार-शिला रखी। तत्काल श्रद्धालुओं ने इसके लिए सहस्रों रुपये का दान दिया। इस मठ में यदि कोई सुयोग्य कर्मठ साधु अपना केन्द्र बना ले तो बड़ा कार्य हो सकता है। मठ में लंगर की व्यवस्था एक सुन्दर प्रथा है। स्वामी सर्वानन्द जी यदा-कदा इस मठ को अपना सहयोग देते रहते हैं। इस मठ में भी एक औषधालय चलता है।

स्वामी सर्वानन्द जी महाराज के काल की एक बहुत बड़ी उपलब्धि **दयानन्द मठ घण्डरां है।**

यह चौधरी रामसिंह जी का जन्मस्थान है। श्री रसीलाराम जी ने इसके लिए दो एकड़ भूमि दान में दी। स्वामी सर्वानन्द जी ने इस मठ को वेद-प्रचार व जन-सेवा का एक अच्छा केन्द्र बनाने के लिए अकथनीय यत्न किये परन्तु जिस व्यक्ति को इस मठ की देखरेख सौंपीं, वह मठ के नाम का और स्वामी जी के प्रभाव का दुरुपयोग करता रहा। स्व० चौधरी रामसिंह जैसे प्रभावशाली नेता के इस क्षेत्र में प्रभाव का धर्म-प्रचार में लाभ न उठाया जा सका। अब श्री स्वामी जी ने स्वामी सुबोधानन्द जी महाराज व श्री स्वामी सगुणानन्द जी, श्री देवदत्त जी वानप्रस्थी, धर्मपाल जी शास्त्री को यहां भेजा है। एक संस्कृत विद्यालय भी यहां खोल दिया है। पूज्य स्वामी जी स्वयं प्रतिमास यहां कुछ दिन लगाते हैं। अब इस संस्था की जड़ें जम रही हैं। चौधरी रामसिंह का परिवार मठ को पूरा सहयोग देता है।

दयानन्द मठ चम्बा

स्वामी सर्वानन्द जी महाराज ने चम्बा के दूरस्थ पर्वतीय क्षेत्र के धर्म-प्रेमियों की पुकार सुनी। वहां धर्म-रक्षा व धर्म-प्रचार की बड़ी आवश्यकता थी। वहां भी एक सुदृढ़ केन्द्र की आवश्यकता अनुभव की गई। स्वामी जी ने मठ की एक शाखा वहां भी स्थापित कर दी। पहले स्वामी स्वात्मानन्द जी चम्बा भेजे गये। उनको वहां कई कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। स्वामी जी महाराष्ट्र वापस चले गये तो स्वामी सर्वानन्द जी ने श्री स्वामी सुव्रतानन्द जी को चम्बा भेजा। वह अच्छे विद्वान्, वेदभक्त और कवि भी थे। उनके पश्चात् श्री स्वामी सुमेधानन्द जी को चम्बा मठ का सारा कार्यभार सौंप दिया। नदी के तट पर बड़े सुरम्य स्थान पर स्वामी सुमेधानन्द जी महाराज ने एक नई सृष्टि रच कर दिखा दी है। श्री स्वामी सर्वानन्द जी का वरदहस्त उनके ऊपर है। पूज्य स्वामी जी स्वयं यदा-कदा चम्बा मठ की गतिविधियों के निरीक्षण व मार्ग-दर्शन के लिए चम्बा जाते रहते हैं। सच तो यह है कि स्वामी सर्वानन्द जी महाराज को सृजन की कला का वरदान प्राप्त है। जहां आप के चरण पड़ते हैं, वहीं अपनी रचना का कमाल दिखा देते हैं। जिस चम्बा में स्वार्थी, धर्मद्वेषी मठ के पांव ही न जमने देते थे, वहां दो वर्ष पूर्व स्वामी जी महाराज के आशीर्वाद से लगातार छः मास तक गायत्री-यज्ञ चलता रहा। दूर-दूर से आर्य स्त्री-पुरुष इस यज्ञ में भाग लेने के लिए पहुंचे। इस महोत्सव की पत्रों मे पर्याप्त चर्चा रही।

अब मठ की इस शाखा में भी यात्रियों के ठहरने की पूरी व्यवस्था है। मठ में एक सफल संस्कृत विद्यालय चल रहा है। दीनानगर मठ के ही एक स्नातक श्री महावीर जी इस विद्यालय के आचार्य हैं। जैसे दीनानगर के क्षेत्र के लोगों को मठ ने अपनी सेवा व व्यवहार से जीता है, ऐसे ही दयानन्द मठ, चम्बा ने उस क्षेत्र के लोगों के हृदय जीत लिया है। मठ की वहां भी वैसी ही साख है, जैसी दयानन्द मठ दीनानगर की। औषधालय व फार्मेसी वहां भी है। बाहर से जो दर्शक वहां जाते हैं, उनका मठ से जाने को मन ही नहीं करता। पर्वत का रमणीक दृश्य

और कल-कल करती नदी की लहरें सबका मन मोह लेते हैं। यदि दानी सज्जन उदारतापूर्वक सहयोग करते रहे तो स्वामी सर्वानन्द जी महाराज की यह वाटिका भी कुछ ही वर्षों में आर्यसमाज का एक विश्व ख्याति का तपोवन बन जावेगा।

पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज समय-समय पर मठ की इस शाखा को अन्न, धन व वस्त्र आदि की सहायता भिजवाते रहते हैं। जैसे श्री दयानन्द मठ दीनानगर में पहले साधनों के अभाव में मठवासियों को प्रातराश नहीं मिलता था। ऐसा ही चम्बा में हमने देखा। जिस लग्न व तपस्या से श्री स्वामी सुमेधानन्द जी ने इस आश्रम को उन्नति के शिखर पर पहुंचाया है उसकी प्रशंसा किए बिना कोई भी नहीं रह सकता।

स्वाध्याय प्रेमियों व अनुसंधान में रुचि रखने वालों के लिए भी यह मठ का उत्तम स्थान है। यहां भी दयानन्द मठ दीनानगर जैसा एक अच्छा पुस्तकालय है। इसमें अनेक अप्राप्य पुस्तकें व संदर्भ ग्रन्थ हैं। कुछ पुरानी पत्रिकाओं की भी फाईलें हैं। साधक व जिज्ञासु मठ की इस शाखा की ओर खिच रहे हैं।

श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज ने इन दो आश्रमों (१) घण्डरां व (२) चम्बा की स्थापना करके हिमाचल में वेद-प्रचार आन्दोलन में फिर से प्राण फूंक दिये हैं। श्री स्वामी सर्वानन्द जी व दयानन्द मठ की हिमाचल को एक और देन है। आर्यप्रतिनिधि सभा हिमाचल का आज कुछ अस्तित्व बन गया है। इसका श्रेय मठ को ही जाता है। श्री पं० विद्याधर जी की सेवायें प्रशंसनीय हैं। वह भी मठ के ही व्यक्ति हैं। स्वामी श्री सुबोधानन्द जी ने वृद्ध अवस्था में इस सभा का प्रधान पद सम्भाल कर अपने पुरुषार्थ से युवकों को भी लज्जित कर दिया। पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी के इस शिष्य को सभा के प्रधान के रूप में प्रचार यात्राओं में लोगों ने स्वयं खिचड़ी बनाते और समाचार पत्र के कागज पर रखकर इसे खाते देखा। अपने पूज्य गुरु स्वामी सर्वानन्द जी के तप-त्याग की पूरी रंगत हम आप में देखते हैं।

स्वामी सुबोधानन्द जी के पश्चात् दयानन्द मठ ने पुनः हिमाचल सभा को एक और प्रधान दिया। वह हैं स्वामी श्री सुमेधानन्द जी। मठ अभी शैशव काल में था।

चम्बा दयानन्द मठ का भी पालन-पोषण करना और सारे हिमाचल को भी सम्भालना कितना कठिन कार्य है। फिर भी आपने अपनी पूरी शक्ति से सभा को प्राणवान बनाने का यत्न किया। पूज्य श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज न स्वयं कभी पदों के पीछे भागे हैं और न ही मठ के अन्य साधु पदों के लिए मरते हैं। श्री स्वामी सुमेधानन्द जी या दयानन्द मठ चाहता तो सभा का प्रधानपद इन्हीं के पास रहता परन्तु स्वामी सर्वानन्द जी की ऐसी सोच नहीं है। सेवा उनका लक्ष्य है, पद प्रतिष्ठा की, उन्हें भूख नहीं। इसलिए मठ की ये दोनों शाखायें स्वामी जी के बताए मार्ग पर बड़ी शान से और शान्ति से बढ़ रही हैं।

ऋषि दयानन्द जी महाराज ने हमारे सामने यह वैदिक मान्यता रखी कि जल या स्थल कोई तीर्थ नहीं। जो दुःख-सागर से

पार उतरें सो तीर्थ है। विद्या, सत्संग, योगाभ्यास, दान, सत्यभाषण, शुभकर्म यही तीर्थ हैं। इस शास्त्र सम्मत आर्ष वचन के अनुसार हमारे साधु महात्माओं के ये तपोवन हमारे ऐसे तीर्थ हैं। ये हमारे ज्योति केन्द्र हैं। इन आश्रमों से हमें वेदोपदेश व वेद सन्देश प्राप्त होता है। शुभ कर्मों की प्रेरणा प्राप्त होती है। थके-टूटे कार्यकर्त्ताओं में प्रेरणा का सञ्चार होता है। इसीलिए हमने शीर्षक देते हुए लिखा है कि कैसी थी वह शुभघड़ी जब स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के मन में दयानन्द मठ की स्थापना का विचार पैदा हुआ।

आचार्य प्रियव्रत जी के शब्दों में मठ की एक झांकी

श्रीमद्दयानन्द मठ दीनानगर व उसकी शाखाओं की चर्चा की समाप्ति पर हम वेद के विख्यात एक विद्वान् गुरुकुल कांगड़ी के एक पूर्व आचार्य व उपकुलपति पूज्य पं० प्रियव्रत जी विद्या मार्तण्ड के शब्दों में मठ की एक झांकी यहां प्रस्तुत करना चाहते हैं। मठ में आर्यसमाज के छोटे-बड़े सब विद्वान् जाते ही रहते हैं। सभी मठ के वातावरण व स्वामी जी के सेवा-यज्ञ की प्रशंसा करते नहीं थकते। स्वामी जी महाराज की यह चाह रहती है कि मठ के ब्रह्मचारियों पर वैदिक धर्म की गहरी छाप लगे और ये स्नातक बनकर कुछ करें। इसलिए स्वामी जी यदा-कदा बड़े-बड़े विद्वानों को मठ में बुलवाकर उनके व्यख्यान करवाते रहते हैं। उसी उद्देश्य से एकबार आचार्य प्रियव्रत जी को आमन्त्रित किया गया।

आचार्य जी ने लिखा है:—

"कुछ वर्ष पूर्व मैं भी मठ में व्याख्यानमाला के लिए गया था और एक सप्ताह भर वहां रहा था। मैंने ब्रह्मचारियों के सम्मुख आर्यसिद्धान्तों पर चौदह व्याख्यान दिये थे। प्रत्येक व्याख्यान के अन्त में छात्रों और उपस्थित श्रोताओं को शंका-निवारण का अवसर दिया जाता था। मेरे व्याख्यानों पर ब्रह्मचारियों व श्रोताओं ने जो-जो शंकायें रखी थीं, मैंने उनको पूरा-पूरा सन्तुष्ट करने के लिए उनकी प्रत्येक शंका का समाधान किया था तथा शंका करने वालों को यह भी पूछता रहता था कि सन्तोष हो गया अथवा नहीं? उनका सन्तोष हो जाने पर ही मैं आगे चलता था।

इस प्रकार अपने ब्रह्मचारियों का ज्ञान संवर्द्धन करने में भी स्वामी जी महाराज का यह मठ बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है।"

फार्मेसी के सम्बंध में भी संक्षेप से यह लिखा है:—

"मठ में स्वामी जी महाराज एक फार्मेसी भी चला रहे हैं, जिसकी आय से संस्था के सञ्चालन में भारी सहयोग मिलता है। फार्मेसी की सभी औषधियाँ शास्त्रानुसार सर्वथा शुद्ध बनाई जाती हैं। इस फार्मेसी में बनने वाले च्यवनप्राश आदि में मठ की अपनी गौओं के दूध से निकाले गये शुद्ध घी का ही प्रयोग किया जाता है।"

हमने अनुभवी वैद्यों, औषधि विक्रेताओं व कई फार्मेसी वालों के मुख से यह सुना है कि औषधियों की शुद्धता व उत्तमता में दयानन्द मठ फार्मेसी बेजोड़ है। इसका कोई दूसरा उदाहरण है ही नहीं।

दयानन्द मठ की गोशाला

दयानन्द मठ के संस्थापक व निर्माताओं ने इस संस्था के निर्माण व उन्नति के लिए कितना तप किया है, आज की पीढ़ी इसका पूरा-पूरा अनुमान नहीं लगा सकती। मठवासियों की दिनचर्या ही ऐसी है कि यमनियमों में पूरी-पूरी आस्था रखने वाला व्यक्ति ही वहां टिक सकता है। जिस व्यक्ति में तप करने का कुछ भाव नहीं, उसका मठ में क्या काम? यह कोई Rest House विश्राम स्थलि वा Picnic spot (उल्लास केन्द्र) भी नहीं। इस वृद्ध अवस्था में पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज को गऊओं की सेवा में लगे हुए देखकर, खुरपा चलाते देखकर व मठ की नालियों की सफाई करते देखकर बुद्धिमान् व्यक्ति सोच सकता है कि अपने यौवन में इस महापुरुष ने इस संस्था के निर्माण के लिए कितना तप किया होगा।

हमने 'लौहपुरुष स्वामी स्वतन्त्रानन्द' में श्री पं० शिवकुमार जी शास्त्री का एक संस्मरण **'दूसरों की भूख'**1 शीर्षक से दिया है। मठ के लिए, धर्म के लिए, देश के लिए और आर्य जाति में जीवन का सञ्चार करने के लिए मठ के निर्माताओं ने जो तप किया है, वह स्वर्गीय पं० शिवकुमार जी के संस्मरण को पढ़कर जाना जा सकता है। हम चाहेंगे कि हमारे पाठक उसे अवश्य देखें। हमने स्वयं वे दिन भी देखे हैं जब मठ में दूध की एक बूंद न होती थी। वृद्ध साधुओं व रोगियों के लिए आवश्यकता पड़ने पर बाहर से दूध क्रय किया जाता था।

आज स्वामी सर्वानन्द जी महाराज की सेवा व साधना का यह चमत्कार है कि मठ में कोई भी अतिथि चला जावे मठवासी बाल्टी भर-भर कर दूध पिलाने के लिए दिन में दो बार नहीं, तीन बार भी आते हैं। मठ में आरम्भ से ही दोनों समय यज्ञ हवन होता है। पहले हवन के लिए घृत क्रय किया जाता था। मठ के एक वयोवृद्ध महात्मा स्वामी सुव्रतानन्द जी संन्यासी होने के कारण यज्ञ-हवन से यद्यपि मुक्त थे परन्तु हवन ही में उनकी जान थी। एकदिन स्वामी सर्वानन्द जी से कहा, यह क्या बात कि स्वयं तो गऊ का शुद्ध दूध पीते हैं और हवन में क्रय किया हुआ घृत प्रयोग में लाया जाता है। क्या पता वह कैसा हो?

यह कहकर पूंज्य स्वामी जी से कहा, "मैं दूध नहीं पिया करूंगा। मेरे दूध से नित्य घी बनाया जावे। इस घृत से हवन हुआ करेगा।"।

पूज्यपाद स्वामी सर्वानन्द जी ने तब से यह व्यवस्था कर दी कि मठ के गो दुग्ध की मलाई उतार कर घृत बनाया जावे। उसी घृत का प्रयोग दैनिक यज्ञ में किया जाता है। श्रद्धेय स्वामी सुव्रतानन्द जी ने तब दूध लेना स्वीकार किया।

आज मठ में यदि यज्ञशाला दर्शनीय है, यदि पुस्तकालय दर्शनीय है और कई एक के लिए औषधालय में रोगियों की सेवा में लगे हुये पूज्य स्वामी जी महाराज के दर्शन करना एक अद्‌भुत दृश्य है तो अनेक भक्तों के लिए मठ की गोशाला सर्वाधिक दर्शनीय है। स्वामी जी महाराज बाल्यकाल से ही गोभक्त हैं। यह महाराज के पैतृक संस्कार हैं। कुछ पूर्व जन्म के

संस्कारों का भी फल होगा। इस जन्म में जब प्रभु की वेदवाणी के प्रचार के लिए समर्पित हो गये तो गोपालन में आपकी रुचि स्वाभाविक ही है।

इस धरती तल पर ऐसा कोई भी लेखक नहीं, जो स्वामी जी महाराज की गोभक्ति को शब्दों में चित्रित कर सके। हां! आचार्य चमूपति फिर से इस धरती पर जन्म लें तो वे इस देव पुरुष के हृदय में गोमाता के लिए प्यार का चित्र अपनी लेखनी से खींच सकते हैं। प्रभु ने उनको ऐसी लेखनी दे रखी थी। हमारी समझ में ही नहीं आता कि मठ की गऊशाला पर क्या लिखें व क्या न लिखें। हमने आचार्य जगदीश जी व स्वामी सुमेधानन्द जी झज्जर से कहा था कि मठ की गोशाला का भी तो एक लम्बा इतिहास है और स्वामी सुमेधानन्द जी महाराज चम्बा वालों का यह कथन यथार्थ है कि मठ की गऊशाला की सुन्दर व्यवस्था तो हैं ही पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी के कारण।

मठ की गऊएं १८-१८ लीटर और इससे भी अधिक दूध देती हैं। गऊशला की गऊएं सरकार द्वारा आयोजित पशुमेलों में पुरस्कृत हो चुकी हैं। सुना तो था परन्तु कभी देखा नहीं था, मठ में हमने यह दृश्य भी देखा है कि गऊएं जब खेतों से चर कर मठ में प्रवेश कर रही थीं तो एक गाय के स्तनों से चलते-चलते अपने आप दूध निकल रहा था। प्रतिदिन यह दृश्य देखकर प्रभु की न्यारी-प्यारी रचना पर हम देर तक विचार किया करते थे।

स्वामी जी महाराज में जैसे रोगियों की सेवा के लिए एक अदम्य उत्साह है वैसे ही गऊओं की सेवा किए बिना आप रह ही नहीं सकते। आप दिन में एक से अधिक बार गऊओं का पता करने गोशाला में जाते हैं। यह ठीक है कि सभी के कार्य बटे हुए हैं गोशाला की व्यवस्था भी किसी अध्यापक, साधु व ब्रह्मचारी को सौंप दी जाती है परन्तु स्वामी जी प्रातः, सायं, रात्रि व दोपहर को भी अपनी आंखों से जब तक एक एक गऊ की स्थिति न देख लें, उन्हें चैन नहीं आता। इसे आप गोभक्ति की संज्ञा दें, 'प्राणियों से प्यार' कहें या शुष्क छिद्रान्वेषी हैं तो महाराज की सनक कहें परन्तु यह सत्य है कि उनको यह ललक है कि थोड़े-थोड़े समय के पश्चात् जाकर यह देखते हैं कि गऊओं को जल पिला दिया गया है क्या? क्या किसी गऊ के पास गोबर तो नहीं पड़ा हुआ? यदि पड़ा हैं तो ऐसा नहीं कि आप किसी ब्रह्मचारी को पुकारें कि अरे यह गोबर तो हटा दो। आप इसे स्वयं हटा देते हैं।

किसी गऊ को मच्छर तो तंग नहीं कर रहे? सर्दी तो किसी गाय को नहीं सता रही। शुद्ध जल और ऋतु अनुसार चारा गऊओं को दिया जाता है। रोग-रहित रखने के लिए ऋतु अनुसार औषधियां भी दी जाती हैं। और तो और प्रत्येक गऊ यह आशा व अभिलाषा करती है कि पूज्य स्वामी जी महाराज आकर मेरे शरीर पर हाथ फेरें, खाज करें, दुलार दें, प्यार दें और मुझ से बातें भी करें। जी हां! यह सुनी सुनाई गाथा नहीं। यह हमारा आंखों देखा अनुभव है। स्वामी जी कई बार हटना व हटाना भी चाहें तो गऊएं आपको छोड़ती नहीं, चिपट जाती हैं।

ऐसी भी गऊएं हैं जो तब तक दूध नहीं देती जब तक पूज्य स्वामी जी उन पर हाथ न

फेर दें। यदि स्वामी जी यात्रा पर जायें तो कई बार गऊओं की उदासी मठवासियों की समस्या बन जाती है। श्री स्वामी जी अपने अति व्यस्त जीवन में गऊओं का कितना ध्यान रखते हैं, इसे एक और प्रकार से हम एक घटना देकर अपने पाठकों को हृदयंगम करवाते हैं। कोई तीस वर्ष पहले की बात है कि मठ के एक विद्यार्थी ने हमें कहा कि देखिए स्वामी जी का समय कितना मूल्यवान् है। इन्हें अपना समय पढ़ने-लिखने, पढ़ाने व समाज के अन्य अन्य कामों में लगाना चाहिए परन्तु ये तो घण्टों गऊशाला में ही लगा देते हैं। प्रातः गऊशाला देखने जाते हैं फिर दोपहर को और रात्रि सोने से पूर्व भी एकबार गऊशाला में जाना ही जाना है। दिन में गऊओं का ध्यान। यह कार्य तो और लोग भी कर सकते हैं। हम नहीं कह सकते कि उस युवक के कहने का भाव अच्छा था या बुरा। हमने उनकी यह बात सुन ली। एकबार किसी विदुषी बहिन ने स्वामी जी महाराज का आश्रम देखने की चाह व्यक्त की तो मठ की चर्चा चल निकली। उनको गऊओं में बड़ी रुचि थी। हमने मठ की गऊशाला की चर्चा करते हुये मठ के पुराने विद्यार्थी का उपरोक्त कथन भी सुना दिया।

इस पर वह विदुषी बहिन बोली कि वह आश्रम ही क्या जिसमें गऊ नहीं। गुरुकुल गऊओं के बिना अधूरा है। जब वेद भगवान् में गऊ को माता कहा गया है। गो की महिमा वेद में है और गोकरुणानिधि तक समस्त आर्ष साहित्य गऊ माता की महिमा का वर्णन करते हैं तो स्वामी सर्वानन्द जी महाराज यदि गऊ से इतना प्यार करते हैं तो यह उनका बड़प्पन है, न कि भूल वा न्यूनता। ऋषि, मुनि, महात्मा लोग अपने आश्रमों तथा गुरुकुलों के पशु-पक्षियों से प्रेम करते ही आए हैं। बड़ों के व्यवहार से ही छोटे लोग सीखते हैं। श्री कृष्ण गोपाल थे, हमें भी गो-पालन करना चाहिए। श्री स्वामी सर्वानन्द जी गऊओं से प्रेम करते हैं, कलोल करते हैं तो उनका यह व्यवहार हम सबके लिए एक बहुत बड़ा उपदेश है। इस घटना को यहां देने का हमारा प्रयोजन यही है कि श्री स्वामी जी के लिए तो गो-सेवा भी एक मिशन है। वे किसी को वेद, दर्शन, उपनिषद्, और आर्यों की प्रस्थान-त्रयी (ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, सत्यार्थप्रकाश, संस्कार विधि) पढ़ाना जितना अच्छा व आवश्यक मानते हैं, गाय को समय पर चारा देना, जल पिलाना व उसकी पीठ पर हाथ फेरना भी वे उतना ही आवश्यक व शुभकर्म मानते हैं। इनमें मुख्य क्या, गौण क्या, यह प्रश्न ही नहीं उठता।

गऊ विषयक स्वामी जी के प्रयोग

गऊ के घृत, दूध, मक्खन, दही, लस्सी में तो गुण हैं ही। सारा संसार इस उक्ति के सत्य को मानता है कि 'Milk is a perfect food' दूध पूर्ण भोजन है। संसार में भारत, पाकिस्तान को छोड़ कर कहीं भी भैंस के दूध का इतना प्रयोग व प्रचार नहीं। इसलिए जब पश्चिमी देश भी 'दूध एक पूर्ण भोजन है' का घोष लगाते हैं तो उनका अभिप्राय गऊ दूध से होता है न कि भैंस के दूध से। मांस-अण्डे को ये मांसाहारी देश भी पूर्ण भोजन नहीं मानते। विश्व की खेल-प्रतियोगिताएं हों अथवा एशिया की, भारत सर्वत्र पिटता है। भारतीय खिलाड़ी क्या कम खाते हैं? अभ्यास भी बहुत करते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि हमारे देश में

गो-दूध व गो-घृत का प्रयोग कम हो गया है। भैंस के घी-दूध का प्रयोग अधिक होता है।

श्री स्वामी जी महाराज के गऊ विषयक कई अनुभूत हैं। आपका कहना है कि हमने परीक्षण करके देखा है कि जो विद्यार्थी पढ़ाई में मंदबुद्धि हो व शरीर में दुर्बल हो, उसे हम गोशाला की सेवा सौंपते हैं। चौबीस घंटे गऊओं में रहने वाला शीघ्र ही शरीर से बलवान् हो जाता है। जो गऊओं का गोबर हटाए, उनके शरीर पर हाथ फेरता रहे, उनसे प्यार करता रहे, दूध निकाले, चारा डाले और गऊशाला में ही सोवे, गऊओं को पानी पिलाने तथा उन्हीं की सेवा में लगा रहे, वह आश्चर्यजनक शारीरिक उन्नति कर जाता है। ऐसे कई पुराने व नए ब्रह्मचारियों के आपने नाम गिनाए।

जब स्वामी जी ये नाम सुना रहे थे तो हमें भी सुन-सुन कर आश्चर्य हो रहा था। हम मठ में आते-जाते ही रहते हैं। यह एक कठोर सत्य है कि वे ब्रह्मचारी जो गऊशाला की देखभाल करते रहे हैं व करते हैं वे दूसरों की अपेक्षा कहीं अधिक बलवान् बन गये। मन्दबुद्धि ब्रह्मचारी अत्यधिक चतुर, सुजान व बुद्धिमान बन गये। इसका एक उदाहरण हम यहां दिये देते हैं। मठ में रिवाड़ी क्षेत्र का एक ग्रामीण भोला-भाला युवक दुलीचन्द्र आया। दुलीचन्द्र शरीर से तो हृष्ट-पुष्ट था, गाठ-गठीला व लम्बा चौड़ा था परन्तु पढ़ाई-लिखाई उसके बस की न थी या यह कहिए कि पढ़ाई में सर्वथा मन्दबुद्धि निकला।

उसे गौशाला की सेवा सौंपी गई। वह इतना बलवान् बना कि एकबार पंजाब तथा हरियाणा के चुने हुये खिलाड़ियों की जेल में हमने कबड्डी देखी। दुलीचन्द्र विपक्षके पाले में जाता तो खिलाड़ी भाग जाते। मठ के पास तब इतनी आबादी न थी। कहीं से कोई बाघ आ गया। क्षेत्र के लोगों में चिन्ता व्याप्त हो गई। दुलीचन्द्र ने स्वामी जी से कहा, ''मुझे एक काला कम्बल दे दो। जब बाघ आएगा मैं उसके मुंह पर डालकर उसको पकड़कर यहीं ले आऊंगा।'' वह बाद में इतना चतुर व समझदार बन गया कि बड़े-बड़े बुद्धिमानों की बात को काट देता था। अब भी कहीं अपने क्षेत्र में कार्यरत होगा। हमने उसकी बुद्धि विकसित होने का यह चमत्कार देखा है।

जिन खेतों में गऊएं बांधी जाती हैं व चरती हैं, वहां उपज अधिक होती है, यह स्वामी जी का कथन है और यह तथ्य सर्वविदित है। वैद्य लोग पहले तो गो घृत व गो दुग्ध के साथ औषध के रूप में गो-मूत्र व गोबर अनेक रोगों में प्रयोग करते थे परन्तु, पश्चिम के औषधि विज्ञान व आयुर्वेद के ह्रास व आयुर्वेद में अनुसंधान की कमी से हमारे लोग गोमूत्र व गोबर का औषधि के रूप में प्रयोग छोड़ बैठे हैं। मुसलमानों की हदीसों में भी इन की उपयोगिता बताई गई है। श्री स्वामी जी ने आयुर्वेद शास्त्र के आधार पर एतद्विषयक बहुत प्रयोग किए हैं और ये प्रयोग बहुत सफल रहे हैं।

अनेक रोगियों को इनसे लाभ पहुंचा है। कई एक को तो गोमूत्र के सेवन से रोग से ही मुक्ति नहीं मिली, एक प्रकार से नया जीवन मिला है। मठ से स्वामी सुव्रतानन्द जी ने 'आयुर्वेदीय योग सार' ग्रन्थ तीन खण्डों में प्रकाशित करवाया है। इसमें आपने ऐसे कई

अनुभूत प्रयोग दिये गये हैं। यहां किसी का देना कठिन है। गोभक्त व ज्ञान-पिपासु आयुर्वेद प्रेमी इन तीनों खण्डों का लाभ उठा सकते हैं। श्री स्वामी सुधानन्द जी तो यहां तक कहा करते थे कि जहां कोई भी जड़ी-बूटी उपलब्ध न हो, वहां समझदार अनुभवी वैद्य भिन्न-भिन्न प्रकार से भिन्न-भिन्न रोगों की केवल गोमूत्र,गो के गोबर व गो-गोबर को जलाकर उसकी राख से भी सफल चिकित्सा कर सकता है। प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्रों में अब इनका पूरा-पूरा लाभ उठाया जा रहा हैं।

तनुपा औषधालय पीड़ित-सेवा केन्द्र

लोगों का हृदय जीत लिया

'तनुपा औषधालय' दयानन्द मठ दीनानगर का इतिहास अत्यन्त गौरवपूर्ण है। मानव-हृदय के परिवर्तन का इतिहास पढ़ने में रुचि रखने वालों के लिए इस संस्था की कहानी पठनीय व मनन करने के योग्य है। भले ही कोई व्यक्ति आस्तिक हो व नास्तिक जो भी 'तनुपा औषधालय' का इतिहास पढ़ेगा, इससे प्रभावित हुए बिना न रह सकेगा। इस औषालय की एक-एक घटना हृदय को छू लेने वाली है। औषधालय का अब तक का इतिहास श्री राम (स्वामी सर्वानन्द जी) की साधना की एक लम्बी गाथा है।

देश-विभाजन से पूर्व इस क्षेत्र में मुसलमान भी बहुत बड़ी संख्या में रहते थे। देश का विभाजन करने के लिए संघर्षरत मुस्लिमलीग पार्टी उन मुसलमानों का नेतृत्व करती थी और दयानन्द मठ देश की स्वाधीनता व अखण्डता के लिए सिर धड़ की बाजी लगाने वाले एक तेजस्वी, बलिदानी साधु स्वामी स्वतंत्रानन्द का तपोवन था। कई मुस्लिम परिवार ऐसे थे जिनमें किसी हिन्दू का आना-जाना सोचा भी नहीं जा सकता था।

ऐसे घरों में भी मठ के प्रति बड़ी श्रद्धा व विश्वास था।

एक मुस्लिम लीगी लीडर के घर में कई बांर श्री पं० रामचन्द्र जी को बुलाकर ले जाया जाता था। उस परिवार की स्त्रियां पण्डित जी से पर्दा नहीं किया करती थीं। ग्राम नाजोवाला मुसलमानों का ग्राम था। वहां के मुसलमान कहा करते थे कि यदि कोई बच्चा रुग्ण हो तो मठ जाने की भी आवश्यकता नहीं, मठ की ओर वच्चे का मुंह कर दो-बाबे की दुआ (प्रार्थना आर्शीर्वाद) से ही बच्चा ठीक हो जावेगा।

कानवे ग्राम का नम्बरदार सरदार खां व उसकी पत्नी सरदारां अपने खेतों में पैदा होने वालीं किसी भी वस्तु का तब तक प्रयोग नहीं करते थे जब तक मठ में उसका कुछ भाग न पहुंचा दें।

ऐसे कई कट्टर पंथी मुसलमान परिवार थे जिनके यहां श्री पं० रामचन्द्र जी के लिये कोई पर्दा न था। पण्डित जी का विशेष आदर था। दीनानगर के सैयद मुजफ़्फ़रशाह व उसका भाई दोनों मठ में आया करते थे। एक भाई प्रातः आया करता था तो दूसरा सायंकाल मठ में आता था। दूसरे भाई का नाम पहलवान् बूबे शाह था।

जब स्वामी सम्पूर्णानन्द जी को गांव में रात पड़ गई

उस क्षेत्र में मठ के प्रभाव को जाकर ही देखा जा सकता है। पढ़ने से तो कुछ अनुमान ही लगाया जा सकता है। मठ के एक स्वर्गीय साधु श्री स्वामी सम्पूर्णानन्द जी एकबार कहीं घूमते-घूमते एक ग्राम में पहुंच गये। स्वामी जी बहुत वृद्ध हो चुके थे। रात उसी ग्राम में पड़ गई। मठ पहुंचने का उस समय कोई साधन न था। सर्दी के दिन थे। उन्हें तो वैसे ही सर्दी बहुत लगती थी।

एक कृषक ने वयोवृद्ध साधु को देख लिया और पूछा, ''आप कहां से आए हैं और कहां जाना है?''

स्वामी जी ने कहा,''हम मठ के साधु हैं।''

इतना कहना था कि वह सज्जन उन्हें आदरपूर्वक अपने घर ले गये। स्वामी जी ने कहा भी कि मैं किसी डेरे, धर्मशाला या गुरुद्वारे में रात काट लूंगा।

उस सिख भाई ने घर ले जाकर स्वामी जी की बड़ी सेवा की और कहा, ''हमारे यहां तो मठ की कृपा से पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ। मठ से ही हम औषधि लाए थे।''

इस प्रकार की इतनी कहानियां हैं कि हमें समझ नहीं आता कि कौन सी घटना दें वा कौन सी छोड़ें। मठ की इसी सेवा के कारण निहंग सिखों के प्रमुख श्री बाबा सन्तासिह जी एकबार अपने दल-बल सहित पूज्य स्वामी जी को मत्था टेकने आए और भेंट भी चढ़ाकर गये। एकबार कुछ निहंग पूज्य स्वामी जी की अनुपस्थिति में आकर कुछ कुचेष्टायें करने लगे। जब सिख भाइयों को उनकी हरकतों का पता चला तो झट से मठ में पहुंचकर उन्हें ताड़ने लगे। तब तक पूज्य स्वामी जी भी मठ में आ गये थे। मठ के और भी कई श्रद्धालु नगर से पहुंच गये।

श्री स्वामी जी ने उन्हें इतना ही कहा, ''क्या आपने गुरु महाराज से यही कुछ सीखा है?''

इतना सुनकर उनको अपनी भूल का कुछ ज्ञान हुआ। उधर सब प्रकार के लोग आसपास से मठ में पहुंच चुके थे। उन्होंने देखा कि मठ में कुछ गड़बड़ करने से लोगों में उनका अपयश होगा और लोग ऐसा कुछ भी सहन न करेंगे। ये सब कुछ स्वामी जी की सेवा का फल है। आगे पं० रामचन्द्र काल की औषधालय की कुछ प्रेरणाप्रद घटनायें भी देते हैं।

'मुझे तो मठ ने ही जीवन दिया है'

आर्यसमाज सान्ताक्रूज के पुरोहित श्री पं० प्रकाशचन्द्र जी ने लेखक को सुनाया कि जब वह मठ में पढ़ते थे तो सब विद्यार्थियों का चित्र खींचने के लिए श्री भक्तराम नाम के एक फोटोग्राफर को बुलवाया। प्रकाश जी ने उसे कहा कि भाई तुम मठ वालों को ठगते हो, बहुत अधिक पैसे हम से लेते हो।

श्री भक्तराम फोटोग्राफर ने कहा, ''आपका यह कहना ठीक नहीं है। मैं मठ से अधिक पैसे ले ही नहीं सकता। मुझे तो मठ ने ही जीवन दिया है। मैं तो एक प्रकार से मर चुका था। मुझे तो मठ ने बचा लिया। इसलिए मठ से अधिक पैसे लेने व मठ को ठगने का तो

प्रश्न ही नहीं उठता।'' उसने अपनी नवजीवन प्राप्त करने की कहानी सुनाते हुये कहा कि एक बार वह बहुत रुग्ण हो गया। घर वालों ने पठानकोट के बड़े-बड़े डाक्टरों को दिखा दिया। बड़ा धन लुटाया। वह ठीक न हुआ तो अमृतसर के डाक्टरों से भी इलाज करवा लिया।

अमृतसर भी निराशा ही हाथ लगी फिर लाहौर ले गये। वहां भी जो कुछ बन पाया किया। डाक्टरों ने वहां भी कह दिया कि यह ठीक नहीं हो सकता। निराश होकर घर वाले वापस अपने ग्राम घेसल ला रहे थे। यह ग्राम दीनानगर से तीन मील पूर्व की ओर है। भक्तराम अचेत-सा था परन्तु सब कुछ सुन रहा था। रोगी के चाचा ने मठ के पास से निकलते हुये श्री पं० रामचन्द्र जी से कहा, ''यह मरा हुआ तो है ही, ''यदि आप कुछ कर सकते हैं तो औषधि दे देखें।''

पं० रामचन्द्र जी भी ऐसे रोगी पर परीक्षण करते हुए तनिक सोच में पड़ गये। उसके घर वालों को न भी कैसे करें? सोच-विचार कर कहा, ''परसों लाना।''

परसों लाना, यह टालने के लिए कहा था। भक्तराम यह सब कुछ सुन रहा था। भले ही कुछ बोल न सकता था। वह भी समझ चुका था कि अब मेरा अन्त निकट आ चुका है।

उसे दो दिन में कुछ न हुआ। घर वाले मठ मैं ले आए। आगे की कहानी हमने पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज से जाननी चाही। रोगी क्या बताता कि कैसे ठीक हुआ। उसे तो इतना ही ज्ञान है कि मुझे मठ ने बचा लिया।

स्वामी जी महाराज ने बताया कि मैंने उसे औषधि दे दी। उसे हड्डी का क्षय (Bone T.B.) रोग था। पस पड़ चुकी थी।

रात्रि श्री स्वामी जी (पं० रामचन्द्र जी) को सपना आया। एक श्वेत वस्त्रधारी ने स्वप्न में कहा कि जो औषधि उसे दी है सो ठीक है परन्तु उसमें एक वस्तु और मिला दो। राम उसी समय उठ कर बैठ गये। तब मठ में बिजली नहीं थी। लैम्प जलाया। जो औषधि स्वप्न में सूझी सो लिख दी। वह पहले वाली औषधि में मिलाकर दी गई। धीरे-धीरे रोगी ठीक होता गया।

भक्तराम निरोग होकर घर चला गया। घूमने-फिरने लगा। पठानकोट के डाक्टरों को पता लगा तो पं० रामचन्द्र जी को बधाई दी। सब डाक्टरों ने कहा, ''कमाल कर दिया। जो लाहौर व अमृतसर के डाक्टरों से ठीक न हुआ। वह मठ ने रोग-मुक्त कर दिया।"

इससे सब ओर मठ की प्रसिद्धि फैली। यह कोई चमत्कार तो नहीं था। सब ईश्वर की कृपा का फल था। ऐसे-ऐसे निराश रोगियों को जीवन देकर मठ ने अपनी सेवा से एक इतिहास बनाया है।

यह कैसे ठीक हो गया?

इसी धरती पर इस समय भी बड़े-बड़े परोपकारी व सुयोग्य डाक्टर, वैद्य व चिकित्सक हैं, जो धनोपार्जन अथवा किसी अन्य प्रलोभन से दुखियों के कष्ट-निवारण में नहीं लगे हुए प्रत्युत विशुद्ध सेवा-भाव से रोगियों के पीड़ा-हरण में आनन्द लेते हैं। ऐसी विरली आत्माओं में ही हमारे पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज हैं। कितने ही निराश

परिवारों के दुखिया जनों की आप ने जान बचाई है। यदि ऐसे गिने चुने रोगियों की कहानी ही लिखी जावे तो सहस्रों पृष्ठों का ग्रन्थ बन जावे परन्तु, स्वामी जी तो अपने द्वारा किए गये परोपकार की चर्चा ही नहीं होने देते। इसी कारण आर्य जगत् को भी इस बात का ज्ञान नहीं कि मठ ने इस दिशा में कितना ऐतिहासिक कार्य किया है। जिनसे जान नहीं, पहचान नहीं, जिनका मठ से कभी लेन-देन ही नहीं रहा ऐसे-ऐसे रोगियों की महीनों सेवा करना, मल-मूत्र तक उठा लेना--- यह उसी महामुनि का काम है।

देश विभाजन से पूर्व मिण्टगुम्बरी जिला के 'बड़े वाला' ग्राम का एक युवक लाहौर के Mayo Hospital म्यू हस्पताल में महीनों चिकित्सा करवाता रहा। कुछ भी लाभ न हुआ। यह युवक एक सम्पन्न घराने का लड़का था। घर के कुछ नौकर-चाकरों सहित पाँच व्यक्ति हस्पताल में उसकी सेवा के लिए लाहौर में उसके साथ रहे। उनके परिवार में एक व्यक्ति बड़ा योग्य हकीम था। उसी ग्राम का एक युवक वेदप्रकाश मठ में पढ़ता था।

उसके लिखने पर उस लड़के को घर वाले मठ में ले आए। श्री पं० रामचन्द्र जी ने देखकर पूज्य स्वामी श्री स्वतन्त्रानन्द जी महाराज से कहा कि ऐसे-ऐसे यह बड़ा इलाज करवाकर मठ में आया है। स्वामी जी महाराज नहीं चाहते थे कि ऐसे पुराने असाध्य रोगी को राम हाथ में लें परन्तु दयालु राम तो रोगी को 'न' करना सीखे ही न थे। स्वामी जी महाराज जैसा महात्मा अब कैसे कहे कि दुखिया को न कर दो।

स्वामी जी महाराज ने कहा, "अच्छा उसकी Case History (रोगी की कहानी) सब लिखकर ले आओ। रोगी के घर के हकीम ने सब वृत्तान्त लिखवा दिया। पं० रामचन्द्र जी सब कुछ लिखकर स्वामी जी के पास ले गये। घुटने के दर्द में उसे हिन्जल का शर्बत भी दिया गया था। उसी से उस युवक को श्वास रोग हो गया था। स्वामी जी ने फ़ारसी पुस्तक 'अकसीर आज़म' निकालकर उसमें से रोग का कारण राम को दिखाया। उसी पुस्तक में कारण का निवारण कैसे हो, यह लिखा था। गुलाब के अर्क के साथ उसे निशासता दिया गया।

पहले दिन की औषधि से ही रोगी को बड़ा लाभ हुआ। दूसरे दिन और लाभ हुआ। घर के हकीम ने भी कह दिया था कि यह लड़का नहीं बचेगा। पं० रामचन्द्र जी ने कहा कि नहीं मरेगा। पहले जब औषधि से लाभ हुआ तो घर वाले भी यह समझे कि यह बुझते हुये दीपक की अन्तिम टिमटिमाहट के समान थोड़ा चैन दीखता है।

औषधि ने ऐसा लाभ किया कि घर वाले भी स्वास्थ्य में सुधार देखकर दंग रह गये। उस युग में वे उस लड़के को बचाने के लिए सहस्रों रुपये व्यय कर चुके थे। पांच व्यक्तियों का लाहौर में कितना खर्च होता होगा? उनके हकीम ने पूछा, "क्या औषधि दी है?"

भारत में ज्ञान-विज्ञान के लोप होने का यह कारण रहा है कि विद्वानों ने, वैद्यों ने व वैज्ञानिकों ने अपना ज्ञान अपने सीने में ही छिपाए रखा। संसार से गये तो ज्ञान भी साथ ही विदा हो गया। श्री पं० रामचन्द्र जी ने ऐसा

कभी नहीं किया। वे सदा ही अपना ज्ञान बांटते रहते हैं। उनको ज्ञान लुटाने में एक आनन्द-सा अनुभव होता है। ज्ञान लुटाना भी उनके लिए परमेश्वर की आज्ञा का पालन करना है। जब उस रोगी के परिवार के हकीम ने पूछा कि महाराज उसे क्या औषधि दी तो श्री पं० रामचन्द्र जी ने तत्काल उसे बता दी।रोगी का ठीक होना तो उनके लिए एक चमत्कार था ही, महात्मा जी ने औषधि भी छुपाई-लुकाई नहीं, झट से बता दी है। यह भी एक अचम्भे की बात थी।

वे लोग राम की अमिट छाप लेकर अपने घर लौटे। वे मठ का गुणगान करते हुये गये। आर्यसमाज के महात्मा के उपकार से लदा हुआ उनका हृदय ईश्वर को बारम्बार धन्यवाद दे रहा था।

फिर निर्धन कहां से औषधि लेंगे?

यह भारत-विभाजन के कोई दो वर्ष पश्चात् की घटना है। गुरुकुल झज्जर के आचार्य भगवान् देव (वर्तमान स्वामी श्री ओमानन्द जी) दयानन्द मठ दीनानगर की यात्रा पर गये। पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के दर्शन करने गये थे। कुछ समय वहां ठहरे।

एकदिन आप मठ के औषधालय में श्री पं० रामचन्द्र जी सिद्धान्त शिरोमणि के पास बैठे हुये थे। पण्डित जी रोगियों को औषधियां दे रहे थे। आपने श्री पं० रामचन्द्र जी के पास एक मूल्यवान् बड़ी गुणकारी औषधि बहुत मात्रा में देखी। यह औषधि जितनी अधिक पुरानी हो, उतनी ही अधिक गुणकारी होती जाती है। इसलिए इसका मूल्य भी बढ़ता जाता है। श्री पं० रामचन्द्र जी ने कई वर्ष पूर्व इसे बनाकर रखा था। यह औषधि किसी विरले वैद्य के पास ही मिलती है।

इसका नाम था **'कृष्ण अभ्रक भस्म'** सहस्र पुटी।

यह औषधि निर्धनों को कहां उपलब्ध होती है। जब पुरानी होकर विशेष गुणकारी बनती है तो धन के लोभ में धन-लोलुप वैद्य इसे धनियों को बेच देते हैं। हां! महाकवि 'शंकर' सरीखे पुण्यात्मा वैद्य इस दृष्टि से अपवाद होते हैं।

पर्याप्त मात्रा में औषधि देखकर आचार्य भगवान् देव जी ने महात्मा रामचन्द्र जी से कहा कि यह औषधि आप कितने को देंगे? मुझे चाहिए। जितनी है उतनी ही दे दें। तोलों व रत्तियों के दर से बिकने वाली वह औषधि एक किलो से भी अधिक थी। सहस्रों रुपये की उन्हीं दिनों होगी।

पं०रामचन्द्र जी ने पूछा, "किसके लिए चाहिये?"

आचार्य जी ने कहा, "एक सेठ के लिए।"

यह सुनकर महात्मा रामचन्द्र बोले, "आचार्य जी, आप उनके लिए कुछ मात्रा में निःशुल्क चाहें ले जावें। हम सारी औषधि नहीं देंगे। यह तो मठ ने निर्धनों के लिए बनाई है। धनी सेठ तो कहीं से पैसा देकर क्रय कर लेंगे। निर्धन बेचारे कहां से लेंगे? अतः हम इसे बेचने में असमर्थ हैं। यह औषधि बिक्री के लिए नहीं बनाई।"

यह उत्तर पाकर आचार्य भगवान् देव गद्गद् हो गये। ऐसे दीनजन सेवकों को पाकर ही मनुजता गौरबान्वित होती है। ऐसे मूक तपस्वियों से ही आर्यसमाज का यशोगान चहुंदिश हुआ। स्मरण रहे कि आचार्य जी ने परीक्षा लेने के लिए ही औषधि का भाव पूछा था। वह महात्मा रामचन्द्र जी के हृदय की गहराई देखना चाहते थे। अब भी मठ में निर्धनों को यह औषधि निःशुल्क दी जाती है। मठ अब भी इसे नहीं बेचता।

दीन दुःखी अकिंचन के लिए श्री महाराज की अन्तःवेदना का इससे पता चलता है।

अब तो स्वामी जी महाराज धीर, गम्भीर, वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध साधु हैं। तब तो युवावस्था थी। तभी आपके हृदय में ऐसे-ऐसे भव्य भाव थे।

फारसी के किसी कवि ने ऐसी पुण्यात्माओं के लिए ही यह पद्य लिखा है:—

दर जवानी तोबा करदन शेवाए पैगम्बरी।
वक्ते पीरी गुर्गे ज़ालिम में शवद परहेजगार।

अर्थात् युवावस्था में ईशोपासना, सेवा, संयम, महात्माओं-मुनियों की रीति नीति होती है। बुढ़ापे में तो क्रूर भेड़िया भी अहिंसक बन जाता है।

कुछ अन्य संस्थाएं

श्री स्वामी जी महाराज की देखरेख में दीनानगर में कुछ और संस्थायें भी चल रही हैं। लड़के व लड़कियों का एक-एक आर्य स्कूल तो श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के समय से ही चल रहा है। श्री स्वामी सर्वानन्द युग में दीनानगर में एक डिग्री कालेज लड़कियों के लिए स्थापित किया गया और स्वामी स्वतंत्रानन्द जी की स्मृति में लड़कों का डिग्री कालेज भी खोल दिया गया। लड़कियों के कालेज का नाम शान्तिदेवी आर्य महिला महाविद्यालय है।

इन दो कालेजों के पृथक्-पृथक् होने से नगर सहशिक्षा के दूषित प्रभावों से बहुत कुछ बच गया। ये दोनों कालेज ठीक-ठीक चल रहे हैं। इनके अतिरिक्त दीनानगर में व समीप के ग्रामों में भी कुछ सामाजिक शिक्षा संस्थाएं श्री स्वामी जी की देख-रेख में चल रही हैं। इन संस्थाओं से समाज को क्या लाभ होता है अर्थात् क्या ये संस्थायें अपने विद्यार्थियों पर वैदिक सिद्धान्तों की कुछ छाप लगा पाती हैं, यह एक अलग प्रश्न हैं। यह तभी सम्भव हो पाता है जब इन संस्थाओं के प्रधान अध्यापकों व प्राचार्यों में कड़क धार्मिक भावनायें हों और प्रत्येक संस्था में तीन-तीन, चार-चार अध्यापकों तथा प्राध्यापकों का ऐसा दल हो, जिन्हें जी जान से वैदिक धर्म प्यारा हो। जिनमें प्रचार की इक आग हो। जब तक ऐसा नहीं होता अर्थात् ऐसे शिक्षक नहीं मिलते तब तक सञ्चालकों का सारा परिश्रम पुरुषार्थ सब निष्फल ही जाता है।

कुछ भी हो श्री स्वामी जी महाराज के कारण दीनानगर-सा छोटा-सा उपनगर आज शिक्षा-प्रचार का एक अच्छा केन्द्र बन चुका है। इन संस्थाओं का लाखों का बजट होता है। आश्चर्य इस बात पर होता है कि श्री महाराज कभी धनियों के द्वार पर जा कर झोली भी नहीं पसारते। कोई दर्शन करने आएं तो उन्हें भी

नहीं कहते कि हमारी अमुक-तुमक संस्था के लिए दस-बीस-तीस सहस्र दान के रूप में दो। फिर भी एक बहुत छोटे कस्बे में करोड़ों रुपये के भवन खड़े कर देना स्वामी जी का ही काम है। दीनानगर के अनेक श्रद्धालु लोग भी इस दृष्टि से प्रशंसनीय हैं।

धन्य तेरी साधना और धन्य तेरा त्याग

मठ के निर्माण व उन्नति के लिए श्री राम की सतत् साधना को वे जन तो जानते ही हैं जिन्होंने मठ का आरम्भिक युग देखा है परन्तु मठ में आज भी कोई व्यक्ति चार-छः दिन रहकर इसका सहज अनुमान लगा सकता है। जब आज ९० वर्ष की आयु में श्री महाराज बीस-बीस घण्टे तक सेवारत रहते हैं तो उन दिनों कितना पुरुषार्थ करते होंगे जब कि वे श्री पं० रामचन्द्र जी के नाम से जाने जाते थे।

मठ में तो दिनभर लोग आते-जाते रहते हैं। आरम्भिक युग में भी रोगी ऐसे ही आते थे। स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के व्यक्तित्व का आकर्षण तो था ही। मठ के भीतर के सब प्रबंध का दायित्त्व तो राम का ही था। राम कितने व्यस्त रहते थे, इसकी एक रोचक कहानी श्री स्वामी ईशानन्द जी महाराज सुनाया करते हैं।

तब फार्मेसी तो थी नहीं। पं० रामचन्द्र जी आप ही औषधियां बनाया करते थे। मठ में इतने ब्रह्मचारी साधु भी न थे कि कोई औषधि घोट दे और कोई गोलियां बना दे। यह सब कार्य श्री रामजी को ही करना होता था। एकबार ग्रीष्म काल में सायंकाल के समय एक देवी घूमती-फिरती मठ की ओर आ निकली। श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज उस समय स्नान करने के लिए कूप की ओर आ रहे थे। श्री स्वामी ईशानन्द जी साथ थे। उस माता ने श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज से पूछा, "पं० रामचन्द्र जी हैं?"

स्वामी जी महाराज ने कहा, "नहीं हैं।"

श्री पं० रामचन्द्र जी उस समय मठ के बड़े प्रवेशद्वार के सामने कोई औषधि घोट रहे थे। आने-जाने वाले को वे स्पष्ट दिखाई देते थे। उस देवी ने पूछा, "स्वामी जी वह औषधि कौन घोट रहा है?"

स्वामी जी ने कहा, "क्या पता कौन है?"

वह देवी यह सुनकर चली गई।

उसके चले जाने पर स्वामी ईशानन्द जी ने कहा, "स्वामी जी, आप इतने बड़े महात्मा और सत्यनिष्ठ साधु हैं फिर यह झूठ आज कैसे बोल दिया? पण्डित जी तो सामने बैठे सबको दीख रहे हैं।"

स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज ने उत्तर दिया कि तुम अभी छोटे हो, तुम्हें पता नहीं सत्य क्या है और असत्य क्या है? तुम जानते हो कि कल प्रातः औषधालय में पण्डित जी ने दो सौ रोगियों को देखना है। कल जिनको औषधि देनी है, उनके लिए आज औषधि तैयार करनी होगी। यह देवी तो घूमती-फिरती इधर आ निकली और जाते-जाते यदि पण्डित जी के पास बैठ जाती तो उनका अमूल्य समय नष्ट होता। औषधि रह जाती और न जाने कल कितने रोगी निराश लौटते। यह वहां बैठकर अपने रोगों की कहानी छेड़ देती। रोगों का क्या है, रोगी तो

सारा संसार है परन्तु देखने वाली बात तो यह कि इस समय इस एक की ओर ध्यान दिया जाये अथवा कल दूर-दूर से आने वाले दो सौ रोगियों का विचार किया जावे?

सत्य यह है या उन दो सौ रोगियों की सेवा का विचार अपने सम्मुख होना चाहिए।

किसी भी संस्था में कोई भी वेतन भोगी इतनी लग्न से कार्य नहीं करेगा। यह तो सब श्रद्धा का चमत्कार था कि श्री राम अपने तन के सुख की तनिक भी चिन्ता न करते हुये मठ के निर्माण व परोपकार के कार्यों में ऐसे लीन रहते थे।

सत्य के व्रत का पालन करते हुये स्वामी स्वतंत्रानन्द जी ने कभी भी अपने आप को मौत के मुंह में देने से भी संकोच नहीं किया। कैसी शिक्षाप्रद कहानी है कि यहां परोपकार के लिए वे अपने परम प्रिय शिष्य राम के लिए कहते हैं "पता नहीं वह कौन है?"

दयानन्द मठ दीनानगर के भिक्षा के नियम

पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज ने जब मठ की स्थापना की तो यह नियम बनाया कि एक समय का भोजन भिक्षा से आया करेगा। यह नियम तभी से चला आ रहा है। दोपहर के भोजन के लिए मठ के साधु ब्रह्मचारी भिक्षा के लिए नगर में चले जाते हैं। बारह बजे से पहले भिक्षा लेकर मठ में पहुंच जाते हैं। नगर निवासी देवियां बड़ी श्रद्धा से ब्रह्मचारियों की वाट जोहती हैं।

पूज्यपाद स्वामी स्वतंत्रानन्द जी ने भिक्षा के लिए कुछ नियम निश्चित किए थे। उन नियमों का आज भी पूरा-पूरा पालन किया जाता है। वे नियम इस प्रकार से हैं:—

(१) भिक्षा मांगते समय किसी से बात नहीं करनी।

(२) कोई गाली भी दे तो उसका उत्तर नहीं देना।

(३) किसी के घर में प्रवेश नहीं करना।

(४) किसी के द्वार पर एक मिनट से अधिक नहीं रुकना। एक मिनट भी तभी ठहरना है जब कि घर से यह आवाज़ आए कि ठहरो।

(५) भिक्षा उतनी ही मांगो जितनी आवश्यकता है।

(६) यदि आश्रम में भिक्षा के पश्चात् और यात्री आ जायें तो उसी को बांट कर खाओ।

(७) यदि भिक्षा के समय कोई औषधि आदि पूछे तो कहो कि औषधालय में आकर औषधि मांगो।

(८) यदि भिक्षा में कोई मांस दे तो मांस फेंक दो परन्तु रोटी रख लो। और यदि रोटी पर रखकर मांस दे तो रोटी का पापड ऊपर से उतार कर फेंक दो। रोटी रख लो।

यहां यह भी स्मरण रहे कि मठ की स्थापना के आरम्भिक काल में संस्था के महान् संस्थापक भी स्वयं भिक्षा करने जाते रहे। पचास वर्ष से ऊपर का समय हो गया है आज तक एक भी ऐसी घटना नहीं घटी, जबकि मठ के साधुओं व ब्रह्मचारियों ने भिक्षा मांगते हुये उपरोक्त नियमों में से किसी एक का भी उल्लंघन किया हो। यह एक अद्वितीय इतिहास है जिस पर प्रत्येक वैदिक धर्मी जितना भी गौरव करे थोड़ा है।

मठ में स्वामी जी की दिनचर्या

पूज्य पुरूषों की दिनचर्या जनसाधारण के लिए बड़ी शिक्षाप्रद व अनुकरणीय होती है। श्री आचार्य जगदीश जी बहुत लम्बे समय से दयानन्द मठ दीनानगर में सेवारत हैं। आपने स्वामीजी की दिनचर्या इस प्रकार से बताई है:—

स्वामी जी प्रातः तीन बजे उठ जाते हैं।

३-४ बजे तक हाथ-मुंह धोकर शौच आदि से निवृत्त होकर चार बजे सब मठवासियों को जगा देते हैं।

सब उठकर प्रातःकाल के वेदमंत्रों का पाठ करते हैं फिर श्री स्वामी जी अपनी कुटिया में चले जाते हैं।

साढ़े ५ बजे कुटिया से बाहर निकलते हैं। साढ़े ५ बजे भ्रमण के लिए मठ से बाहर चले जाते हैं और साढ़े ६ बजे मठ लौट आते हैं। फिर सात बजे तक नगर से आए सज्जनों से वार्तालाप करते हैं।

सात बजे से ७-४५ बजे तक स्नान करने जाते हैं। वहीं मालिश व आसन-व्यायाम कर लेते हैं और वस्त्र भी धोकर आते हैं।

आठ बजे से बारह बजे तक औषधालय में रोगियों की सेवा में। बारह बजे से एक बजे तक सबको भोजन कराना व स्वयं करना। एक बजे से दो बजे तक विश्राम। दो बजे से तीन बजे तक दूर से आए उन रोगियों को देखना जो औषधालय के समय में नहीं आते।

तीन से पांच बजे तक ब्रह्मचारियों को पढ़ाना।

पांच से छः बजे तक सबके साथ मठ में श्रम।

छः से सात बजे तक नगर वालों से वार्तालाप। संस्थाओं के प्रबन्ध संबधी सब परामर्श इसी समय किया जाता है।

सात से आठ बजे तक सन्ध्या तथा स्नान आदि।

आठ बजे से साढ़े आठ बजे तक गऊशाला में जाकर एक-एक गाय को प्यार देना। उसका ब्रह्मचारियों से सब वृत्तान्त पूछना।

साढ़े आठ बजे से नौ बजे तक फार्मेसी व मठ की आय व्यय विषयक ब्र० चन्द्रशेखर शास्त्री से बातचीत।

नौ बजे से साढ़े नौ बजे तक भोजन।

साढ़े नौ बजे से दस बजे तक फिर मठ के प्रबंध संबंधी बातें आचार्य जगदीश जी से और अगले दिन के कार्यक्रम की चर्चा। दस बजे से साढ़े दस बजे तक पुनः गऊशाला में। गऊओं को ठीक-ठीक स्थान पर बांधा गया है। यह सब व्यवस्था देखनी।

दस से ग्यारह बजे तक उन लोगों को पत्रोत्तर देना जो पत्र स्वामी जी अपने ही हाथ से लिखते हैं। कुछ पत्र दिन में दूसरों से लिखवा देते हैं।

स्वामी जी प्रातराश नहीं लेते।

आपका नियम है कि जब भी रात्रि नींद खुल जावे, बिस्तर त्याग देते है। ईशोपासना में बैठ जाते हैं। लेखक ने भी कई बार आपको रात्रि एक बजे और दो बजे भी ध्यान में बैठे देखा है।

रात्रि सोते कब हैं, यह पता नहीं परन्तु ग्यारह बजे के पश्चात् कुटिया में कोई जाता नहीं।

यह साधु सन्त निराला है

क्या कहना है इस स्वामी का, यह साधु सन्त निराला है।
ये सेवा-धन के धन मुनि, इनके उर में इक ज्वाला है।।
इनके जीवन में मस्ती है, इनमें सेवा का भाव प्रबल।
दिनरात इन्हें परहित चिन्ता, इनका ईश्वर विश्वास अटल।।

सुख सुविधा से मुख मोड़ लिया, घर बार कभी का छोड़ दिया।
गुरुदेव की संगत की रंगत, ईश्वर से नाता जोड़ लिया।।
दुखियों के दिल से पूछो तो, ये कैसे पर-उपकारी हैं।
शूलों पर चलते आए हैं, ये बलिदानी व्रतधारी हैं।।

जो कहते हैं सो करते हैं, दुखियों की पीड़ा हरते हैं।
ये उन चरणन के अनुरागी, जो परहित जीते-मरते हैं।।
वाणी में इन की अमृत है, कथनी-करनी में भेद नहीं।
मन निर्मल, कोमल हृदय है, जीवन में किञ्चित् छेद नहीं।।[8]

ईश्वर की प्यारी वाणी पर, सुख साज सभी कुछ वार दिया।
अपने मृदु वचनों से स्वामी, कितने भटकों को तार दिया।।
गो रक्षक दीनों के पालक, ये तपोनिष्ठ ये दयानिधि।
ये कुशल प्रबंधक सञ्चालक, इनकी अनुपम है कार्यविधि।।
कितनों के जीवन बदल दिये, किस किस का है कल्याण किया।
कितना साधु ने काम किया, कितनों का नव-निर्माण किया।।

न चिन्ता पीने-खाने की, बस सेवाधर्म कमाने की।
है ललक प्रभु को पाने की, जीवन को सफल बनाने की।।
इनका चिन्तन गम्भीर सरस, ये दयानन्द के दीवाने।
ये मृत्युञ्जय हैं प्रभु प्रिय, ये मौत से डरना क्या जानें?
इन पर है मान मनुजता को, ये शान हैं ऋषियों मुनियों की।
इन पर अभिमान समाजों को, ये शोभा यतियों गुणियों की।।

जिसने इस सुत को जन्म दिया, हम नतमस्तक उस माता को।
हम नतमस्तक परमेश्वर को, जगदीश्वर विश्व विधाता को।।
श्रद्धा से शीश झुकाते हम, उस ज्ञानी को उस ध्यानी को।
उस चतुर चतेरे शिल्पी को, उस लौहपुरुष बलिदानी को।।

ये सर्वानन्द सदा रहते, इनको ऐसा ही नाम मिला।
सुरभित यह सकल समाज हुआ, बगिया में ऐसा फूल खिला।।
ये ज्ञान-पिपासु 'जिज्ञासु', ये जीवन मुक्त मुनि प्यारे।
ये सर्वानन्द गुरु सबके, हम इनके अनुचर हैं सारे।।

रचयिताः— प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु' वेद सदन, अबोहर १५२११६

स्वामी सर्वानन्द जी महाराज से

यह तेरा इजज़[9], तेरी सादगी, यह हुसने[10] अमल,
तेरे ख़लूसो करम[11] का कोई जवाब नहीं।
अजातशत्रु है, तू बुद्ध-सा ज़माने में,
अदू[12] पै भी तेरी रहमत[13] का कुछ हिसाब नहीं।
फ़कीरे कौम[14] हकूमत है तेरी हर दिल पर,
है तेरा मर्तबा[15] शाहों[16] से भी बुलन्द[17] कहीं।
ऋचायें वेद मुकदस[18] की तेरे लब[19] पै सदा,
है तेरा सीना बेकीना[20] नूरे हक[21] का अमीं[22]।
तेरे ख़लूस[23] ने गैरों[24] को भी किया अपना,
न क्यों झुके तिरे दरपर भला 'शरर' की जबीं[25]।

रचयिताः—प्राध्यापक उत्तमचन्द्र जी 'शरर'

पूज्य गुरुदेव स्वामी स्वतंत्रानन्द जी का महाप्रयाण

गऊ हत्या बन्द करवाने के लिए आर्यजगत् ने पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज को अपना सेनापति चुन लिया। आपने इसके लिए सब प्रकार के उपाय करने आरम्भ कर दिये। देशव्यापी अभियान चलाने के लिए लौहपुरुष जन-जागरण के लिए निकल पड़े। आर्यजनता श्री महाराज के आदेश की प्रतीक्षा में थी। सब लोग यह आशा लगाए बैठे थे कि मानवमात्र की हितकारी, परोपकारी गोमाता की रक्षा के लिए श्री महाराज शासन से टक्कर लेंगे। बलिदान देने की वेला निकट आने लगी परन्तु विधाता के विधि विधान को कौन जानता है।

स्वामी जी महाराज इसी अभियान को चलाते हुये रुग्ण हो गये। बहुत चिकित्सा की गई परन्तु स्वास्थ्य में सुधार नहीं हुआ। आर्यसमाज के प्रमुख नेताओं ने आपको मुम्बई

में किसी बड़े डाक्टर से दिखाना चाहा। यतिवर स्वामी स्वतंत्रानन्द जी को अब मृत्यु का आभास हो चुका था। उनको मुम्बई जाना निरर्थक लगा परन्तु वे अपने भक्तों व आर्यनेताओं की भावना का आदर करते हुये मुम्बई चले गये।

श्री स्वामी ईशानन्द जी गुरुवर की सेवा के लिए साथ थे ही। श्री पं० रामचन्द्र जी मठ के सब कार्यों का सञ्चालन करते थे परन्तु उनका ध्यान अपने गुरु की ओर ही रहता था। श्री पण्डित जी अपने पूज्य आचार्य को इस अवस्था में कैसे छोड़ सकते थे? स्वामी जी से दूर रहना उनके लिए असह्य था परन्तु आप स्वभाव से ही अनुशासनप्रिय रहे हैं। जब गुरुवर ने मठ का सारा भार ही सौंप रखा था तो फिर इन कार्यों को छोड़कर देहली व मुम्बई साथ कैसे जाते?

सहृदय व्यक्ति स्वयं अनुमान लगा सकते हैं कि तब श्री पं० रामचन्द्र जी की मनःस्थिति क्या होगी। यह लेखनी द्वारा लिखने का विषय नहीं हैं। यह तो अनुभव करने वाली बात है। पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज भी अपने प्यारे शिष्य राम की मनःस्थिति को जानते थे। आपने उन दिनों राम को जो पत्र लिखे उनमें से हम दो पत्र यहां देते हैं। इन पत्रों से गुरु-शिष्य के मनोभावों का पता तो चलेगा ही। स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के अटल ईश्वर-विश्वास व आत्म-बल का भी परिचय मिलेगा।

बम्बई
२१-३-५५

प्रिय राम नमस्ते

मैं अनुभव करता हूं मेरा रोगी होना, और आपसे दूर रहना आपके लिए अति कष्टदायक है। किन्तु इसका उपाय मेरी शक्ति से भी बाहर है और मैं विवश हूं। अतः देवेच्छा मानकर सन्तोष ही करना पड़ा है।

स्वतंत्रानन्द

इसके तीन दिन पश्चात् स्वामी जी ने राम को एक और पत्र लिखा।

बम्बई
२४-३-५५

प्रिय राम नमस्ते

पहला पत्र मिल गया होगा। अभी वही अवस्था है। जैसी होगी आगे पुनः लिखूंगा।

जो कोई पूछे उसे बतला देना चिन्ता की अभी कोई बात नहीं है। रोग अवश्य ही है।

स्वतंत्रानन्द

तब सारा आर्यजगत् स्वामी स्वतंत्रानन्द जी के स्वास्थ्य के लिए चिन्तित था। पं० रामचन्द्र जी दूसरों से कम चिन्तित नहीं थे परन्तु अपने विवेक से आपने इसे ईश्वरेच्छा जानकर शान्ति से सब कुछ सहा।

गुरुदेव ने बम्बई बुलवाया

जब स्वामी स्वतंत्रानन्द जी के ओपरेशन का निर्णय ले लिया गया तो आपसे पूछा गया, "क्या आपने किसी को बुलवाना है?" तब उन्होंने कहा, "पं० रामचन्द्र जी को बुलवा लें।"

सूचना पाकर पण्डित जी झट से बम्बई के लिए चल पड़े। गुरुदेव की अन्तिम बेला में आप उनके पास ही थे।
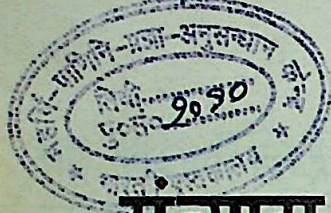
संन्यास-दीक्षा

श्रद्धेय स्वामी स्वतंत्रानन्द जी के देह-त्याग का समय होने लगा तो श्री पं० रामचन्द्र जी सिद्धान्त शिरोमणि ने कहा, "मेरे लिये अब क्या आज्ञा है?"

स्वामी जी महाराज ने कहा, "मठ के Deed (विधान) के अनुसार मठ का अध्यक्ष संन्यासी ही हो सकता है। अब तुम्हारा नाम सर्वानन्द होगा। किसी संन्यासी-महात्मा को बुलवा कर वस्त्र बदल लेना।" कुछ और आदेश भी दिया, जिसकी हम आगे प्रसंग के अनुसार चर्चा करेंगे।

स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के महाप्रयाण के पश्चात् मुम्बई से लौटते हुये श्री पं० रामचन्द्र जी ने अपने पूज्य आचार्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज की अन्तिम वेला पर एक बड़ा सुन्दर भावपूर्ण लेख साप्ताहिक उर्दू रिफार्मर में दिया था। उस लेख में यह उपरोक्त बात भी लिख दी। इसे पढ़कर आर्यजनता पं० रामचन्द्र जी की संन्यास दीक्षा की प्रतीक्षा करने लगी।

श्री पं० रामचन्द्र जी स्वभाव से ही कोलाहल से बचते हैं। इसलिए आर्यसमाज दीनानगर अथवा दयानन्द मठ की ओर से किसी को भी आपकी संन्यास-दीक्षा का कोई निमन्त्रण न दिया गया। आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्कालीन प्रधान श्री महाशय कृष्ण जी ने संन्यास की तिथि निश्चित होने पर दैनिक 'प्रताप' उर्दू में इस पर एक लेख लिख दिया। इससे सारे देश को पं० रामचन्द्र जी की संन्यास-दीक्षा की सूचना मिल गई। हम भी महाशय जी का वह ऐतिहासिक लेख भी आगे दे रहे हैं।

प्रथम मई सन् १९५५ को मठ में ही संन्यास-दीक्षा समारोह हुआ। पूज्य स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ ने यह संस्कार करवाया। श्री महाशय कृष्ण सभा प्रधान स्वयं पहुंचे। स्वामी सुरेन्द्रानन्द जी, महाशय निहालचन्द जी रामांमण्डी, श्री ओमप्रकाश जी आर्य (अब वानप्रस्थी), चौधरी रामसिंह जी घण्डरां हिमाचल, श्री पं० शिवदत्त जी सिद्धान्त शिरोमणि, बटाला से महाशय सत्यपाल, लेखराम नगर (कादियां) से पं० गंगाराम जी, इन पंक्तियों का लेखक, गुरदासपुर से श्री सत्यप्रकाश जी, श्री गिरधारी लाल जी गुप्त, श्री अलखधारी जी वकील, पठानकोट से सेठ कुलदीप चन्द्र जी, पंजाब के पूर्वमंत्री श्री पृथ्वी सिंह जी 'आज़ाद' व पूर्वसंसद सदस्य व मंत्री रह चुके चौधरी सुन्दर सिंह आदि सहस्रों नर-नारियों की उपस्थिति में पं० रामचन्द्र जी ने काषाय वस्त्र धारण किये।

संस्कार विधि के अनुसार स्वामी सर्वानन्द जी ने भिक्षा भी मांगी। महाशय कृष्ण जी ने सर्वप्रथम दयानन्द मठ के नये आचार्य स्वामी सर्वानन्द जी के चरण-स्पर्श किये। महाशय जी के पश्चात् प्रतिष्ठित आर्यों ने स्वामी जी का अभिवादन किया फिर अन्य स्त्री-पुरुषों ने।

स्वामी वेदानन्द जी का संक्षिप्त प्रवचन हुआ। संन्यास के विषय में कुछ कहने की

श्रद्धेय स्वामी सर्वानन्द जी महाराज
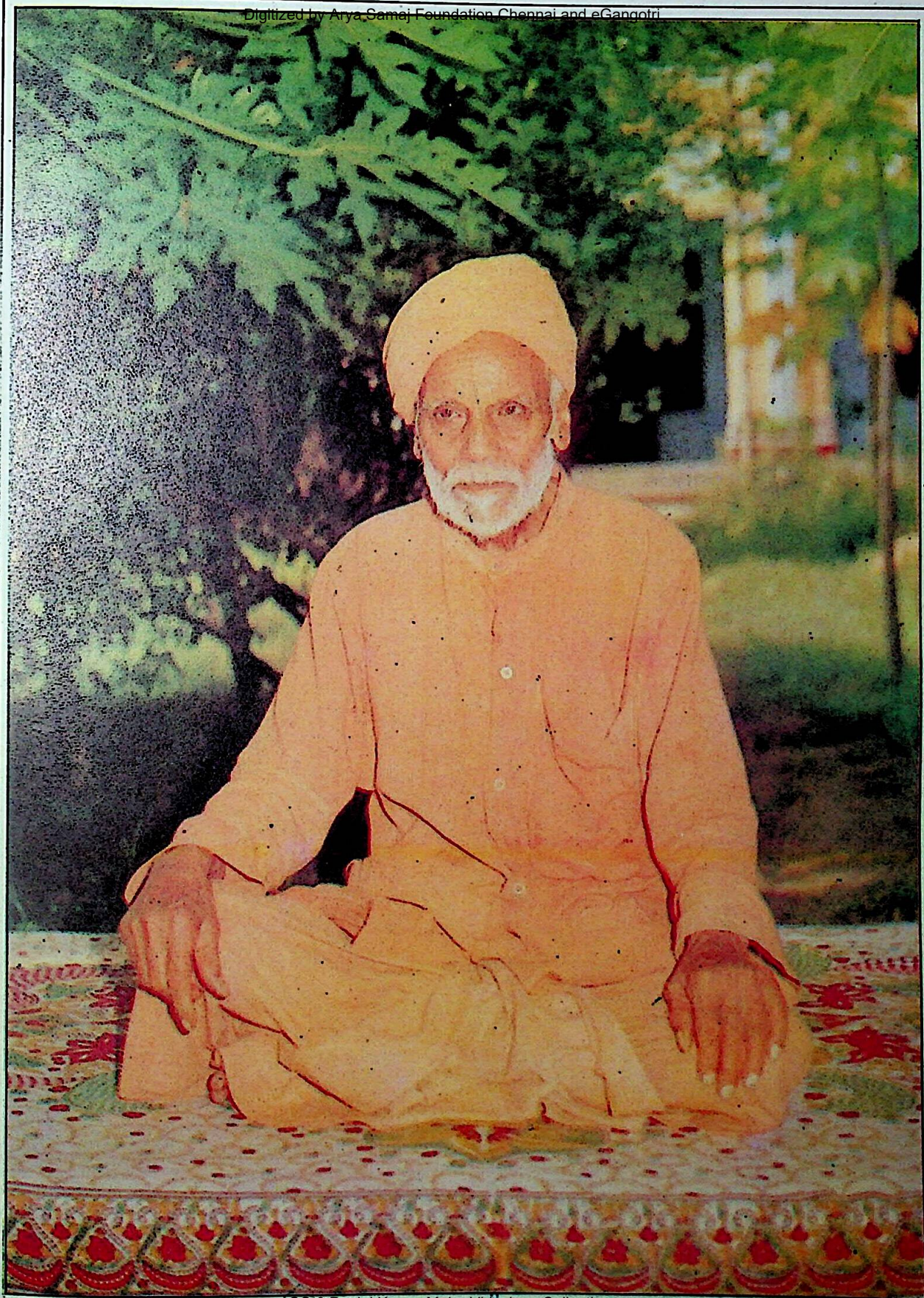
श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज के आयुर्वेद गुरु श्री तिलकराम जी वैद्य
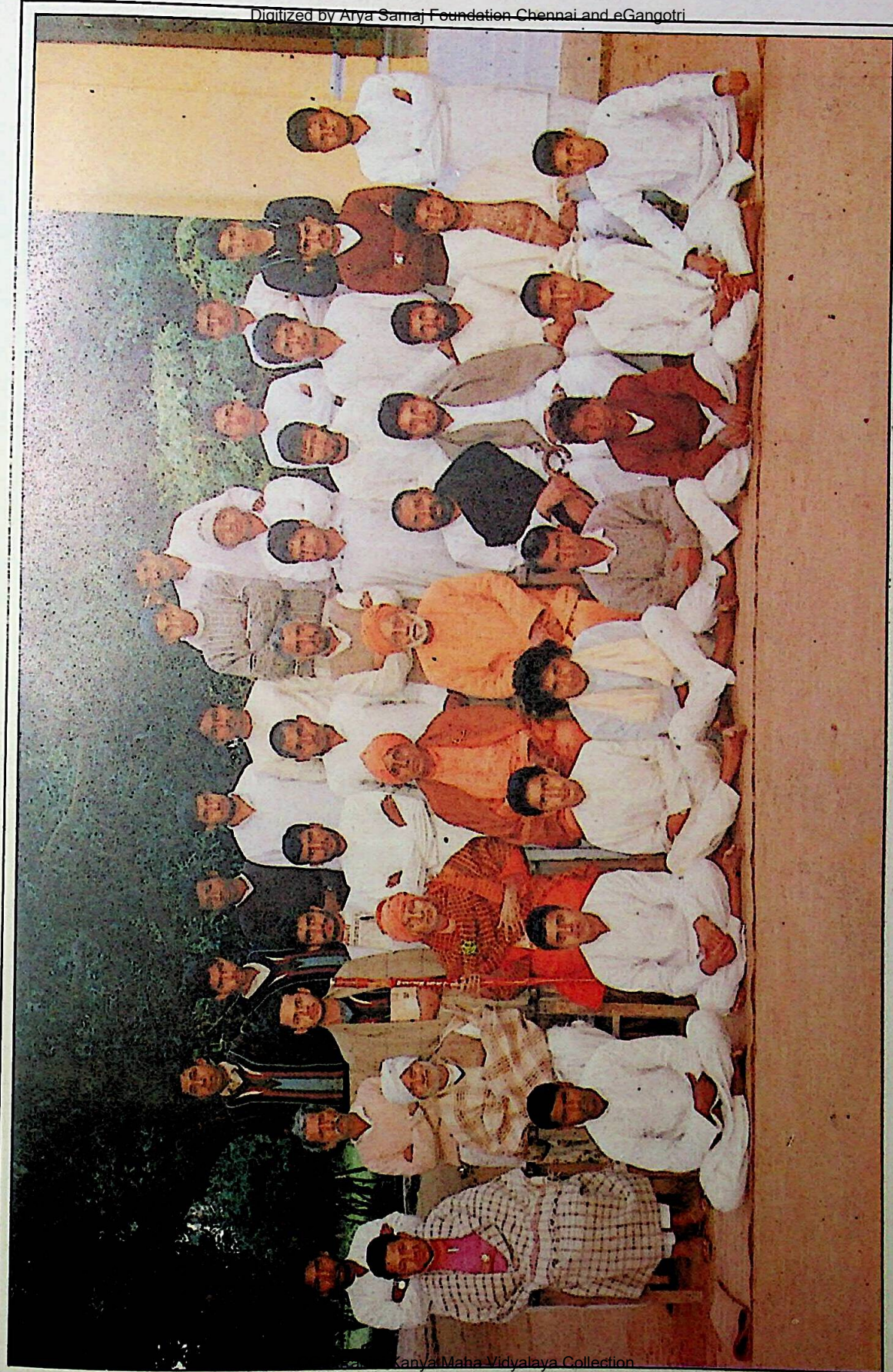
पूज्य स्वामी सर्वानंद जी महाराज दयानन्द मठ के ब्रह्मचारियों, साधुओं व गुरुजनों के बीच में

श्री स्वामी जी महाराज रोगियों की सेवा में
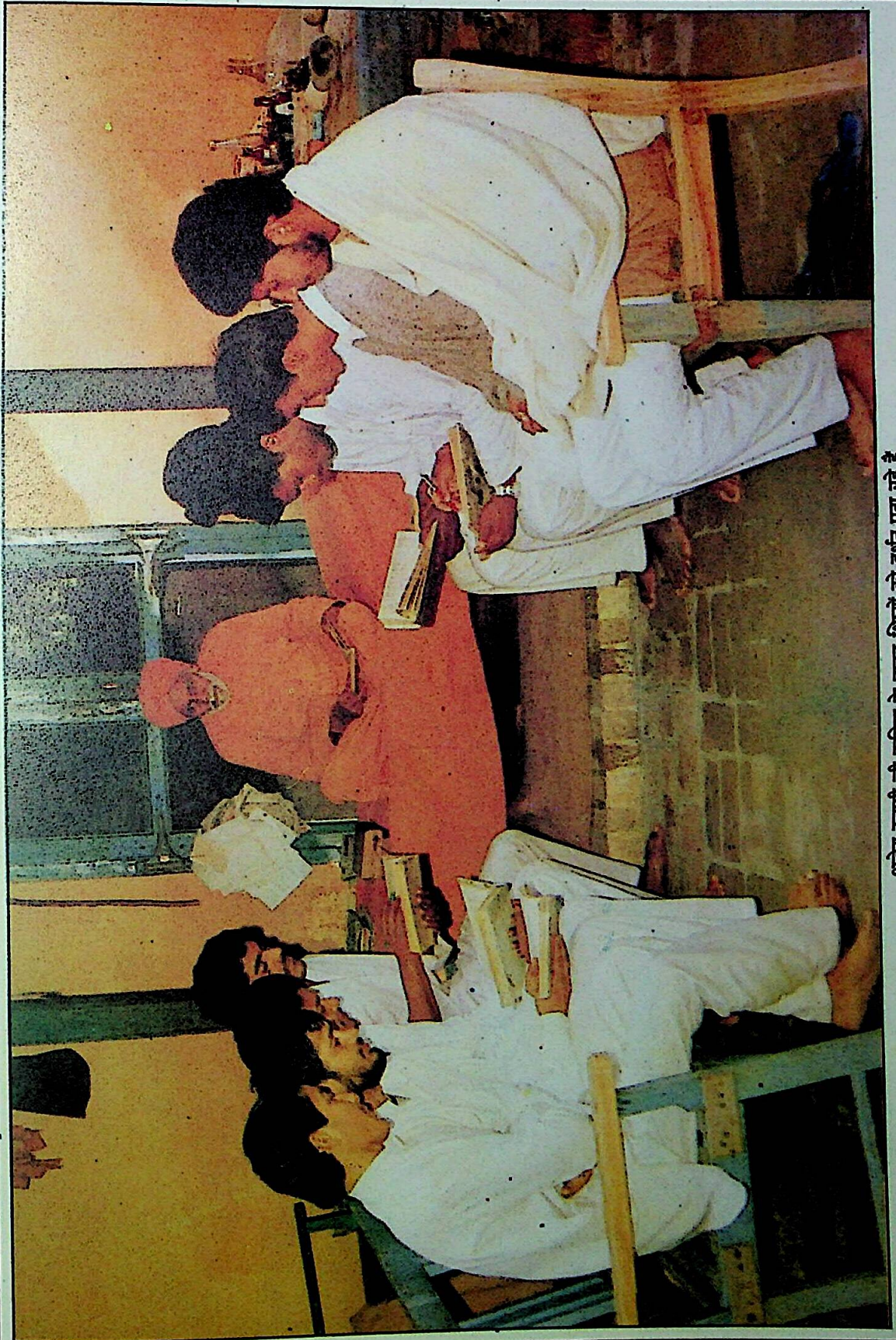
श्रद्धेय स्वामी जी कुटिया के बाहर शिष्यों को दर्शन पढ़ा रहे हैं
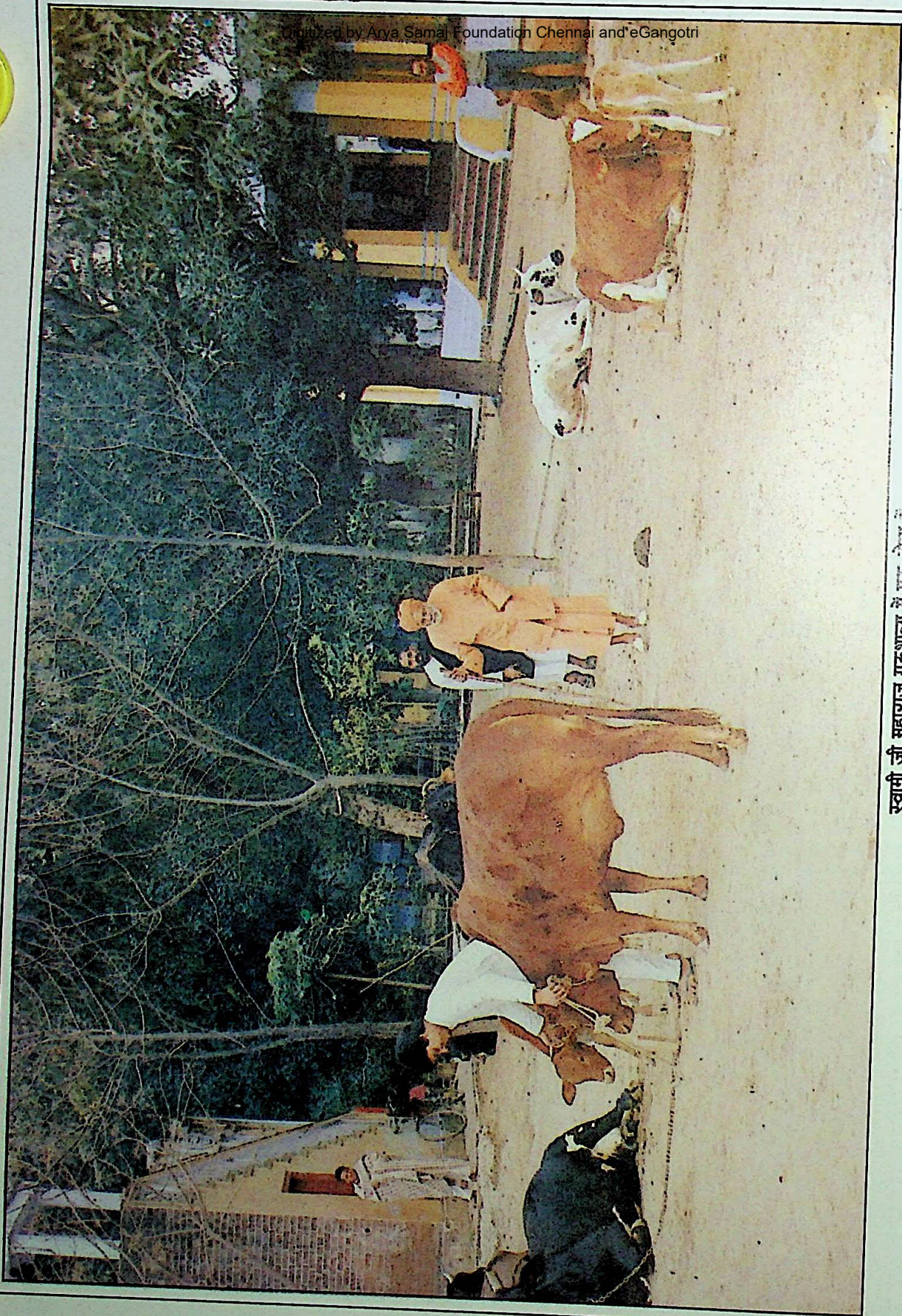
स्वामी जी महाराज गऊशाला में गऊ-सेवा में

स्वामी जी महाराज आचार्य जगदीश जी से कुछ विचार विमर्श करते हुए

मठ के ब्रह्मचारी कृषि-कार्य में

आवश्यकता थी ही नहीं। पं० रामचन्द्र जी के वैराग्य में पहले ही क्या कमी थी? हम तो अन्यत्र भी यह लिख चुके हैं कि राम के बाल्यकाल के सखा, बंधु व ग्राम के बड़े यह बताते हैं कि यह तो आरम्भ से ही वैरागी दीखता था। इनके हाव-भाव से, क्रिया-कलाप व समस्त व्यवहार से यह प्रमाणित होता था कि राम एक संस्कारी जीव है। भक्ति-भाव व सेवाभाव की अपार सम्पदा लेकर राम जन्मा था। राम के अरमानों की अग्नि पर कुछ राख अवश्य पड़ी थी। ऋषि दयानन्द के विचारों की धौंकनी से वह राख भी दूर हो गई।

यह कहना चाहिए कि हमारे राम १९१७ ई० से ही समाज-सेवा में सक्रिय होकर यश कमा रहे थे परन्तु राम के अरमान तो पूरे उस दिन हुये जब उन्हें सहस्रों नर-नारियों की उपस्थिति में स्वामी वेदानन्द जी ने ऋषि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द व स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज वाला भगवा बाना प्रदान किया।

संन्यासी को तीन ऐषणाओं का त्याग करना होता है। यहां लोकैषणा व वित्तैषणा पहले ही न थी। पुत्रैषणा का प्रश्न ही न उठता था। राम ब्रह्मचारी के रूप में ही वर्षों से अपने माता-पिता, भाई-बहिनों, कुल, ग्राम व सगे संबंधियों के मोह पाश को तोड़ चुक थे फिर भी संन्यास-दीक्षा के साथ परम्परा का विधिवत् पालन हो गया। तब हमने तुकबन्दी करके एक कविता में लिखा था:—

राम का परिवार है संसार सारा हो गया।
राम का संसार से है आज से सम्बन्ध भंग।।

वे नयन कितने भाग्यशाली थे जिन्होंने श्री महाराज की संन्यास-दीक्षा का महोत्सव देखा। सर्वथा आडम्बर रहित इस धार्मिक पर्व का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता।

गुरु जी का एक अन्तिम आदेश और उसका पालन

श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के देह-त्याग के कुछ दिन बाद श्री पं० रामचन्द्र जी ने रिफार्मर में जो लेख दिया था उसी में यह भी छपा था कि जब आपने गुरु जी से अपने लिए कोई आज्ञा पूछी तो पूज्य श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज ने राम को यह भी कहा था, "देखो मैं बहुत संस्थाओं का प्रधान हूं किन्तु तू किसी संस्था का प्रधान आदि बनने की इच्छा प्रकट न करना। यदि कोई बना दे बन जाना। अपने आप बनने का यत्न न करना।"

श्री स्वामी ईशानन्द जी व स्वामी सदानन्द जी मैंगलूर भी तब वहां उपस्थित थे। स्वामी ईशानन्द जी ने भी हमें यह सब कुछ सुनाया।

इसी प्रसंग में हमने 'लौहपुरुष' में जो कुछ लिखा है, वे ही शब्द यहां दोहराने का लोभ संवरण नहीं किया जा सकता।

"आर्यसमाज का इतिहास लेखक यह लिखेगा कि उनके उत्तराधिकारी पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज ने उनकी आज्ञा का अक्षरशः पालन किया है व कर रहे हैं। आर्यसमाज की गृह-कलह के परिणाम स्वरूप उनको आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का Receiver (रिसीवर) बनाने के लिए उनसे बार-बार प्रार्थना करके मनाना पड़ा। सभा का

प्रधान बनने के लिए उनसे बार-बार अनुनय-विनय की गई। आर्यसमाज के छोटे-बड़े चौधरियों, पदलोलुप नेताओं की दूषित प्रवृत्तियों को जानते हुये स्वामी जी इस जाल में भी न फंसे। इतिहास साक्षी है कि रिसीवर के रूप में दो वर्ष सभा के सर्वेसर्वा स्वामी सर्वानन्द जी महाराज रहे परन्तु इस अवधि में सभा के कोष से एक पैसा भी स्वामी जी महाराज के किराये-भाड़े, भोजन-जलपान आदि पर व्यय नहीं हुआ। सभा के कार्य के लिए निरन्तर भाग-दौड़ करते रहे। रिसीवर का दायित्व क्या संभाला शर-शय्या पर महाराज ने गुरु-आज्ञा के पालन की परीक्षा दी।

आर्यसमाज के इतिहास में जहां घृणित गृह-कलह का दुखद उल्लेख होगा वहां इतिहास लेखक स्वर्ण अक्षरों में यह चर्चा करेगा कि पद पीछे-पीछे भागता था और यह साधु उसकी ओर ताकता भी न था। कितने बूढ़ों व युवकों को तब पदों के लिए तड़पते, तरसते और मरते देखा गया। जोड़-तोड़ के उन दिनों में, वैर-वैमनस्य की उस अवधि में यह वीतराग अलिप्त और अथर्व ही रहा। बड़े-बड़े स्यानों, छोटे-बड़े लीडरों से बहुत कुछ सुनना भी पड़ा परन्तु वीतराग स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के इस चरणानुरागी और महान् गुरु के महान् शिष्य ने अपने आचरण से संन्यास की मर्यादा को पुनर्जीवित करके दिखाया। अत्यन्त अल्पकाल में सभी को इस तपोधन की साधना के सामने शीश निभाना पड़ा। इतिहास का कोई भी विद्यार्थी उस घटना-चक्र को दृष्टि से ओझल नहीं कर सकता।"[26]

माता-पिता का निधन

संन्यासी हो तो ऐसा

अब तो आर्यसमाज में भी कई साधु घने Modern आधुनिक से हो गये हैं। हम बाल्यकाल में ऋषि का जीवन-चरित्र पढ़ा करते थे तो इस बात का हमारे हृदयों पर विशेष प्रभाव पड़ा कि ऋषि जी ने अपने जन्म स्थान व माता-पिता का नाम तक न बताया। जो ऋषि जी के बारे में पढ़ते थे सो प्रत्यक्ष में बाल ब्रह्मचारी भीमकाय संन्यासी श्रद्धेय स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज व वेदशास्त्र मर्मज्ञ स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ के जीवन में देखते थे।

लेखक का जन्म एक आर्यसमाजी पिता महाशय जीवन मल के घर में हुआ। हम बहुत छोटे-छोटे थे कि घर वालों से व समाज के लोगों से यही सुनते रहे कि स्वामी स्वतंत्रानन्द जी का जन्म हरियाणा में कहीं रोहतक जिला का है। आर्यसमाज के एक शिरोमणि विद्वान् नेता श्री पं० गंगाप्रसाद ज़ी उपाध्याय को हमारी पुस्तक वीर संन्यासी के छपने तक स्वामी जी के जन्म स्थान व क्षेत्र का ज्ञान न था। ऐसा ही श्री स्वामी वेदानन्द जी महाराज के निधन पर भूमण्डल प्रचारक मेहता जैमिनि व शास्त्रार्थ महारथी पं० शान्तिप्रकाश जी ने अपने-अपने लेख में उनके जन्मस्थान का प्रश्न उठाया। ये साधु महात्मा संन्यास की मर्यादा निभाते हुये अपने पूर्व कुल, माता-पिता व जन्मस्थान की कभी चर्चा करते ही न थे। अब तो ऐसे बहुत से बावे हैं जो बिना प्रसंग के ही अपने सगे-संबंधियों तथा घर-बार की सब चर्चा व्याख्यानों में कर देते हैं।

पं० रामचन्द्र जी ने १९५५ में संन्यास लिया। इससे पूर्व ब्रह्मचारी के रूप में आपकी समाज सेवा का एक लम्बा इतिहास था। ब्रह्मचारी के रूप में अपने घर-बार की चर्चा करने व माता जी, भाई-बहिनों से संबंध पर कोई रोक तो न थी फिर भी आपने जीवन का जो लक्ष्य चुना था, उसके अनुरूप बहुत सोच-समझंकर चलते थे। मैंने पं० रामचन्द्र जी के संन्यास-दीक्षा समारोह के पश्चात् दीनानगर समाज के प्रधान श्री ला० देवदत्त जी से पूछा, क्या पं० रामचन्द्र जी के माता-पिता हैं? क्या वे कभी मठ में आए? क्या आपने उन्हें देखा है?

मुझे भलीप्रकार से स्मरण है कि लाला जी ने कहा था कि मुझे भी कोई अधिक ज्ञान नहीं। पण्डित जी ने वस्त्र तो आज रंगे है, साधु तो पहले ही थे। माता जी एकबार मठ में पुत्र से मिलने आई थीं। मैंने भी दर्शन किए थे।

श्री स्वामी जी महाराज से भी एकदिन इस विषय में कुछ प्रकाश डालने का आग्रह किया तो आपने कहा कि माता जी एकबार एक फ़ौजी के साथ मुझे मिलने मठ में आई थीं। तीन दिन यहां रही थीं। यह संन्यास से कुछ समय पहले की घटना है। सन् १९५६ में आपकी पूज्या माता श्रीमती फूलांदेवी का निधन हो गया। परिवार के लोगों ने आपको भी सूचना दी परन्तु, आप अन्त्येष्टि व किसी शोकसभा में सम्मिलित होने के लिए जन्मस्थान पर नहीं गये। यही संन्यास की मर्यादा है और आपने संन्यासी वेश की शोभा बढ़ाई।

पूज्य पिता जी का निधन सन् १९४५ में हुआ था। उस समय आप संन्यासी नहीं थे। इसलिए सूचना मिलने पर घर पर गये थे।

सन् १९७७ में आपके भाई रिछपाल सिंह जी की मृत्यु हो गई। तब भी आप जन्मस्थान पर न गये। राम का हृदय कोमल था। सर्वानन्द स्वामी 'करुणा सागर है'। यह उनके सम्पर्क में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति जानता है परन्तु पारिवारिक बंधन तोड़कर फिर स्वामी सर्वानन्द जी ने कभी भी कुटम्बियों के बारे में कुछ नहीं सोचा। आर्यसमाज इस दृष्टि से भाग्यशाली है कि ऋषि की शिष्य परम्परा में एक ऐसा आदर्श संन्यासी है जिसने अपने व्यवहार से आर्ष-मर्यादाओं का पूरा-पूरा पालन व रक्षा की है। आने वाले युग में आर्य संन्यासियों के लिए स्वामी जी महाराज का शुभ आचरण एक उदाहरण रहेगा। आज भी सभी के मुख से हम यहीं सुनते हैं, **"संन्यासी हो तो ऐसा"**।

ग्राम के लोगों ने लेखक को बताया कि रामचन्द्र संन्यास से पूर्व तो कभी कभी सासरोली आया करते थे परन्तु १९५० ई० के पश्चात् फिर कभी भी यहां नहीं पधारे। वे जब-जब यहां आए, औषधियों का एक झोला साथ लाया करते थे और जन्म स्थान पर भी रोगियों की सेवा में लगे रहते थे। एकबार उस क्षेत्र के एक युवक पर आकाश की बिजली गिरी। वह घायल हुआ या जला —— कुछ भी समझिए। उसके बचने की कोई आशा नहीं थी। रामचन्द्र जी ने उसको अपनी औषधियों से ठीक कर दिया। यह घटना सन् १९४५ की

बताई जाती है। झाड़ली ग्राम में बिजली गिरी थी। वह युवक इस घटना के ३०-४० वर्ष पश्चात् तक जीवित रहा। ग्राम के लोग अपने प्यारे राम की सेवा की ऐसी-ऐसी घटना बड़े गर्व से सुनाते हैं।

मोह वश एक सज्जन ने कहा राम साधु तो बाल्यकाल से ही थे परन्तु निर्मोही बहुत हैं। मोह तो है ही नहीं। देखिए उनका सगा भाई मर गया, वे यहां नहीं आए। चचेरा भाई देवी सहाय मर गया, वे सासरोली नहीं पहुंचे।

स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज ने ऋषि-जीवन में लिखा है कि २२ वर्षों के पश्चात् साधु जन्म स्थान की फेरी लगाते हैं। यह साधुओं की परम्परा है। स्वामी सर्वानन्द जी एक ऐसे संन्यासी हैं कि उन्होंने संन्यास धारण करने के पांच वर्ष पूर्व सासरोली की यात्रा की फिर वहां जाने का नाम ही नहीं लिया। अब तो संन्यास लिए हुए भी पैंतीस वर्ष से ऊपर समय व्यतीत हो गया। ग्रामवासी उनके दर्शनों के लिए हमने जब तड़पते-तरसते देखे तो अधरों पर यह पंक्ति उतर आई:— **'अखियां उन दर्शन की प्यासी'**

जब भाई ही को न पहचाना

जब ग्राम की यह चर्चा चल पड़ी तो इसी संबंध की एक घटना यहां दे दें। श्री रामचन्द्र जी के एक ताऊ श्रीरामजीलाल के सुपुत्र का मन उदास हो गया तो भाई से मिलने के लिए सन् १९६४ में मठ गया। सिहराम जी ने महाराज जी को पहचान लिया। नमस्ते की। स्वामी जी ने नमस्ते का उत्तर देते हुये पूछा,

"कहिए कहां से आए हो?"

श्री सिंहराम ने कहा, "रोहतक जिला से।"

फिर पूछा, "कौन सा ग्राम?"

सिंहराम ने कहा, "सासरोली"।

'सासरोली' सुनकर भी स्वामी जी के हाव-भाव में कोई परिवर्तन न आया।

फिर पूछा, "आपका शुभ नाम क्या है"

अतिथि ने कहा, "सिंहराम"।

'सिंहराम' सुनकर भी संन्यासी ने बड़ी शान्ति व धीरज से कहा, "अहो! अब तो आकृति ही बदल गई। पहले कुछ और थी, अब कुछ और हो गई।"

सिंहराम भी बड़े शान्त स्वभाव के हैं। ये शब्द सुनकर बोले, जी हां, बदल गई है।

स्वामी जी ने सेवा-सत्कार तो किया। घरबार की, पुराने दिनों की बाल्यकाल की, यौवन की बीती बातों की कुछ भी तो चर्चा नहीं की।

वैराग्य इसी का नाम है। यह है वह संन्यास जिसके बारे में आचार्य चमूपति जी ने लिखा है:—

'कदम तेग की धार पर धर के चलना'

अर्थात् तलवार की धार पर पग धर कर चलने का नाम संन्यास है। ऐसा संन्यासी तो स्वामी सर्वानन्द जी महाराज जैसा विरला महामानव ही मिलेगा।

श्री पं० माथुर शर्मा जी के निधन पर

श्री पं० रामचन्द्र जी सिद्धान्त शिरोमणि का एक संक्षिप्त लेख

(यह लेख उर्दू रिफार्मर लाहौर के ११ मार्च सन् १९४५ के अंक में पृष्ठ ११ व १२ पर छपा मिलता है। प्रायः इन पृष्ठों पर 'सामाजिक जगत्' शीर्षक से आर्य समाजों के समाचार प्रकाशित हुआ करते थे। इस लेख को भेजा ही समाचार के रूप में गया था। उसकी समाप्ति पर 'मंत्री, दयानन्द मठ दीनानगर' छपा है। तब श्री पं० रामचन्द्र जी ही मठ के मंत्री थे। श्री पं० माथुर शर्मा आर्यसमाज के एक रत्न थे। बड़े साहसी, त्यागी व सिद्धान्तनिष्ठ प्रचारक थे। देश-विदेश में वैदिक धर्म-प्रचार किया। मठ को उन जैसे सच्चे आर्य पर बड़ा अभिमान था। मठ की स्थापना के समय से ही वह मठ में रह रहे थे। 'जिज्ञासु')

''आर्यजगत् में यह समाचार बड़े शोक के साथ सुना जायेगा कि आर्यजगत् के प्रसिद्ध भजनोपदेशक श्रीमान् माथुर शर्मा जी का देहान्त होली के दिन २६ फरवरी को प्रातः नौ बजे दयानन्द मठ दीनानगर में हो गया है। पंडित जी पहली फरवरी को रुग्ण हो गये थे। आरम्भ में साधारण ज्वर व खांसी थी। अन्तिम समय तक ऐसा ही रहा जिससे वह बहुत निर्बल हो गये थे। दीनानगर के सभी वैद्यों व डाक्टरों ने मिलकर चिकित्सा की परन्तु उनका रोग दूर न हुआ। रुग्ण अवस्था में उनकी सेवा-सुश्रूषा का प्रबंध इतना अच्छा था कि जहां वह स्वयं प्रसन्न थे, वहां नगर-निवासी भी इस सेवा की प्रशंसा कर रहे हैं।

जहां तक मुझे ज्ञात है कि उन्होंने ४५ वर्ष आर्यसमाज की सेवा की है। पहले वह खड़ताल द्वारा भजन गाकर प्रचार किया करते थे। उसके पश्चात् बहुत समय से वह मैजिक लालटैन से प्रचार किया करते थे। पण्डित जी में बहुत गुण थे। प्रथम गुण यह था कि वह आर्यसमाज के सिद्धान्तों के विषय में किसी से समझौता नहीं करते थे। वह इसमें बड़े दृढ़ थे। जैसा कि आजकल लोग कहा करते हैं कि खण्डन मण्डन का युग नहीं है। आप लोगों को बहुत खरी-खरी सुनाया करते थे कि तुम लोग वह हो कि गंगा गये तो गंगाराम, जमना गये तो जमनादास।

दूसरा गुण यह था कि प्रचार-कार्य के लिए उनका जोश बुढ़ापे में भी युवकों के समान नित्य नया था। उनका जीवन प्रत्येक आर्यसमाजी के व उपदेशक के लिए पथ-प्रदर्शक है।''

दयानन्द मठ के संबंध में

श्रीयुत महाशय कृष्ण जी का एक लेख

(यह लेख उन दिनों का है जब भारतीय स्वाधीनता संग्राम के लिए वायसराय के आदेश से पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज को पहले शाही किला लाहौर में बन्दी बनाकर यातनायें दी गई फिर दीनानगर में स्थानबद्ध किया गया। उन पर दोष यह लगाया गया कि उन्होंने सेना में विद्रोह फैलाने का अपराध किया है। वायसराय के आदेश से बन्दी बनाए गये, वही एकमेव संन्यासी थे। इस लेख में मठ की उन्नति पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। श्री पं० रामचन्द्र जी के सेवा-भाव से उस वर्ष ३६००० छत्तीस सहस्र रोगियों को औषधालय से लाभ पहुंचा। इतने रोगियों का आरम्भिक काल में एक छोटे से ग्राम में जंगल में औषधी लेने आना बहुत चकित कर देने वाली उपलब्धि है। यह लेख महाशय कृष्ण सरीखे सिरमौर पत्रकार की लेखनी से लिखा गया है। इस लिए बड़ा महत्त्वपूर्ण है। यह लेख उर्दू रिफार्मर के ३० जनवरी १९४४ के अंक में पृष्ठ छः पर छपा मिलता है। रिफार्मर ने यह लेख दैनिक उर्दू प्रताप लाहौर से उद्धृत किया था। यह महाशय जी का एक सम्पादकीय था। जिज्ञासु)

"दयानन्द मठ दीनानगर के संस्थापक श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी गत नौ-दस मास से स्थानबद्ध हैं। पहले उन्हें बन्दी बनाकर गुरदासपुर के कारागार में रखा गया। उसके पश्चात् लाहौर के दुर्ग में, दो मास के पश्चात् उन्हें मुक्त कर दिया गया। तब से दीनानगर में स्थानबद्ध हैं, डिप्टी कमिशनर गुरदासपुर की अनुमति के बिना वे वहां से बाहर पग नहीं धर सकते।

गत नवम्बर में उन्होंने डिस्टरिक्ट मैजस्ट्रेट गुरदासपुर को लिखा कि मेरे दांत खराब हैं। लाहौर के किसी डाक्टर को दिखाना चाहता हूं। इसके साथ ही आर्यसमाज लाहौर के वार्षिकोत्सव में भी सम्मिलित हो सकूंगा। अतः मुझे इन दिनों के लिए लाहौर जाने की अनुमति दी जावे। उनके इस पत्र का उत्तर आर्यसमाज लाहौर के वार्षिकोत्सव के पश्चात् दिया गया। और वह भी यह नहीं कि आप लाहौर जा सकते हैं। गत दिसम्बर में उन्होंने पुनः डिस्टरिक्ट मैजस्ट्रेट को लिखा कि मैं अपने दांतों की चिकित्सा के लिए लाहौर जाना चाहता हूं तथा यह भी लिख दिया कि मैं १७ जनवरी से जाना चाहता हूं।

१७ जनवरी बीत गई है। इस समय तक स्वामी जी लाहौर नहीं पहुंचे जिससे अनुमान होता है कि इस बार भी उनके पत्र का कोई उत्तर नहीं दिया गया।

ये तथ्य जिनका मैंने उल्लेख किया है, डिस्टरिक्ट मैजस्ट्रेट गुरदासपुर के व्यवहार के विरुद्ध रोष-द्रर्शन के लिए प्रत्युत नहीं किसी और प्रयोजन के लिए और वह प्रयोजन यह है कि दयानन्द मठ चल रहा है तो स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज की कृपा से। आर्यपुरुष अपने आप इतना दान नहीं देते जिससे इसकी आवश्यकतायें पूर्ण हो जायें। स्वामी जी को भी धन लाना पड़ता था।

दयानन्द मठ के अधीन एक सफल औषधालय चल रहा है, जिसमें पं० रामचन्द्रजी सिद्धान्त शिरोमणि वैद्य के रूप में कार्य करते हैं। यद्यपि वे अवैतनिक हैं तथापि औषधालय पर बहुत व्यय होता है, कारण यह कि सब रोगियों को निःशुल्क औषधि दी जाती है। रोगी भी थोड़े नहीं होते। गत वर्ष ३६,००० (छत्तीस सहस्र) के लगभग रोगी आए थे। रोगी आसपास से ही नहीं, दूर-दूर से भी आते हैं।

दयानन्द मठ का वार्षिक व्यय चार सहस्र रुपये होता है। यह इस स्थिति में है जबकि मठ में जो भी संन्यासी व वानप्रस्थी रहते हैं, उन्हें भिक्षा का भोजन करना पड़ता है और वहां का समस्त जीवन अत्यन्त सरल है। स्वामी जी तो अब कहीं जा नहीं सकते इसलिए दयानन्द मठ का व्यय अब कैसे पूरा हो? हो सकता है तो केवल एक ही ढंग से कि हम स्वयं अपना कर्त्तव्य अनुभव करें और स्वामी जी के आए बिना स्वयं अपनी आहुति वहां भेज दें।

पांच सहस्र कोई बड़ी राशि नहीं। आर्यसमाज में कई सज्जन ऐसे हैं जो अकेले ही पांच सहस्र दे सकते हैं। यदि यह न हो तो भी पांच सहस्र का एकत्र करना कौन-सी कठिन बात है। पचास व्यक्ति एक-एक सौ अथवा एक सौ व्यक्ति पचास पचास रुपये दे दें तो पांच सहस्र पूरा हो सकता है।

मुझे आशा है कि मेरा यह लेख जिस भी सज्जन की दृष्टि से निकलेगा वह अपने कर्त्तव्य का पालन करेगा। यह पांच सहस्र की राशि शिवरात्रि से पूर्व एकत्र हो जावे तो अच्छा है। शिवरात्रि के अवसर पर दयानन्द मठ में बड़ा भारी मेला लगता है। गत वर्षों में स्वामी जी महाराज शिवरात्रि से पांच दिन पूर्व ऋषि दयानन्द के जीवन की कथा किया करते थे। इस बार वे न कर सकेंगे। कारण, सरकार ने उनकी वाणी पर प्रतिबंध लगा रखा है। इसलिए स्वामी वेदानन्द तीर्थ जी आचार्य दयानन्द उपदेशक विद्यालय लाहौर उनके स्थान पर कथा करेंगे। इस मेले पर आसपास के सहस्रों जन एकत्र होते हैं। दंगल भी होता है। दर्शकों के भोजन के लिए लंगर की व्यवस्था होती है।''

श्री पं० शान्तिप्रकाश जी शास्त्रार्थ महारथी के शब्दों में

पूज्य पं० रामचन्द्र जी की दिनचर्या

श्री पं० शान्तिप्रकाश जी का दयानन्द मठ दीनानगर से विशेष संबंध रहा है। आपका प्रथम शास्त्रार्थ दीनानगर में हुआ था। तब मठ की अभी स्थापना नहीं हुई। उस शास्त्रार्थ में आपने दीनानगर के आर्यों का हृदय जीत लिया। दीनानगर के आर्यों की तो आपके प्रति श्रद्धा थी ही, मठ की स्थापना हो जाने से दीनानगर आपके लिए गुरुधाम बन गया। तभी से आप अनेक बार मठ में आ चुके हैं। आपने मठ के आरिम्भक दिनों की श्री पं० रामचन्द्र जी की जो दिनचर्या देखी सो २९ नवम्बर सन् १९९० को लेखक को इस प्रकार से भेजीः—

प्रातःकाल जंगल में शौच आदि जाना।

भ्रमण से लौट कर स्नान, सन्ध्या, हवन-सत्संग में प्रवचन।

औषधालय में रोगियों की सेवा।

ब्रह्मचारियों को मध्याह्नोत्तर पढ़ाना भी।

अतिथियों का स्वागत, सेवा-सत्कार।

औषधियों का निर्माण।

श्री पं० शान्तिप्रकाश जी ने लिखा है **''प्रातः जागरण से रात्रि शयनकाल तक उनको विश्राम करते मैंने कभी नहीं देखा।''**

यह तो हुई मुख्य-मुख्य बातें। श्री पण्डित जी ने लिखा है कि एकबार मैं रियासी (जम्मू राज्य) से लौटकर मठ में पहुंचा। मैं खेत में महात्मा रामचन्द्र जी के पास गया। तब मठ में भूमि समतल नहीं थी। आप कस्सी लेकर भूमि खोद-खोद कर भूमि को समतल बनाने में संलग्न थे। आर्यजाति की इस गौरवपूर्ण ऐतिहासिक संस्था के लिए आपने जो तप किया है, वह अकथनीय है। श्री पण्डित जी लिखते हैं कि ''मेरी उनके तपस्वी, वेदोक्त, स्वच्छ जीवन पर अटूट श्रद्धा है। आप तेजस्वी, परम पुरुषार्थी, पुण्यात्मा, अखण्ड ब्रह्मचारी, निर्लिप्त, सदाचारी, सेवाव्रतधारी, यति, रागद्वेषोन्मुक्त, सच्चे ईश्वरभक्त, ऋषि-महर्षियों के सच्चे प्रतिनिधि हैं। मैं पूज्य स्वामी जी को जीवन-मुक्त महापुरुष मानता व जानता हूं।''

इतिहास
खण्ड तृतीय

कुछ मूर्धन्य

आर्य संन्यासी

"हम किसी का दिया नहीं खाते।

"हम किसी का कार्य नहीं करते।

हम परमेश्वर का दिया हुआ खाते हैं

और परमेश्वर का कार्य करते हैं।"

(पूज्यपाद श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज)

तार्किक शिरोमणि परमहंस परिव्राजकाचार्य स्वामी दर्शनानन्द जी

लेखक :— वीतराग स्वामी सर्वानन्द जी महाराज

(यह लेख पूज्य स्वामी जी ने हमारी पुस्तक 'परमहंस स्वामी दर्शनानन्द' के प्राक्कथन के रूप में लिखा था। इस लेख का अन्तिम पैरा जो लेखक को आशीर्वाद व बधाई के रूप में लिखा गया, यहां नहीं दिया जा रहा। उसकी यहां कोई आवश्यकता नहीं है। जिज्ञासु)

महर्षि दयानन्द जी महाराज के पश्चात् जिन विद्वानों व उपदेशकों ने वैदिकधर्म का प्रचार किया है, उनमें स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज का स्थान बहुत ऊंचा है। उन्हें दिन-रात खाते-पीते, सोते-जागते वैदिकधर्म प्रचार की ही चिन्ता लगी रहती थी। वे सोते समय भी इसी के स्वप्न लेते थे।

शास्त्रार्थ करने का तो उन्हें विशेष चाव और लगन थी। उन्हें पता लगना चाहिए कि अमुक स्थान पर शास्त्रार्थ हो सकता है, तुरन्त वहां पहुंच जाते और आर्यों को शास्त्रार्थ के लिए प्रोत्साहन देते कि चैलेंज दो कि आर्यसमाज शास्त्रार्थ के लिए तैयार है। उनका मस्तिष्क तर्क व प्रमाणों का कोष था।

उनकी सूझ बड़ी विलक्षण थी। विरोधियों के प्रश्नों का, आक्षेपों का उत्तर घड़ा घड़ाया उनके पास पहले से ही होता था। राजस्थान के एक उत्सव का वृत्तान्त एक सज्जन ने सुनाया था। एक व्यक्ति ने सृष्टि-रचना विषयक एक प्रश्न श्रीमान् पं० गणपति शर्मा जी से किया। पण्डित जी ने उत्तर दिया और प्रश्नकर्त्ता को इस विषय में समझाया।

यद्यपि पं० गणपति शर्मा जी बड़ी विलक्षण बुद्धि के दार्शनिक थे और बड़े तार्किक थे। श्री पण्डित जी भी स्वामी दर्शनानन्द जी के ढंग के ही विद्वान् थे किन्तु प्रश्नकर्त्ता को जो कि एक अच्छे पण्डित थे, उनके उत्तर से सन्तोष न हुआ।

साथ के कमरे में श्री स्वामी दर्शनानन्द जी भी ठहरे हुये थे। यह व्यक्ति उनके पास चला गया और अपनी शंका उनके सामने रख दी। स्वामी जी ने उस प्रश्न का उत्तर दो-तीन प्रकार से दिया। वह व्यक्ति पूर्णतया सन्तुष्ट हो गया। उसने कहा, "मैंने अपने जीवन में इतना बड़ा तार्किक व्यक्ति और कोई नहीं देखा। ये तो तर्क स्वरूप हैं। इनका तर्क इतना प्रबल है कि कोई व्यक्ति इनके तर्क का अन्त नहीं पा सकता।"

स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज विचारों में इतने डूबे रहते थे कि एक बार लाहौर में रावी नदी की ओर जा रहे थे। चादर ओढ़ रखी थी। नीचे धोती बांध रखी थी। धोती गिर गई और उन्हें पता ही न चला। ये अपने आगे चलते जा रहे थे कि पीछे आ रहे एक व्यक्ति ने भागकर कहा, "स्वामी जी आपकी धोती गिर गई है।" अपने विचारों में मग्न स्वामी जी बोले, "नहीं, हमारी नहीं, किसी और की होगी।" उसने कहा, "नहीं! आप ही की गिरी है।" यह कहकर उसने जब धोती आगे की तो देखकर कहा, "हां, यह तो हमारी ही है।"

इतने सरल थे स्वामी जी महाराज।

एकबार आप दीनानगर पधारे। सर्दी के दिन थे। आप रज़ाई के बीच में से मुंह निकाले

हुये थे। अलफ़ी (इसे साधु लोग अलफ़ी कहते हैं) में उन्हें देखकर लोगों ने कहा, "स्वामी जी, "यह क्या बना रखा है?" आपने कहा, "अलफ़ी बना ली ताकि शीत न लगे।"

दीनानगर के पुराने आर्य यह घटना प्रायः सुनाया करते थे और स्वामी जी के सरल स्वभाव की बहुत प्रशंसा किया करते थे। श्री स्वामी जी का ईश्वर-विश्वास सबके लिए एक उदाहरण था। कहीं भी भक्तों के कहने पर संस्था खोल देते थे। यदि कोई पूछता कि संस्था चलेगी कैसे? तो वे बड़ी दृढ़ता से कहा करते थे, "ईश्वर देगा। हम वैदिकधर्मी हैं। हमारा ईश्वर पर विश्वास है, वह अपना संरक्षण और सहायता देगा।"

महात्मा नारायणस्वामी

लेखकः श्री स्वामी विद्यानन्द जी महाराज

महर्षि दयानन्द की मृत्यु के ५० वर्ष बाद उनकी निर्वाण अर्द्धशताब्दी मनाई गई थी और सौ वर्ष बीतने पर निर्वाण शताब्दी मनाई गई थी। समय-समय पर अनेक बार आर्य महासम्मेलनों का भी आयोजन होता रहा है। ये सभी सफल रहे। परन्तु जिन्होंने १९२५ में मथुरा में आयोजित जन्मशताब्दी समारोह देखा था उनका कहना है कि वैसा समारोह तो 'न भूतो न भविष्यति'।

शताब्दी-स्थल पर तमाखू आदि सभी प्रकार के नशीले पदार्थों के बेचने पर प्रतिबन्ध था। इलाहाबाद हाईकोर्ट के एक जज को यह विश्वास नहीं हुआ कि तीन लाख से अधिक लोग जिस मेले में आये हों वहां कहीं भी बीड़ी-सिग्रेट का प्रवेश न हो। उसे यह असंभव जान पड़ा। इस बात की जांच के लिए वह स्वयं आये, उन्हें आश्चर्य हुआ, जब उन्हें किसी पनवाड़ी की दूकान से एक रुपया देने पर भी एक सिग्रेट नहीं मिला। जन्म शताब्दी समिति ने जिस सुनियोजित ढंग से उसका आयोजन किया था उसका सर्वाधिक श्रेय महात्मा नारायण स्वामी को जाता था यह उन्हीं के अनुपम कृतित्व, प्रतिभा व नेतृत्व का परिणाम था। उनके जैसा प्रबन्ध-पटु तथा व्यवहार-कुशल संन्यासी आर्यसमाज में दूसरा नहीं हुआ।

वास्तव में १८९२ से १९४८ तक के ५६ वर्षों में आर्यसमाज का इतिहास नारायणस्वामी जी की गति-विधियों का विवरण था। किसी भी व्यक्ति के विषय में यह कहना कि 'वह व्यक्ति नहीं, स्वयं में एक संस्था थे' हमारा सहज अभ्यास बन गया है। किन्तु नारायण स्वामी जी के विषय में यह अक्षरशः सत्य था। वह आजीवन आर्यसमाज के सर्वमान्य नेता रहे।

सन् १९३३ में आर्यसमाज के सामने यह प्रश्न एक चुनौती के रूप में उभर कर सामने आया कि आर्यसमाज में प्रविष्ट होने के लिए केवल १० नियमों का मानना काफी है अथवा उन सिद्धान्तों का मानना भी आवश्यक है जिन्हें स्वामी दयानन्द ने वेदों के आधार पर अपने ग्रन्थों में लिखा है। इस झगड़े का कारण 'दशप्रश्नी' के नाम से राय मूलराज द्वारा लिखित और पं० विश्वबन्धु शास्त्री द्वारा प्रचारित एक ट्रैक्ट था। महात्मा हंसराज जी ने 'दशप्रश्नी की समीक्षा' नाम से इस ट्रैक्टर का उत्तर दे दिया था। महात्मा हंसराज जी ने दोनों पक्षों के विद्वानों की एक गोष्ठी लाहौर में

आयोजित की। दो-तीन विद्वानों को छोड़कर सर्वसम्मति से यही निश्चय हुआ कि दश नियमों के साथ-साथ ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में उल्लिखित सिद्धान्तों को भी मानना आवश्यक है। यह निर्णय आर्यसमाज के संशोधित उपनियमों में सम्मिलित है।

नारायण स्वामी जी में वैदुष्य, वक्तृत्व, लेखन, नेतृत्व आदि सभी गुणों का संगम था। कहीं भी, किसी भी अवस्था में (जेल तक में) उनकी लेखनी विश्राम नहीं पाती थी। उन्होंने दो दर्जन से अधिक ग्रन्थों का प्रणयन किया। उन्हें पढ़ते समय ऐसा लगता है कि जैसे वे सामने बैठे बोल रहे हों। मुझे सबसे पहली बार उनकी कथा सुनने का सौभाग्य १९३० में आज से ६० वर्ष पूर्व हुआ था। उन्हें स्कूलों में पढ़ते समय मुरादाबाद में जिस रास्ते से स्वामी दयानन्द ने गुजरना था, उस रास्ते में खड़े होकर उनके दर्शन करने का सौभाग्य तो मिला किन्तु पौराणिक अध्यापक के बहकावे में आ जाने से वह उनका प्रवचन सुनने से वंचित रह गये।

स्वामी जी का अपना स्वतंत्र चिन्तन था। १५ जनवरी १९३४ को बिहार में भयंकर भूकम्प आया। गांधी जी का कहना था कि इस भूकम्प का कारण वे अत्याचार हैं जो सवर्णों ने अछूतों (हरिजन शब्द तब तक प्रचलित नहीं हुआ था) पर किये हैं। स्वामी जी के अनुसार गांधी जी का यह भ्रम, तर्क व शास्त्र और शास्त्र के विरुद्ध था। आधि भौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक- इन तीन प्रकार के दुःखों में से, स्वामी जी के मत में, केवल आध्यात्मिक दुःख मनुष्य के कर्मों का फल होते है। शेष दोनों प्रकार के दुःखों का मनुष्य के कर्मों से कोई लेना-देना नहीं है। उनका तर्क था कि यदि गांधी जी की बात मान ली जाये तो प्रश्न उठता है कि दलित जाति के लोगों को किस अपराध का दण्ड मिला? स्वामी जी ने लेखनी और वाणी से अपने पक्ष को लोगों के सामने रखा, और बुद्धिजीवी लोगों ने उनके मत का समर्थन किया।

सन् १९२९ में पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति का पुनर्विवाह हुआ। इसके कारण दिल्ली में तहलका मच गया। स्वामी जी का मत था कि जब स्त्री-पुरुष विवाह की आवश्यकता अनुभव करते हों तो उसे रोकना सर्वथा अनुचित है। इस विषय में उनकी चिरकाला से सोची-समझी सम्मति यह थी कि "चाहे पुरुष क्षतवीर्य हो और चाहे स्त्री क्षतयोनि, परन्तु यदि वे विवाह के इच्छुक हों तो उन्हें, बिना किसी संकोच के, विवाह करने की अनुमति दे देनी चाहिए।" तथापि स्वामी जी को इस बात की प्रसन्नता थी कि आर्यों और आर्य महिलाओं में यह उच्च भाव बना हुआ है कि आदर्श से गिरा हुआ कोई काम नहीं होने देना चाहिए।

स्वामी जी की मान्यता थी कि–

१. महाराणा प्रताप के जीवन से संबंधित बिलाव के बच्चों के हाथ से रोटी छीन ले जाने और उसके परिणामस्वरूप महाराणा द्वारा अकबर की अधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाने वाली बात बिल्कुल मनघड़न्त है। इसका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है।

२. गुरु गोविन्द सिंह के बच्चों को दीवार में चुने जने वाली बात भी सर्वथा कल्पित है।

श्री नारायण स्वामी जी वर्षों तक और अनेक बार सार्वदेशिक सभा, उत्तर प्रदेश सभा

आदि अनेक प्रान्तीय एवं सार्वदेशिक संगठनों के प्रधान व मंत्री तथा गुरुकुलों आदि शिक्षण-संस्थाओं के संचालक रहे। परन्तु उन्होंने न कभी चुनाव लड़ा और न इसके लिए अपेक्षित दाव-पेचों का प्रयोग करना चाहा वस्तुतः वे अधिकारी बनते नहीं थे, बना दिये जाते थे।

हैदराबाद सत्याग्रह के तो नारायण स्वामी जी प्रेरणास्रोत थे। वह युद्ध नारायण स्वामी, स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी तथा श्री घनश्यामसिंह गुप्त के संयुक्त नेतृत्व में लड़ा गया था। पुनः १९४७ में सत्यार्थप्रकाश की रक्षा के लिए सिन्ध में किये गये सत्याग्रह के प्रधान सेनापति भी उन्हीं को बनाया गया था। मेरे लिए यह गर्व की बात थी कि उन्होंने मुझे अपने साथ ले जाने वाले पांच सत्याग्रहियों (श्री आनन्दस्वामी, स्वामी ध्रुवानन्द, स्वामी अभेदानन्द तथा कुंवर चांदकरण शारदा के साथ) में स्थान दिया था। उनकी वाणी में कोमलता थी परन्तु उस वाणी के अर्थों में दृढ़ता होती थी। १९४८ में उनका निधन हुआ। तब से आज तक आर्यसमाज में कोई सर्वमान्य नेता नहीं हुआ उनके समय में सार्वदेशिक सभा की बागडोर जिन लोगों के हाथों में होती थी उनमें स्वामी स्वतंत्रानन्द जी, स्वामी वेदानन्द जी, स्वामी आत्मानन्द जी, स्वामी अभेदानन्द जी, श्री घनश्याम सिंह गुप्त, श्री देशबन्धु गुप्त, पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय, पं० गंगाप्रसाद चीफ जज, महाशय कृष्ण, मदनमोहन सेठ, पं० बुद्धदेव विद्यालंकार, राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री, पं० रामदत्त शुक्ल जैसे प्रतिष्ठित लोग थे। उनके बीच में सार्वदेशिक सभा के उपमंत्री के रूप में बैठै हुये मुझे गर्व अनुभव होता था। आज यदि मुझे सभा का प्रधान भी बना दिया जाये तो मुझे लज्जा अनुभव होगी।

स्वामी अभेदानन्दजी

कहते हैं कि राजनीति में भी अहिंसा को प्रतिष्ठित करने वाले महात्मा गांधी के आश्रम में ही खान अब्दुल ग़फ़्फ़ार खां के लिए मांसाहार की छूट थी। पता नहीं यह कहां तक सत्य है। किन्तु यह तथ्य है कि वीतराग स्वामी सर्वदानन्द जी द्वारा हरदुआगंज में संस्थापित साधु आश्रम में चाय के घोर विरोधी राजगुरू धुरेन्द्र शास्त्री ने अपने शासनकाल में स्वामी अभेदानन्द जी के लिए चाय पीने की छूट दे रखी थी। बिहार के पं० वेदव्रत वानप्रस्थ हैदराबाद सत्याग्रह के पांचवें सर्वाधिकारी नियुक्त हुये थे और उन्होंने ५ मई १९३९ को ५०० सत्याग्रहियों के साथ सत्याग्रह किया था। सत्याग्रह के लिए कूच करने से पहले बोले— दीक्षित जी! आज तो कमण्डलु भर के चाय मंगवाओ। तब तक मैं चाय नहीं पीता था। पूछा पंडित जी! इतनी चाय का क्या होगा? बिहारी के रंग में रंगी हिन्दी में उन्होंने कहा — अरे, हम पियेंगे। और सचमुच वे सारा कमण्डलु चढ़ा गये। इतने शौकीन थे चाय के स्वामी अभेदानन्द जी (उस समय वेदव्रत वानप्रस्थ)। परन्तु संयम इतना कि जेल में पहुंचते ही मानो चाय का नाम तक भूल गये। चाहते तो निश्चय ही उनके लिए चाय की

व्यवस्था हो जाती, क्योंकि आर्यसमाज से बाहर राष्ट्रीय क्षेत्र में भी उनका बड़ा प्रतिष्ठित स्थान था। एकबार तो डा० राजेन्द्र प्रसाद के गिरफ्तार होने पर बिहार में कांग्रेस के सत्याग्रह की बागडोर उन्हीं को सौंपी गई थी। किन्तु उन्होंने अपने चाय के शौक की हवा तक किसी को नहीं लगने दी। कालान्तर में उन्हें हैदराबाद की जेल में ट्रांसफर कर दिया गया। वहां मिले प्रिंसिपल ज्ञानचन्द्र जी, पं० बुद्धदेव मीरपुरी, कुंवर सुखलाल आर्यमुसाफिर आदि। उन्होंने जब चाय देखी तो याद ताजा हो गई—

जब आंखें चार होती हैं, मुहब्बत आ ही जाती है।

स्वामी आत्मानन्द जी की भांति उन्होंने भी जेल में ही निश्चय कर लिया था कि बाहर जाते ही संन्यास ले लेंगे। फलतः वे कुछ ही दिनों बाद पं० वेदव्रत वानप्रस्थ से स्वामी अभेदानन्द बन गये।

स्वामी अभेदानन्द जी का जन्म यद्यपि उत्तरप्रदेश के बस्ती जिले में हुआ था, किन्तु अपना कार्यक्षेत्र उन्होंने बिहार प्रान्त को बनाया। सन् १९१५ से उन्होंने लेखनी और वाणी द्वारा आर्यसमाज का प्रचार किया। संस्कृत, हिन्दी, बंगला, उर्दू, फारसी तथा अंग्रेजी भाषाओं पर उनका समान अधिकार था। आर्यसमाज के साथ-साथ वे राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम में भी सक्रिय भाग लेते रहे और कई बार जेल भी गये। बिहार के सामाजिक जीवन में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान था। सन् १९३५-३६ में वे बिहार आर्य प्रतिनिधि सभा के तथा १९५४ में सार्वदेशिक सभा के प्रधान रहे। हैदराबाद सत्याग्रह के सर्वाधिकारी बनते ही उन्होंने संयुक्तप्रान्त और बिहार के नगरों का दौरा किया और पर्याप्त धन-जन जुटाया। उनके साथ सत्याग्रह करने वालों में शाहपुरा का फय्याज नाम का एक मुसलमान तथा पांच सिख भी थे। जिला मजिस्ट्रेट ने वानप्रस्थी जी को २ वर्ष तथा अन्य सत्याग्रहियों को डेढ़ वर्ष के कारावास का दण्ड दिया।

ध्यान रहे पहले वे कट्टर सनातन धर्मी थे, किन्तु धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन करने के बाद उनकी प्रवृत्ति आर्यसमाज की ओर हुई।

१९४० में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन मौलाना अब्दुलकलाम आजाद की अध्यक्षता में हुआ। आर्यसमाज की ओर से वैदिक धर्म के प्रचार की जो व्यवस्था की गई थी, उसके प्रेरणा-स्रोत भी स्वामी अभेदानन्द जी ही थे। १९४७ में सिन्ध सरकार द्वारा सत्यार्थप्रकाश पर लगाये गये प्रतिबन्ध के विरुद्ध आर्यसमाज ने सत्याग्रह किया। सार्वदेशिक सभा ने महात्मा नारायण स्वामी जी को सर्वाधिकारी नियुक्त करके प्रथम पांच सत्याग्रहियों को चुनने का अधिकार भी उन्हीं को दे दिया। महात्मा नारायण स्वामी जी ने निम्नप्रकार अपने पंच प्यारे चुने—

१. श्री खुशहालचन्द्र खुर्सन्द (श्री आनन्द स्वामी) पंजाब

२. राजगुरु धुरन्द्र शास्त्री (स्वामी ध्रुवानन्द) उत्तर प्रदेश

३. कुंवर चांदकरण शारदा (स्वामी चन्द्रानन्द) राजस्थान

४. स्वामी अभेदानन्द बिहार

५.पं० लक्ष्मीदत्त (स्वामी विद्यानन्द सरस्वती) दिल्ली।

प्रथम तीन महानुभाव महात्मा नारायण स्वामी जी के साथ कराची गये। मैं और स्वामी अभेदानन्द जी लाहौर होते हुये बाद में पहुंचे। हम दोनों को स्वामी जी ने वापिस कर दिया। वे नहीं चाहते थे कि हम पांचों एक साथ गिरफ्तार कर लिये जायें। उनकी योजना के अनुसार तीन के गिरफ्तार होने के बाद हम दोनों सत्याग्रह करें। इसके लिए आवश्यक था कि हम कराची में तो न रहें, किन्तु कराची से बहुत दूर भी न हों। इसलिए हमें मुलतान भेज दिया गया। हमें लगभग १५ दिन वहां रहना पड़ा। एक अंग्रेजी के लेखक ने लोकप्रियता के दो भेद किये हैं Intimate popularity तथा Distant popularity. Distant popularity को हम 'दूर के ढोल सुहावने' कह सकते हैं। उससे मनुष्य के चरित्र का ठीक-ठीक मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। पास रहने से व्यक्ति का सही मूल्यांकन होता है। मुलतान में साथ रह कर स्वामी जी को भीतर और बाहरं से देखने का अवसर मिला। मैंने पाया कि उनमें वैदुष्य, वक्तृत्व, अपरिग्रह, सौम्यता, निश्छलता, विनोदप्रियता, दृढ़ता, निरभिमानता आदि गुणों का अद्भुत सम्मिश्रण है। आर्यसमाज की कार्यपद्धति के वे तीन सूत्र बताते थे Destruction अर्थात् दोषों को दूर करना, Obstruction अर्थात् दोषों पर रोक लगाना और Coustruction अर्थात् निर्माण या रचना।

स्वामी आत्मानन्द जी

'पसन्द अपनी-अपनी'

आर्यसमाज में 'परमंहस' की उपाधि लगाने की परम्परा नहीं है। किन्तु यदि मुझसे ऐसा करने के लिए कहा जाये तो मैं इस कोटि में स्वामी सर्वदानन्द जी,स्वामी दर्शनान्द जी तथा स्वामी आत्मानन्द जी को रखूंगा।

हैदराबाद सत्याग्रह के दिनों में स्वामी आत्मानन्द जी आचार्य मुक्तिराम के रूप में थे। मैं होशयारपुर से जत्था लेकर जा रहा था और आचार्य मुक्तिराम जो अपने गुरुकुल का जत्था लेकर जा रहे थे। अम्बाला छावनी स्टेशन पर दोनों का मेल हो गया। अपने पिता जी के मुख से अनेक बार आचार्य मुक्तिराम जी का गुणानुवाद सुना था। उनका प्रथम बार साक्षात् उस दिन हुआ। दोनों जत्थे अलग-अलग शोलापुर पहुंचे। मुझे सत्याग्रह के सूत्रधार श्रीस्वामी स्वतंत्रानन्द जी ने मेरे श्वसुर श्री देवेन्द्रनाथ शास्त्री का पत्र दिखाकर सत्याग्रह करने से रोक दिया। इसकी 'क्यों?'' की व्याख्या करना यहां अपेक्षित नहीं है। इसी प्रकार स्वामी जी ने आचार्य मुक्तिराम जी को भी रोक दिया। हमारे दोनों के जत्थे जेल चले गये। हमें अच्छा नहीं लगा। परन्तु सेनापति का आदेश मानना हमारा परमधर्म था। हमें समय-समय पर विविध कार्य सौंप दिये जाते थे।

एक दिन एक सत्याग्रही की जेल में सन्दिग्ध अवस्था में मृत्यु का समाचार मिला। मुझे और आचार्य मुक्तिराम जी को इसकी जांच के लिए हैदराबाद भेजा गया। हैदराबाद में

सत्याग्रह न होने पाये। इसीलिए हैदराबाद स्टेशन से बाहर निकलते ही पुलिस ने हमें आगे बढ़ने से रोका। हमने कहा कि हम यहां सत्याग्रह करने नहीं आये हैं, केवल कुछ पूछताछ करने आये हैं। आर्यसमाज सुलतान बाजार तक जाकर लौट आएंगे। पुलिस ने हमें अनुमति दे दी। कुछ दूर जाने पर मैंने आचार्य जी से कहा कि हम शहर में आ तो गये ही हैं, क्यों न हम निजाम सरकार के गर्व को तोड़ दें कि राजधानी में सत्याग्रह नहीं हो सका। आचार्य जी बोले– यह वचनभंग करना होगा, विश्वासघात होगा। मेरा लड़कपन था, जिसमें कुछ कर गुजरने की तमन्ना होती है। इसलिए मैंने कहा —आचार्य जी, युद्ध में सब कुछ उचित होता है। आचार्य जी ने निर्णय के स्वर में कहा– हमारा सत्याग्रह है, युद्ध नहीं। मिथ्याचरण से तो वह असत्याग्रह हो जायेगा। मेरे कहने को अब क्या रह गया था। ऐसा विलक्षण व्यक्तित्व था स्वामी आत्मानन्द जी का। कहां मिलेंगे अब ऐसे लोग। अब झूठ बोलना मजबूरी नहीं, आवश्यक समझा जाता है। आपद्धर्म नहीं, नेताओं की शब्दावली में वह नीति है, लोक-व्यवहार है, समय की मांग है। इसलिए वह अपरिहार्य है।

उस्मानाबाद जिले में 'कलम' नाम का एक कस्बा है। स्वामी जी को वहां व्याख्यान नहीं देने दिया गया। वहां भी तब तक सत्याग्रह नहीं हुआ था। स्वामी जी 'हम यहीं सत्याग्रह करेंगे' इस घोषणा के साथ शोलापुर लौट आये। हम दोनों ने स्वामी स्वतंत्रानन्द जी से सत्याग्रह के लिए अनुमति प्राप्त कर ली। कलम वहां से काफ़ी दूर था। रेल, बस, बैलगाड़ी से यात्रा करने के बाद रात शुरू होने पर पैदल चल पड़े। रास्ते का जानकार एक व्यक्ति हमारे साथ था। सड़क से जाने पर बीच में रोक दिये जाने का भय था। इसलिए खेतों के ऊबड़ खाबड़ रास्तों से रात भर चल कर हम प्रातः होते ही कलम में जा पहुंचे और 'जो बोले सो अभय– वैदिक धर्म की जय' बोल कर जेब में पड़े झण्डों को अपनी लाठियों में लगा कर सत्याग्रह कर दिया। स्वामी जी के भाषण पर रोक लगाने वाला मजिस्ट्रेट देखता रह गया। हमें ६-६ मास का कारावास का दण्ड दे दिया। इससे अधिक वह और कर ही क्या सकता था?

जेल में हमें जो वर्दी दी गई थी, उसका रंग गेरुआ था। कुछ इस रंग के कारण और कुछ इसलिए हमारे अगुआ स्वामी (श्री नारायण स्वामी) थे, जेल के कर्मचारी हम सभी को 'स्वामी जी' कहते थे। आचार्य मुक्तिराम जी ने निश्चय कर लिया कि काषाय वस्त्र पहन लिये तो पहन ही लिये। जेल से छूटकर पं० मुक्तिराम जी स्वामी सर्वदानन्द जी के पास पहुंचे और संन्यास में दीक्षित होकर स्वामी आत्मानन्द बन गये।

सन् १९५७ आया। प्रतापसिंह कैरों की सरकार ने हिन्दी भाषी हरयाणा पर बलात् पंजाबी लाद दी और प्रकारान्तर से पंजाब में हिन्दी पर प्रतिबन्ध लगा दिया। आर्यसमाज ने हिन्दी की रक्षार्थ आन्दोलन किया। स्वामी आत्मानन्द जी को पंजाब हिन्दी रक्षा समिति का प्रधान नियुक्त किया गया। शान्तिपूर्ण उपायों के असफल हो जाने पर निर्णायक कदम

उठाने पर विचार करने के लिए जालन्धर में आर्यसमाज अड्डा होशियारपुर में समिति की बैठक हुई। हाल के भीतर समिति की बैठक हो रही थी और बाहर हज़ारों लोग निर्णय जानने के लिए उतावले हो रहे थे। निर्णय हो जाने पर मैं बाहर बने मंच पर आया। मुझे देखते ही सभा में सन्नाटा छा गया। मैंने बिना किसी प्रकार की भूमिका के महाभारत में कहे गये कुंती के शब्दों में घोषणा की– 'यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः'। मैं अपना वाक्य पूरा भी न कर पाया था कि बड़ी तुमुल ध्वनि से "वैदिक धर्म की जय" के नारे लगने लगे। कुछ ही देर बाद स्वामी आत्मानन्द जी बाहर आये और गुरु गंभीर वाणी में कहा – 'कार्यं वा साधयेयं शरीरं वा पातयेयम्' कार्य में सफलता प्राप्त करूंगा, वरना प्राण त्याग दूंगा। इस प्रकार ५ मई को स्वामी जी अपने साथ चार अन्य संन्यासियों को सत्याग्रही के रूप में और मुझे पर्यवेक्षक के रूप में साथ लेकर चण्डीगढ़ जा पहुंचे और सत्याग्रह चालू हो गया।

महात्मा आनन्द स्वामी स्वामी आत्मानन्द जी से संन्यास की दीक्षा लेकर खुशहालचन्द से "आनन्दस्वामी" बने थे। उनके सुपुत्र श्री यश उस समय कैरों मंत्रिमंडल में शिक्षामंत्री थे। सत्याग्रह क़े चलते श्री आनन्द स्वामी ने इस प्रकार का वक्तव्य दे दिया जो सत्याग्रह के लिए हानिकारक था। स्वामी आत्मानन्द जी ने घोषणा कर दी कि "मैं आनन्दस्वामी को दी गई संन्यास की दीक्षा वापस लेता हूं। अब वें आनन्दस्वामी के स्थान पर पूर्ववत् खुशहाल-चन्द ही कहलायेंगे। परिणामतः आनन्दस्वामी जी ने अपना वक्तव्य वापिस लिया और सार्वजनिक रूप में क्षमा मांगी।

स्वामी जी के एक भक्त ने उन्हें पशमीने का बना बहुमूल्य कम्बल भेंट किया। अगले दिन प्रातः उसे ओढ़ कर वे सैर को निकले। लौटे तो उनके ऊपर कम्बल नहीं था। पूछे जाने पर बताया रास्ते में एक गरीब आदमी सर्दी से ठिठुर रहा था, हमने उसे दे दिया। और अपना पुराना कम्बल ओढ़ कर बैठ गये। ऐसे परमहंस थे स्वामी आत्मानन्द जी महाराज।

उनके जैसे "दर्शनों" के मर्मज्ञ विद्वान् आसानी से नहीं मिलेंगे। योगसिद्धि में तो वे अद्वितीय थे। क्रियात्मक योग का अभ्यासी आर्यसमाज में विरला ही होगा। उनकी सरल व सौम्य प्रकृति को देख कर विश्वास नहीं होगा कि वे एक ओजस्वी वक्ता थे। छोटी-बड़ी अनेक पुस्तकों की रचना उन्होंने की, ज़िनमें से–सन्ध्या अष्टांगयोग तथा मनोविज्ञान और शिवसंकल्प सूक्त –अत्यन्त उपयोगी हैं।

स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के जीवन की एक घटना

वैद्यक कैसे छोड़ी?

चौड़ी छाती, गात गठीला, कैसी सुन्दर काया।
एकग्राम के बाहर था इक प्यारा-सा गुरुद्वारा।
रमते-रमते उस में आकर, ठहरा स्वामी प्यारा।।
धूम मची इक मुनि मनस्वी, गांव में है आया।
बाल-वृद्ध के मन मन्दिर में आसन सन्त लगाया।।
गली-गली और घर-घर में बच्चों ने शोर मचाया।
चलकर देखो मां-बहिनों यह कैसा साधु आया।।
चौड़ी छाती, गात गठीला, कैसी सुन्दर काया।
गौर वर्ण और.मोटी आंखें, तेज सभी को भाया।।

सायं-प्रातः सत्संगी भी प्रेम भाव से आते।
यतिवर उनको मधुर-मधुर सुन्दर उपदेश सुनाते।।
साधु के उपदेशामृत से हुए आनन्दित प्राणी।
लगे सुधरने बिगड़े जीवन ऐसी मीठी वाणी।।
पता लगा जब योगी बाबा जड़ी बूटियां जाने।
दूर-निकट से रोगी भी अब लगे वहां कुछ आने।।
दुखिया-पीड़ित अपने-अपने आकर कष्ट सुनाते।
साधु उनको आयुर्वैदिक औषधियां बतलाते।।
हुई व्याधियां दूर उस की जो भी रोगी आया।
कष्ट-निवारण करने का योगी इक यज्ञ रचाया।।

एक दोपहरी बैठा था जब साधु सन्त अकेला।
अपनी धुन में मस्त पड़ा था मौन मुनि अलबेला।।
कड़ी धूप में साधु ने देखा इक महिला आई।
विस्मित हो गये स्वामी, उसने रीति उलट चलाई।।
कड़ी धूप में क्यों तू आई? साधु ने दुत्कारा।
गरज कड़क कर स्वामी ने उस महिला को फटकारा।

इस वेला में और अकेली बोल यहां क्यों आई?
बोली आई स्वामी मैं तो लेने यहां दवाई।।
बोले स्वामिन् अरी अभागिन सच्च-सच्च बतलाओ।
भजन करो परमेश्वर का री अभी यहां से जाओ।।
कामुकता की मारी मैं तो पास तुम्हारे आई।
यह बतलाते स्वामी जी को दुष्टा नहीं लजाई।।

अरी तुम्हारे कारण मैंने अभी चिकित्सा छोड़ी।
दृढ़प्रतिज्ञ ने कभी प्रतिज्ञा जीवन में न तोड़ी।।
न जाने औषधियों से, कितनों के कष्ट मिटाता।
न जाने कितने को मैं जीवन में सुख पहुंचाता।।
छोड़ूं न मैं कभी मर्यादा भले चिकित्सा छूटे।
ईश कृपा से जीवन भर यह संयम व्रत न टूटे।।
अमर कहानी सुनकर तेरी तुझ को शीश झुकाएं।
जय ब्रह्मचारी जय नर नामी, जय जय स्वामी गाएं।।

रचयिताः— प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

जब दयानन्द मठ में सभी भूखे सोये

पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के जीवन काल की घटना है। मठ के आरम्भिक दिन थे। रात्रि के भोजन के लिए मठ के भण्डार में कुछ भी न था। मठ में उन दिनों पांच छः व्यक्ति रहते थे। ठीक भोजन के समय पूज्य स्वामी जी के एक भक्त मठ में पहुंचे। यह भक्त एक सम्पन्न कृषक थे। उन्होंने अपने घर का बना पांच छः सेर गुड़ महाराज के चरणों में भेंट दिया। उस रात्रि सब मठ वालों को व ग्राम से आए उक्त सज्जन को भोजन के स्थान पर गुड़ ही परोसा गया। गुड़ खाकर सभी मठवासी सो गये।

मठ के भण्डार में कुछ भी नहीं, यह देखकर ग्राम से आए उस भक्त को बड़ा दुःख हुआ। वह ग्राम पहुंचे और अन्न की भरी बैल गाड़ी मठ में ले आए। उन्होंने यह नियम ही बना लिया कि अपने खेतों का फसल कटने पर पहले मठ में अन्न की गाड़ी भेजते फिर घर में लेकर जाते। इस कृषक का नामनामी श्री महाशय लब्भूराम था जो बाद में पूज्य स्वामी सुव्रतानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए। इस यज्ञ प्रेमी, दानी, अटलईश्वर विश्वासी, ऋषि भक्त संन्यासी को ब्रहाचारी बूढ़े स्वामी जी कहा करते थे। इन्होंने स्वामी सर्वानन्द जी से संन्यास लिया।

वैदिक - सिद्धान्त

खण्ड चतुर्थ

"वह ज्ञान सफल है, जो अच्छे कर्मों का कारण बने और वही कर्म कल्याणकारी है जो बुद्धिपूर्वक किया जाय।"[27]

प्रभु की अमृत-वाणी

जागरणवेला में पठनीय मंत्र

सदा स्त्री-पुरुष दस बजे शयन और रात्रि के पिछले प्रहर अथवा चार बजे उठकर ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना किया करें जिससे परमेश्वर की कृपादृष्टि और सहाय से महाकठिन कार्य भी सुगमता से सिद्ध हो सकें। इसके लिए निम्नलिखित मंत्र हैं—

**ओ३म्। प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम।।१।।**
ऋ० ७।४१।१

पुण्य प्रातर्वेला में प्रभुवर! प्रस्तुत है गुणगान तुम्हारा।
स्वप्रकाश हे!दयासिन्धु हे! आदृत हो आह्वान हमारा।।
प्राण-उदान सदृश हे प्रियतम! हे समग्र वैभव के स्वामी।
ऋषि रक्षक ब्रह्मांण्ड सुपोषक रवि शशि द्योतक अन्तर्यामी।।
तुम्हीं सोम सम्पूज्य पुष्टिकर तुम्हीं रुद्र गुरु गारिमामय।
उषाकाल में स्तुति अर्पित है देव तुम्हारी जय हो जय हो।।

**प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह।।२।।**
ऋ० ७।४१।२

नितप्रति प्रातः सुपूज्य प्रभो! तुम अनन्तलोकों के धर्ता।
सृष्टि-नियोजक बोधक शोधक उग्र अभय सम्राट् सुकर्ता।।
हे जयशील! सकल सुखधाम तुम अन्तरिक्षसुत सूर्य प्रकाशक।
मन्यमान गतिमय तेजस्वी ऋद्धि-सिद्धिप्रद विघ्न-विनाशक।।
खाल-दल-गंजक भवभय भंजक वसुधा रंजक विश्वोदय हो।
उषःकाल में स्तुति अर्पित है देव तुम्हारी जय हो जय हो।।

**भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम।।३।।**
— ऋ७।४१।३

हे विभूति सर्वस्व सुधामय! अर्थ सुसाधक वैभवशाली।
सुख-समीर गम्भीर धीरवर! ज्योतिस्रोत अद्भुत दिनमाली।।
हे सुकर्ममय सृष्टिप्रणेता! सत्य सुवैभव के प्रिय निर्झर।
राज्यश्री का करें वरण हम सौम्य सुमति दो नित्य निरन्तर।।
धराधाम विद्युत युत हो, हम गो अश्वादिक प्रिय धन पाएँ।
नाता हो नित श्रेष्ठजनों से जगमग-जगमग ज्योति जलाएँ।।

**उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम।।४।।**
ऋ० ७।४१।४

स्वामिन्! हम निज श्रम से शोभित तथा तुम्हारी अनुकम्पा से।
परिप्लावित हों परिवर्धित हों श्री, यश, बल और सद्विद्या से।।
परम पूज्य ऐश्वर्यप्रदायक अब हम पर अविलम्ब दया हो।
उदयकाल की इसी परिधि में इन्हीं दिनों के मध्य कृपा हो।।
ईश! तुम्हारे ही आशीष से रहे सुलभता सर्वधनों की।
पग-पग पर उत्कर्ष दशा हो हमें सुमति दो दिव्य जनों की।।

**भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह।।५।।**
ऋ ७।४१।५

भवभय भंजक भगवन्! वर दो भद्र भूतिमय भाग्योदय का।
दिव्य गुणों से युक्त हुए हम प्राप्त करें प्रिय श्रेय सम्पदा।।
सर्व सरस जन अभिनन्दित हे! दो हम को सुखसाधन सारे।
यत्र तत्र सर्वत्र दयानिधि! कृपापात्र हम बनें तुम्हारे।।
हे प्रसिद्ध शरणागत वत्सल! हमको भी निज अवलम्बन दो।
मिले पुण्य नेतृत्व तुम्हारा ज्योतिर्मय जगमग जीवन दो।।

शयनकाल के मन्त्र

**ओ३म् यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।१।।**
—यजुः ०।३४।१

क्रियाशील नित रहता है जो जाग्रत एवं सुप्त दशा में,
आशातीत उड़ानें भरता दिव्य बना-सा जो वसुधा में।
दूर-दूर तक जाने वाला ज्योति-ज्योति में अभिव्यञ्जित जो,
वह मेरा मन हे जगवन्दन! शिवसंकल्पों से शोभित हो।।१।।

**येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।२।।**
—यजुः ०।३४।२

जिसके बल पर सब विद्वज्जन करते हैं संघर्ष निरन्तर,
यज्ञशील बन लहराते हैं कर्मवीर वर धीर धुरन्धर।
प्रजामध्य अध्यक्ष यक्ष है अति अद्भुत बल तेज सहित जो,
वह मेरा मन है जगवन्दन! शिवसंकल्पों से शोभित हो।।२।।

**यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतम्प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।३।**
—यजुः ०।३४।३

ज्ञान ध्यान प्रज्ञान प्रकाशक धृति साहस चैतन्य प्रदाता,
अमर ज्योति जो प्रजामात्र में संकट में जो धीर बँधाता।

जिसके बिना नहीं है सम्भव कर्म साधना किञ्चित् भी तो,
वह मेरा मन हे जगवन्दन! शिवसंकल्पों से शोभित हो।।३।।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।४।।

—यजुः० ३४।४

भूत भविष्यत् वर्तमान का जिससे ज्ञान हुआ करता है,
अमृत है जो जन्म-जन्म में अंग संग झर-झर झरता है।
ज्ञानयज्ञ सब कर सकता है सप्त शक्तियों से विस्तृत जो,
वह मेरा मन हे जगवन्दन! शिवसंकल्पों से शोभित हो।।४।।

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।५।

—यजुः० ३४।५

ऋक् अथर्व यजु सामगान स्वर जिसमें हुए प्रतिष्ठित ऐसे,
जुड़े हुए रथचक्र केन्द्र में चारों ओर ,अरे हों जैसे।
प्रज्ञालोक के चित्तनिचय से ओतप्रोत हो नित निश्चित जो,
वह मेरा मन हे जगवन्दन! शिवसंकल्पों से शोभित हो।।६।।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान् नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।६।।

—यजुः० ३४।६

शासित कर ज्यों द्रुत अश्वों को चतुर सारथी दौड़ाता है
त्यों जन-मन को मन महारथी इच्छित पथ पर ले जाता है।
हृदय प्रतिष्ठित सरस उग्रचित तरुण अरुण नित जरारहित जो
वह मेरा मन हे जगवन्दन! शिवसंकल्पों से शोभित हो।।६।।

मैक्समूलर का हृदय-परिवर्त्तन ऋषिकृत ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका का प्रभाव

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

यद्यपि मैक्समूलर प्रत्यक्षतः भारत में नहीं आ सके, परन्तु अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में वे भारत व भारतीयता के प्रशंसक रहे। यह उनके 'India: What Can It Teach Us? (भारत से हम क्या सीखें?) में व्यक्त विचारों से स्पष्ट है। आक्सफोर्ड में रहते हुये अपने प्रारम्भिक वर्षों में उनके लिए अपने अन्नदाताओं को सन्तुष्ट रखना आवश्यक था। इसलिए उन दिनों उन्होंने जो कुछ लिखा वह उस स्थिति का परिणाम था। बाद में उनके विचारों में जो परिवर्तन आया उसके दो कारण थे—

१- अन्तरात्मा का विद्रोह— प्रो० मैक्समूलर को आर्थिक विपन्नता के कारण अपनी आत्मा का सौदा करके लार्ड मेकाले की दासता स्वीकार करने को बाध्य होना पड़ा था। इस आत्म-समर्पण के कारण उसकी आत्मा उसे सदा कचोटती रही। इसलिए जैसे ही उसे इस स्थिति से उबरने का अवसर मिला, वैसे ही उसका मन विद्रोह कर उठा और भीतर की बातें बाहर आने लगीं।

२— ऋषि दयानन्द की मान्यताओं से परिचय— मैक्समूलर ने लिखा है— "भारतीय वाङ्मय की प्राचीनतम कृति ऋग्वेद के दो संस्करण मासिक रूप से प्रकाशित हो रहे हैं —एक बम्बई से और दूसरा प्रयाग (इलाहाबाद) से। पहले में मूल संस्कृत टीका तथा उसका मराठी और अंग्रेजी में अनुवाद रहता है और दूसरे में संस्कृत में विस्तृत व्याख्या तथा हिन्दी में उसका अनुवाद रहता है। ये ग्रन्थ ग्राहकों के चन्दे से प्रकाशित हो रहे हैं। ग्राहकों की संख्या पर्याप्त है।" मैक्समूलर स्वामी दयानन्द द्वारा प्रयाग से प्रकाशित हो रहे ऋग्वेद भाष्य के नियमित ग्राहक थे और उनका नाम मुख्यपृष्ठ पर प्रकाशित ग्राहकों की सूची में शामिल था। स्वामी जी कृत ऋग्वेदभाष्य को पढ़ कर

मैक्समूलर की आंखें खुल गई और उनके विचार पलटा खाने लगे। सन् १८८२ में कैम्ब्रिज में मैक्समूलर के कुछ व्याख्यान हुये जो सन् १८८३ में 'India : what Can It Teach Us?' नाम से प्रकाशित हुये इन व्याख्यानों में स्वामी दयानन्द, वेद और भारत के संबंध में मैक्समूलर का स्वर बदला हुआ था। कभी मैक्समूलर ने स्वामी दयानन्द के सम्बंध में लिखा था– "स्वामी दयानन्द ने ऋग्वेद का संस्कृत में भाष्य किया है। पर उनके समूचे साहित्य में ऐसा कुछ नहीं है जिसे मौलिक कहा जा सके, सिवाय इसके कि उन्होंने वैदिक शब्दों और वाक्यों के कुछ विचित्र से अर्थ (Strange interpretation of words and whole passages) किये हैं" (A Real Mahatman, P.8)

ब्रह्मा से दयानन्द पर्यन्त

ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पढ़ने के बाद उसी मैक्समूलर ने इस महान् ग्रन्थ को संस्कृत साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हुये स्वामी दयानन्द और उसकी कृति का इन शब्दों में स्तवन किया– "सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य को हम ऋग्वेद से आरम्भ करके दयानन्द की ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका तक दो भागों में बांट सकते हैं" इस प्रकार मैक्समूलर ने जहां एक ध्रुव पर ईश्वरकृत वेद को रखा, वहां दूसरे ध्रुव पर दयानन्द कृत ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका को प्रतिष्ठित किया।

वेद

सन् १८६६ में मैक्समूलर ने लिखा था– "वैदिक सूक्तों की एक बहुत बड़ी संख्या बिल्कुल बचकानी, जटिल, निकृष्ट और साधारण है। उनमें न परस्पर संगति है और न सुलझे हुये विचारों की स्थापना। वेद धार्मिक विश्वासों के विजड़ित पोथे हैं जिनका अधिकांश बुद्धिगम्य नहीं है। मानव-जाति के सीखतड़ बच्चे जिस आश्चर्य से जगत् को देखते हैं, उसी की छाया मंत्रों में है।" (Chips From A German Workshop, Ed,1866, P.27)

उन्हीं मैक्समूलर ने सन् १८८२ में लिखा– "वेद में जैसी भाषा पाई जाती है, उसमें जैसा जीवनदर्शन है और जैसे धर्म का दर्शन होता है, उनसे जो दृश्यावली दृष्टिगत होती है, वर्षों में तो कोई उसकी दूरी नाप नहीं सकता। वेद में ऐसी भावनाओं का प्रकाश हुआ है जो हम यूरोपियनों को १८ वीं शती में आधुनिक प्रतीत होती है। उससे अधिक प्राचीन साहित्यिक कृति का हमें नाम भी सुनने को नहीं मिला। मानव विचारधारा के इतिहास के विषय में जो जानकारी हमें वेद से मिलती है, वह वेदों की खोज से पूर्व हमारी कल्पना से भी परे थी" (भारत से हम क्या सीखें? पृ० १३०)।

सन् १८६८ में मैक्समूलर ने अपने पुत्र को लिखे पत्र मे वेदों का इन तिरस्कारपूर्ण शब्दों में अवमूल्यन किया था–

"संसार की सब पुस्तकों में नया अहदनामा (Bible or the New Testament), सर्वोत्कृष्ट है। इसके पश्चात् कुरान को, जो एक प्रकार से बाइबल का रूपान्तर है, रखा जा सकता है। तत्पश्चात् पुराना अहदनामा (The Old Testament), बौद्ध त्रिपिटक, वेद और अवेस्ता हैं।"

बाद में सन् १८८३ में मैक्समूलर ने इन शब्दों में वेद का प्रशस्तिगान किया—

"यदि हम उस स्रोत को जानना चाहते हैं जो मुनष्य के चरित्र का निर्माता है, विचारों का प्रेरक एवं कार्यों का नियन्ता है तो भारत के निम्नतम वर्गीय से लेकर उच्चतम वर्गीय व्यक्ति को प्रभावित एवं अनुप्राणित करता है तो हमें भारतीयों के धर्म से परिचित होना चाहिए जिसकी भित्ति वेद की आधारशिला पर है।" (हम भारत से क्या सीख सकते हैं पृ० २३८)

"यदि किसी को मानव-जाति का अध्ययन करना हो, या आप चाहें तो यूं कह सकते हैं कि यदि किसी को आर्यजीवन के विषय में अध्ययन करना हो तो उसके लिए वैदिक साहित्य का अध्ययन ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होगा। संसार का कोई भी साहित्य इस क्षेत्र में वैदिक साहित्य की तुलना में नहीं ठहर सकता।"— वही, पृष्ठ १२४

"भारतीयों के इतिहास, धर्म, दर्शन, क़ानून इत्यादि को समझने के लिए यह अनिवार्य है कि उनका अध्ययन वेद से हो। वेद के आधार के बिना हिन्दू धर्म का ज्ञान असंभव है।" (No one will ever understand the religious, philosophical, legal and social opinions of the Hindus who is unable to trace them back to their sources in the Vedas—abid, P. 126)

"लोगों ने वेद की महत्ता को कम करने के प्रयत्न कम नहीं किये, पर उसका महत्त्व आज भी वैसा ही है। आज भी धार्मिक, सामाजिक या दार्शनिक विवादों में वेद को ही अन्तिम प्रमाण माना जाता है।" —वही, २२७

इसी सन्दर्भ में संस्कृत की महत्ता पर अपने विचार व्यक्त करते हुये मैक्समूलर ने लिखा "संस्कृत साहित्य में ऐसा क्या मिलेगा जो विश्व के अन्य साहित्यों में नहीं मिलता? इस प्रश्न के उत्तर में मेरा कथन है कि संस्कृत साहित्य में हमें वास्तविक आर्य के दर्शन होते हैं। इन आर्यों को हम यूनानी, ईरानी, रोमन, जर्मन, कैल्ट तथा स्लाव लोगों के रूप में देख चुके हैं। परन्तु जिस आर्य का पता हमें संस्कृत साहित्य में मिलता है, उसका व्यक्तितत्व इन सबसे निराला है।" —वहीं, १०८

वेदों की विशालता एवं सुरक्षा

"यह निश्चित है कि एक हज़ार वर्ष ईसा पूर्व, और इससे भी पहले, न केवल वैदिक ऋचाओं की रचना हो चुकी थी, वरन् मंत्रों, ब्राह्मणग्रन्थों एवं सूत्रों से भी उनका विभाजन हो चुका था केवल ऋग्वेद की विशालता को देखिए। दस मण्डल हैं। प्रत्येक मण्डल में विभिन्न देवताओं के कई-कई सूक्त हैं। प्रत्येक सूक्त में कम से कम दस ऋचायें हैं। इस प्रकार इस विशाल निधि में १०२८ सूक्त और १०५२२ मंत्र है। और इन मंत्रों में एक लाख तरेपन हज़ार आठ सौ छब्बीस शब्द हैं। इन शब्दों की योजना पूर्णतः परिष्कृत है, ऐसी अवस्था में यह प्रश्न उठना सर्वथा स्वाभाविक है कि आखिर यह विशाल भंडार तीन सहस्र वर्षों तक किस प्रकार पूर्णतः सुरक्षित रहा? यदि मैं यह कहूं कि इतना विशाल वैदिक साहित्य तीन हजार वर्षों तक केवल भारतीयों की

स्मरण-शक्ति के सहारे जीवित एवं सुरक्षित रहा तो कदाचित् आप लोगों का मस्तिष्क इस पर विश्वास करने को तैयार न हो। परन्तु है यह एकदम सत्य और जिस को इसमें किसी भी प्रकार की शंका हो तो वह स्वयमेव अपनी शंका का समाधान कर सकता है। आज भी जबकि वेद की रचना पांच हज़ार वर्ष (पहले मैक्समूलर ने वेद का काल ईसा १२०० अर्थात् सन् १८८२ में ३०८२ वर्ष पूर्व माना था– लेखक) पुरानी हो चुकी है, यह स्थिति है कि यदि इस साहित्य की समूची सामग्री नष्ट हो जाये तो भी वह जीवित रहेगा। आज भी भारत में ऐसे श्रोत्रिय हैं जिन्हें आदि से अन्त तक समूचा साहित्य कण्ठस्थ है, सो भी गुरुमुख से सुनकर, न कि पुस्तकों से पढ़ कर। मुद्रित संस्करणों को तो वे प्रामाणिक मानते ही नहीं। स्वयं अपने ही निवास पर मुझे ऐसे लोगों से मिलने का सौभाग्य मिला है, जो न केवल समूचे वेद का मौखिक पाठ कर सकते थे, वरन् उनका पाठ सन्निहित आरोहावरोहों से पूर्ण होता था। उन लोगों ने जब भी मेरे द्वारा संपादित संस्करणों को देखा और जहां कहीं भी अशुद्धि मिली तो बिना किसी के हिचकिचाहट उन अशुद्धियों की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट किया। मुझे आश्चर्य होता है उनके इस आत्मविश्वास पर जिसके बल पर वे सहज ही उन त्रुटियों को प्रकाश में ला देते थे जो हमारे संस्करण में यत्र-तत्र रह जाती थीं। इन सजीव पुस्तकालयों (श्रोत्रिय ब्राह्मणों) के न रहने पर प्राचीन संस्कृत साहित्य का अधिकांश महत्त्वपूर्ण भाग अलभ्य हो जायेगा और सदा के लिए लुप्त हो जायेगा।

हमारे छात्र जीवन–यापन की सुविधाएं प्राप्त करने के लिए विद्या पढ़ते हैं। भारतीय छात्रों की तत्कालीन शिक्षा में जीवन-यापन की सुविधा प्राप्त करने का उद्देश्य गौण था, प्रमुख नहीं। प्रमुख भावना होती थी ज्ञान की प्राप्ति और ज्ञान की प्राप्ति का यह कार्य कर्त्तव्य समझ कर किया जाता था।'' भारत से हम क्या सीख सकते हैं? पृ० १९५

''वैदिक काल में ब्राह्मण लोग एक विशिष्ट वर्ग के प्रतिभाशाली व्यक्ति होते थे। प्राचीन भारतीय समाज के वे एक अत्यावश्यक अंग थे, और नाम के अनुरूप ही उनका चरित्र होता था। वे दूसरों के लिए जीते थे और धनोत्पादक श्रम से अलग रह कर अहर्निश समाज कल्याण व चिन्तन करते थे। पहले यह एक सामाजिक कर्त्तव्य था, किन्तु कालान्तर में वही उनका धार्मिक कर्त्तव्य बन गया कि उनके खान-पान का दायित्व समाज ही संभाले''। — वही

वेदव्याख्यान

स्वामी दयानन्द ने अष्टाध्यायी और यास्क के निरुक्त के आधार पर वेदों की व्याख्या किये जाने पर बल दिया था, जबकि मैक्समूलर आदि पाश्चात्य विद्वान् लौकिक संस्कृत के अनुसार वेद भाष्य कर रहे थे। ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका अध्ययन करने के बाद मैक्समूलर का विचार बदला और उन्होंने लिखा–

''वास्तव में वैदिक देवों को समझने के लिए वैदिक प्रणाली ही एकमात्र प्रणाली है। किसी अन्य प्रणाली से उनका स्पष्टीकरण

करना संभव नहीं है। ईसा से ४०० वर्ष पूर्व एक ब्राह्मण लेखक हुये हैं। उन्हीं का अनुसरण करके हम वेदों का स्पष्टीकरण कर सकते हैं। यास्क नामक इस विद्वान् के अनुसार वैदिक देवताओं का एक प्रकार का उपयोगी विभाजन हो सकता है। व्याख्या के अनुसार देवता तीन प्रकार के हैं– पृथिवी के देव, अन्तरिक्षस्थ वायु के देव और आकाश में रहने वाले देव।'' भारत से हम क्या सीख सकते हैं, पृष्ठ १५०

एकेश्वरवाद वेदों में इतिहास·मृतक श्राद्ध

पाश्चात्य मत के अनुसार एकेश्वरवाद वैदिक आर्य अग्नि, वायु इन्द्र आदि के रूप में अनेक देवी -देवताओं की पूजा करते थे। मैक्समूलर ने इससे मिलते-जुलते एक नये वाद को जन्म दिया था। बहुदेवतावाद (Poly theism) तथा एकेश्वरवाद (Monotheism) के मुकाबले मैक्समूलर ने Henotheism के नाम से एक नये मत की स्थापना की। हीनोथेज़्म का अर्थ है– जब किसी देवता की उपासना की जाये, तब उसी में सारे गुण आरोपित कर दिये जायं, और अन्य देवताओं को उस देवता से हीन कल्पित कर लिया जाये। वस्तुतः वह बहुदेवतावाद का ही एक रूप था। यह कल्पना इसलिए की गई, क्योंकि मैक्समूलर विकासवाद के विपरीत यह मानने को तैयार नहीं था कि मानव संस्कृति के प्रारम्भिक काल में एकेश्वरवाद जैसा उत्कृष्ट विचार मानव के मस्तिष्क में आ सकता था।

वेद में इतिहास

बाद में मैक्समूलर का यह विचार बदल गया, और १८८२ में उसने लिखा– ''प्रथम दृष्टि में यही प्रतीत होता है कि वैदिक धर्म बहुदेवतावादी है। परन्तु बहुदेवतावादी का जो अर्थ हम लगाते हैं, उस अर्थ में यह शब्द वैदिक धर्म का विशेषण नहीं बन सकता। वेद की घोषणा है 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' अर्थात् विद्वान् लोग एक ही ईश्वर को अनेक नामों से पुकारते है?'' भारत से हम क्या सीख सकते हैं?

वेदों में इतिहास

वेदों को इतिहास के किसी कालखण्ड में रचित माननेवाले पाश्चात्य एवं तदनुयायी भारतीय विद्वानों की मान्यता है कि वेदों में उपलब्ध इतिवृत्तात्मक वर्णनों का समय-समय पर घटनेवाली घटनाओं से प्रत्यक्ष संबंध है। परन्तु वैदिक विद्वानों की मान्यता है कि वहां नित्य घटने वाली घटनाओं का मात्र औपचारिक या आलंकारिक वर्णन है। ऋषि दयानन्द के विचारों के अध्ययन के बाद मैक्समूलर ने वैदिक मत प्रतिपादन करते हुए लिखा–

''पौराणिक गाथाओं की यह विशेषता रही है कि उनमें प्रतिदिन या प्रतिवर्ष घटनेवाली घटनाओं को एक विशेष घटना का रूप देकर उसे किसी राजा या देवता के नाम से जोड़ कर एक कथा का रूप दे दिया जाता है। कालान्तर में वे नित्यप्रति की घटनाएं विशेष रूप धारण कर लेती हैं। जब ये हर रोज घटनेवाली घटनाएं 'एक बार की बात है' (once upon a time) से प्रारम्भ की जाती हैं तो उनका रूप ऐतिहासिक-सा हो जाता है। हम जानते हैं कि दिन और रात का दैनिक संघर्ष, शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष का मासिक संघर्ष, पर्याय से आने वाली ऋतुओं का वार्षिक संघर्ष अनादिकाल से

चला आ रहा है और अनन्त काल तक चलता रहेगा। ऐतिहासिक उठक-पटक की घटनाओं से और इन प्राकृतिक घटनाओं से विभिन्न घटनाओं की सृष्टि हुई है, जो अपने समकालीन साहित्य की निधि बन गई है। इन घटनाओं का प्रतिनिधित्व करनेवाली ऐतिहासिक घटनाओं की कमी तो थी नहीं। यदि कभी कमी जान पड़ी तो काल्पनिक कथाओं की रचना कर ली गई। आज भी हमारे बीच अनेक अच्छी कथाएं प्रचलित हैं जो अनेक बार विभिन्न ऐतिहासिक ख्यातिप्राप्त व्यक्तियों के नाम से सम्बद्ध होकर कही-सुनी जाती हैं। एक ही कथानक को विभिन्न कालों एवं परिस्थितियों में विभिन्न नामों से जोड़ा गया है और इस प्रकार जोड़े जाने का यह काम आज भी बन्द नहीं हुआ है। बचपन से ही हम ऐसी कहानियां कहते-सुनते चले आये हैं। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि प्रतिवर्ष आने वाली भयंकर बाढ़ों और उनसे होने वाली अपरिमित हानियों को ही अतिशयोक्ति में रंग कर जलप्लावन (Deluge) की रोचक कथा बनी है।" वही, १५४

मृतक श्राद्ध

मृतक श्राद्ध की मैक्समूलर द्वारा की गई निम्नलिखित व्याख्या निश्चय ही स्वामी दयानन्द के एतद्विषयक विचारों का परिणाम है—

"'श्राद्ध' शब्द अर्थपूर्ण है। इस शब्द के विषय में सर्वाधिक मनोरंजक तथ्य यह है कि न तो श्राद्ध शब्द का वर्णन वेद में मिलता है और न ब्राह्मण ग्रन्थों में। अतः यह परिणाम निकाला जा सकता है कि यह शब्द काफी देर बाद प्रचलित हुआ है। आपस्तम्ब धर्मशास्त्र में एक अनुच्छेद ऐसा है जिससे हम यह समझ सकते हैं कि श्राद्ध की क्रियाएं बहुत प्राचीन नहीं है। श्राद्ध शब्द के कई अर्थ होते हैं। मनु ने इसका प्रयोग पितृयज्ञ के पर्यायवाची के रूप में किया है। परन्तु वास्तव में जिस किसी भी यज्ञ में श्रद्धापूर्वक दान किया जाये, उसी को श्राद्ध कह सकते हैं। इसमें उचित पात्रों, विशेषकर ब्राह्मणों को दान दिया जाता है। इस दान को ही श्राद्ध की संज्ञा दी है— 'श्रद्धया कृतमिति श्राद्धम् श्राद्धारर्थमिति श्राद्धम्'। ऐसी स्थिति में जो लोग श्राद्ध शब्द को केवल सपिण्डतिलोदकदान तक सीमित समझते हैं, वे भूल करते हैं।" वही, पृष्ठ २१६

मैक्समूलर की योजना

सन् १८६८ में अपनी पत्नी के नाम लिखे एक पत्र में मैक्समूलर ने लिखा था—

"मुझे आशा है कि मैं उस काम (वेदभाष्य) को पूरा कर दूंगा और मुझे विश्वास है कि यद्यपि मैं उसे देखने के लिए जीवित नहीं रहूंगा तो भी मेरा किया वेदों का भाष्य भारत के तथा करोड़ों भारतीयों के भविष्य को प्रभावित करेगा। यह (वेद) उनके धर्म का मूल है, और मूल को दिखा देना, उसे पिछले तीन हज़ार वर्षों में जो कुछ उससे निकला है, उसे जड़मूल से उखाड़ फेंकने का एकमात्र उपाय है।' (Life and letters of F. Maxmuller Vol. I, Chap xv.p.34)

इसप्रकार मैक्समूलर योजनाबद्ध रूप से भारत का सर्वनाश करने पर तुला हुआ था।

उसी मैक्समूलर ने भारत की प्रशासनिक सेवा में नियुक्त युवकों को इंगलैण्ड से भेजे जाते समय भारत का परिचय देते हुये बताया—

"आप अपने विशेष अध्ययन के लिए चाहे जो भी शाखा अपनायें— भाषा, धर्म, दर्शन, कानून परम्परायें, प्रारम्भिक कला या प्रारम्भिक विज्ञान हर विषय का अध्ययन करने के लिए भारत ही सर्वथा उपयुक्त क्षेत्र है। आप पसन्द करें या न करें, परन्तु वास्तविकता यही है कि मानव के इतिहास की बहुमूल्य एवं निर्देशित सामग्री भारत-भूमि में संचित है, केवल भारत-भूमि में।

यदि हमने अपने ज्ञानक्षेत्र को ग्रीक अथवा नार्मन इतिहास तक ही संकुचित कर लिया या अपने अध्ययन की पृष्ठभूमि में केवल मिश्र, फिलस्तीन तथा बेबीलोनिया को ही रखकर काम चलाना स्वीकार कर लिया और अपने समीपस्थ बौद्धिक संबंधियों को दृष्टि से परे कर दिया और भारत के आर्यों के प्रति अपना दृष्टिकोण नहीं बदला तो हमारा ज्ञान सीमित ही रह जायेगा। हमें स्मरण रखना चाहिए कि भारत के आर्यों ने संसार की सर्वाधिक आश्चर्यजनक भाषा को जन्म दिया है। हमारी मौलिक भावनाओं की संरचना में भारत के आर्य हमारे सहकर्मी हैं। संसार के सर्वोत्तम दार्शनिक सिद्धान्तों को जिन्होंने खोज निकाला, वें भारत के आर्य ही हैं।

"हमारी शिक्षा-योजना के अन्तर्गत हमारे विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में जो अध्याय पढ़ाये जाते हैं, उनकी अपूर्णता प्रकट हो जायेगी, यदि हम उस इतिहास के भारत संबंधी अध्याय को समुचित रूप से पढ़ने का प्रयत्न करें तथा स्वतंत्ररूप से उनकी व्याख्या करने का कष्ट करें।" भारत से हम क्या सीख सकते हैं? पृ० ३३

जगद्गुरु भारत

"यदि हम सच्चे सत्यान्वेषी हैं, यदि हममें ज्ञानप्राप्ति की भावना है और यदि हम ज्ञान का ठीक-ठीक मूल्यांकन करना जानते हैं तो हमें इस तथ्य को स्वीकार करना होगा कि सहस्राब्दियों से पीड़ित-प्रताड़ित भारत में हमारा गुरु बनने की पूर्ण क्षमता है। आवश्यकता है केवल सच्चे हृदय से उस क्षमता का पहचानने की। यदि मुझसे पूछा जाये कि किस देश के मानव मस्तिष्क ने अपने सर्वोत्तम गुणों को विकसित करने में सफलता प्राप्त की है, कहां के विचारकों ने जीवन के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्नों एवं समस्याओं का सर्वोत्तम समाधान खोज निकाला है तथा इसी कारण वह काण्ट तथा प्लेटो के अध्ययन में पूर्णता को पहुंचे हुये व्यक्ति को भी आकर्षित करने की क्षमता रखता है, तो मैं किसी सोच-विचार के बिना भारत की और उंगुली उठा दूंगा।" वहीं पृ० २२

पाश्चात्य विद्वानों का यह मत था, और आज भी है, कि भारत के मूलनिवासी द्रविड, दास और दस्यु नाम से पुकारे जाने वाले लोग थे। कालान्तर में आर्यों ने इस देश पर आक्रमण करके इस देश के आदिवासियों को पराजित कर बलात् उस पर अधिकार कर लिया। इसके विपरीत स्वामी दयानन्द की मान्यता है कि आर्य इस देश के मूलनिवासी थे। उनका कहना था

कि "मनुष्यों की आदिसृष्टि त्रिविष्टप अर्थात् तिव्वत में हुई और आर्यलोग सृष्टि के आदि में कुछ काल के पश्चात् सीधे इसी देश में आकर बसे थे। आर्यों के पहले न इस देश का कोई नाम था, और न उनसे पहले इस देश में कोई बसता था।" स्वामी दयानन्द के विचारों से प्रभावित होने के बाद मैक्समूलर के विचारों ने पलटा खाया और उन्होंने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की कि हम सब भारत से आये हैं। उन्होंने लिखा—

"यह निश्चित है कि हम सब पूर्व से ही आये हैं। इतना ही नहीं, हमारे जीवन में जो कुछ मूल्यवान् और महत्त्वपूर्ण है, वह सब हमें पूर्व से ही मिला है। ऐसी स्थिति में जब भी हम पूर्व की ओर जायें तभी हमें यह सोचना चाहिए कि पुरानी स्मृतियों को संजोये हम अपने पुराने घर की ओर जा रहे हैं।" वही, पृ० २१, डी/ १४।१६ माडलटाउन, दिल्ली

वैदिक दार्शनिकता का चमत्कार

शास्त्रार्थ महारथी श्री पं० शान्तिप्रकाश

वैदिक दार्शनिकता— संसार के गूढ़ तत्त्वों का ही निदर्शन कराना वेद के आविर्भाव का मुख्य कारण है। अन्यथा मनुष्य और पशु में भेद न किया जा सकता। किन्तु पशु मानव के बड़े भाई समझे जाते। क्योंकि पशु-जगत् और कीट, पतंग आदि तो मनुष्यों से पूर्व उत्पन्न हुये थे। सब पदार्थों के निर्माण के साथ जड़ जगत् के कार्यान्वित हो जाने पर ही पशु-जगत् की उत्पत्ति और तदनन्तर मानव-समाज का उदय संभव हुआ।

वेद के अघमर्षण मंत्रों में ही उत्पत्ति का ब्यौरा देते हुये अन्त में कहा है कि—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः

धाता शब्द के धारण तथा विधारण दोनों अर्थ हैं। इन दोनों अर्थों में उत्पत्ति और इसके हेतु का दिग्दर्शन भी करा दिया है। यही वेद का वेदत्व और वैदिक शब्दों की पूर्णता का निदर्शन है।

धारण करने वाले परमात्मा ने सूर्य तथा चन्द्रमादि पदार्थों का निर्माण किया। क्यों किया? इसका उत्तर सैमेटिक और नास्तिक मत-मतान्तरों के पास नहीं है।

मैंने इलाहाबाद के शास्त्रार्थों में इसका उत्तर पादरी अब्दुलहक्क से पूछा तो वे चुप्पी साध गये।

मौलवी अब्दुलहक्क से भी लाहौर में मैंने पूछा तो कहने लगे कि खुदा की मर्जी (इच्छा)

मैंने कहा कि यह इच्छा कब हुई? क्या छह हजार वर्ष पूर्व? तो उससे पूर्व अनादि काल से खुदा था तो पूर्व। यह इच्छा क्यों न हुई क्योंकि आप सृष्टि रचनाकार्य खुदा की ओर से पहली बार मानते हैं। खुदा के साथ जीव-प्रकृति को नित्य आप मानते नहीं।

तो यह इच्छा अकारण क्यों पैदा हो गयी कि खुदा कुन कहने लगा और दुनिया बन गयी। तो मैं पूछना चाहता हूं कि जीव-प्रकृति के अभाव में जो इच्छा पूर्व पैदा न हुई थी वह अकस्मात् क्यों उत्पन्न हो गयी? समय तो सदैव एक सा होने से अकस्मात् क्यों कर हुई। इसका उत्तर बेचारे मौलवी और पादरी नहीं दे पाते

क्योंकि वह केवल एक पदार्थ नित्य मानते हैं।

वेद ने कहा कि परमात्मा में इच्छा पैदा होने का प्रश्न ही नहीं। परमात्मा मनुष्यों की भांति इच्छाओं की पूर्ति अपूर्ति की उधेड़बुन में नहीं रहता, क्योंकि उसके गुण, कर्म, स्वभाव स्वाभाविक हैं। जैसा कि आर्ष शास्त्रों में वर्णित है–

स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च। उपनिषद्।

ईश्वरीयज्ञान बल और कर्म स्वाभाविक हैं। यह स्वभाव नित्य काल से नित्यकाल तक एकरस व्याप्त है। इस स्वभाव में परिवर्तन सर्वथा संभव नहीं। अन्यथा न खुदा रहे, न खुदा की खुदाई। कुरान में ही तो लिखा है कि–

यह बदला उसी का है जो तुमने अपने हाथों भेजा।

अल्लाह जुल्म् नहीं करता अपने बन्दों पर।।

यह अर्थ भी आयत के भाव को स्पष्ट करने में कंजूसी कर गये हैं क्योंकि जब आयत में नित्य काल का उल्लेख है तो वैदिक मुख्य सिद्धान्त त्रित्ववाद का मंडन तो अपने आप हो गया।

वेद भगवान् ने कहा ही तो है कि–

''यथापूर्वमकल्पयत्'' पूर्व की भांति वह सूर्य चन्द्रादि की सृष्टि करता चला आया है और करता चला जाता रहेगा। न उसका आदि है और न अन्त

जीव सदा से कर्म करते चले आ रहे हैं और ईश्वर सदा से कर्मफल देता चला आ रहा है। यह उसका स्वभाव है जो कभी बदल नहीं सकता।

कर्मस्थली रूप सृष्टि का मूल प्रकृति है। जो जड़ है। सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। सूक्ष्मतम परमात्मा ही अपनी स्वाभाविक ज्ञानशक्ति, स्वाभाविक बल और अपनी स्वाभाविक ईक्षण शक्ति द्वारा सदा से सदा तक सृष्टि और प्रलय तथा जीवों के गुण, कर्म, स्वभावानुसार उनकी मुक्ति और पुनरावृत्ति करता चला आ रहा है। यह वेद का पवित्रतम सिद्धान्त है। बाईबल में भी अब्द (कदीम-नित्य) का शब्द है। खुदा ने दाऊद से कहा कि–

''अपनी शफ्क़त (औदार्य–दयाभाव) को उसके लिए अब्द (सदैव) तक स्थिर रखूंगा। मेरी प्रतिज्ञा उसके लिए अपरिवर्तनीय रहेगी। मैं उसकी नस्ल को सदा तक स्थिर रखूंगा और उसके तख्त को जब तक आकाश है मैं अपने वचन को न तोड़ूंगा।

ज़बूर अध्याय ८९

ईसामसीह अपने आप को दाऊद का बेटा घोषित करते हैं। अतः दाऊद के विचारों से ईसा ने कदापि इन्कार नहीं किया।

मैं ईसाई और मुसलमानों से यही कहूंगा कि सत्य एक है– सर्वत्र एक है और वह अपरिवर्तनीय है। अतः वेद के दार्शनिक सत्य त्रित्व के सिद्धान्त को खुले मन से स्वीकारें और परमात्मा के नित्य ज्ञान वेद के झंडे तले आ जाएं तो उनके मन से संदेहों का बोझ उतर जायेगा।

एक मौलवी श्री नादिर अली ने लिखा ही तो है कि–

''हिक्को आयत करे किफायत सिद्क ईमानां वालियां।''

सच्चाई और ईमान वालों के लिए तो एक ही आयत का प्रमाण पर्याप्त है। आगे उन्होंने न मानने वालों के लिए कठोरतम गाली प्रदान की है जिसका उल्लेख करना अनावश्यक तथा अनुचित है।

युक्ति से भी सिद्ध होता है कि जो नित्य है– सदा रहेगा। वह अनादि भी है। ऐसा कदापि संभव नहीं कि जो सदैव तो रहे– अब्दी तो हो किन्तु अजली (सदा से) न हो। जैसे ईश्वर। जो अजली (अनादि भी है और अब्दी (नित्य) भी है।

वैदिक दर्शन (फिलासफी) का त्रित्ववाद ईश्वर, जीव, प्रकृति के नित्यत्व का सिद्धान्त नितान्त मौलिक है। कुरान शरीफ और बाईबल में इसका प्रबल समर्थन है। पुनः क्यों न मतमतान्तरों की पृथक् संज्ञा को समाप्त करके वैदिक धर्म को स्वीकार कर लिया जाए। क्योंकि वेदों के पुनर्जन्म, अग्निहोत्रादि मुख्य सिद्धान्तों के चिन्ह सर्वत्र धार्मिक ग्रन्थों में पाए जाते हैं, तो धर्म की एकता को नष्ट करके क्यों ईर्ष्या-द्वेष की जलती भट्टी को पौनः पुन्येन प्रज्वलित रखा जाए।

वेद के एक-एक मंत्र और एक शब्द में रहस्यों के भंडार भरे पड़े हैं जिनको ऋषि दयानन्द सरस्वती जी ने इस युग में समाधि द्वारा पुनः प्रकट करके संसार की बड़ी सेवा की है। यह सेवा निरन्तर निर्विघ्न चलती रहे, इस हेतु से आर्यसमाज की स्थापना की है।

"ऋतं च सत्यं च" इस सूक्त के मंत्रों को संध्या में अघमर्षण मंत्र कहकर पुकारा है। अर्थात् पाप समूह को मसल कर नष्ट कर देने वाले मंत्र।

पूज्य पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने एक साप्ताहिक आर्य पत्र में उत्तर देने के लिए विद्वानों का आह्वान किया था कि–

इन मंत्रों ऋतं च आदि को **अघमर्षण** मंत्र क्यों कहते हैं तो मैंने उनकी सेवा में लिखा था कि मंत्रों में सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का विशद वर्णन करते हुये वेद भगवान् ने कहा कि ऐ लोगो! पापों से डरो क्योंकि परमात्मा इतने विशाल, असीम संसार को प्रलयावस्था में ले जाता है तो वह पापों का दंड देने में सामर्थ्यवान् क्यों नहीं? अतः उसकी शासन और दंड प्रकिया से डरो। वह पाप का फल अवश्य देगा। असंख्य सूर्य भूमियों को नष्ट करके उन्हें चूरचूर कर सूक्षतम बना और प्रलयावस्था में पहुंचा देता है तो एक क्षुद्र, छोटे से छोटे जीव की क्या शक्ति है कि उसके दंड-विधान से बच सके! कदापि नहीं। परमात्मा की न्यायरूपी चक्की पापी को पीसकर नाना प्रकार के कीट, पतंगादि में तथा गधे और कुत्ते की योनियों में पहुंचाकर पौनः पुन्येन पुनरावृत्त कर सकती है। अतः हे जीव तू अभिमान के वशीभूत होकर पापी मत बन।

पाप निष्पत्ति के दो मुख्य कारण हैं। अभिमान या निराशा। हे जीव! तू निराशाजन्य पापों से भी बच। क्योंकि जो भगवान् प्रकृति के सूक्ष्मतम प्रलयगत एक एक परमाणु को मिला कर सुन्दर संसारों, या सृष्टियों की रचना कर देता है तो वह भगवती जगदम्बा माता तेरे जीवन की काया भी पलट कर तुझे महान् से महान् बलवान् और धर्मात्मा बना सकती है। बस, उसका वरदान मांग, निराश मत हो, शुभ

कर्म कमा और ईश सहायता से अपने जीवन को बना।

इसीलिए इन मंत्रों का नाम—

अघमर्षण मंत्र= पाप को आमूल, जड़ से उखाड़ कर मसल देने वाले मंत्र कहा गया।

अतः वेद के एक-एक मंत्र शब्द और एक-एक अक्षर में रहस्यवाद है। इसी को वेदों के दार्शनिक मन्तव्य भी कहा जाता हैं। दर्शनशास्त्र में लिखा भी तो है कि—

बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे। वै०

वेद में वाक्य-विन्यास ज्ञानमूलक है। क्योंकि—

बुद्धि रूपलब्धिर्ज्ञानमित्यनर्थान्तरम्। न्याय०

दर्शनशास्त्रों में बुद्धि, उपलब्धि, ज्ञान यह पर्यायवाची शब्द हैं। इनका अभिप्राय ज्ञान है। "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" यथार्थ ज्ञान के बिना बन्धन से छुटकारा होकर मोक्ष प्राप्ति संभव नहीं।

उपसंहार—

व्याकरण महाभाष्य में कहा है कि—

एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सम्यक् प्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुग्भवति।

वेद का एक-एक शब्द अच्छे प्रकार जाना और अच्छे प्रकार आचरण में लाया हुआ स्वर्ग लोक में कामनाओं की पूर्ति करता है।

स्वर्गम्यते यत्र—जहां जिस समय भी सुखों की प्राप्ति हो, उसी का नाम स्वर्ग है। स्वर्ग कोई लोक-विशेष नहीं, सर्वत्र है।

यह वैदिक फिलासफी ईश्वरीय है। ईश्वर नित्य, जीव नित्य और प्रकृति नित्य है। यह तीनों नित्य पदार्थ हैं।

ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, जीव सत्‌चित् और प्रकृति केवल सत्पदार्थ है। तीनों अपने स्वरूप में पूर्ण, नित्य और परस्पर सम्बन्धित पदार्थ हैं। प्रकृति ज्ञान शून्य और जड़ है। जीवात्मा सत् तो है ही, चेतन भी है। परमात्मा सत् और चित् के अतिरिक्त आनन्द गुण से विभूषित होने से नेता, अधिपति, धाता, विधाता, सबका रक्षक, सर्वशक्तिमान् और उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयकारक तथा जीवों के कल्याणार्थ विश्व ज्ञानमय वेदों का ऋषियों की अन्तरात्मा में प्रत्येक सर्गारम्भ में प्रेरक है। एकमात्र उपासना के योग्य भी वही है।

मनु के धर्मशास्त्र में लिखा है कि—सर्वज्ञानमयो हि सः। ईश्वरीय होने के कारण वेद ज्ञान-विज्ञान का अधिष्ठाता हैं। जैसा कि छहों दर्शनशास्त्रों में वेद के सम्बन्ध में घोषणा की कि—

(१) तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्।
वैशेषिकदर्शन १।१।२

ईश्वरीय ज्ञान होने से वेद की प्रमाणिकता है।

(२) मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात्।
न्याय २।१।६७

आरम्भ सृष्टि से सभी आप्त महापुरुष आयुर्वेदादि के प्रणेता वेदों को ईश्वरीय होने से प्रमाण मानते आये हैं। अतः वेद ईश्वरीय होने से प्रमाण है।

(३) स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् **योग १।१।२६**

वह परमात्मा काल के गाल से रहित नित्य होने से अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा का भी गुरु है। जिनको वेदों के नित्य ज्ञान का उपदेश प्रेरणा द्वारा जीवों के कल्याणार्थ दिया। परमात्मा के काल का ग्रास न बनने से उसका ज्ञान भी काल क्वलित नहीं होता और सदैव नित्य है।

(४) निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम्। **सांख्य ५।५१**

परमेश्वर की स्वभाविक निज शक्ति से प्रकट होने के कारण वेदों की नित्यता और स्वतः प्रामाणिकता है।

(५) शास्त्रयोनित्वात्। **वेदान्त १।१।३**

वेदान्त भाष्य में स्वामी शंकराचार्य ने सभी शास्त्र विद्याओं का मूल कारण वेदों को ईश्वरीय होने से नित्य स्वीकारा है।

(६) नित्यस्तु स्याद्दर्शनस्य परार्थत्वात्। **पूर्वमीमांसा १।१।१८**

शब्द नित्य ही है—अविनाशी है, अतः शब्द शास्त्र वेद ज्ञान राशि नित्य है। उच्चारण से शब्द की ही प्रत्यभिज्ञा होती है। श्रोत्र द्वारा प्रकट ज्ञान में वह शब्द स्थिर रहता है जिस के अर्थ की प्रतीति होती है। यदि शब्द अनित्य हो तो उसके नष्ट हो जाने से अर्थ की प्रतीति असंभव थी। अतः वेदज्ञान अमिट होने से नित्य है, अविनाशी है।

छहों दर्शनों, फिलासफी शास्त्र के प्रणेता महाज्ञानी ऋषियों के सूत्र रूप से कहे प्रमाणों का आधारभूत सिद्धान्त संसार को वेदों की ओर आने की प्रेरणा का स्रोत है। इस अमृतमय स्रोत की पवित्र धाराओं को बहाकर मनुष्य-समाज को एकता के सूत्र में ग्रथित कर देना आर्यसमाज का मुख्य प्रयोजन है, जिसके लिए सहस्रों, लाखों नर-नारी प्रचारक, प्रचारिकाओं की अपेक्षा है। तब वैदिकधर्म का नाद सर्वत्र गूंज कर जय जयकार होगा और संसार पुकार उठेगा कि—

उत्सवं भवतु पौरजनानाम् वेदार्थमर्मनिर्णयकमद्य।
शास्त्रार्थ हि कुर्वन्तु महारथाः वर्धतामनघ वैदिकधर्मः।।

अलमित्योम्।

आर्यसमाज! आर्यसमाज!!

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त

आर्यसमाज!
आर्यभूमि पर अरुणोदय सा, उठा उष्ण तू सजकर साज।
आर्यसमाज! आर्यसमाज!!

अन्धकार था चारों ओर, देख लिया पर तूने चोर,
घर में शोर मचाया घोर सोते स्वजनों को है धिक्कार
जगा दिया ठोकर तक मार कि हो प्राप्त भय का परिहार
अलस, प्रमादी, अवसादी, हम थे सोने के आदी।

जगा—तू भैरववादी लगे विवादी भी कुछ स्वर
पर हम चौंक उठे सत्वर, उतरा कुछ तो तन्द्रक ज्वर,
किया तूने खण्डन मात्र, स्वयं तथा मण्डन का पात्र
गये गुरुकुल में वर्णी छात्र, हिन्द मानस—महाराष्ट्र तू
धरे राष्ट्रभाषा की लाज, आर्यसमाज! आर्यसमाज!!

शोक न कर, तू कर अभिमान, कर निज वेद विजय रसपान
किया वीर तूने बलिदान, विधर्मियों से घर की फूट
भरा रही थी अपनी लूट, तू सतर्क हो उठा अटूट!!
पर जो मुंह की खाते हैं मन ही मन चिढ़ जाते हैं
छिप कर घात लगाते हैं

सहा सभी तूने प्यारे, सिद्ध कर गये हत्यारे
निज अविजय न्यारे-न्यारे मुंह न छिपाया भय को देख
लिखा निज शोणित से लेख

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्, जयति कृत बुद्धि कार्यम्
शुद्धि वितान—तजे श्रद्धा का दान किया तूने द्विजराज
आर्यसमाज! आर्यसमाज!!

आध्यात्मिक जगत् को महर्षि दयानन्द की देन

स्वर्गीय श्री पण्डित शिवकुमार शास्त्री,
काव्य-व्याकरणतीर्थ

ऋषि दयानन्द से पूर्व जिस प्रकार के यथार्थस्वरूप को भूल कर लोग अनेक अधर्म के कामों को धर्म मानकर करने लग गये थे, उसी प्रकार की धांधली अध्यात्मिक क्षेत्र में भी व्याप्त थी। ईश्वर पूजा के नाम पर ईंट, पत्थर, नदी, नाले और अगणित वृक्षादियों की पूजा होती थी। ऋषि ने इन पथभ्रष्ट लोगों को कहा कि तुम जिसको ईश्वर कहते हो, वह वास्तविक ईश्वर नहीं, वह तो तुम्हारा मनघड़न्त ईश्वर है। कुम्भकार और संगतराश जो मिट्टी अथवा पत्थर से राम और कृष्ण की मूर्ति बनाते हैं। ये मूर्तियाँ वास्तव में राम और कृष्ण की नहीं। राम और कृष्ण ऐसे नहीं थे। ये मूर्तियां तो उनकी कल्पना का परिणाम हैं। इसीप्रकार लाखों मन्दिरों में शिव, विष्णु आदि की मूर्तियों की पूजा की भी स्थिति है।

ऋषि दयानन्द ने अपने बोध दिवस पर ही यह घोषणा कर दी थी कि यह पत्थर शिव नहीं हैं। जो क्षुद्र जीव, मूषक को अपने ऊपर से धकेलने में असमर्थ है, वह विराट् ब्रह्माण्ड का स्वामी नहीं हो सकता।

(१) ऋषि ने वेद और शास्त्रों के आधार पर ईश्वर के शुद्धस्वरूप का प्रतिपादन आर्यसमाज के दूसरें नियम में इस प्रकार किया। "ईश्वर: सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान् न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करनी योग्यं है।

इस नियम में ऋषि ने उन भूले-भटके भक्तों को बताया कि ईश्वर के स्थान में पाषाणपूजा, ग्रहपूजा, वृक्षपूजा, नदीपूजा, पशुपूजा, नर-पूजा का प्रचार करके लोगों ने ईश्वर पूजा को सर्वथा भुला दिया। ईश्वर अजर-अमर है। परन्तु तुम उनकी पूजा करते हो, जो न अजर हैं, न अमर हैं। ईश्वर निर्विकार है। परन्तु तुम उन नदी, पहाड़ों और पत्थरों की पूजा करते, हो जो विकार के वशीभूत हैं।

आस्तिकों को सच्चे ईश्वर का बोध कराना ऋषि दयानन्द की अध्यात्मिक जगत् को पहली देन है।

(२) ऋषि ने दूसरी महत्त्वपूर्ण बात कही कि उपासक जीव और उपास्य प्रभु का सीधा साक्षात् सम्बन्ध है। प्रत्येक जीव में वह अन्तर्यामी रमा हुआ है। इसलिए किसी पैगम्बर और औलिया की बीच में कोई आवश्यकता नहीं। उपासक किसी को मजदूरी देकर अपने बदले में दूसरे से उपासना नहीं करा सकता। जो लोग पैसा देकर ब्राह्मणों से दुर्गापाठ आदि कराते हैं उनको उस पाठ से कोई अध्यात्मिक लाभ नहीं होता। यह ऋषि की दूसरी देन है।

(३) ऋषि दयानन्द से पूर्व लोग अध्यात्मिक उन्नति में सांसारिक कारोबार को बाधक समझते थे। यह प्रसिद्ध था कि लोक बनाओगे तो परलोक बिगड़ेगा। यदि परलोक बनाना है तो लोक छोड़ना होगा। ऋषि ने इस

भ्रम का भी निराकरण किया। उन्होंने कहा कि लोक के बनाये बिना परलोक बन ही नहीं सकता। समस्त जप, तप, पूजापाठ लोक में ही होते हैं। जिस लोक से परलोक नहीं बनता वहां न्यूनता लौकिक कृत्यों में ही है। यदि उनका धर्मानुसार अनुष्ठान किया जावे तो कोई कारण नहीं कि परलोक न बने। महर्षि कणाद ने अभ्युदय और निःश्रेयस् दोनों की सिद्धि को ही धर्म माना है। मानव-धर्म शास्त्र में धर्म के १० लक्षण लोक में ही आचरणीय हैं। ऋषि दयानन्द ने धर्म के उदार अर्थ लेकर मनुष्य के सांसारिक जीवन को भी धर्म के क्षेत्र में सम्मिलित कर दिया।

मध्यकाल के आचार्यों ने धार्मिक, दार्शनिक और पारलौकिक बातों का उल्लेख किया। परन्तु उस समय के समाज में व्याप्त शास्त्र विरुद्ध अनाचार के लिए एक शब्द भी नहीं कहा। श्री शंकराचार्य जी महाराज ने जैनमत का खण्डन करके एक ब्रह्म की स्थापना की। वेदों का पक्ष भी लिया। किन्तु बाल-विवाह, विधवा-विवाह के निषेध, जाति-उपजाति भेद, छूत-अछूत, भक्ष्य-अभक्ष्य आदि बुराइयों के विषय में कुछ भी नहीं कहा। रामानुज आदि आचार्य भी मन्दिरों की चार दीवारी से बाहर नहीं निकले। स्त्री और शूद्रों को पढ़ाने के लिए, हिन्दुओं के अतिरिक्त अन्य मतावलम्बियों को अपने धर्म में सम्मिलित करने के विषय में किसी का भी ध्यान नहीं गया।

किन्तु ऋषि दयानन्द ने इन सभी के साथ न्यायोचित व्यवहार करने का प्रबल समर्थन किया और वैदिक धर्म को संसार के लिए उतना ही आवश्यक बताया कि जितना सूर्य का प्रकाश। यह ऋषि की तीसरी देन है।

(४)ऋषि दयानन्द से पूर्व लोगों में यह भ्रम भी था कि वेद कर्मकाण्ड के ग्रन्थ हैं। कर्मकाण्ड से उनका अभिप्राय केवल याज्ञिक क्रिया से था। इसीलिए आचार्य शंकर ने वेदों को मानते हुए भी अपनी दार्शनिक मान्यताओं की पुष्टि के लिए उपनिषदों का आश्रय लिया। वेद की यत्र-तत्र सामान्य सी चर्चा की। ऋषि ने वेदों के प्रतिपाद्य कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड और उपासना काण्ड को एक दूसरे का पूरक और पोषक बताकर सब खींचातानी समाप्त कर दी। उन्होंने कहा बिना ज्ञान के ठीक कर्म हो ही नहीं सकता। उपासना के लिए भी ज्ञानपूर्वक कर्म का अनुष्ठान अनिवार्य है। यह ऋषि की चौथी देन है।

इनके अतिरिक्त ऋषि दयानन्द से पूर्व भक्त लोग स्तुति, प्रार्थना और उपासना के विषय में नितांत भ्रम में थे। उनकी धारणा थी कि हम अपने दुःख की करुणगाथा शंकर जी अथवा कृष्ण जी को दीन होकर सुना जावेंगे और वे भक्तवत्सल हमारी पुकार से द्रवित होकर हमें दुःखों से उबार लेंगे।

ऋषि ने कहा—"स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण, कर्म, स्वभाव का सुधारना। प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय का मिलना। उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना।" स० प्र० सप्तम समु०। "जो केवल भाँड के समान परमेश्वर के गुणकीर्तन करता जाता और अपना चरित्र नहीं सुधारता, उसका स्तुति करना व्यर्थ है।"

"ऐसी प्रार्थना कभी न करनी चाहिए, और न परमेश्वर उसको स्वीकार करता है कि जैसे 'हे परमेश्वर! आप मेरे शत्रुओं का नाश, मुझ को सब से बड़ा मेरी ही प्रतिष्ठा और मेरे अधीन सब हो जायें" इत्यादि।

"उपासना" शब्द का अर्थ समीपस्थ होना है। अष्टांग योग से परमात्मा के समीपस्थ होने और उसको सर्वव्यापी सर्वान्तर्यामीरूप से प्रत्यक्ष करने के लिए जो काम करना होता है, वह सब करना चाहिए।

जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है, वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष, दुःख छूटकर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हो जाते हैं। इसलिए परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिए।" स० प्र० सप्तम समु०

यह ऋषि की आध्यात्मिक जगत् को पांचवीं और सर्वोत्तम देन है।

अध्यात्म जगत् को देव दयानन्द की देन

स्वर्गीय—स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज

वैसे तो सब मत अध्यात्मवाद को लेकर चले थे। किन्तु किसी मत ने भी अध्यात्मवाद आत्मा-परमात्मा का पूर्ण प्रकाश नहीं किया। ईसाई, मुसलमान आत्मा-परमात्मा को मानते हैं। और जीवों को खुदा के स्वरूप से उत्पन्न मानते हैं। जब पूछा जाता है कि खुदा की कुदरत खुदा है तो सब जगत् खुदा हुआ और कुदरत जुदा है तो वह क्या है, उत्तर कुछ नहीं मिलता। ये मत शंकरमत की छायामात्र हैं। क्योंकि ईसाई, मुसलमान जीवों का पुनर्जन्म नहीं मानते और शंकराचार्य भी अन्तःकरण अविच्छिन्न चेतन ब्रह्म को जीव मानते हैं। और जब तक अविद्या है तभी तक जीव है और अविद्या हटते ही वह ब्रह्म है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता तथा ब्रह्म को ही अभिन्न निमित्त उपादान कारण मानते हैं। जगत् का जैसा स्वामी जी ने जीव को निराकार, सत्, चित् एकदेशी, सर्वज्ञ, सच्चिदानन्द स्वरूप माना है तथा व्याप्य-व्यापक एक स्थान पर रहते हुए दोनों एक नहीं और दो होते हुए एक दूसरे से दूर नहीं। गुण, कर्म, स्वभाव से दोनों विभक्त होते हैं।

जैन मत जीव को मानता है किन्तु सृष्टिकर्त्ता ईश्वर को नहीं मानता और अरहन्त जीवों को ही ईश्वर मानता है और आत्मा को संकोच विकासशील मानता है तथा जब वह मुक्त हो जाता है तब सिद्ध शिला पर चला जाता है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता। इसी प्रकार रामानुज, कबीरपन्थ, दादू नानक आदि सब मत मुक्त जीव का पुनर्जन्म नहीं मानते। इन सब पर यह प्रश्न है कि यदि एक-एक जीव भी शतवर्ष में मुक्त होता रहे और जन्म न हो तो संसार एक दिन जीवों से शून्य हो जायेगा क्योंकि जिस खजाने में आय नहीं और व्यय होता रहे वह चाहे कितना बड़ा हो, वह खाली हो जाता है। केवल वैदिक धर्मी देव दयानन्द जी ही यह मानते हैं कि जीव मुक्त होकर भी पुनर्जन्म में आता है। क्योंकि सान्त कर्मों का अनन्त फल नहीं हो सकता तथा जिस

जन्म में वह मुक्त हुआ है। उस जन्म के कर्मशेष हैं, उनका फल कैसे मिलेगा? मुक्ति से यदि वह लौटकर न आये तो और—कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे। ऋग्वेद मंत्र १।सू० २४, मंत्र १ तथा यावदायुष्यं सम्पद्यते। छान्दोग्य ८।१५।२ में स्पष्ट कहा है कि जितना मोक्ष की आयु है, उतने दिन मोक्ष में रहकर लौटकर आता है, प्रथम नहीं आता।

सत्यार्थप्रकाश में किए प्रश्न का उत्तर (समुल्लास ७)

प्रश्न—आप ईश्वर ईश्वर कहते हो, उसकी सिद्धि कैसे करते हो।

उत्तर—प्रत्यक्षादि प्रमाणों से।

प्रश्न—ईश्वर में प्रत्यक्ष प्रमाण कभी नहीं घट सकते।

उत्तर—यह सृष्टि प्रत्यक्ष है इसमें रचना विशेष आदि और ज्ञानादि गुणों के प्रत्यक्ष होने से ईश्वर भी प्रत्यक्ष है अर्थात्

१. ईश्वर जड़-चेतन दो प्रकार की सृष्टि बनाता है। मनुष्य एक जड़ वस्तु बनाता है, चेतन नहीं।

२. ईश्वर की सृष्टि में शैशव तथा यौवन होता है। मनुष्य की में नहीं।

३. ईश्वर की सृष्टि में नर-नारी और हिजड़ा भी होते हैं, मनुष्य की सृष्टि में नहीं होते।

४. ईश्वर अपनी रचना के सदा साथ रहता है, मनुष्य नहीं रहता।

५. मनुष्य अपनी रचना के प्रथम अंग बनाकर फिर उन्हें जोड़ता है। ईश्वर एक साथ बनाता है जैसे माता के गर्भ में बालक के सब अंग एक साथ बनाता है। मनुष्य नहीं।

६.ईश्वर की रचना में मनुष्यादि जब मरेंगे तब अपने पुत्र-पुत्री, नाती, पोते छोड़ जाते हैं किन्तु मनुष्य की रचना में नहीं, उसके तो कल-पुरजे वहीं विखर जाते हैं।

७. ईश्वर की जड़ रचना भी विचित्र है—सूर्यादि का आज तक मसाला समाप्त नहीं होता, अरबों वर्ष से जल रहा है। मनुष्य के दीप नहीं जलते।

८. ईश्वर के सूर्य अपने प्रकाश और गर्मी को देते हैं तथा सायंकाल वापस ले लेते हैं। यदि ऐसा न होता तो सूर्य बुझ जाता और पृथ्वी जल जाती।

९. ईश्वर की जड़ रचना अपनी मुरम्मत नहीं चाहती, मनुष्य की जड़ रचना थोड़े दिनों में ढीली हो जाती है। ईश्वर के सूर्य, चन्द्र, भूमि, नक्षत्र ढीले नहीं होते। इसलिए वेद में कहा है कि-येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा-जिस ने सूर्य, भूमि दृढ़ बनाये वह ईश्वर है।

१० कोई जड़ वस्तु मनुष्य की चलाने वाले ड्राइवर के बिना नहीं चलती किन्तु सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, भूमि बिना ड्राइवर के चलते हैं। इसलिए वेद में कहा है। "योऽन्तरिक्षे रजसो विमानः"वह ईश्वर है।

११. मनुष्य हाथ और हथियारों से वस्तु बनाते हैं किन्तु ईश्वर बिना हाथों के जगत् को बनाता है।

१२. मनुष्य प्रकाश में बनाते हैं, ईश्वर बिना प्रकाश सदा बनाता है। इसी कारण महर्षि जी ने ईश्वर की रचना को विशेष कहा है

परन्तु मनुष्यादि रचना सामान्य है क्योंकि एक मनुष्य रचना के समान दूसरा मनुष्य रचना कर देता है परन्तु ईश्वर की रचना के समान कोई नहीं कर सका, न कर सकेगा।

ज्ञानादि प्रत्यक्ष है जव जीव जगत् से जाता है तब ज्ञान शून्य होके जाता है। क्योंकि जैसे जगत् की कोई वस्तु जीव मरते समय साथ नहीं ले जाता, वैसे ज्ञान भी सब ईश्वर प्रदत्त है। उसे भी कोई नहीं ले जाता। जब आता है तब ज्ञान शून्थ होता है। उसे इन्द्रियों के संचालन का ज्ञान भी ईश्वर देता है। इसलिए यजु० अ० ४। मंत्र १५ में लिखा है —वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम्। अर्थात् शरीर भस्म हो जायेगा और धनंजय वायु कारण रूप वायु में मिल जायेगा। इसके साथ ज्ञान भी नहीं जायेगा। इसलिए जन्म लेकर जीव माता-पिता, गुरुजनों से सीखते हैं। जीव चेतन है, ज्ञानी नहीं, यदि बालक से बोलें नहीं तो उसे बोलना भी न आयेगा। इसी कारण ईश्वर जीवों को आदिसृष्टि में वेदों का ज्ञान देता है। जिससे जीव जगत् को जानते हैं तथा उपासना के ३ मंत्रों में कहा है कि ईश्वर जीवों के "आत्मदा बलदा"-आत्मा में ज्ञान और बल देता है तथा ज़ब जीव बुरे कर्म करना चाहता है तब ईश्वर उसे भय, लज्जा, शंका देता है।

इसी कारण गायत्री मंत्र में ईश्वर को अपनी बुद्धि का प्रेरक मानते हैं तथा "यां मेधाम्"-मंत्र में बुद्धि ज्ञान की प्रार्थना करते हैं। यह कथन व्यर्थ है कि क्रम से ज्ञान की वृद्धि होती है। यदि यह सत्य है तो सब को समान ज्ञान होना चाहिए। किन्तु ज्ञान न्यूनाधिक होता है। और ईश्वर जगत् का एक राजा है। इसलिए सब बालक युवा वृद्ध होकर मर जाते हैं। तथा सब सूर्य, भूमि, चन्द्र लोक नियम से चलते हैं। इसीलिए वेद में ईश्वर को जगत् का एक राजा माना है "महित्वैकराज जगतो बभूव।" अर्थात् वह अपनी महिमा से इस जगत् का एक राजा है। चुना हुआ नहीं है। अतः वह एक है यदि दो भी होते तो लड़-झगड़ के मर जाते राजाओं के समान। इसीलिए जो लोग खुदा का बेटा खुदा का पैगम्बर चौबीस तीर्थंकर और पौराणिक चौबीस अवतार मानते हैं, यह व्यर्थ है क्योंकि दो में कभी न कभी झगड़ा हो ही जाता है। जैसे पिता-पुत्र, भाई-भाई, पति-पत्नी झगड़ जाते हैं, फिर सब काम बिगड़ जाते हैं। यदि ईश्वर दो भी हों तो संसार नियमित नहीं चलेगा, क्योंकि दो की जब लड़ाई हो जाय तो एक मत नहीं होते फिर काम बिगड़ जाते हैं।

और जो ईश्वर को एक जगह मानते हैं, उनकी उपासना नहीं हो सकती। ईसाई-मुसलमान आसमान पर, जैनी सिद्धशिला पर और पौराणिक स्वर्ग आदि और मूर्ति में मानते हैं। उनके साथ उपासना निकटता नहीं बन सकती, क्योंकि उपासना का अर्थ समीपस्थ होना है। ईश्वर दूर और भगत धरती पर उनकी समीपता कैसे होगी? उपासना का प्रकार भी महाराज ने सर्वोत्तम बताया है। सत्यार्थप्रकाश समुल्लास सात अर्थात् जब उपासना करना चाहे तब शुद्ध एकान्त देश में जाकर आसन लगाकर प्राणायाम करें, और अपने आत्मा और परमात्मा का विवेचन करें। जैसे उपासना के मंत्रों में वर्णन किया है—"स नो

बन्धुर्जनित अर्थात् हे परमेश्वर आप हमारे बन्धु और शरीर तथा संसार के उत्पादक हैं जैसे आपके मध्य मुक्ति में जीवात्मा अमृतपान करते हैं। वैसे आप हम को भी आनन्द प्रदान करें। जैसे गर्मी से तपा हुआ मनुष्य अगाध जल में गोता लगाकर जल के शीतलता आदि गुणों का अनुभव करता है। वैसे परमेश्वर के सच्चिदानन्द स्वरूप, सर्वशक्तिमान्, न्याय-कारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसकी उपासना करनी योग्य है।

परमेश्वर के इन गुणों का आत्मा से विचार करें, इसका फल तो अन्य ही (मुक्ति आदि) होगा परन्तु आत्मा का बल इतना बढ़ेगा कि पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी उपासक नहीं घबरायेगा और शुद्ध होकर मुक्ति तक पहुंच जायेगा। इति शम्।

श्रौतकर्म दर्शेष्टि

श्रद्धेय आचार्य पं० उदयवीर जी शास्त्री

न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, वेदान्त इन पांच दर्शनों के भाष्य तथा सांख्यदर्शन का इतिहास एवं वेदान्तदर्शन का इतिहास और सांख्य सिद्धान्त, इन ग्रन्थों के प्रकाशित हो जाने पर मीमांसा-दर्शन का भाष्य लिखने का अवसर आया। मीमांसादर्शन का कलेवर अन्य पांच दर्शनों के मिश्रित कलेवर से भी डचोढ़ा है। मेरा अनुमान था कि परिश्रमपूर्वक लिखते हुए और ऐसे कार्यों में जो अनेक प्रकार की विघ्न-बाधाएं आती रहती हैं, उनको लांघते हुये इस दर्शन का भाष्य लगभग आठ-नौ वर्ष ले लेगा। भविष्यत् का किसी को पता नहीं, फिर भी इस लम्बे और दुरूह कार्य को करने के लिए तत्पर हो गया।

प्रभु का ध्यान करते हुये एवं गुरुचरणों के आशीर्वाद की भावना से प्रेरित होकर दिनांक १४-१-१९८० को यह कार्य प्रारम्भ कर दिया। लभगभ साढ़े पांच वर्ष में जब अन्य कार्यों से समय मिलता रहा इसके लिखने में लगता रहा।, इतने समय में तीन अध्याय पूरे लिखे जा सके, जिनमें कुल मिलाकर १३ पाद हैं।

मीमांसा के कलेवर के अतिरिक्त मेरे सामने बड़ी समस्या यज्ञ में आमिष के प्रयोग की रही है। जिन पशुओं के आमिष का प्रयोग यज्ञों में बताया जाता है, वे हैं अज, मेष और वंशा। इनको हिन्दी में बकरा, मेढ़ा और गाय कहते हैं। जिस वातावरण में रहते हुये मैंने शिक्षा प्राप्त की, वहां यज्ञों में आमिष के प्रयोग को अति निन्दित कार्य माना जाता है। मेरे लिए यज्ञ में आमिष के प्रयोग की समस्या का समाधान अत्यन्त दुरूह था।

ईसवी सन् १९८४ में पानीपत आर्यसमाज का शताब्दी समारोह आयोजित हुआ था। उसमें वैदिक श्रौतकर्मों के विशेषज्ञ विद्वान् महाराष्ट्र प्रदेश से आमन्त्रित किये गये थे। मुझे भी उस समारोह में उपस्थित होने का सुअवसर प्राप्त हुआ। महाराष्ट्र के ये विशेषज्ञ कर्मकाण्डी विद्वान् पं० युधिष्ठिर मीमांसक जी की प्रेरणा से बुलाये गये थे। शताब्दी के अवसर पर मीमांसकजी के संपर्क में उन विद्वानों व अन्य प्रमुख महानुभाव के साथ चर्चा करने का

मुझे अवसर मिला। बातचीत के सिलसिले में उन महानुभाव से ज्ञात हुआ कि यज्ञ में आमिष का जो प्रयोग किया जाता है, उसकी मात्रा तीन-चार माशा या अधिक से अधिक छः माशा होती है। आहुति देते समय आमिष से आठ गुना घृत स्रुवा में रखा जाता है। यह ज्ञात होने पर मेरी अन्तरात्मा से अचानक यह भावना जाग्रत हुई कि यदि इतना ही आमिष यज्ञ के लिए उपयोगी है तो इतने आमिष के लिए पशु को मारा क्यों जाता है? क्योंकि इतना आमिष तो पशु को बिना मारे ही उससे प्राप्त किया जा सकता है। उन विद्वान् महोदय से तो मैंने उस समय कुछ नहीं कहा, पर मेरा विचार इस ओर दृढ़ होता गया कि आमिष आहार के प्रति उत्सुकता व लालसा की पूर्ति के लिए याज्ञिकों ने यज्ञ में आमिष की आहुति देने को निमित्त बना लिया। वैदिक अनुष्ठानों के प्रति सर्वसाधारण जनता की बड़ी उच्च भावना रही है। उन अनुष्ठानों को सम्पन्न कराने वाले याज्ञिकों के प्रति भी जनता का ऊंचा आदर भाव रहा है। याज्ञिकों ने अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए शास्त्रीय सन्दर्भों में ऐसे पदों का सम्मिश्रण किया और अनेक पदों के मनमाने अर्थ किये। यज्ञ के नाम पर की गई हिंसा को अहिंसा बताया।

इन तीन अध्यायों में यज्ञ में आमिष के प्रयोग की चर्चा सर्वप्रथम तृतीय अध्याय के छठे पाद के २७ वें सूत्र से प्रारम्भ की गई है। यह उस पाद का सातवां अधिकरण है। सूत्रों की व्याख्या जो सूत्र-पदों और प्रसंग के अनुसार समझ में आई है, वह वहां लिख दी गई है। पहले व्याख्याकारों ने जिस प्रकार व्याख्या की है उसका विवेचन यहां प्रस्तुत है।

व्याख्यात अधिकरण में आचार्यों ने स्पष्ट आमिष का प्रयोग यज्ञ में निर्दिष्ट किया है, इसको 'पशु-याग' कहा गया है। प्रारम्भिक काल में पशु-याग का स्वरूप क्या रहा होगा? यह तो आज ज्ञात नहीं है। पर आज भी समस्त देशव्यापी कुछ संकेत ऐसे उपलब्ध हैं, जिनके आधार पर प्रारम्भिक काल के पशु-याग के वास्तविक स्वरूप की झांकी सुझाये जाने में सहयोग मिल सकता है।

शास्त्रीय-पद्धति के अनुसार 'दर्श' याग अमावस्या के दिन अनुष्ठित किया जाता है। उसी के अन्तर्गत 'पशु-याग' है। समस्त भारत में पशु संबन्धी एक प्रथा है— कृषि तथा कृषि-संबन्धी अन्य कार्यों में जिन पशुओं का उपयोग किया जाता है, उनको प्रतिमाह अमावस्या के दिन पूर्ण विश्राम दिया जाता है। इतना ही नहीं, कि उस दिन उनसे कोई काम नहीं लिया जाता, प्रत्युत ऋतु के अनुसार उन्हें स्नान कराया जाता है, प्रत्येक अंग को मलकर पानी से धूल-गोबर आदि को धोकर साफ किया जाता है। सींग व खुरों को तेल से चुपड़ दिया जाता है। माथे, पार्श्वभाग व पुट्ठों को रंग से चित्रित किया जाता है। कतिपय प्रान्तों में ग्राम की आबादी के अनुसार एक या अनेक समूहों में पशुओं का सम्मिलित जलूस निकाला जाता या प्रदर्शन किया जाता है।

ये सब कार्य सर्वत्र एक समान किये जाते हों, ऐसा तो नहीं है। कहीं सब व कहीं कुछ कम रहते हैं, पर पूर्ण विश्राम सर्वत्र समान है। आज

यान्त्रिक काल में यन्त्रों द्वारा कृषि किये जाने से इस प्रथा में कुछ ढील दिखाई देने लगी है, फिर भी कृषि-जीवी परिवार में यदि बैल है, तों इस प्रथा का आंशिक पालन अवश्य किया जाता है।

यह विशेष ध्यान देने की बात है कि समस्त भारत में एक ही दिन अमावस्या इस कार्य के लिए क्यों निर्धारित है? क्या अमावस्या के दिन अनुष्ठित होने वाले 'दर्श' याग के साथ तो इसका संबंध नहीं है? शास्त्रीय-पद्धति के अनुसार जिसके अन्तर्गत पशु-याग का किया जाना सदा मान्य रहा है। कदाचित् कहा जा सकता है, कि अमावस्या मास का अन्तिम दिन होने के लिए निर्धारित किया गया हो। पर यह ऐकान्तिक हेतु प्रतीत नहीं होता, क्योंकि उत्तरभारत में पूर्णमासी के दिन महीना पूरा माना जाता है, और उसी के आधार पर महीनों की गणना होती है। पर ज्योतिष शास्त्र के अनुसार मास की 'पूर्ति' अमावस्या के दिन ही सर्वत्र मान्य है, जो प्राकृतिक स्थिति के सर्वथा अनुकूल है। चन्द्र का एक कला से बढ़ना प्रारम्भ होना, पन्द्रह दिन में पूरा बढ़कर फिर एक-एक घट कर पन्द्रह दिन में फिर वहीं आ जाना, यह अमावस्या के दिन महीना पूरा होना है और 'दर्श' याग के साथ उसका अटूट संबंध है। समस्तभारत में अमावस्या के दिन समान रूप से कृषि संबंधी पशुओं के पूर्ण विश्राम की अज्ञातकाल से प्रचलित निरन्तर परम्परा किसी भी विचारक को इस तथ्य की ओर आकृष्ट होने के लिए बाध्य करती है, कि इसका संबंध प्राचीन कालिक पशु-याग से रहना संभव है।

उस समय पशु-याग का स्वरूप क्या रहा होगा? आइये, उसे समझने का प्रयास किया जाये। मीमांसा शास्त्र में याज्ञिक पशुओं को तीन भागों में बांटा गया है:– (१) अग्नीषोमीय, (२) सवनीय, (३) अनुबन्ध्य। इसके विषय में यथाक्रम विचार करना आवश्यक है।

१. **अग्नीषोमीयः–** अग्नि और सोम दो देवताओं वाला पशु। पहले समझना है, अग्नि और सोम देवता क्या हैं। शास्त्रों में देवताओं के विवेचन की लम्बी चर्चा उपलब्ध है, पर प्रस्तुत प्रसंग में सारभूत जो समझा है, वह इस प्रकार है– अग्नि द्युलोक स्थित सूर्य और भूमि के अन्तर्गत विद्यमान ऊष्मा का प्रतीक है। सोम अन्तरिक्ष में विद्यमान चन्द्रमा और भूमिगत जल तथा ऋतु अनुसार बरसने वाले जलों का प्रतीक है। ये देवता समस्त औषधि वनस्पतियों के प्राण हैं, इन्हीं के आधार पर ये उत्पन्न होतीं, पनपती और फूलती फलती हैं। इनको साथ लेकर ये देवता कृमि/कीट से लेकर विशाल प्राणियों तक सबके जीवनाधार हैं।

औषधि वर्ग में पौधे आते हैं, जो प्रति वर्ष अंकुरित होते, फूलते-फलते और नष्ट हो जाते हैं। जंगलों में पैदा होने वाली जड़ी-बूटियां और मानव द्वारा खेतों में बोकर तैयार किये जाने वाले समस्त अन्न औषधि वर्ग में आते हैं जो एकबार अंकुरित होकर पनपते, बढ़ते और वर्षों तक फूलते-फलते रहते हैं, वे वनस्पति वर्ग में आते हैं। इन सबको अविरत बनाये रखने का आधार अग्नि और सोम देवता हैं।

इन देवताओं से सम्बद्ध यज्ञ निरन्तर अनादि काल से चल रहे हैं। आगे भी इसका कहीं अन्त नहीं है। अचिन्त्यकर्मप्रभु ने इस

प्राकृत जगत् की रचना यज्ञरूप में की है। मानव का इसमें कहां स्थान है? इसके लिए गीता के निम्न श्लोक देखिये—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्तिवष्ट काम धुक्।।
देवान्भावयतानेन तेदेवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।।
इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञ भाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः।।

प्रजापति ने आदिकाल में यज्ञों के साथ प्रजाओं की रचना करके कहा, इस यज्ञ के द्वारा उत्पन्न करो सब जीवन साधनों को, यह यज्ञ तुम्हारी अभिलषित कामनाओं को सदा पूरा करने वाला होवे।

इस यज्ञ से देवों का सत्कार करो, वे सत्कृत देव जीवन साधन देकर तुम्हारा सत्कार करें। इस प्रकार एक-दूसरे से संबद्ध रहते हुये परम कल्याण को प्राप्त करो।

यज्ञ से सत्कृतदेव तुम्हें तुम्हारे अभिलषित भोगों को प्रदान करेंगे। उन देवों को कुछ भी न देकर जो उनके दिये भोगों का उपयोग करता है, निश्चित ही वह चोर है।

हमें चोर न बनने के लिए यह समझना है, कि प्रजापति के द्वारा रचना किया गया यज्ञ क्या है? यह निश्चित है, जो खाद्य अन्न आज हम प्रयोग में लाते हैं, आदिकाल से ही वह ऐसा रहा हो, यह बात नहीं है। प्राकृत व्यवस्थाओं के अनुसार, जंगली रूप में इन अन्नों का प्रादुर्भाव हुआ। इनके प्रादुर्भाव में अग्नि और सोम देवता का पूरा सहयोग रहता है। यह प्रजापति द्वारा रचा गया यज्ञ है। मानव ने जब सर्वप्रथम आंखें खोलीं और स्वभावतः क्षुधा-तृषा आदि से संतप्त हुआ, उसने क्षुधा आदि की निवृत्ति के लिए उपाय ढूंढ निकाला। औषधि और वनस्पतियों के फलों की परीक्षा कर शत-सहस्र वार्षिक यज्ञों से उन्हें जीवनोपयोगी उत्तम खाद्यों के रूप में तैयार किया। सैकड़ों-सहस्रों वर्षों तक कृषि द्वारा परीक्षण व अनुसन्धान करते हुये उन्हें वर्तमान स्थिति तक पहुंचाया। यह प्रजा (मानव) द्वारा किया जाने वाला यज्ञ है, अधिक समय तक चलने वाले अनुष्ठानों का नाम मीमांसा में "सत्र" कहा गया है। मीमांसा में जो शत व सहस्र वर्षों के सत्रों का उल्लेख हुआ है, वे यही मानवों द्वारा किए गये यज्ञ हैं। देवों और प्रजाजनों की यज्ञ संबंधी पारस्परिक भावनाओं से सुपरिपुष्ट कल्याणमय संसार निर्बाध चल रहा है।

मानव-जीवन के सर्वप्रथम आवश्यक वस्तु अन्न-वस्त्र हैं। इनमें अन्न का पहला और वस्त्र का दूसरा स्थान है। यह निर्विवाद है, अन्न कृषि द्वारा तैयार किया जाता है, भारत देश अपने आदिकाल से कृषिप्रधान रहा है। वेद का उद्घोष है— 'अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व' (ऋ. १०।३४।१३) जुआ मत खेलो, कृषि का ही आश्रय लो। इसका तात्पर्य व मुख्य उद्देश्य यह है, कि आलसी बनकर श्रमहीन उपायों से धन की आकांक्षा मत करो, कृषि आदि श्रम-साध्य उपायों का सदा आश्रय लो, और धन-संपदाओं में रमण करो 'वित्ते रमस्व बहु मन्यमान, वही

इस सब विवेचन से हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि प्राचीन भारत में यहां के मूल निवासी आर्यों ने कृषि को जीवनोपयोगी

सर्वोत्तम साधन माना। गत पंक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है, अग्नि और सोम कृषि के देवता हैं। बीज भूमि में पड़कर जल और ऊष्मा (सोम+अग्नि) के सहयोग से अंकुरित होकर भूमि के ऊपर को सिर निकालता है। आगे इन्हीं देवों के सहयोग से पनपता, फूलता फलता अन्त में एक जीवनोपयोगी अनुपम सम्पदा को प्रस्तुत कर देता है।

अब विचारना यह है, कि इन देवताओं का पशु कौनसा है, जो इस सम्पदा को उभारने में प्रधान सहयोगी है? यह किसी से छिपा नहीं, सर्वविदित वह पशु बैल है। बैल गाय से पैदा होता है, इसीलिये गाय को भारतीय संस्कृति में सर्वश्रेष्ठ पूज्य पशु माना गया है। इसकी श्रेष्ठता व पूज्यता में जहां उसके दूध का स्थान है, उससे पहले उसके बछड़े का स्थान है, वह कृषि-जीवन में रीढ़ की हड्डी की तरह है। गीता के अनुसार इन यज्ञों का अनुष्ठान परम कल्याण को प्राप्त कराना है। कदाचित् इसी के अनुसार कृषि-यज्ञ के आधार बैल को, पौराणिक कल्पना में शिव (कल्याण) की सवारी बताया है। सवारी आधार और सवार आधेय होता है। तात्पर्य हुआ सामाजिक कल्याण बैल पर आश्रित है।

मीमांसा के प्रस्तुत अधिकरण (७) में यह विचार किया गया है, कि जो पशु धर्म सुने जाते हैं, वे कौन-से पशु के लिए कहे गये हैं? क्या वे किसी एक अग्नीषोमीय आदि पश के लिए कहे हैं? या किन्हीं दो के लिए? (—अग्नीषोमीय और सवनीय), अथवा लिए (पहले दोनों में अनुबन्धय को मिलाकर)? निर्णय यह दिया गया है, कि वे पशु-धर्म केवल अग्नीषोमीय पशु के लिए कहे गये हैं।

पशुधर्म से तात्पर्य है यज्ञिय पशु के संबंध में यज्ञ के अवसर पर कर्त्तव्य कर्म। वे निम्न रूप में कहे गयें हैं— उपाकरण, उपानयन शलक्ष्णया बंध, यूप-नियोजन, संज्ञपन, विशसन आदि* इनके अर्थ निम्न प्रकार रिशसन किये जाते हैं—

उपाकरणः— मंत्रोच्चारणपूर्वक हाथ से अथवा कुशाओं से पशु का स्पर्श करना 'उपाकरण' कहाता है। एक स्थान से अन्यत्र ले जाते समय प्रायः प्रत्येक ले जाने वाला व्यक्ति पशु के पीठ, पार्श्व, पुट्ठे, माथे या सिर आदि पर हाथ फेरता है। मानो उसे प्यार देता हुआ अगले कार्य के लिए प्रेरित करता है, इस साधारण लौकिक व्यवहार का वैदिक रूप उपाकरण है।

उपानयनः— पशुशाला से यज्ञमण्डप की ओर पशु का लाया जाना 'उपानयन' है।

श्लक्ष्णया बंधः— चिकनी तथा मुलायम रस्सी से पशु के अगले दाहिने पैर, सींग या सींगों अथवा गर्दन में पशु को बांधना। यह कार्य पशुशाला से चलते समय अथवा यज्ञमण्डप पहुंचकर किया जाता है।

यूप निबन्धनः— यज्ञमण्डप के समीप पशु को बांधने के लिए स्थापित किये गये यूप (खूंटा) में पशु को बांधना 'यूप नियोजन' है।

पशु-संबंधी ये कार्य लोक-वेद में समान है, एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए ये क्रियाएं साधारण हैं। यहां प्रश्न है,

यज्ञमण्डप में पशु क्यों ले जाये जाते थे? आज के पशुमेलों की तरह तो इन्हें नहीं कहा जा सकता, आज के पशुमेले केवल पशुओं की बिक्री के लिए जुड़ते हैं। परन्तु उस समय के पशु-यागों के प्रसंग में उनकी बिक्री का कोई संकेत नहीं मिलता। सुना जाता है, कभी और कहीं सरकार की ओर से ऐसा आयोजन होता है, जहां पशुओं के स्वास्थ्य के आधार पर उनमें प्रतियोगिता रखी जाती है, और सुन्दर तथा सुपुष्ट पशुओं को पुरस्कृत किया जाता है। ऐसे आयोजनों को पशु-संबंधी याग ही समझना चाहिए।

उस अति प्राचीन काल में जब समस्त समाज का जीवन आधार मुख्य रूप से केवल कृषि-उद्योग था, उस समय पशु-संपदा की सुपुष्टि और सुरक्षा के लिए ऐसे आयोजनों का होना अधिक संभव है। ज्योतिष्टोम या सोमयाग आदि ऐसे ही आयोजनों के साथ इसे रखा जाता होगा क्योंकि उन आयोजनों में समाज के सशक्त संचालक व्यक्ति भाग लेते थे, और सर्वसाधारण के लिए उन आयोजनों का द्वार खुला रहता था। आज समस्त भारत में अमावस्या के दिन कृषि संबंधी पशुओं को पूर्ण विश्राम देना, उन्हें नहलाना, धुलाना, सजाना उसी तरह के पशु याग का संकेत देता है। उसी का यह खण्डरात समझना चाहिए। इससे तात्कालिक पशु-याग की रूपरेखा का कुछ अनुमान किया जा सकता है।

अभी तक की चर्चा से यह जाना, कि अग्नीषोमीय पशु बैल है, उपाकरण आदि धर्म उसी के विषय में बताये गये हैं। इससे यह युक्त प्रतीत होता है कि बैल कृषिजीवी समाज का प्रिय एवं प्रधान पशु था। क्या यज्ञमण्डप में ऐसे पशु को मारने के लिए लाया जाता था? यह कदापि संभव नहीं है। अगली पंक्तियों से स्पष्ट होगा कि अन्य पशुधर्मों का स्वरूप उस समय क्या रहा होगा। आज के भारतीय कृषिजीवी परिवार के अमावस्या के दिन पशु-संबंधी व्यवहार से जाना जाता है, कि उस काल का कृषिजीवी परिवार अपने पशुओं को नहला-धुलाकर, सजाकर उस अवसर पर लाता था, उसमें प्रथम स्थान बैल का, दूसरा स्थान भेड़, बकरी आदि का अन्तिम स्थान अन्य पशुओं का रहता था, जो केवल दूध देते, तथा बछड़े, बछिया व पढ़ोरे जानवर। इनका विवरण मीमांसा-शास्त्र के आधार पर अगली पंक्तियों में दिया गया है। वहां लाये जाने वाले सुपुष्ट तथा स्वस्थ पशुओं को पुरस्कृत किया जाता, व प्रशंसा एवं सत्कारपूर्वक विदा कर दिया जाता था। दुर्बल पशुओं के अंग-अंग की परीक्षा की जाती थी। उनकी दुर्बलता को दूर करने के लिए उपाय सोचे जाते, और उन्हें व्यवहार में लाने का पूरा प्रयास किया जाता था। इस प्रकार पशुओं के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए प्रतिमास उनको एकत्र कर स्वास्थ्य परीक्षा की जाती थी।

यह उपाकरण आदि चार पशु धर्मों के विषय में संक्षिप्त विचार किया। बताये गये शेष पशुधर्मों पर भी दृष्टि डालिये। शबर भाष्य के अनुसार शेष पशुधर्म नामोल्लेख पूर्वक दो बताये हैं– १. संज्ञपन २. विशसन। आगे 'इत्येवमादयः' कहकर कुछ धर्मों को छिपाकर रखा गया हैं।

संज्ञपनः— इस पद का अर्थ सभी व्याख्याकारों ने 'मारना' किया है। कोषकारों ने बताया, यह पद 'सम' उपसर्ग पूर्वक 'ज्ञा' धातु से णिच्-ल्युट् प्रत्यय होकर 'युक्' आगम के साथ निष्पन्न होता है। पाणिनि के धातुपाठ में 'ज्ञा' धातु तीन अर्थों में पढ़ा है— मारण, तोषण, निशामनेषु ज्ञा, तीन अर्थ हैं— मारण, तोषण, निशामन। मारना, तुष्ट करना, दर्शन करना या अवलोकन करना। इतने अर्थों में 'मारना— अर्थ ही क्यों लिया गया, सन्तुष्ट करना या दर्शन एवं अवलोकन करना अर्थ क्यों नहीं लिये गये?

ज्ञात होता है, उस अति प्राचीन काल से जो यज्ञों का प्रारम्भिक काल था— 'ज्ञा' धातु का प्रयोग 'मारण' अर्थ में न होकर शेष दो अर्थों में ही होता था। जब उन नृशंस क्रूर रसना-लोलुप याज्ञिकों ने जांच परीक्षा, दर्शन अवलोकन के लिए आने वाले पशुओं में से कतिपय पशुओं को धर्म के नाम पर आहुत करना और खाना प्रारम्भ कर दिया, तब इस धातु के अर्थों के साथ 'मारण' को भी जोड़ दिया गया। यज्ञ की वास्तविक भावना को उपेक्षित कर दिया गया। ये लोग समाज में प्रभावी थे, समाज ने उसको सहन किया। पर, इस कुकृत्य का समय -समय पर विरोध बराबर होता रहा है। बौद्ध धर्म का उद्भव इसी कुकृत्य के प्रतिक्रिया रूप हुआ। इन्द्रियां बड़ी बलवान् हैं। वहां भी अब व्यवहार से इसका कोई महत्व नहीं है।

तात्पर्य है, 'संज्ञपन' पद के पुराने वास्तविक अर्थ— तोषण व निशामन को भुला दिया गया, पर पाणिनि ने उसे सुरक्षित रखा। इससे स्पष्ट होता है, अमावस्या का दिन इस कार्य के लिए निर्धारित था, कि उस दिन के इष्टि अनुष्ठानों के अवसर पर स्थानीय पशुओं की— स्वास्थ्य आदि की दृष्टि से परीक्षा जांच-पड़ताल की जाये, जिससे राष्ट्र की पशुसम्पदा स्वस्थ व सुरक्षित रहे।

ऐसे अवसर पर पशु केवल प्रदर्शनार्थ आते थे, उचित कार्यवाही के अनन्तर वापस कर दिये जाते थे। इसकी सत्यता के लिए अमावस्या के दिन अनुष्ठित इष्टि का नाम प्रमाण रूप में उपस्थित किया जा सकता है। पूर्णमासी के दिन अनुष्ठित होने वाली इष्टि का नाम तिथि नाम के आधार पर पूर्णमासेष्टि है। इसीप्रकार अमावस्या के दिन अनुष्ठित होने वाली इष्टि का नाम तिथि नाम के आधार पर अमावस्येष्टि होना चाहिए था, पर ऐसा न होकर उसका नाम 'दर्श' है। यह नाम उस समय विशेष निमित्त से रखा गया ज्ञात होता है। वह निमित्त है, उस अवसर पर दर्शन-अवलोकन अर्थात् स्वास्थ्य आदि की जांच-पड़ताल के लिए पशुओं को सामूहिक रूप में एकत्रित किया जाना। यह अर्थ 'संज्ञपन' शब्द के धातु 'ज्ञा' के निशामन अर्थ में अंतर्निहित है। आरम्भ काल में इस पद का यही अर्थ था, और इसी के अनुसार व्यवहार होता था। अनन्तर काल में अत्याचारी हत्यारे याज्ञिकों ने इन्द्रियों के दास बनकर पद के अर्थ को बदला, जो आज समझा जा रहा है। यदि इस सतर्क प्रमाण को सबल नहीं समझा जाता तो शास्त्र के मर्मज्ञ आचार्य यह बतलाने की कृपा करेंगे, कि अमावस्या के दिन होने वाली इष्टि के 'दर्श' नाम का प्रवृत्ति निमित क्या है?

वह नाम भी पूर्णमासेष्टि के समान अमावास्येष्टि क्यों नहीं है?

यह पशुधर्म संज्ञपन के विषय में विचार प्रस्तुत किया गया। इसके आगे पशुधर्म बताया—

विशसनः— इसका अर्थ है—पशु के एक-एक अंग को काटना। जब 'संज्ञपन' का अर्थ 'मारना' मान लिया गया, तो स्वभावतः उसके आगे यही पशुधर्म हो सकता है। वस्तुतः प्रारम्भ काल में जब 'सज्ञपन का' का अर्थ मारना न होकर पशुओं को सन्तुष्ट करना व प्रदर्शनार्थ एकत्रित करना था तब 'विशसन' नाम के पशुधर्म का होना संभव ही नहीं था। इसका उद्भव न संज्ञपन पद का अर्थ बदले जाने के अन्तर हुआ है। पशु के दर्शन अर्थात् जांच-पड़ताल के अवसर पर जिस क्रिया का प्रयोग किया जाता था, उसके कुछ संकेत सवनीय पशु के आधुनिक विवरण में लक्षित होते हैं। उसके स्पष्टीकरण का प्रयास सवनीय पशु के प्रसंग में किया गया है।

प्रारम्भ काल में 'संज्ञपन' पशुधर्म के अनन्तर अन्य दो धर्म— 'पर्यग्निकरण' और 'विसर्जन' माने जाते थे।

पर्यग्निकरणः— इस पद का वास्तविक अर्थ क्या रहा होगा, आज स्पष्ट नहीं है। अनेक सुझाव विचार में आते हैं। १. अमावस्या के दिन पशुओं को नहला-धुलाकर खूंटों पर बांध, ऋतु के अनुसार उन्हें डास, मच्छर आदि तंग न करें, उनके इधर-उधर अथवा उचित दिशा में आग जलाकर धुआं आदि करना अथवा गर्मी पहुंचाना पर्यग्निकरण रहा हो। २. यह भी संभव है, सरगर्मी से पशुओं के स्वास्थ्य की जांच-पड़ताल का ही नाम 'पर्यग्निकरण' रहा हो। ३. विशेष निमित्त से यज्ञाग्नि के समीप उपस्थित होना। 'पर्यग्निकरण' माना गया हो। आजकल जैसे रोगों के टीके व सूची-वेध के अनन्तर मालूम किया जाता है, कोई व्यक्ति टीके या सूची-वेध के बिना रह तो नहीं गया? इसी प्रकार उस काल में पशुओं के स्वास्थ्य की जानकारी के लिए प्रशासन की ओर से इस नाम पर सूचना प्राप्त की जाती हो, कि स्थानीय पशुओं का पर्यग्निकरण हो गया या नहीं? कोई पर्यग्निकरण से रह तो नहीं गया है? यह आधार अथवा इन जैसे अन्य कोई आधार उक्त नामकरण के सम्भव हैं।

आज पर्यग्निकरण का स्वरूप —पशु को मारने से पहले — घास के दो-चार तिनकों के अग्रभाग में आग लगाकर पशु के चारों ओर घुमा देना — समझा जाता है।

विसर्जनः— 'संज्ञपन' पद का 'मारण' अर्थ समझ लेने पर पशु के विसर्जन छोड़े जाने का प्रश्न ही नहीं उठता। मार देने पर छोड़ने का अवसर कहां रहा? हां! यह कहा जा सकता है, कि उसे जीवन से छुड़ा दिया गया। वस्तुतः 'विसर्जन' पशुधर्म का स्वास्थ्य और उसकी अवस्था में संभव है, जब 'संज्ञपन' पद का अर्थ 'मारण' न कर तोषण व निशामन किया जाता है। जैसा कि पहले निर्देश किया जा चुका है, प्रारम्भ में 'ज्ञा' धातु के दो ही अर्थ थे। उसके अनुसार विसर्जन पशुधर्म का सामञ्जस्य उत्पन्न होता है। मारण अर्थ होने पर तो यह विसर्जन पशुधर्म मजाक ही है।

अभी तक अग्नीषोमीय पशु के विषय में विवरण प्रस्तुत किया गया। आचार्यों के निर्णयानुसार उपाकरण आदि पशुधर्म केवल अग्नीषोमीय पशु के लिए विधान किये गये हैं। सवनीय आदि पशुओं के प्रसंग में उनका निर्देश मात्र होता है। सवनीय पशु के विषय में विचार प्रस्तुत हैं।

सवनीयः— यह प्रथम कहा जा चुका है, ज्योतिष्टोम याग छह दिन में संपन्न होता है। पांचवां दिन प्रधान सोमयाग के अनुष्ठान का है। वह तीन सवनों में किया जाता है— प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन, तृतीय सवन। इनमें जो पशु उपस्थित होते हैं, वे सवनीय कहे जाते हैं। अग्नीषोमीय पशु कौन सा है? इसका निर्देश किसी आचार्य ने नहीं किया। यदि किया हो तो मुझे ज्ञात नहीं है। अब सवनीय पशु कौन-सा है? इसका निर्देश उपलब्ध होता है। ये पशु मेष -मेषी एवं अज-अजा है अर्थात् भेड़, बकरी, मेढ़ा बकरा। आचार्यों ने बताया— प्रातः सवन में वसा (चर्बी) की आहुति, माध्यन्दिन सवन में पुरोडाश की और तृतीय सवन में पशु के कटे हुये अंगों की। पुरोडाश तो अन्न से तैयार किया जाता है, पर चर्बी और पशु के कटे अंग मेंढे या बकरे के हो सकते हैं, क्योंकि सवनीय पशु ये ही हैं। पर उस विषय के विशेषज्ञों से ज्ञात हुआ कि अग्नीषोमीय पशु अज है।

सवन की आहुतियों के विषय में सुझाव आता है। बाहर से आये इस स्तर के सब पशुओं को प्रातःकाल सावधानीपूर्वक स्वास्थ्य-आरोग्य की परीक्षा कर उनमें से मांसल तथा वपा बहुल पशुओं को इस आधार पर अलग छांट दिया जाता था कि इनसे उत्तम ऊन प्राप्त हो सकती है। कालान्तर में इस वास्तविकता को वपा की आहुति के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। माध्यन्दिन सवन में पुरोडाश की आहुति का तात्पर्य है, बाहर से आये पशुओं को चारा देना। ये बाहर से आये हैं, पूर्व मध्याह्न् में उनमें से सुपुष्ट पशुओं को छांट दिया गया है। चारा लेकर दुर्बल पशु तृतीय सवन कालिक परीक्षा के लिए तैयार हो जायें, यह माध्यन्दिन सवन की आहुति का स्वरूप है। तृतीय सवन में दुर्बल पशुओं के प्रत्येक अंग की गहराई से परीक्षा की जाती थी, कि अंग में कोई रोग तो नहीं है? पशु दुर्बल क्यों हैं? उसको हटाने के उपायों का पता लगाकर उन्हें व्यवहार में लाने का प्रयास किया जाता था। अंग-अंग की इस परीक्षा को अंगों की आहुति के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। यह ज्योतिष्टोम के पांचवें दिन के पशुयाग का स्वरूप है।

तीनों सवन सवनीय पशुओं से कैसे संबद्ध होते हैं? इसके लिए वचन हैं "वपया प्रातः सवने प्रचरन्ति पुरोडाशेन माध्यंदिने सवने अंगै स्तृतीय सवने" इसका तात्पर्य है कि 'वपा' से प्रातः सवन में होम करते हैं, पुरोडाश से माध्यन्दिन सवन में और अंगों से तृतीय सवन में।

'प्रचरन्ति क्रियापद का अर्थ 'होम करते या आहुति देते हैं' यह अर्थ किस आधार पर किया जाता है? इस प्रश्न का कोई सदुत्तर नहीं है। वाक्य के मूलग्रन्थ का पूर्वापर प्रसंग की

उक्त अर्थ करने में कोई अनुकूल सहायता नहीं देता।

वास्तविकता यह है कि यज्ञानुष्ठान के प्रारम्भिक काल में यह व्यवस्था निर्धारित की गई कि प्रतिमास अमावस्या इष्टि के अवसर पर स्वास्थ्य व सुरक्षा आदि की जांच-पड़ताल के लिए समस्त स्थानीय पशु यज्ञमण्डप के समीप एकत्रित किये जायें। **'वपया प्रचरन्ति'** का यही तात्पर्य है। 'वपा' पद निरोग, हृष्ट-पुष्ट पशु का प्रतीक है। लोक में निरोग तथा पुष्ट व्यक्ति को देखकर मनोरंजन की भावना से कहा जाता है, चर्बी बहुत चढ़ गई है। चर्बी=वपा पद शारीरिक पुष्टि का प्रतीक माना जाता है।

पशुओं की जांच-पड़ताल के लिए नियुक्त व्यक्ति वपा प्रतीक से प्रचारित कराता है– घोषित करता है। ये 'पशु स्वस्थ निरोग हैं उन्हें छांट दिया जाता है 'वपया प्रचरन्ति' का यही अभिप्राय है।

आगे वाक्य है– 'पुरोडाशेन माध्यन्दिने प्रचरिन्त' 'पुरोडाश' खाद्य अन्न का तैयार किया जाता है, पशु मांस से इसका कोई संबंध नहीं। यहां यह पद पशुओं के खाद्य अर्थात् चारे का प्रतीक है। तात्पर्य है कि माध्यन्दिन सवन के अवसर पर अर्थात् दोपहर के समय सब पशुओं को चारे पर बांध दिया जाये, वे इधर-उधर बहुत स्थानों से आये हुये हैं, भूखे हो सकते हैं, जिन दुर्बल पशुओं की जांच-पड़ताल तीसरे पहर के बाद के अवसर पर होनी है, उन सबको यथेष्ट चारा दिया जाये। यह घोषणा 'माध्यन्दिने प्रचरन्ति' का अर्थ है।

सन्दर्भ का अन्तिम वाक्य है– 'अंगैस्तृतीये सवने प्रचरन्ति' जो दुर्बल पशु स्वास्थ्य परीक्षा के लिए शेष रह गये हैं उनके प्रत्येक अंग के साथ सावधानीपूर्वक जांच कर अर्थात् गहराई से अंगों की परीक्षा कर उनकी दुर्बलता के कारण और उनकी निवृत्ति के उपायों की घोषणा की जाती है। यह 'अंगैस्तृतीये सवने' का तात्पर्य है।

'कथं सवनानि पशुमन्ति'? इस प्रश्न का उत्तर उक्त रीति पर 'वपया प्रातः' इत्यादि सन्दर्भ से दिया गया है और यदि 'वपा' का अर्थ अलग से निकाली चर्बी और 'अंगैः' का अर्थ 'पशुमांस' लिया जाता है, तो तीनों सवन पशुओं से संबंद्ध नहीं हो पाते। 'माध्यन्दिन सवन' पशु संबंध से रहित रह जाता है, क्योंकि पुरोडाश मांस से तैयार नहीं किया जा सकता– वह चावल या जौं का बन सकता है।

जिन याज्ञिकों ने पवित्र यज्ञमण्डप में इस बूचड़खाने की स्थापना की, निस्सन्देह वे धर्म के नाम पर घोर अधर्म व पापाचरण करने वाले व्यक्ति थे। एक ओर पाप को पुण्य के रूप में संस्थापित करना अपने आप में ही महान पाप है।

इन पशुओं को सामाजिक दृष्टि में यज्ञमण्डप में लाने का क्या प्रयोजन रहा होगा? यह तो आज पूर्णतः स्पष्ट नहीं है पर 'अग्नीषोमीय' पशु के विवरण के अनुसार सवनीय पशु के विषय में भी कुछ सुझाव दिये जा सकते हैं। यह स्पष्ट है कि अग्नीषोमीय पशु बैल उत्तम स्तर का पशु माना जाता है। गाय की महत्ता का कारण श्रेष्ठ दूध के अतिरिक्त खेती के महत्त्वपूर्ण साधन बछड़ों का

पैदा करना था, उसके बाद के स्तर में अर्थात् दूसरे स्तर पर भेड़ें, बकरी आदि पशु आते हैं। ये समाज को अनेक प्रकार से लाभान्वित करते हैं। सबसे पहला और महत्त्वपूर्ण इनका उपयोग ऊन की उपलब्धि है। साधारण दूध प्राप्ति के पश्चात् उनका बड़ा उपयोग इसके मल-मूत्र का है, इससे अत्यन्त उपयोगी खाद तैयार किया जाता है, जो भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाता है, न्यून नहीं होने देता।

अनुबन्ध्यः— पशुओं का नम्बर अन्तिम छठे दिन आता है। अनुबन्ध्य पशु कौन से हैं? इसका कुछ संकेत प्रतीक रूप से शास्त्र में मिलता है, एक वाक्य है मैत्रा वरुणीं वशामनुबन्ध्यामालभते' मित्र और वरुण देवतावाली वशा (गाय) का आलभन करता है, जो पशुओं के अनुबन्ध्य वर्ग में आती है। इसे स्पष्ट करने के लिए 'अनुबन्ध्य' पद का अर्थ समझना होगा। उपसर्ग व धात्वर्थ के अनुसार अर्थ होगा पीछे बंधा हुआ, तात्पर्य हुआ कि पशुओं का एक वर्ग जो अन्य पशुओं के बाद में आता है— पिछलग्गू वर्ग। पशु की दृष्टि से 'वशा' पद के दो अर्थ हैं— गाय और हथनी।

वस्तुतः वशा पर यहां शेष पशु गाय का उपलक्षण है। पशुओं के पूर्वोक्त दो वर्गों से अतिरिक्त जो पशु रह गये, उन सबको उपस्थित कर आलभन प्राप्त होता है। यदि वशा का अर्थ केवल गाय लें तो प्रश्न दोनों अवस्थाओं के लिए उभरकर सामने आता है। कि गाय और अन्य श्रेष्ठ पशुओं को अन्तिम छठे दिन क्यों उपस्थित किया जाता है। उत्तर होगा आलभन के लिये। तब पुनः प्रश्न उठेगा कि वशा का आलभन क्या मारना काटना है? या केवल स्पर्श करना? यदि पहला है, तो क्या यह स्वीकार्य होगा? यदि अर्थ दूसरा है, तो केवल स्पर्श करने का प्रयोजन बताना होगा।

प्रतीत होता है, 'वशा' पद अवशिष्ट सभी पशुओं का उपलक्षण है। इनमें दूध वाली गाय, बांझ गाय, दूध पीते बछड़े, बछिया, दूध पीते बछड़े, बछियां, पढोरे बैल, ऊँट, घोड़े, गधे, खच्चर, भैंस आदि सभी आ जाते हैं, इनके उपस्थित करने का प्रयोजन वही है, जो प्रथम दोनों वर्ग के पशुओं की उपस्थिति का बताया है। पर्यग्निकरण के पश्चात् इन्हें अपने-अपने स्थानों को वापस कर दिया जाता है। उन्हें मारने-काटने का कोई प्रश्न नहीं

ज्योतिष्टोम के चौथे दिन अग्नीषोमीय पशु, पांचवें दिन सवनीय, छठे दिन अनुबन्ध्य पशु, यज्ञमण्डप के साथ स्वास्थ्य परीक्षा स्थान पर उपस्थित किये जाते हैं, जहां उन्हें बांधने के लिए यूप स्थापित किये जाते हैं, उपाकरण आदि पशुधर्म पूर्ण रूप से केवल अग्नीषोमीय पशु के लिए विहित हैं, शेष के लिये उसी का अनुवाद होता है, वह भी आवश्यकतानुसार। जैसे सवनीय पशुओं के लिये तीसरे चौथे पशुधर्म की आवश्यकता नहीं होती, दो व्यक्ति शब्द करते या डण्डी दिखाते इधर-उधर खड़े रहते हैं, तो ये पशु चुपचाप बीच में घिरे रहते हैं, इधर-उधर निकलने या जाने की कोई चेष्टा नहीं करते। इसलिए श्लक्ष्णाय बंध और यूप नियोजन की इनके लिए आवश्कयकता नहीं होती। अनुवाद का यही फल है, यदि विधि हो, तो उनके अनुसार पूरा अनुष्ठान करना पड़ता है।

इस विवरण से निम्न परिणाम सामने आते हैं–

क– आरम्भ काल में यज्ञानुष्ठान के अवसर पर पशु मारे नहीं जाते थे।

ख– एक निर्धारित दिन अमावस्या इष्टि के अवसर पर स्वास्थ्य आदि परीक्षा के लिये पशुओं को एकत्रित किया जाता था।

ग– उसी का अब शेष रूप–समस्त भारत में अमावस्या के दिन–कृषि-पशुओं को पूर्ण विश्राम देना पाया जाता है।

घ– पशुसम्बन्धी से सब भाव पशुओं के 'संज्ञपन' नामक धर्म में अन्तर्निहित हैं, जो 'संज्ञपन' पद के निर्वचन से स्पष्ट हैं।

यज्ञ में मासाहुति देने का प्रथम प्रसंगविषयक विवेचन गत पंक्तियों में किया जाता है। इसी प्रकार का दूसरा प्रसंग तृतीयाध्याय के अन्तिम तीन सूत्रों (४२-४४) में मिलता है उसका नाम "शाक्यानामयनम्" बताया गया हैं। निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह प्रसंग पूर्णतया प्रक्षिप्त है। इसका स्पष्ट विवेचन उसी प्रसंग में कर दिया गया है। पाठक महानुभाव वहीं पर उसे देख सकते हैं।

यज्ञ में मांस के प्रयोग का विधान जब से प्रारम्भ किया गया, इसका विरोध भी तभी से बराबर होता रहा है। पर जिन व्यक्तियों के हाथों में यज्ञानुष्ठानों का सम्पन्न करना रहा, उन्हीं के द्वारा मांस का प्रवेश यज्ञों में किये जाने के कारण यह विचार प्रसार पाता रहा। लम्बी परम्परा से प्रचलित यह विचार प्रबुद्ध व्यक्तियों द्वारा विरोध होते रहने पर भी इतना परिपक्व हो चुका है कि समस्त हिन्दूसमाज इसे धर्म का आवश्यक अंग मानता है। यह कैसी विडम्बना है कि जो स्पष्ट रूप से अधर्म और अनाचार है, उसे मान्य धर्म समझ लिया गया।

विरोध करने वालों की संख्या नगण्य न होने पर भी यहां मीमांसा-परम्परा के एक आचार्य भर्तृमित्र का उल्लेख करना चाहता हूं।

आचार्य भर्तृमित्र का अपने समय में मीमांसा के क्षेत्र का यह प्रयास ऐसा ही है, जैसा वर्तमान काल में महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का रहा है। मीमांसाप्रतिपादित समस्त वैदिक कर्मों और उनके अदृष्ट फलों को स्वीकार करते हुये स्वामी दयानन्द ने उनके दृष्ट फल को भी माना है, और यज्ञों में आमिष प्रयोग को सर्वथा वेद-विरुद्ध बताते हुये, लोकायतदर्शन द्वारा ज्योतिष्टोमादि यागों में आमिष प्रयोग तथा मृतकश्राद्ध की कटु आलोचना को युक्तिसिद्ध एवं अखण्डनीय बताया है।

वैदिक कर्मकाण्ड के विषय में ऐसी भावना अनेक मध्यकालिक आचार्यों की रही है। विक्रम संवत् के प्रारंभिक काल में महाराजा विक्रमादित्य के धर्माध्यक्ष आचार्य हरिस्वामी ने शतपथब्राह्मण की व्याख्या में ऐसी मान्यता रखने वाले आचार्यों को 'तार्किक' पद से स्मरण किया है। संभवतः इस पद के द्वारा उनका निर्देश किये जाने का यही कारण रहा होगा, कि वे वैदिक कर्मकाण्ड की तात्कालिक निरंतर परम्परा को यथालिखित रूप में स्वीकार नहीं करते थे, तथा तर्क के आधार पर उसके अन्य रूप व प्रकार को व्यवस्थित कर उसी को

यथार्थ वैदिक मानते थे। संशयजनक वाक्यों की तर्कपूर्ण व्याख्या करते थे। जैसे– **'यज्ञो वा आपः'** तथा **'शिरः पुरोडाश इति'** इत्यादि वाक्यों में **'जलों को यज्ञ'** और **'पुरोडाश को शिर'** क्यों कहा गया, यह एक साधारण जिज्ञासा होती है। इसका समाधान शास्त्र में कहीं लिखा नहीं है, तर्कमूलक समाधान है– यज्ञ का साधन होने से जलों को यज्ञ कहा गया है, तथा पुरोडाश अन्य साधनों की अपेक्षा प्रथम प्रस्तुत होता है, अतः उसे **'शिर'** बताया गया। इसी तर्क-भावना को तंत्रवार्त्तिक के श्लोक में **'स्वोत्प्रेक्षा'** पद से कहा गया है। इन विचारों को लक्ष्य कर क्या मीमांसा का लोकायतीकरण कहा जा सकता है?

कतिपय विद्वानों का विचार है– भर्तृमित्र को मीमांसा विषयक रचना को लक्ष्य कर मीमांसा का जो लोकायतीकरण कहा गया है, उसका कारण भर्त्तृमित्र द्वारा **'अपूर्व'** का स्वीकार न करना है। पुनर्जन्म का अस्तित्व स्वीकार न किये जाने के कारण लोकायत मत में–१– **'अपूर्व'** को मानना अनपेक्षित है। उम्बेक ने अपनी व्याख्या में **'विधिनिषेधयो-रिष्टानिष्टफलाभ्युपगमात्'** पंक्ति के द्वारा भर्त्तृमित्र की इस मान्यता का संकेत किया है। तात्पर्य है, भर्त्तृमित्र विधि और निषेध के अनुष्ठान द्वारा प्राप्त होने वाले यथाक्रम इष्ट एवं अनिष्ट फल को नहीं मानता था। ये फल कर्मानुष्ठान से उत्पन्न **'अपूर्व'** द्वारा प्राप्त होते है, उनको न मानना **'अपूर्व'** की सत्ता का निषेध करना है। इसी रूप में मीमांसा का लोकायतीकरण समझना चाहिए।

इस विषय में विचारणीय है– भर्तृमित्र मीमांसानुमोदित वैदिक मार्ग का अनुयायी था, इसी कारण मीमांसा पर उसने कोई रचना की। भट्ट उम्बेक की व्याख्या के अनुसार स्पष्ट है, वह मीमांसा की यज्ञ प्रक्रिया को अक्षुण्ण मानता था। ऐसी स्थिति में वह **'अपूर्व'** को स्वीकार न करे, यह संभव नहीं। तब तो यज्ञानुष्ठान आदि– जिसको उसने स्वीकार किया– सब निरर्थक हो जाता है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता, कि भर्त्तृमित्र **'अपूर्व'** को नहीं मानता था। ऐसी स्थिति में विधि-निषेध के इष्ट-अनिष्ट फलों को भर्त्तृमित्र द्वारा स्वीकार न करने का क्या अभिप्राय है, यह समझना आवश्यक है।

प्रतीत होता है, यज्ञों में आमिष प्रयोग की विधि और अन्यत्र शास्त्र में हिंसा का निषेध, इन विरोधी स्थितियों को लक्ष्य कर उसने मन्तव्य का निर्धारण किया। इस विरोध को उभय मीमांसक आचार्यों ने **'वैदिक हिंसा हिंसा न भवति'** कहकर टालने अथवा अपने आन्त्र को बहलाने का प्रयास किया है, तथा उत्सर्ग-अपवाद के रूप प्रस्तुत कर इसके समाधान की चेष्टा की है। परन्तु भर्त्तृमित्र इस पद्धति को स्वीकार करता प्रतीत नहीं होता। उसका कहना –**'अग्निषोमयं पशुमालभेत'** इस विधि का अनुष्ठान करने से इष्टफल की ही प्राप्ति हो, ऐसा नहीं है। पशवालम्भनरूप हिंसा का अनिष्टफल अवश्य होगा, भले ही वह विधिविहित मानी जाये। इसी रूप में उसके द्वारा विधि के केवल इष्ट फल को स्वीकार न करना है।

आमिष के स्थान पर उसने अन्य औषध व वानस्पत्य द्रव्यों के प्रयोग का निर्देश किया, जो उपलब्ध परम्परानुकूल विधि-विहित नहीं है, विधि-विहित न होने पर भी उसके प्रयोग को अनिष्ट फलप्रद नहीं माना। उम्बेक को ही अभिव्यक्त किया है। सांख्याचार्यों ने भी यज्ञिय आमिषप्रयोग के विषय में ऐसा ही मन्तव्य स्वीकार किया है।

हिन्दू धर्म, स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज

श्री मानू गजानन्द आर्य

बहुधा एक प्रश्न उलझा हुआ प्रतीत होता है कि आर्यसमाज और हिन्दू धर्म का क्या रिश्ता है। कुछ आर्यसमाजी अपने आपको हिन्दू धर्म से पृथक् मानते हैं। उनको हिन्दू कहलाने में लज्जा अनुभव होती है। उनका कहना है कि हिन्दू एक ऐसा नमकीन समुद्र है कि कितना ही मीठा और स्वच्छ जल उसमें मिले नमकीन बने बिना नहीं रह सकता। उनको यदि कहा जाये कि आर्यसमाज का जन्म हिन्दू धर्म के अंधविश्वासों और कुरीतियों को दूर करने के लिए ही हुआ था परन्तु उनका उत्तर यह है कि रुग्ण लोगों के पास की शैया पर सोने वाला कभी इलाज नहीं करता बल्कि स्वस्थ चिकित्सक इलाज किया करता है। चिकित्सक और रोगी का जो संबंध है वैसा ही संबंध आर्यसमाज और हिन्दू धर्म को जानना चाहिए। इस प्रकार की मान्यता के कुछ हेतु इस प्रकार हैं:–

हिन्दू का अर्थ काला-चोर है, जो कि विदेशियों के द्वारा भारतीयों को दिया गया। ऐसे नाम हम आर्यलोग कैसे मान लें।

आर्यों का मुख्य धर्मग्रन्थ वेद और एक उपास्य ओ३म् है। इसके विपरीत अनेकानेक ग्रन्थों और देवों को वेद और ओ३म् के स्थान पर मानने वालों से हमारा ऐक्य भाव कैसा?

मूर्तिपूजा को अवैदिक और गिरावट की खाई मानने वाले कार्यों का मूर्तिपूजकों के साथ मेल कैसा?

जन्म के आधार पर वर्णव्यवस्था, मृतकों के श्राद्ध तर्पण और फलित ज्योतिष के विश्वासी हिन्दुओं का अन्तर आर्यों को अपने आप पृथक् कर देता है।

आर्यसमाज का मिशन सार्वभौम है, मात्र हिन्दुओं तक नहीं।

आर्यसमाज को पृथक् घोषित करने में संस्था वालों का एक स्वार्थ निहित है कि हिन्दुओं से पृथक् समुदाय भारत में अल्पसंख्यक बन जाता है। अल्पसंख्यकों को सरकारी संरक्षण प्राप्त है।

तर्क में प्रवीण आर्यसमाजियों से बहस में जीत पाना कठिन है। किन्तु व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाकर महर्षि दयानन्द के विचारों पर ध्यान दिया जाये, तब संभव है आर्यलोग अपने आपको हिन्दू मानने में संकोच नहीं करेंगे। ऐसा मानने और जानने से हिन्दुओं में एक नई शक्ति का संचार होगा। अब स्थिति ऐसी बन गई है कि एक ही क्षेत्र में आर्यसमाज और हिन्दुओं के कार्यकर्ता एकजुट होकर काम करने के बजाय एक दूसरे को पीछे धकेलने में अधिक सक्रिय रहते हैं।

आर्यसमाज के कुछ विचारक अपने आपको हिन्दुओं से पृथक् परिचय में रहना अधिक श्रेष्ठ जानते हैं तो वर्तमान हिन्दू नेताओं और संस्थाओं में भी कुछ ऐसी भावना है कि आर्यसमाजियों को साथ नहीं रखा जाये। यह भावना उनके कार्यक्रमों में, सम्मेलनों और कार्यालयों में प्रत्यक्ष झलकती है। जब हम देखते हैं हिन्दू धर्म के नेताओं में स्वामी दयानन्द सरस्वती के नाम को प्राथमिकता नहीं दी जाती। भले ही वे नेतागण आर्यसमाज के आयोजनों में आकर महर्षि के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये उनको हिन्दू धर्म का सुधारक कह दें किन्तु उनके अपने घर में स्थिति दूसरी है। उनको स्वामी जी का खंडन कष्ट देता है। खंडन के साथ-साथ हिन्दू धर्म के प्रति किये प्यार को वे भूल जाते हैं। आचार्य द्वारा दी गई ताड़ना को कष्टमय बताने वाला शिष्य योगयता प्राप्त करके भी कृतज्ञता के माप से कितना दूर है, इतनी ही दूरी हिन्दू नेताओं ने महर्षि के साथ बना ली है। उन्नीसवीं शताब्दी में अछूतोद्धार शुद्धि और नारी शिक्षा से घृणा करने वाला और ऐसे सुधारों के लिए महर्षि को गाली देने वाला हिन्दू बीसवीं शताब्दी में मानने तो लग गया किन्तु महिर्ष द्वारा बताये गये तौर-तरीकों पर इसे अब भी एलर्जी है। जब तक यह एलर्जी बनी रहेगी तब तक सुधार के नाम पर किये जाने वाले प्रयासों का ठोस परिणाम कठिन है। राम जन्मभूमि के अधिकार के लिए लड़ने वाला हिन्दू राम की जन्मभूमि प्रमाणित करने में जो दिमाग लगा रहा है वही दिमाग उसे अपनी 'मातृभूमि को अपनी सिद्ध करने में लगाने में अवकाश नहीं है। विदेशों द्वारा दिये गये तथ्यों को बिना सोचे-समझे माननेवाला हिन्दू एकदिन इस देश का आक्रान्ता घोषित कर दिया जायेगा सिर्फ इसलिए कि महर्षि द्वारा कही गई बातें खण्डन की चपत के कारण अग्राहच हो गई।

आवश्यकता इस बात की है कि हिन्दू नेतागण और आर्यसमाजी नेतागण महर्षि के कामों को और उनकी मनोदशा को समझने का प्रयास करें। सत्यार्थप्रकाश के ११वें समुल्लास में तत्कालीन संन्यासी समुदायों की अकर्मण्यता और उदासीन वृत्ति का उल्लेख करते हुये ऋषि लिखते हैं।

"देखो! तुम्हारे सामने पाखंड मत बढ़ते जाते हैं। ईसाई, मुसलमान तक हो जाते हैं, तनिक भी तुमसे अपने घर की रक्षा और दूसरों को मिलाना नहीं बन सकता। बने तो जब तुम करना चाहो।" ऋषि के इस छोटे से वाक्य में तीन बातों की ओर स्पष्ट संकेत है। पूरा हिन्दू समुदाय जिसकी चर्चा ११वें समुल्लास में की गई, वह अपना घर है। इस समुदाय को अपना परिवार मानकर ऋषि इसमें दूसरों को मिलाना और ईसाई-मुसलमान बनने से बचाना आवश्यक समझते हैं। हिन्दुओं की घटती हुई जनसंख्या से आज देश का बुद्धिजीवी वर्ग चिंतित है। काश! यह चिन्ता एक सौ वर्ष पूर्व लगी होती और देश का संन्यासी वर्ग इसे अपना कर्त्तव्य मान लेता तो देश को बटवारे के दु:खद दिन देखने न पड़ते।

स्वामी दयानन्द को हिन्दू परिवार के एक घटक के परिपेक्ष्य में उनके कार्यों पर दृष्टि डालने से समझना आसान होगा। परिवार का सदस्य यदि अपना कर्तव्य जानता और मानता

हो तो उसे चार बातों का ध्यान रखना होता है।

१. अपना गौरवपूर्ण नाम

२. अपना इतिहास

३. अपनी कमजोरियों को दूर करते रहना।

४. बाहरी शत्रुओं से सजग रहना।

महर्षि का जीवन संघर्ष उपरोक्त चारों बातों के पालन में ओतप्रोत है। महर्षि ने बड़े आग्रहपूर्वक घोषणा की थी कि हमारा नाम आर्य है। हिन्दू नाम हमें विदेशियों की ओर से मिला है। किसी प्राचीन साहित्य में हिन्दू शब्द नहीं मिलता। "हिन्दू" के स्थान पर हमें अपने प्राचीन नाम "आर्य" का प्रयोग करना चाहिए। हिन्दी भाषा के स्थान पर उनको आर्यभाषा कहना अच्छा लगता था। "हिन्दुस्तान" के बदले "आर्यावर्त्त" इस देश का नाम फिर से प्रचलित करना चाहते थे।इस प्रकार का आग्रह अपने घर वालों से बराबर करते रहे। इसका अर्थ यह नहीं है कि हिन्दू नाम से उनको घृणा थी। दूसरे लोग उनको हिन्दू कहते थे तो उन्हें आपत्ति नहीं होती थी। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण मेरठ के जनाब मुहम्मद कासिम के पत्र हैं, जो अगस्त सन् १८७८ में उन्होंने स्वामीजी को "हिन्दू धर्म के नेता स्वामी दयानन्द सरस्वती जी" से संबोधित किया है। पत्रों के उत्तर में स्वामीजी ने इस्लाम मत के नेता जनाब मुहम्मद कासिम से सम्बोधन किया है और कहीं भी उन्होंने हिन्दू धर्म के नेता लिखने पर आपत्ति नहीं की। हिन्दू धर्म के नेता के आधार पर ही मेला चांदपुर के शास्त्रार्थ में जहां मुसलमान और ईसाईयों की ओर से पांच-पांच मुसलमान ईसाई विद्वान् रखे गये, वहां हिन्दुओं की ओर से स्वामी दयानन्द सरस्वती और मुंशी इन्द्रमणि थे। एक मुसलमान ने एक पंडित को लेने की जिद की तब स्वामी जी ने कहा था कि आप कौंन होते हैं हमारे विद्वानों के चयन करने वाले। स्वामीजी ने संबन्धित पंडित से भी यह कहा था हमारे आपस में फूट डालकर ये लोग तमाशा देखना चाहते हैं। इस पर भी एक मौलवी साहब नहीं माने, कहने लगे सब हिन्दुओं से पूछा जाये कि इस एक पंडित को लिया जाये या नहीं। तब स्वामी जी ने कहा कि आपको सुन्नत जमात ने बैठाया है, शियाओं ने नहीं। पादरी साहब को रोमन कैथोलिक वालों ने नहीं बैठाया, इसी प्रकार हम आर्यों में भी कुछ सहमति वाले और कुछ असहमति वाले हैं, किन्तु आपको हमारे बीच गड़बड़ मचाने का कोई अधिकार नहीं है।

इस घटना से स्वामी जी के हिन्दू होने में और अपने को हिन्दुओं का प्रतिनिधि मानने में कोई संदेह नहीं रह जाता। सन्देह वहां भी नहीं रहता जहां मेला चांदपुर में उन्होंने कहा था। देखो! "जितने १८०० वा १३०० वर्षों के भीतर ईसाईयों और मुसलमानों के मतों में आपस के विरोध से फिरके हो गये हैं, उनके सामने जो १९६०८५२९८५ वर्षों के भीतर आर्यों के मत में बिगाड़ हुआ तो वह बहुत ही कम है।" पूना के प्रवचन में भी उनका संस्कारित अभ्यास "हिन्दू" अपने आप से निकल गया, तब उन्होंने इसका सुधार ऐसे शब्दों से किया" इसका विचार हम हिन्दुओं को, नहीं मैं भूला हम आर्यों को करना चाहिए। हिन्दू इस नाम का उच्चारण मैंने भूल से किया। हिन्दू अर्थात् काला यह नाम हमें मुसलमानों ने

दिया है उसको मैंने मूर्खता से स्वीकार किया। आर्य अर्थात् श्रेष्ठ यह हमारा नाम है।" उसी प्रवचन के अन्त में उनका निवेदन था "सज्जन जन! आज से "हिन्दू" इस नाम का त्याग करो और आर्य तथा आर्यावर्त्त इन नामों का अभिमान धरो। गुण भ्रष्ट हुये तो हुये परन्तु नाम भ्रष्ट तो हमें न होना चाहिए। ऐसी मेरी आप सबों से प्रार्थना है।"

ऋषि की यह प्रार्थना एक आशिक बनकर रह गई। आर्यावर्त्त हमने नहीं अपनाया भारत हिन्दुस्तान और इंडिया नाम हमारे देश के प्रचलित हैं। हमको इन नामों से लगाव है, इनकी प्रतिष्ठा बनाये रखना हमारा कर्तव्य है। हिन्दी को आर्यभाषा नाम नहीं दे सके तो "हिन्दी" ही हमें प्रिय है। इसीप्रकार जन-जन के मानस पर आर्य जैसा श्रेष्ठ नामकरण यदि नहीं बैठ पाया तब हिन्दू नाम को ही अपना गौरव मानना उचित है बहुमत हिन्दू कहलाने में है तो बहुमत की भावना के साथ समझौता कर लेना बुद्धिमत्ता है। कभी-कभी निरर्थक शब्द प्रिय बन जाते हैं और सुन्दर अर्थ लिये हुये शब्दों को भुला दिया जाता है। पापा और डैडी जैसे निरर्थक शब्दों ने पिताजी शब्द को पीछे धकेल दिया है। कहने वाला और कहलाने वाला पापा डैडी में अपना गौरव समझता है। अतः आर्यसमाजी जनों को हिन्दी हिन्दुस्तान की तरह हिन्दू कहलाने में अपना अस्तित्व समझना चाहिए। कभी दयानन्द जैसा युगप्रवर्त्तक फिर आयेगा और प्राचीन संस्कृति को उजागर करेगा। समय आयेगा डैडी पापा का स्थान-पिताजी लेगा।

परिवार के अच्छे सदस्य को अपने अतीत पर गौरव होता है। अपना इतिहास विकृत न हो जावे इस प्रकार का प्रयास घर के नेता को होता है, होना चाहिए। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने ग्रन्थों और प्रवचनों के द्वारा वर्तमान स्रष्टि का आरम्भ तिब्बत से माना और तिब्बत से मानव आगे बढ़ते-बढ़ते भारत भू पर आकर बस गया। इस भूखंड पर मानव को वेदों का ज्ञान मिला और प्रकृति माता का प्यार मिला। रहने वालों ने अपनी भूमि का नाम आर्यावर्त्त रखा। यहीं से संस्कृति, सभ्यता का विकास हुआ। ऋषि की यह घोषणा अद्भुत है। विदेशियों ने आर्यों को बाहर से आया बताकर इतिहास के साथ जो खिलवाड़ किया है यह खिलवाड़ हिन्दू जाति को ले डूबेगा। आवश्यकता है, समस्त हिन्दू जाति अपने मूलस्थान को जन्मस्थान माने, विजित स्थान नहीं। शास्त्रों की रचना उपनिषदों के उपदेश रामायण-महाभारत की ऐतिहासिक घटनायें आर्यों के गौरव है। महाभारत के पश्चात् का भारत यद्यपि कमजोर और पददलित होता गया किन्तु ऋषि की देश वन्दना सत्यार्थप्रकाश में और पूना प्रवचनों में स्मरण करने योग्य है। मुस्लिम काल में गुरु गोविन्द सिंह और शिवाजी का उल्लेख करते हुये जहां उनको आत्माभिमान हो गया तो ब्रह्मसमाज और प्रार्थना समाज के संकीर्ण मान्यताओं से उनका असंतोष भी झलकता है। सत्यार्थप्रकाश में वे लिखते हैं– "अपने देश की प्रशंसा वा पूर्वजों की बड़ाई करनी तो दूर रही, उसके स्थान पर पेटभर निन्दा करते हैं। ब्रह्मवादि महर्षियों का

नाम भी नहीं लेते, प्रत्युत ऐसा कहते हैं कि बिना अंग्रेजों के सृष्टि में आज पर्यन्त कोई भी विद्वान् नहीं हुआ। आर्यावर्त्तीय लोग सदा से मूर्ख चले आये हैं। इसकी उन्नति कभी नहीं हुई।'' इसप्रकार की विचारधारा जाति में फैलाकर उसे घर-घर का भिक्षुक बना देना जैसा कार्य जिस किसी ने किया महर्षि ने उसे देशभक्त नहीं माना। देशभक्ति का पाठ पढ़ाने वाले ऋषि को हिन्दू समुदाय अपना आदर्श न मानें तो यह एक बहुत बड़ी कृतघ्नता होगी। जो आर्यसमाजी अपने को हिन्दू से पृथक् कहलाना चाहते हैं, वे अपने इतिहास की शृंखला कैसे जोड़ेंगे। महाभारत काल के पश्चात् वेद के विपरीत कार्य करने वाले आर्यों को हमें अपना पूर्वज मानना ही पड़ेगा। ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में वेदोत्पत्ति विषय पर लिखते हुये ऋषि कहते हैं– ''जब जैन और मुसलमान आदि लोग इस देश के इतिहास और विद्यापुस्तकों का नाश करने लगे, तब आर्य लोगों ने सृष्टि के गणित का इतिहास कंठस्थ कर लिया और जो पुस्तक ज्योतिष भाष्य के बच गये हैं, उनमें और उनके अनुसार जो वार्षिक पंचांग-पत्र बनते जाते हैं इसमें भी मिती से मिती बराबर लिखी चली जाती है, इसको अन्यथा कोई नहीं कर सकता। इस उत्तम व्यवहार को लोगों ने टका कमाने के लिए बिगाड़ रखा है, यह शोक की बात है और टके के लाभ ने भी जो इसके पुस्तक व्यवहार को बना रखा, नष्ट न होने दिया, यह बड़े हर्ष की बात है।''

वैदिक इतिहास को आज तक जोड़ने वाली कड़ी से आर्यसमाज पृथक् नहीं हो सकता। पृथक् मान लेने से कोई इतिहास रह नहीं जाता। महर्षि ने इतिहास को बहुत महत्त्व दिया है। एक पारिवारिक कर्तव्य निभाया है। तीसरा कर्तव्य ऋषि ने जो निभाया उसी को लेकर आर्यसमाज और सनातनधर्म नाम के दो पक्ष बन गये। यह एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जो मुनष्य जिस आदत में पड़ जाता है उसे वह छोड़ना नहीं चाहता, बल्कि वह अपनी आदत को लाभकारी सिद्ध करने की कोशिश करता है, भले ही वह आदत उसके नाश का कारण बन जावे। छोटे-छोटे परिवारों में सुधार की बातें करने वाला पूर्णतः सफल नहीं हो पाता। परिवार आपस में बंट जाया करते हैं। परम्परा की दुहाई आदतों की शिथिलता और जनरेशन गैप आदि सब कारण सुधार प्रक्रिया में बाधा डालते हैं। किन्तु परिवार बहुत विशाल और पुरातन है। अनेकानेक सभ्यताओं का प्रभाव पड़ते-पड़ते आज यह धर्म परिभाषाहीन धर्म हो गया है। नाम से आर्य नहीं रहे किन्तु काम से भी आर्यत्व से दूर हो गये। वेद और ईश्वर को मानने वाला भी हिन्दू है। शिखा सूत्र का प्रसिद्ध चिन्ह हिन्दू के लिए आवश्यक नहीं रह गया। डाक्टर का बेटा बिना डाक्टरी पास किये डाक्टर नहीं कहला सकता, किन्तु हिन्दू पुरोहित का बेटा जन्मजात पुरोहित है। मांसाहार शाकाहार के भेद से हिन्दू की पहचान नहीं है। इस स्थिति में हिन्दू धर्म को वास्तविक स्वरूप देने में सबसे अधिक संघर्ष किया है तो वह स्वामी दयानन्द सरस्वती हैं। वह यह मानकर चले हैं कि आर्यावर्त्त में प्रचलित सभी मत-मतान्तर जो नाम मात्र से भी वेद को अपना मानते हैं, वे सभी आर्य हैं।

आचार्य शिखत्रयी

श्री महेन्द्र कुमार जी शास्त्री, देहली

श्री आचार्य प्रथमः स्वामी स्वतंत्रानन्द सरस्वती

वात्सल्य की आदर्शमूर्ति

मैं उस समय ५ वर्ष का था कि दयानन्द उपदेशक विद्यालय गुरुदत्त भवन, लाहौर के प्रथम स्नातक पं० पूर्णचन्द्र जी सिद्धान्तभूषण के साथ आचार्य प्रवर श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के पास गया। पूज्य चाचा जी ने चरणस्पर्श करते हुये नमस्ते की तथा २० गज घर में बने खद्दर की भेंट प्रस्तुत की। मैंने भी चाचा जी के अनुसार वैसे ही चरणों में नतमस्तक होकर आचार्य जी का अभिवादन किया। आचार्य जी ने मुझे गोद में बिठाकर खाने को बादाम और किशमिश दिये। जब चाचा जी का वार्तालाप पूरा हो गया तो मैं भी चलने को तैयार हुआ ही था कि महाराज जी बोले! यहां नहीं रहोगे? मैं चुप खड़ा रहा, अच्छा तो लो ये बादाम और किशमिश जेब में डाल लो, खूब खाना। और बहादुर बनना, सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। इस स्नेह और आशीर्वाद ने मुझे सदा के लिए उनका बना दिया।

स्वामी जी महाराज प्रायः प्रतिवर्ष आर्य महाविद्यालय किरठल मेरठ के वार्षिक उत्सव पर जाया करते थे और पूज्य चाचा पं० पूर्णचन्द्र सिद्धान्तभूषण भी उत्सव में आते थे। हमारा तो सारा ही परिवार स्वामी जी के दर्शनार्थ उत्सव में सम्मिलित होता था। निवास की व्यवस्था पूज्य चाचा जी की ससुराल में हो जाती थी। मेरे पूज्य मामा चौ० मुखत्यारसिंह मंत्री आर्य महाविद्यालय तथा महाशय रिसालसिंह महोपदेशक आर्य महाविद्यालय के पूज्य चाचा चौ० कूडेसिंह जी ने आर्य महाविद्यालय के लिए अपनी सारी भूमि दान में दे दी थी। जिस भूमि पर आजकल विशाल भवन बने हैं। फलों के बाग हैं, तथा कृषि-फार्म है। अतः उत्सव पर सभी घर वाले स्वामी जी महाराज के दर्शन करके तृप्त होते थे। पूज्य मामा जी के घर पर आये अतिथियों के अतिरिक्त सभी उपदेशकों के लिए एक दिन रविवार को भोजन का प्रबन्ध होता था। प्रातराश के लिए मामा जी के घर से कई गायों और भैंसों का दूध आ जाता था। २ सेर (किलो) दूध आसानी से महाराज जी पी लेते थे, शेष उपदेशकों के प्रयोग में आ जाता था। विद्यालय के खेत से गन्ने आ जाते थे। फाल्गुन की सुहावनी धूप में गन्नों को चूसने लगते थे। ठीक दोपहर १२ बजे भोजन में खीर और हलवा होता था, स्वामी जी की खुराक अच्छे पहलवान जैसी होती थी। एक बार मैंने बालहठ की कि स्वामी जी को अपने घर, गांव बूढ़पुर, जिला मेरठ ले आया।

भव्याकृति बलिष्ठ शरीर

सारा गांव इस भव्यमूर्ति के दर्शन के लिए उमड़ पड़ा। रात्रि समय में गांव वाले महाराज जी को अपने मनों की बातें सुनाते थे और स्वामी जी इलाके में आर्यसमाज की गतिविधियों की जानकारी लेते थे। स्वामी जी को विदा करने के लिए सारे गांव के स्त्री-पुरुष

एकत्रित होकर चरण छू-छूकर प्रणाम करते थे। इस प्रसंग में अच्छे तन्दरूस्त नौजवान की पीठ को महाराज जी जब ठोंकते तो ताकतवर से ताकतवर की भी पीठ झुक जाती थी। मेरे पूज्य ताऊ चौ० हरदेवसिंह जी गांव में सबसे बलिष्ठ थे। महाराज जी की पीठ ठोंकने की प्रक्रिया को उन्होंने जीवन भर स्मरण रखा। पहलवानों की चर्चा में पूज्य ताऊ जी कहा करते थे—बहुत से बलिष्ठ व्यक्तियों के दर्शन मैंने किये परन्तु महाराज जी जैसा बलिष्ठ दूसरा व्यक्ति नहीं देखा।

आचार-व्यवहार के सच्चे पुरोधा

आचार्यप्रवर ने अपने आचार्यत्वकाल में किसी भी छात्र को कभी हाथ से दण्ड नहीं दिया। गलती करने वाला छात्र उनकी लाल आंखों और चमचमाते मस्तक को देखते ही सावधान हो जाता था। स्वय उनके कमरे में जाकर क्षमा याचना करता और वह अपने किये अपराध की तथा प्रायश्चित की अभिव्यक्ति कर देता था। प्रतिभा के धनी पं० महेन्द्र सिद्धांतशिरोमणि शास्त्री जी किरठल वालों ने आचार्य के गुणगान करते हुये यह बात बतायी थी कि स्वामी जी का स्वभाव अति क्षमाशील था। उनके शिष्य उनके व्यावहारिक चरित से चरित्रवान् बन जाते थे।

सुधारक सन्त

उनकी शरण में स्वामी रुद्रानन्द जी, स्वामी सुरेन्द्रानंद जी किसी के घात करने पर आये तो उन्हें सन्यस्त के कर्त्तव्य का उपदेश देकर जीवन पर्यन्त के लिए आर्यसमाज के लिए समर्पित साधु बना दिया।

१९४३ में श्री स्वामी दीक्षानन्द जी जो पूर्व आचार्य कृष्ण के नाम से जाने जाते थे। उनसे मिलने मैं भटिण्डा गया था। हमारी दोनों की इच्छा हुई कि यहां पर दयानन्द उपदेशक विद्यालय बनाया जाये। हम दोनों इस शुभ कार्य में लग गये और उपदेशक विद्यालय प्रारम्भ कर दिया। कृष्ण जी ने उसके आचार्य पद को सम्भाला तथा मैंने अध्यापन का कार्य। उस समय हमारे पास १५ विद्यार्थी हो गये थे। महाशय ज्ञानप्रकाश जी भट्टे वालों ने नगर से बाहर अपने भवन को विद्यार्थियों के निवास और अध्ययन के लिए दे दिया था। मण्डी के धनी मानी व्यक्तियों ने अन्न और धन की व्यवस्था कर दी थी। इन्हीं दिनों पूज्य आचार्य जी भटिण्डा पधारे तो सरदार अजीतसिंह जी उनके दर्शनार्थ पधारे। महाराज जी ने उनसे कहा—कहो, सरदार जी अब आपकी मनोदशा कैसी है? सरदार जी ने चरणों को स्पर्श करके कहा—आचार्य जी आपकी कृपा से भ्रान्तियां भंग हुई, दुष्कृत्य समाप्त हुये, अब निर्भय होकर विचरता हूं। आनन्द ही आनन्द है। "दुरितानि परासुव यद् भद्रं तन्न आसुव।"

रौद्ररूप

महाशय राजपाल जी ने जब रंगीला-रसूल छापी, पुस्तक के प्रतिशोध में एक बड़े मुसलमान पहलवान ने महाशय जी को छुरा मार दिया। तभी स्वामी जी ने उसे अपने दोनो दीर्घ भुजाओं से दबाया तो सदा के लिए उस पहलवान के हाथों की शक्ति समाप्त हो गई और आचार्य जी के रौद्र रूप से वह घबरा और पुलिस द्वारा पकड़ा गया।

स्वाध्यायात् इष्टदेवता सम्प्रयोग

पण्डित लेखराम जी की भांति स्वामी जी प्रतिदिन घण्टों स्वाध्याय करते थे। वेदशास्त्र, स्मृति, वेदान्त, आयुर्वेद, व्याकरण, इतिहास के वे मर्मज्ञ पण्डित थे। मैंने दयानन्द मठ में आचार्य श्री से न्याय कुसुमाञ्जलि तथा वृत्तिप्रभाकर का अध्ययन किया। भारत का कई बार भ्रमण करने के कारण देश का सारा भौगोलिक ज्ञान शायद ही इतना किसी को हो जितना इस परिव्राजक को था। आर्यजगत् में एक अथवा दो विषयों के विद्वान् तो बहुत हो गये और हैं। परन्तु सभी विषयों का ज्ञान स्वाध्यायशील सन्त को अभ्यर्थित था, तभी तो उनके सारे ही शिष्य दिग्गज शास्त्रार्थ महारथी विद्वान् उनको अपना आचार्य शिरोधार्य्य करते हुये गौरव का अनुभव करते थे और करते हैं।

निर्भीक देशभक्त संन्यासी

अंग्रेजों के षड्यन्त्र के सन्दर्भ में वीरयोद्धा ने हरियाणा के गांव-गांव में जाकर देवियों को, जनता को कहा था कि आपके सेना में जिनके पुत्र हैं, जिनके पति हैं, जिनके भाई हैं, वे इन्हें लिख दें कि क्रान्तिकारियों और देशभक्तों पर गोली न चलाकर अपने देशवासियों का साथ दें। इन व्याख्यानों के आधार पर ब्रिटिश सरकार ने लाहौर के लालकिले की अन्धेरी कोठरी में बन्दी बनाकर रखा था। कितने दिनों तक किसी को भी यह पता नहीं चल पाया था कि वह किस जेल में हैं। महान् देशभक्तों के गुरु भी जेल में जायेंगें ऐसी कभी सम्भावना भी न थी। आपके द्वारा भीमसेन सच्चर, पं मनसाराम चौधरी छोटूराम, सर सिकन्दर हयात खां, पं० नरेन्द्र, धर्मयशदेव जैसे महारथियों को देशभक्ति के मार्ग का दर्शन मिला। आप मोही गांव के प्रति तो सदा निर्मोही रहे परन्तु "वसुधैव कुटुम्बकम्" के प्रति जीवन के अन्त तक मोही रहे। वीतराग, साधुस्वभाव, जन्मजात, फक्कड़ बात, पर अटल, संयम तथा नियम के धनी, अतिबलशाली, परमधार्मिक, आस्तिक, रोचक वक्ता, कुशल प्रशासक, निपुणप्रबन्धक, आजानुबाहू युगपुरुष जन कल्याण के लिए कभी-कभी संसार में आते हैं। उनका भौतिक शरीर पंचभूतों में मिल जाने पर भी उनके कीर्तियुक्त अनश्वर शरीर का स्तवन सदा-सदा होता रहता है।

संक्षेप में

स्वाध्यायेनागतं ज्ञानं, बलं चैव कुलागतम्।
सुयशोऽधिगतं यत्र, स्वतन्त्रानन्द स्वामिनः।।

श्री आचार्य द्वितीयः स्वामी वेदानन्दतीर्थ उच्चवंश और बाल शिक्षा काल

उज्जैन नगर के ऋषि एवम् पण्डित परम्परा से पवित्र भूमि में जन्म प्राप्त करके पं० कृष्ण मोहन ज्येष्ठानन्द चतुर्वेदी पिता के नयनों के तारे, राजदुलारे जसवन्तसिंह ने १६ वर्ष की अवस्था में मैट्रिक परीक्षोपरान्त दयानन्द की भांति गृह-त्याग करके मुलतान नगर में आ कर संस्कृत अध्ययन-स्थान की

खोज करनी प्रारम्भ की। आर्यसमाज के प्रति आकर्षण स्रोत नन्दलाल जी बने।

आर्यसमाज मुलतान में आना-जाना शुरू हो गया। प्रत्युत्पन्नमति बालक की ओर स्वामी दर्शनानन्द जी का ध्यान गया। उन्होंने इनको बनारस में संस्कृत अध्ययन की प्रेरणा दी और वहां जाने की व्यवस्था कर दी। वाराणसी में आपने स्वामी जयानन्द तीर्थ जी से संन्यास आश्रम में प्रवेश किया। संन्यास गुरु जी ने जसवन्त का नाम बदलकर दयानन्द रख दिया। पूर्व परिचित विशुद्धानन्द जी के सान्निध्य से काशी नगर के परम धनाड्य श्री शिवप्रसाद गुप्त के घर विशाल भवन में निवास एवं भोजन की व्यवस्था हो गई।

संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययनकाल

इसके उपरान्त आपका सारा समय अध्ययन में व्यतीत होने लगा। महान वैय्याकरण तिवारी जी से तथा पं० काशीनाथ जी शास्त्री जी से व्याकरण अध्ययन कर महावैय्याकरण हो गये। महादार्शनिक चिन्ह स्वामी जी से दर्शनों का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया। उर्दू और अंग्रेजी भाषा का ज्ञान शैशव अवस्था से ही था। फारसी और अरबी भाषा का अभ्यास श्री पं० कालीचरण की कृपा से हुआ। अध्ययनकाल में भी आर्यसमाज बुलानाला के सत्संगों में भाग लेते थे। आर्यसमाज में ही आपका परिचय स्वामी अच्युदानन्द, पं० अखिलानन्द ब्रह्मचारी, पं० मुक्तिराम जी उपाध्याय, महामहोपाध्याय आर्यमुनि, पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, स्वामी विज्ञानानन्द, राहुल सांस्कृत्यायन, पं० ईश्वरचन्द दर्शनाचार्य आदि महानुभावों से हुआ। उनकी सत्प्रेरणा से अपने आचार्य का दयानन्द नाम परिवर्तित कर लिया और वेदानन्द सरस्वती दयानन्दतीर्थ हो गये।

विद्यादान और वेदों का स्वाध्यायकाल

मथुरा शताब्दी के पश्चात् लाहौर में दयानन्दोपदेशक विद्यालय की गुरुदत्त भवन लाहौर में स्थापना हुई।

स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज विद्यालय के आचार्य तथा स्वामी वेदानन्द दयानन्दतीर्थ जी उपाध्याय नियुक्त हुये।

आपकी प्रेरणा से पं० नरदेव जी सिद्धान्तशिरोमणि, पं० शिवदत्त सि० शिरोमणि, पं० शान्तिप्रकाश सिद्धान्तभूषण, पं० रुचिराम जी को वेदादि शास्त्रों के अध्ययन के अतिरिक्त अरबी पढ़ने के लिए प्रोत्साहन मिला। अध्यापनकाल के अन्तराल में आपने आर्यपत्रिका तथा वेदामृत महान ग्रन्थ का सम्पादन किया। वेदप्रवेश, सन्ध्यालोक, ब्रह्मोपनिषद्, स्वाध्यायसंदोह, स्वाध्याय सन्दीप आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की। साथ ही साथ महाराज जी को बंगाली, जर्मन, फ्रैंच, रशियन भाषाओं पर पूर्ण अधिकार प्राप्त था।

योग के प्रति आसक्ति

स्वामी विशुद्धानन्द जी तथा योगिराज स्वामी सियाराम जी के तत्वाधान में आपने यौगिक प्रक्रियाओं में सिद्धहस्तता प्राप्त की। चोहाभक्ता के कुंजा डेरों पर रह कर आपने कई मास तक कई बार अभ्यास किया।

योग विद्या से इन्द्रियजयी और द्वन्द्वजयी

मैंने स्वयं विद्यासागर, निष्कामकर्मयोगी, योगाभ्यासी महात्मा को पौष मास की कड़कती सर्दी में केवल लंगोट धारण किये निर्वस्त्र आकाश तले ८-८ घंटे समाधि अवस्था में महीनों अभ्यास निरत एक आसन पर विराजमान लाहौर में देखा था। महाराज जी को कई-कई मास तक अन्नाहार के बिना केवल दुग्ध पान पर निरत देखकर मैं आश्चर्य-चकित हो जाता था।

महाविद्वान् और अतिविनम्र

सन् १९४५ में उपदेशक विद्यालय में महाराज जी के आचार्यत्व काल में मैं भी विद्यालय में अध्ययन कार्य करता था। उसी अन्तराल में स्वामी जी महाराज के बराबर कमरे में मेरा निवास स्थान था। अतः कुछ दिनों तक मेरा भोजन भी उनके साथ होता था। एकदिन दोपहर चावल बनाकर किवाड़ ढक कर भोजन करने बैठे ही थे कि पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज अकस्मात् आ गये। विद्यानिधि वेदानन्द तीर्थ ने उठकर मेरे से पहले ही स्वामी स्वतंत्रानन्द महाराज के चरण स्पर्श कर अभिवादन किया, पश्चात् मैंने पादपंकजों में सिर रखकर नमस्ते किया। फिर तीनों नें एक साथ भोजन किया।

इसी प्रकार एकदिन राजयोगी स्वामी विशुद्धानन्द जी महाराज का भी अचानक आगमन हुआ। उस दिन भी मेरी आंखें चकाचौंध सी हो गईं कि तपोनिधि को आगत योगीराज ने 'वेद' कहकर पुकारा और तपोनिधि वेदानन्द जी ने उनके भी चरण स्पर्श करके उनकी वन्दना की।

आसनसिद्ध महात्मा

प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा की स्वर्ण जयन्ती सम्वत् २००० तदनुसार सन् १९४३ को मनाई जा रही थी। इस अवसर पर महाराज जी ने महात्मा खुशहाल चन्द जी की प्रार्थना पर स्वाध्याय सन्दोह लिखना प्रारम्भ किया। पं० विश्वम्भर नाथ जी अवस्थी भू० पू० मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी, भू० पू० मंत्री आर्य प्रतिनिधि सभा के सामने एक कमरा स्वामी जी महाराज को बैठकर लिखने के लिए दिया गया।

उस समय महाराज जी का केवल ३ घण्टे के समय को छोड़कर २१ घण्टे निरन्तर लेखंनी से लेखन होता रहता था। एक मास के सतत यत्न पूर्ण श्रम से ४८९ पृष्ठ के अनुपम ग्रन्थ रत्न को पूर्ण किया।

लेखक इस तपस्या के समय में परमतपस्वी के नित्यप्रति दर्शन करने जाता था।

शिष्यों के लिए दयालु हृदय

गुरुदत्त भवन के मैदान में कुश्ती करने का अखाड़ा था। मैं भी नित्यप्रति अखाड़े में मल्लयुद्ध में भाग लेता था। एक दिन एक दाक्षिणात्य पहलवान से मेरी कुश्ती हुई तो मैंने पहली बार में कुश्ती जीत ली, परन्तु दूसरी बार में प्रतिद्वन्दी पहलवान ने मेरे दायें हाथ को तोड़ दिया।

श्रद्धेय गुरुवर्य्य ने आश्वासित कर कहा–जीत तुम्हारी है। चोट हाथ में आई है, कोई बात नहीं। मुझे स्वयं टांगे में बिठाकर बच्छोवाली गली के प्रसिद्ध पहलवान के पास ले

गये। पहलवान जी हड्डी जोड़ने में निपुण थे। हाथ की हड्डी को ठीक तरह बिठा बांस की कपच्ची से बांध दिया। हाथ में दर्द बहुत था। कई दिन तक महाराज जी ने मेरे सिर को अपनी गोद में रखकर मुझे आराम कराया। दूध और घी की व्यवस्था की। रात्रि को दूध में शिलाजीत मिलाकर दिया करते थे। गरम-गरम हलवा भी प्रायः प्रतिदिन मिल जाता था। एक मास में जो स्वास्थ्य बना, वैसा पहले कभी नहीं बना था। गुरु की सेवा मुझे करनी चाहिए थी, परन्तु गुरु जी के इतने ऋण का भार मुझ पर पड़ा जिसको मैं जन्म-जन्मान्तरों में भी नहीं उतार पाऊंगा।

आचार्य श्री की निर्भीकता

सन् १९४७ के मार्च मास से ही लाहौर में साम्प्रदायिक झगड़े भड़क गये थे। जून मास में तो गुरुदत्त भवन के प्रांगण में गोलियां कानों के बराबर से निकलती थी। स्वामी जी महाराज के पैर में फोड़े के कारण गहरा घाव था। मैं अपने कन्धे का सहारा देकर उन्हें इधर-उधर घुमाता था। साथ-साथ घूमते पूज्यवर आचार्य जी ने कहा यह सत्य है कि लाहौर पाकिस्तान में जायेगा परन्तु हमें यहीं रहकर प्रचार का कार्य करना है। मृत्यु न अपने हाथ है, न दूसरे के, अतः भय किससे और क्यों? बड़ी कठिनता से १५ अगस्त को स्वामी जी ने गुरुदत्त भवन को छोड़ा, वह भी इसलिए कि वे चलने-फिरने में असमर्थ थे।

समदर्शी ऋषि

ब्रह्मचारी लखपत बाल्मीकि स्वामी जी के लिये लाहौर में भिक्षा करके लाते थे। गुरुकुल खेड़ा के स्वामी भीष्म स्वामी जी के अनन्य शिष्य थे, जिनका जन्म हरिजन परिवार में हुआ था। एक बार इनको असाध्य रोग हो गया था। इस समय इनको शरीर की भी सुध-बुध न रहती थी। स्वामी जी इनकी दिन रात जाग कर सेवा करते थे। जब इनको वमन हो जाती थी तो स्वामी जी महाराज उसको अपने हाथ से साफ करते थे। आज भी वह उनके उपकार की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं।

स्वामी रामानन्द जी महाराज लोकसभा सदस्य का भी जन्म हरिजन परिवार से था। लाहौर संन्यासी कुटिया में उनके भोजन आच्छादन की व्यवस्था और उनकी रुग्णावस्था में सेवा स्वामी जी स्वयं करते थे। आचार्य प्रथिवीसिंह जी भी इसी परम्परा में जन्मे। महाराज जी का वरदहस्त सदा इन पर रहा।

सारस्वत वंश में जन्म लेकर भी स्वामी जी मनुष्यों की एक जाति, मनुष्य-जाति मानते थे। लाहौर गुरुदत्त भवन में एक दर्जीखाना चलता था, उसमें प्रायः सभी शिक्षार्थी हरिजन होते थे। स्वामी जी का उन पर बहुत प्यार था।

विद्याविनय सम्पन्न ब्राह्मणं तु शूद्रस्तथां,
निजं सर्वं हि मन्यन्ते साधावस्समदर्शिनः।

समदर्शी साधुजन विद्या विनय युक्त ब्राह्मण और शूद्र सबको अपना मानते थे।

श्री आचार्य तृतीयः प्रियव्रत वेदवाचस्पति सौम्याकृतिशिशु

खेत-खलियानों में रुचि रखने वाले चौधरी विजयसिह गोदारा पानीपत के निकट गांव माऊपुर के घर में आपका जन्म हुआ। शैशवकाल में आप गम्भीर प्रकृति के बालक

थे। ईश्वर ने आपका इतना सुन्दर शरीर बनाया कि उस पर पारिवारिक संबंधी आगन्तुक सभी जन मुग्ध थे। अतः पिताश्री ने बालक का नाम प्रियव्रत रखा। पिता जी आर्यविचारों के थे। गुरुकुल कुरुक्षेत्र के उत्सव में वे प्रियव्रत पुत्र के साथ गये। उत्सव के अवसर पर ही गुरुकुल में ब्रह्मचारियों का प्रवेश होता था। पारखी स्वामी श्रद्धांनन्द जी ने बालक की प्रकृति आकृति और सौम्य स्वभाव को देखकर गुरुकुल में तुरन्त प्रविष्ट कर लिया। आचार्य पं० विष्णुमित्र के तत्वाधान में ब्रह्मचारी प्रियव्रत का यज्ञोपवीत और वेदारम्भ संस्कार हुआ। दीक्षित ब्रह्मचारी अति श्रद्धावान थे। श्रद्धावान् शिष्य पर सभी गुरुजनों का वात्सल्य स्वाभाविक छाया की तरह छा गया। समवयस्क सहवासियों में उनके मित्र पं० सुखदेव जी दर्शनोपाध्याय गुरुकुल कांगड़ी, पं० यशपाल जी सिद्धान्तालंकार सुपुत्र आचार्य रामदेव जी, पं० सोमदेव जी विद्यालंकार, श्री हरिशरण जी विद्यालंकार आगे-पीछे, साथ की श्रेणियों में गुरुभाई थे।

कुशाग्रमति ब्रह्मचारी

प्रायः अध्ययनकाल में पं० सुखदेव जी इनके प्रतियोगी होते थे। परीक्षा में कभी प्रियव्रत तो कभी सुखदेव प्रथम तथा द्वितीय होते थे। प्रियव्रत की कुशाग्र बुद्धि पर तथा पढ़ाई पर प्रसन्न हो कर स्वामी श्रद्धानन्द जी ने इनको छात्रवृत्ति देकर और प्रोत्साहित किया। कुरुक्षेत्र की पढ़ाई के पश्चात् ऊंची श्रेणियों के अध्ययनार्थ गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ तदनन्तर गुरुकुल कांगड़ी की भूमि पर जाना अनिवार्य होता था। उसी क्रम से पढ़ते आप अन्य शिक्षण संस्थाओं की भाषण प्रतियोगिताओं में भाग लेने लगे। प्रायः प्रथम विजयी छात्रों में आपका नाम सर्वोपरि होता था। महाविद्यालय ज्वालापुर तथा ऋषिकुल के छात्रों में ख्यातिप्राप्त छात्र हो गये। गुरुजन पं० विष्णुमित्र जी, पं० काशीनाथ जी शास्त्री, पं० भीमसेन जी, पं० गंगादत्त जी, स्वामी शुद्धबोध तीर्थ जी आदि प्रतिष्ठित विद्वानों से ज्ञानामृत पान करके गुरुकुल से आपने वेदालंकार, वेदवाचस्पति की परीक्षाएं प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की।

ओजस्वी वक्ता

विद्यास्नातक, व्रतस्नातक, विद्याव्रत स्नातक होते ही आप को आर्य प्रतिनिधिसभा ने महोपदेशक पद पर नियुक्त कर लिया। आपके व्याख्यानों की भारत भर में धूम मच गई। गुरुकुल के स्नातकों के प्रति अति श्रद्धा हो गई।

उद्भट् लेखक

इस काल में आपने 'आर्य' साप्ताहिक पत्र में वेद विषय पर लेख लिखने प्रारम्भ किये। लेखों की प्रशंसा हेतु अनेक विद्वानों के पत्र आने लगे। पत्र की मांग भी बढ़ गई। सभा ने आपको 'आर्य' साप्ताहिक का सम्पादक बना दिया। शनिवार और रविवार को प्रति सप्ताह आर्यसमाजों के उत्सवों में बहुत मांग होने के कारण जाना होता था। इसी सन्दर्भ में आप आर्यसमाज मुलतान के उत्सव पर गये। मुलतान के प्रसिद्ध आर्य परिवार में वेद प्रचार अधिष्ठाता पं० यशपाल जी की ससुराल थी। अधिष्ठाता जी भी उत्सव में गये थे, उनके ससुराल के सभी व्यक्ति व्याख्यान सुनने आते थे।

स्वयंवर विवाह

पं० प्रियव्रत जी का व्याख्यान सुनकर पं० यशपाल जी की पत्नी की छोटी बहन कुमारी यशोदा बहुत प्रभावित हुई। दोनों विद्वानों का भोजन पं० यशपाल जी के श्वसुर-गृह पर था। भोजन करते-करते पं० प्रियव्रत जी के व्याख्यान की चर्चा में कु० यशोदा ने बढ़-चढ़ कर प्रशंसा कीं। पिता पुत्री के भावों को परख गये। गुणों के आधार पर, बिना किसी विचार के, बिना परिचय के विवाह का दिन नियत हो गया। मित्र मण्डली के सभी साथियों ने विवाह में भाग लिया। लाला सन्तराम जी ने विवाहित दम्पत्ति का घर में स्वागत-सम्मान किया।

आचारवान् आचार्य

विवाह हुआ ही था कि दयानन्द उपदेशक विद्यालय में आपकी आचार्य पद पर नियुक्ति हो गई। अध्यापन काल में भी आपके लेखों का एवं सम्पादन का कार्य भी चलता रहा। उत्सवों में दिये व्याख्यानों से विद्यालय को आर्थिक लाभ होना प्रारम्भ हो गया। इन्हीं दिनों में आपने "वेदों में राजनैतिक सिद्धान्त" एक बृहद् ग्रन्थ लिखना आरम्भ किया। ग्रीष्मावकाश के समय प्रायः आपको शिमला आर्यसमाज मंदिर में ग्रन्थ लिखने की सभी सुविधा उपलब्ध होती था।

उपदेशक विद्यालय के सभी छात्रों पर आपके आचार और विद्वत्ता की अमिटछाप रही। आपके समय में वैसे तो सारे भारत के नवयुवक छात्र वहां थे परन्तु उनमें हैदराबाद के छात्रों की अधिक संख्या थी। उनके स्वभाव में प्रायः उग्रता अधिक होती थी। परन्तु आचार्य जी को उन्होंने कभी ऐसा अवसर नहीं दिया कि उन्हें किसी को प्रताड़ना करनी पड़ी हो।

अजात शत्रु महामानव

प्रायः छात्रों और गुरुओं में कभी-कभी कटुता हो जाती है। परन्तु आचार्य प्रियव्रत के विरोध में किसी छात्र ने अथवा सामाजिक व्यक्ति ने आवाज नहीं उठायी। किसी-किसी व्यक्ति को यह सौभाग्य उपलब्ध होता है कि उसका जीवन उसके नाम के अनुसार सार्थक हो, और फिर नाम रखने वालों पितृजनों को अपने रखे नाम पर गौरव प्राप्त हो सके।

अपने जीवन-काल में यश मिलना दुर्लभ होता है। परन्तु जीवन में आचार्य जी को जो यश मिला, सम्भवता वह किसी विरले को ही मिला हो।

विश्वविद्यालय के आचार्य तथा कुलपति

आचार्य जी की कीर्ति और साध स्वभाव से विश्वविद्यालय कांगड़ी का गौरवशाली पद उनको मिला। सभी का कहना है कि जितने अधिक समय तक आपने गुरुकुल के आचार्य पद एवं उपकुलपति पद को अलंकृत किया, इतना अन्य किसी को यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। इससे आचार्य जी की कार्य-पटुता का बोध होता है। आचार्य जी की आचारगरिमा की परख की यह परम उत्कृष्ट कसौटी है। श्रद्धेय आचार्य जी के पश्चात् गुरुकुल की परिस्थितियों से सारा आर्यसामाजिक जगत् परिचित है। बहुत देर में समझ आई कि फिर से आचार्य जी को आमन्त्रित कर सम्मानपद परिद्रष्टा (विजटर) पद प्रदान किया।

विश्वविद्यालय कांगड़ी ने आपको विद्यामार्तण्ड की मानद उपाधि से अलंकृत किया।

सुखी गृहस्थ

विद्वान् प्रायः अपने परिवार की ओर अधिक ध्यान नहीं दे पाते। अपनी सन्तान को अपने अनुकूल नहीं ढाल पाते, चाह के अनुसार योग्य नहीं बना पाते। परन्तु आचार्य जी का सद्गृहस्थ जीवन अनुकरणीय रहा है। उनकी सहधर्मिणी सदैव उनके योग्य साथी की तरह कर्त्तव्यनिष्ठ देवी रही। सहज मानव स्वभाव से यदा-कदा कभी मनो-मालिन्य हुआ भी तो श्री यशोदा देवी जी का केवल इतना कहना कि भाई पण्डित बुद्धदेव जी तथा भाई पं० यशपाल जी को बुलाती हूं, तो बस, इतने कहने मात्र से समस्या का समाधान हो जाता था। आचार्य श्री पण्डित बुद्धदेव जी की काव्य-पटुता धारा-प्रवाह वक्तृता, शंकराचार्य जैसी संस्कृत लिखने की शैली के कायल थे और हैं। इसलिए उनकी बात उनके लिए पत्थर की लकीर की तरह सदा पक्की होती थी। पं० यशपाल जी को आचार्य जी सदा अपना बड़ा भाई मानते थे। उनकी नेक सलाह से आचार्यश्री को सदा लाभ पहुंचा।

गुरुवर्य्य के ज्येष्ठ पुत्र भाई श्रुतिकान्त गुरुकुल के स्नातक होने के पश्चात् एम० ए० करके ब्रिटिश गायना चले गये, वहां उन्होंने संस्कृत यूनिवर्सिटी बनाई, उसके कुलपति रहे, पश्चात् गवर्नमेंट ने यूनिवर्सिटी को अपने अधीन कर लिया, फिर इन्होंने अपने बहनोई के व्यवसाय में सहयोग कर लिया। दूसरे पुत्र भाई चन्द्रकांत स्नातक होने के पश्चात् एम० ए० कर अमेरिका का नागरिक बनकर वहीं पर कुशल व्यापारी हैं। पण्डित जी की दोनों सुपुत्रियां सम्पन्न परिवारों में ब्याही गईं, बहुत सुखी हैं।

शिष्यों के प्यारे

जिन-जिन शिष्यों ने आचार्यश्री से शिक्षा प्राप्त की वे आचार्य जी के परिवार को तथा अपने परिवार को अपना परिवार मानते हैं। उनके सुख में हमें सुख मिलता है और उनके दुःख से हम दुखी होते हैं। मेरी अपनी बीती घटना है। "जब मैं उपदेशक विद्यालय में पढ़ता था तो अवकाश के दिनों अवकाश स्वीकृत कराने के लिए आचार्य जी महाराज के घर गया। अवकाश स्वीकृति के बाद माता यशोदा देवी जी को नमस्ते की तो माता जी ने कहा कि कल घर जाओगे तो रास्ते के लिए मैं भोजन बनाकर भेज दूंगी। मार्ग में भोजन अच्छा नहीं मिलता। माता जी का प्यार विद्यालय के छात्रों पर मां जैसा था। अब भी वह दिल्ली आती हैं तो मेरे मन भाते नींबू, आंवले के आचार को लाती हैं। मेरी पत्नी को सास जैसा प्यार करती हैं।

विद्यार्थियों के प्रशंसक

जब आचार्य जी सन् १९४३ में गुरुकुल कांगडी के आचार्य नियुक्त होकर कांगड़ी आ रहे थे तो उनके विदाई समारोह पर मैंने उनको गद्य-पद्य संस्कृत में मान-पत्र लिखकर सम्मान में प्रस्तुत किया। भारत विभाजन के बाद जब मैं पूज्य आचार्य जी के दर्शन करने गुरुकुल गया तो दर्शनोपाध्याय पं० सुखदेव जी भी

उनके गृह पर उपस्थित थे। एक कमरे में जहां हम बैठे कुशलता की बात कर रहे थे तो आचार्य जी ने मेरा पण्डित सुखदेव जी को परिचय दिया। पं० सुखदेव जी ने तुरन्त कहा यह वे ही आपके शिष्य हैं जिनका लिखा संस्कृत में मान-पत्र सामने लगा है। पं० जी ने कहा इस मान-पत्र की हम दोनों आपके अप्रत्यक्ष में प्रशंसा करते रहते हैं। उनके प्रोत्साहन से आज तक मुझे संस्कृत गद्य और पद्य में लिखने की अभिरुचि है। धाराप्रवाह संस्कृत बोलने का अभ्यास है। इनके वरद्हस्त की छाया में जो सुख और ज्ञान प्राप्त हुआ, उससे आचार्य जी आज तक मेरे सबसे बढ़कर आराध्यदेव बने हुये हैं। इस वार्धक्य काल में प्रायः उनका पत्र कुशलक्षेम जानने के लिये आ जाता है। भगवान् ऐसे आचार्य सबको प्रदान करे।

वैदिक विद्वान

स्वामी वेदानन्द जी के बाद वेद सरस्वती के सारसरोवर में डुबकियां लगाकर जो वैदिक सिद्धान्त रत्न प्राप्त कर ग्रन्थ पृष्ठों में गूंथ कर ज्ञान निबद्ध किया है, वह विद्वानों का मार्गदर्शन सदा-सदा करता रहेगा। इस वृद्धावस्था में भी आपका लेखन निरन्तर चल रहा है। आचार्यवर्य्य की महत्त्वपूर्ण कृतियां, १. वेद से राजनैतिक सिद्धान्त, २. वेदोद्यान के चुने हुये फूल, ३. समाज का कायाकल्प, ४. मेरा धर्म, ५. वरुण की नौका आदि को पढ़कर बड़े-बड़े रिसर्च स्कॉलरों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इन कृतियों पर कई स्थानों के विद्वज्जनों ने, आदरणीय आचार्य जी को सहस्रों की राशि से पुरस्कृत किया है।

अहो शिष्यानां योऽनुभवति दुःखं निजमिव,
तथानन्दं तेषां निजमोदं च मनुते।
महायोगी श्रीमान् हरतिवटु कष्टं च नितराम्
गुरुं वन्दे नित्यं सकल सुखदातार-मनघम्।।

अहो! हमारे आचार्य शिष्य के कष्ट को अपना कष्ट और सुख को अपना सुख मानते हैं। मुक्तात्मा आचार्य निरन्तर हमारे अज्ञानरूप क्लेशों का हरण करते रहते हैं। ऐसे अनुपम पवित्र गुरु का जो सम्पूर्ण सुखों के दाता है, मैं नित्य उनका अभिवादन करता हूं।

पुनश्च

आचार्यप्रवरण्यभ्या नराशिाखत्रयिभ्यो नः।
नतं पादपंकजेषु भूयो भूयो नमो नमः।।

मनुष्यों में अति श्रेष्ठ आचार्य के चरण-कमलों में हमारा बार-बार सविनय प्रणाम।

आर्यसमाज में बलिदान की भावना

श्री आचार्य प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति

आर्यसमाज एक धर्मप्रचारक संस्था है। धर्म स्वभावतः मनुष्य में आत्मत्याग की भावना को उत्पन्न करता है। धरती के सब मनुष्यों और अन्य सब प्राणियों को परमात्मा ने उत्पन्न किया है। परमात्मा हम सबका उत्पादक पिता और माता है। हम उस के पुत्र हैं। इसलिए हम सब आपस में भाई-भाई हैं।

अपनी लौकिक माता के पेट से उत्पन्न होने वाले भाई को जिस प्रकार हम अपना भाई समझते हैं, उनके सुख को जिस प्रकार अपना सुख और उसके दुःख को जिस प्रकार अपना दुःख समझते हैं, उसी प्रकार हमें संसार के सब मनुष्यों और प्राणियों को उस जगज्जननी की सन्तान होने के कारण अपना भाई समझना चाहिए और उनके सुख को अपना सुख और उनके दुःख को अपना दुःख समझना चाहिए। जिस प्रकार हम अपनी लौकिक माता से उत्पन्न अपने भाई के दुःखों को दूर करने और सुखों को बढ़ाने के लिए शक्तिभर प्रयत्न करते हैं, उसी प्रकार उस जगज्जननी से उत्पन्न अपने भाइयों के दुःखों को दूर करने और उनके सुखों को बढ़ाने के लिये हमें सदा शक्तिभर यत्न करतें रहना चाहिए। इसके लिए हमें जितना त्याग करने की आवश्यकता हो उसे करने के लिये सर्वदा उद्यत रहना चाहिए। धर्म का अनुसरण स्वभावतः मनुष्य में इस प्रकार की भावनायें जागृत करता है और इन भावनाओं के अनुसार कार्य करने के लिये प्रेरित करता है। धर्म का धर्मत्व इसी में है। किसी पुरुष के धार्मिक होने की यही वास्तविक कसौटी है।

आर्यसमाज वेद के धर्म का प्रचार करता है। वेद का धर्म वह शुद्ध और पूर्ण धर्म है जिसका जगदुत्पत्ति के आरम्भ में भगवान् ने मनुष्यों को उपदेश किया था। इसलिए आर्यसमाज द्वारा प्रचारित इस शुद्ध धर्म में तो विश्वबन्धुत्व और आत्मत्याग की इन भावनाओं का उत्पन्न होना और भी अधिक अनिवार्य है। फलतः वेद के धर्म का प्रचार करने वाले आर्यसमाज में ये भावनायें आरम्भकाल से उत्पन्न होती रही हैं और वह इन धार्मिक भावनाओं के अनुसार सदा शक्तिभर कार्य करता रहा है।

जब धार्मिक भावनाओं से प्रेरित होकर कोई मनुष्य दूसरे लोगों के कल्याण के लिये अग्रसर होता है तो उसके लिये अपनी शक्तियों और सामग्री का कम या अधिक त्याग करना नितांत आवश्यक होता है। अपने पदार्थों का त्याग किये बिना हम दूसरों का कल्याण और सुखसाधन नहीं कर सकते। सभी प्रकार के त्यागों में हमें अपने स्वार्थ को, अपने सुख-आराम को, छोड़ना होता है। सभी प्रकार के त्यागों में हमें अपनी आत्मा की ममत्व-प्रधानता को दबाना होता है। इस प्रकार सब त्यागों के तह में आत्मत्याग की भावना काम करती है। जब आत्मत्याग की यह भावना इस सीमा तक बढ़ जाती है कि आवश्यकता होने पर हम अपने प्राणों तक का उत्सर्ग करने के लिये उद्यत हो जाते हैं तो इस पराकाष्ठा के आत्म-त्याग को सामान्य भाषा में ''आत्माहुति'' या ''बलिदान'' कहते हैं। जब तक अन्न, वस्त्र, धन आदि की स्थूल सामग्री द्वारा कष्टापन्न लोगों का दुःख-दर्द दूर करके हम उनके सुख-साधन का प्रयत्न करते हैं। तब तक ''बलिदान'' की नौबत हमारी प्रायः नहीं आती है। परन्तु अनेक बार लोगों का वास्तविक सुख-साधन करने के लिये हमें उनके प्रचलित विचारों को बदल कर उनके स्थान में नये विचार देना आवश्यक होता है। लोगों के जो कष्ट अज्ञान पर आश्रित हैं वे अज्ञान को दूर

किये बिना दूर नहीं हो सकते। परन्तु मनुष्य के स्वभाव में यह दोष है कि वह अपनी भूल सुझाया जाना पसन्द नहीं करता है। वह अपनी भूल बताने वाले से चिढ़ जाता है। वह भूल बताने वाले का अपकार करने के लिये तैयार हो जाता है। यदि भूल बताने वाला अपना काम निरन्तर करता चला जाय तो उससे मनुष्य यहां तक क्रुद्ध हो जाता है कि भूल बताने वाले के प्राण तक लेने के लिये तैयार हो जाता है। धार्मिक भावना से प्रेरित भूल बताने वाला पुरुष लोगों के इस क्रोध से घबराता नहीं है। उसने तो परमात्मा के पुत्रों का, अपने भाइयों का दुःख-संकट दूर करना है और वह अपने इन भाइयों का प्रचलित अज्ञान दूर करने से ही हो सकता है। इसलिए वह अपनी सच्ची, खरी बातें निर्भीक भाव से सुनाता चला जाता है। यदि उसके ये नासमझ भाई क्रुद्ध होकर उसके प्राणों को ही ले लेना चाहते हैं तो वह इसके लिये भी उद्यत रहता है। अज्ञानान्धकार को हटाकर ज्ञानप्रकाश फैलाने के इस कार्य में वह हंसते-हंसते अपने आपको "बलिदान" करने के लिये तैयार करता है। ऐसी अवस्था में एक धार्मिक पुरुष के लिये अपनी "बलि" दे देने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रहता है। एक और प्रकार के अवसर भी हैं जब मनुष्य को 'बलिदान' होने के लिये तैयार करना पड़ता है प्रत्येक मनुष्य-समाज के कुछ जन्मसिद्ध अधिकार हैं। ये अधिकार छिन जाने पर न कोई मनुष्य वास्तव में मनुष्य कहलाने का अधिकारी रहता है और न कोई मनुष्य-समाज ही मनुष्यों का समाज कहलाने का अधिकारी रह जाता है। बहुत बार स्वार्थ और शक्ति के मद में चूर लोग हमारे इन अधिकारों को कुचलने के लिए तत्पर हो जाते हैं। हमें इन लोगों से अपने अधिकारों की रक्षा करनी होती है। अपने अधिकारों की रक्षा के इस काम में हमें भारी आत्मत्याग करने की आवश्यकता पड़ती है। धन-सम्पत्ति का तो कहना ही क्या, हमें प्राणों का मोह छोड़कर ऐसे अवसरों पर अपने जीवनों का भी बलिदान करना पड़ता है। धार्मिक वृत्ति के पुरुष ऐसे अवसरों पर भी हंसते-हंसते अपना 'बलिदान' करते हैं।

आर्यसमाज द्वारा किये गये जीवनों के बलिदानों की चर्चा करने से पहले समय-समय पर लोक-कल्याण के लिए आर्यसमाज जो भारी त्याग करता रहा है, उनमें से कुछ की ओर निर्देश कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। ऐसा करने से आर्यसमाज की बलिदान भावना का वास्तविक स्वरूप समझने में बहुत सहायता मिलेगी। इससे हमें आर्यसमाज के बलिदानों की तह में छिपी हुई मौलिक प्रेरणा का समझना सुगम हो जायेगा।

धार्मिक भावना स्वभावतः धार्मिक पुरुषों के भीतर प्राणिमात्र के दुःख-दर्द में समवेदना के भाव उत्पन्न करती है। इसीलिए हम देखते हैं कि जब कभी मनुष्य-समाज के अंश पर कोई विपत्ति आई है आर्यसमाज उसी समय पीड़ित लोगों की सहायता करने के लिए आगे बढ़ा है। ऐसे अवसरों पर आर्यसमाज सदा कष्टापन्न लोगों की सेवा करने के लिए उनके पास अपनी स्वयंसेवकों की सेनायें भेजता रहा है और उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए

मुक्तहस्त से धन की सहायता भेजता रहा है।

आर्यसमाज का जीवन अभी छोटा ही है। आर्य समाज की स्थापना ऋषि दयानन्द ने सन् १८७५ में की थी। अपने जीवन के इन ११५ वर्षों में आर्यसमाज ने कष्टापन्न जन-समाज की सेवा का कोई अवसर हाथ से न जाने दिया है। सन् १८९७-९८ और १८९९-१९०० में हमारे देश में भयकर अकाल पड़े थे। अन्न न मिलने से अनगिनत आदमियों को अपने प्राणों से हाथ धोने पड़े थे। असंख्य बसे हुये घर उजड़ गए थे। भूख से विहव्ल होने के कारण पति को पत्नी, माता को सन्तान की सुध न रही थी। सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गई थी। आर्यसमाज अभी अपने आंरम्भिक काल में ही था। उसकी शक्ति का अभी बहुत विकास नहीं हुआ था। फिर भी आर्यसमाज ने अकाल से आक्रान्त प्रदेशों में अपने सेवक भेजे, पीड़ित लोगों को अन्न, वस्त्र और धन की शक्तिभर सहायता दी। सैंकड़ों अनाथ बच्चों की रक्षा की और असहाय अबलाओं की लज्जा को ढका। हजारों रुपया इस काम में आर्यसमाज ने खर्च किया। उस समय पीड़ितों की सहायता करने वाला एकमात्र भारतीय समाज आर्यसमाज था। सन् १९०८ के काल में भी आर्यसमाज ने इसीप्रकार हजारों रुपया व्यय करके पीड़ितों की सहायता की। कांगड़ा की घाटी में १९०५ ई० में एक भयंकर भूकम्प आया था। भूकम्प से जन और धन की घोर हानि हुई थी। हजारों आदमी निराश्रय और वे घर-बार-के हो गये थे। उस समय भी आर्यसमाज सबसे पहले पीड़ित लोगों की सहायता और सेवा करने के लिए पहुंचा था।

सन् १९१८ में गढ़वाल के प्रदेश में भीषण अकाल पड़ा था। इस भीषण अकाल में जनता की जो दु:खपूर्ण शोचनीय स्थिति हो जाया करती है वही स्थिति गढ़वाल के लोगों की हो गई थी, लोगों को खाने-पहनने को नहीं मिलता था। सर्वत्र हा-हाकार मच गया था। उस समय भी आर्यसमाज दु:खाकुल जनता की सेवा के लिए तत्काल आक्रान्त प्रदेश में पहुंचा। स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने वहां जाकर डेरे लगा लिये। उनके नेतृत्व में गुरुकुल के ब्राह्मचारी और स्नातक तथा अन्य आर्यसमाजी लोग आक्रान्त प्रदेश के गांव-गांव में घूमकर पीड़ित लोगों को सहायता देते थे। इस काम में अकेले श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज द्वारा आर्यसमाज ने ७०३३० रु० व्यय किये थे। महात्मा हंसराज जी की अध्यक्षता में वहां अलग काम हो रहा था। उनके द्वारा जो हजारों रुपया व्यय हुआ, वह अलग है।

जून १९३४ में बिहार में भयंकर भूकम्प आया। नगरों के नगर नष्ट-भ्रष्ट हो गए। इस दुर्देव का यहां वर्णन हो सकना कठिन है। आर्यसमाज के लोग इस समय भी विपद्ग्रस्त जनता की सेवा के लिए दौड़कर पहुंचे। लोगों की सब प्रकार की सहायता की गई। भूखों और नंगों को अन्न और वस्त्र दिये गये। बे-घरबारों के लिए निवासार्थ झोंपड़े बनवाये गये। अकेली आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने इस काम में कोई १०००० रु० व्यय किये थे। अन्य प्रान्तों की आर्यसमाजों और सभाओं ने जो खर्च किया था, वह अलग है। पुन: १९३५ में क्वेटा में भीषण भूकम्प आया। सारा क्वेटा विनष्ट हो गया।

हजारों लोग दबकर मर गये। सब की चल और अचल सम्पत्ति नष्ट हो गई। आर्यसमाज इस समय भी विपदाक्रान्त लोगों की सहायता और सेवा के लिए तत्काल पहुंचा। जिनको अन्न की जरूरत थी, उन्हें अन्न दिया गया। जिन्हें वस्त्रों की आवश्यकता थी, उन्हें वस्त्र दिये गये। जिन्हें दवा-दारू और मरहम-पट्टी की आवश्यकता थी, उन्हें वह भी दी गई। जिन्हें रुपये की आवश्यकता थी उन्हें वह दिया गया जिन्हें देश में अपने घरों में पहुंचाने की आवश्यकता भी उन्हें पहुंचाने का प्रबन्ध किया गया। इस कार्य में भी आर्यसमाज ने हजारों रुपया खर्च किया। अकेले आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने ही कोई १९००० रु० खर्च किया।

सन् १९४२ में सिन्ध नदी के चढ़ जाने से सिंध प्रान्त भयंकर बाढ़ आई। गांव के गांव पानी में दब गए और बह गए। हजारों आदमी बे-घरबार के और वस्त्र से विहीन हो गये। मलेरिया भयंकर रूप से फूट पड़ा। इस विपत्ति के समय भी आर्यसमाज झट पीड़ित लोगों की सहायता के लिए वहां पहुंचा। लोगों को हजारों रुपये के वस्त्र और दवायें वितरण की गई। चिकित्सा के लिए केन्द्र स्थापित किये गये। अन्य सब प्रकार की आवश्यक सहायता भी दी गई। इस अवसर पर भी आर्यसमाज ने हजारों रुपया खर्च किया। अकेले आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने ही इस समय कोई २३००० रु० खर्च किया। सेवा के इन सब अवसरों पर आर्यसमाज जाति और सम्प्रदाय के भेदभाव को भुलाकर कष्टापन्न मात्र को सहायता करता रहा। सिन्ध प्रान्त में तो सब काम हुआ ही प्रधानतः मुस्लिम प्रधान ग्रामों में था।

जनता की सेवा के अन्य अवसरों पर भी आर्यसमाज ने भारी काम किया है। उदाहरण के लिए १९३२ में जम्मू प्रदेश में वहां मुसलमानों ने हिन्दुओं पर अकथनीय अत्याचार किये थे। प्राणों की हत्या, माल असबाब की लूट, स्त्रियों और बच्चों पर बलात्कार आदि कोई ऐसी पशुता न थी जो उस उपद्रव में हिन्दुओं पर न की गई हो। पीड़ितों की संख्या हजारों तक पहुंच गई थी। इस संकट से बचने का उपाय एकमात्र इस्लाम को स्वीकार कर लेना था। इस घोर विपत्ति के समय भी आर्यसमाज पीड़ितों की सहायता के लिए तत्काल वहां पहुंचा। स्वामी स्वतंत्रानन्द जी की अध्यक्षता में दयानन्द उपदेशक विद्यालय के विद्यार्थी और अध्यापक तथा अन्य आर्यसमाजी पुरुष इस निर्दयता के क्षेत्र में जा पहुंचे। पीड़ितों की अन्न, वस्त्र द्वारा सहायता की गई। जो लोग डरकर अपने धर्म से गिर गये थे। उन्हें वापिस अपने धर्म में लाया गया। दक्षिण भारत के मालाबार प्रात में मोपला मुसलमानों ने प्रसिद्ध मोपला काण्ड के समय भी वहां के हिन्दुओं पर इसी प्रकार के अत्याचार किये थे। उस समय भी आर्यसमाजियों ने यहां पहुंचकर पीड़ितों की भरपूर सहायता की थी। इन दोनों अवसरों पर भी आर्यसमाज ने हजारों रुपया खर्च किया था। जब-जब जनता पर किसी प्रकार की कोई विपत्ति आई है तब-तब आर्यसमाज विपद्ग्रस्त लोगों की सेवा के लिए इसी प्रकार आत्म-त्याग करता रहा है।

आर्यसमाज की त्यागमयी भावना का परिचय देने के लिए उसके एक अन्य क्षेत्र में

किये हुये कार्य की ओर भी संकेत कर देना उचित प्रतीत होता है। वह क्षेत्र है शिक्षा का। जन-समाज का अज्ञानान्धकार दूर करना आर्यसमाज का एक प्रधान उद्देश्य है। इसके बिना लोगों का वास्तविक कल्याण नहीं हो सकता। इसलिए शिक्षा का काम अपने प्रारम्भकाल से आर्यसमाज ने अपने हाथ में ले रखा है। इस लोक-कल्याण के काम में आर्यसमाज बेहद शक्ति खर्च कर रहा है। इस काम में आर्यसमाज पानी की तरह अपना रुपया बहा रहा है।

इस समय आर्यसमाज के ८० से अधिक गुरुकुल चल रहे हैं। इसमें से अकेले गुरुकुल कांगड़ी का वार्षिक खर्च लाखों का है। गुरुकुल वृन्दावन का वार्षिक खर्च कई लाख का है। गुरुकुल कांगड़ी की शाखाओं में से कइयों का वार्षिक व्यय बीस पच्चीस हजार रुपया है। हिसाब लगाया जाये तो सब गुरुकुलों पर मिलाकर आर्यसमाज प्रतिवर्ष कोई पन्द्रह लाख रु० व्यय कर रहा है। आर्यसमाज के ४ कन्या गुरुकुल चल रहे हैं। इसमें में अकेले कन्या गुरुकुल देहरादून पर प्रतिवर्ष कोई १८०००० रु० खर्च होता है। आर्यसमाज के अनेक उपदेशक विद्यालय चल रहे हैं। आर्यसमाज के कई कालेज और अनेक स्कूल चल रहे हैं। कन्याओं के विद्यालयों, स्कूलों और पाठशालाओं की संख्या हजारों में है। इनमें से कई पाठशालाओं में हजार-हजार कन्यायें पढ़ती हैं। इन सब गुरुकुलों, विद्यालयों, कालेजों, स्कूलों और पाठशालाओं पर आर्यसमाज प्रतिवर्ष १० करोड़ रुपया खर्च कर रहा है।

आर्यसमाज संख्या की दृष्टि से भारतवर्ष की ८५ करोड़ जनता में कोई विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं रखता है। १९३१ की जनगणना में आर्यसमाजियों की जनसंख्या केवल ९९०२३३ थी। आर्यसामज का लोक-कल्याण की महनीय भावना से दिया हुआ यह त्याग सचमुच अद्भुत है। आर्यसमाजियों में पाई जाने वाली यह त्याग की अद्भुत भावना ही बढ़ते-बढ़ते जीवन-बलिदान का रूप धारण कर लेती है। आर्यसमाज द्वारा किये गए और किये जा रहे पार्थिव पदार्थों के बलिदान की ओर संकेत करके अब उसके जीवन-बलिदानों की कथा सक्षेप से पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हैं।

आर्यसमाज का सर्वप्रथम बलिदान उसके संस्थापक स्वयं ऋषि दयानन्द का है। मानव-समाज के कल्याण की भावना से प्रेरित होकर ऋषि दयानन्द ने सत्य का चक्र हाथ में लिया था। उनके सत्य के प्रचार के आगे असत्य, अधर्म, झूठ आदि पाखण्ड के दुर्ग धड़ाधड़ गिरने लगे। उनके द्वारा की हुई सत्य गर्जना को दुर्बल और तुच्छ हृदय वाले लोग सहन न कर सके। अनेक लोग उनके शत्रु होकर उनके ही प्राणों के प्यासे हो गये। अनेक बार ऋषि को मारने के प्रयत्न किये गये। न जाने कितनी बार ऋषि शस्त्रों के प्रहार से बाल-बाल बचे और कितनी बार ब्रह्मचर्य और तपस्या से बलिष्ठ उनके शरीर ने दिये गये हलाहल विष को हज्म किया। ऋषि सत्य का नाद बजाते-बजाते जोधपुर पहुंचे। राजमहलों में भी प्रचार हुआ। एक दिन ज्यों ही ऋषि उपदेश के लिए महलों में पहुंचे त्यों ही

महाराजा के अंक से निकलकर जा रही नन्हीं भक्तन नामक वेश्या पर ऋषि की दृष्टि पड़ी। ऋषि ने तमक कर महाराज को कहा– सिंह कुतिया के साथ नहीं रहा करते, क्षत्रिय को वेश्या के साथ नहीं रहना चाहिए। वेश्या ने ऋषि का यह वाक्य सुन लिया। वह क्रुद्ध हो गई। ऋषि के प्रचार से अनेक लोग पहिले ही क्रुद्ध थे। वेश्या ने षड्यन्त्र करके ऋषि को विष दिलवा दिया। इस बार के विष को ऋषि का शरीर न पचा सका। योग की क्रियाओं से भी विष को बाहर न कर सके। उनके रोम-रोम में असह्य यन्त्रणा देने वाले फोड़े निकल आये। ऋषि असीम धैर्य से असह्य पीड़ा को सहते रहे। योग्य डाक्टरों से इलाज कराया गया। पर कोई लाभ न हुआ। अन्त में ३० अक्टूबर १८८३ की दिवाली की रात को "प्रभु! तूने अच्छी लीला की, तेरी इच्छा पूर्ण हो" इन शब्दों के साथ हंसते-हंसते योग की विधि से समाधिस्थ होकर ऋषि ने अपने इस नश्वर शरीर को त्याग दिया और ब्रह्म में लीन हो गये।

ऋषि दयानन्द के बलिदान के पश्चात् आर्यसमाज के बलिदानों में धर्मवीर पण्डित लेखराम जी का बलिदान बहुत ऊंचा स्थान रखता है। ऋषि दयानन्द के दर्शन और उपदेश से पं० लेखराम में धर्म-प्रचार की भावना प्रबल वेग से जाग उठी थी। वे अपनी सरकारी नौकरी छोड़कर आर्यसमाज के उपदेशक बनकर धर्म-प्रचार के मैदान में उतर आये थे। उनके प्रचार में अद्भुत जादू होता था। जहां जाते थे धाक जम जाती थी। आप अरबी और फारसी के विशेष विद्वान् थे। इससे आपके प्रचार में मुसलमान भाइयों के अज्ञान और भूलों को विशेष रूप से दिखाया जाता था। उनके प्रचार से अनेक लोग इस्लाम छोड़कर शुद्ध होकर वैदिक धर्म ग्रहण कर लेते थे। इससे मुसलमानों के कुछ साम्प्रदायिक लोग पण्डित जी से क्रुद्ध रहने लगे। एक दिन एक छद्मवेशी मुसलमान नवयुवक उनके पास आया। वह कहने लगा कि मैंआपके पास रहकर वैदिक धर्म का स्वाध्याय करना चाहता हूं और इस्लाम छोड़कर आर्य बनना चाहता हूं। पण्डित जी को और क्या चाहिए था, उस युवक को पास रख लिया। हितैषियों ने युवक की चाल-ढाल देखकर पण्डित जी को सावधान भी किया पर धर्म के मतवाले पण्डित जी किसकी सुनते थे! उन दिनों पण्डितजी ऋषि दयानन्द के जीवन को लिखने का काम कर रहे थे। ६ मार्च १८९७ की सायंकाल को पण्डित जी लिखने का कार्य समाप्त करके उठे। उन्होंने अंगड़ाई ली। उसी समय मौका पाकर उस नराधम युवक ने पण्डित जी के पेट में छुरा घोंपकर उसे चारों ओर घुमामर उनकी अन्तड़ियों को चाक-चाक कर दिया। पण्डित जी ने असीम धैर्य दिखाया। उन्हें अस्पताल में ले जाया गया। पर कोई लाभ न हुआ। उस रात को उनका देहान्त हो गया। उनके मृत मुखमंडल पर अद्भुत शान्ति और कान्ति विराज रही थी।

आर्यसमाज के बलिदानों में श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का बलिदान भी विशेष स्थान रखता है। पण्डित लेखराम की भांति ही ऋषि दयानन्द के दर्शनों और उपदेशों ने स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन में भी क्रान्ति

मचा दी थी। वे वैदिक धर्म के दीवाने हो गये थे। आपका प्रारम्भिक नाम लाला मुंशीराम था। आप जालन्धर के प्रसिद्ध वकील थे। वकालत के काम से जो समय बचता था, उसे आप वैदिक धर्म के प्रचार में लगाया करते थे। आप व्याख्यान भी दिया करते थे और शास्त्रार्थ भी करते थे। इसके अतिरिक्त "सद्धर्म प्रचारक" नाम का साप्ताहिक पत्र भी निकाला करते थे। इस पत्र के लेखों से धर्म की गंगा बहा करती थी। थोड़े ही समय में आप आर्यसमाज के अद्वितीय नेता बन गये। फिर आपने वकालत पर भी लात मार दी और सारा समय आर्यसमाज के प्रचार में देने लगे। लोग आपके काम और चरित्र को देखकर आपको महात्मा मुंशीराम कहने लगे। ४ मार्च १९०२ को आपने हरिद्वार में प्रसिद्ध विश्वविद्यालय गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की। गुरुकुल की स्थापना शिक्षा के क्षेत्र में अद्‌भुत बात थी। इससे आपका नाम देश-विदेशों में प्रसिद्ध हो गया। गुरुकुल के आचार्य के रूप में आपकी अद्‌भुत आभा थी। कई योरोपियन यात्रियों ने उस समय आपकी ईसामसीह से तुलना की थी। गुरुकुल की स्थापना के समय आपने त्याग की पराकाष्ठा कर दी थी। आपने अपनी सारी सम्पत्ति गुरुकुल को अपने जीवन के साथ ही दान कर दी थी। देर तक गुरुकुल की सेवा करने के पश्चात् आपने संन्यास ले लिया। तब से आप स्वामी श्रद्धानन्द कहलाने लगे। अब आपकी सेवाओं का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया था। कुछ समय आपने कांग्रेस के साथ मिलकर राजनैतिक क्षेत्र में भारी काम किया था। १९१९ के रौलट एक्ट के आन्दोलन के दिनों में आपने अद्‌भुत कार्य किया था। ३० मार्च १९१९ के दिन आपके नेतृत्व में देहली में की जा रहे जलूस पर जब सरकारी सैनिक गोलियां चलाने आये थे तो आप छाती तानकर उनके आगे खड़े हो गये थे और कह दिया था "लो मेरी छाती खुली है चला लो गोलियां।" उस समय हिन्दू और मुसलमानों में गहरी एकता थी। उस समय स्वामी जी की देश सेवाओं से मुसलमान भी बहुत प्रसन्न हुये थे। ४ अप्रैल १९१९ को स्वामी जी का दिल्ली की सुप्रसिद्ध जामा मस्जिद की वेदी से धर्मोपदेश हुआ था। इस्लाम के इतिहास में शायद यह एकमात्र घटना है जब कि किसी गैर मुस्लिम ने किसी मस्जिद की वेदी से धर्मोपदेश दिया हो। १९१९ की अमृतसर में होने वाली कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष आप ही बने थे। इसके अनन्तर आपने दलितोद्धार के संबंध में विशेष आन्दोलन चलाया था और इसके लिए सारे भारत की यात्रा की थी। हिन्दू महासभा के संगठन और आन्दोलन को भी आपने भारी बल दिया था। अन्तिम दिनों में आपको धर्मान्ध मुसलमानों से हिन्दुओं की रक्षा के लिए शुद्धि के आन्दोलन को विशेष रूप से हाथ में लेने की आवश्यकता प्रतीत हुई थी। इस आन्दोलन को आपने सारे भारतवर्ष का विषय बना दिया था। धर्मान्ध मुसलमानों की आंख में स्वामी श्रद्धानन्द कांटे की तरह खटकने लगे। स्वामी जी निमोनिया से रोगी होकर उठे थे। उस वृद्धावस्था के रोग के कारण शरीर अभी बहुत दुर्बल था। २३ दिसम्बर की शाम को

अब्दुलरशीद नामक एक मुसलमान स्वामीजी के स्थान पर आया। आकर कहने लगा कि मैंने स्वामी जी से धर्म के संबंध में कुछ बातें करनी है। स्वामी जी के सेवकों ने आपकी दुर्बलता को देखकर उसे वापस भेजना चाहा। स्वामी जी ने कमरे से ही यह बात सुन ली। उन्होंने अब्दुलरशीद को अपने पास बुला लिया। उसने पानी मांगा। स्वामी जी ने उसे पानी पिलाया। पानी पीते ही उसने स्वामी जी की छाती पर पिस्तौल से गोलियां दाग दीं। तत्काल उनका आत्मा नश्वर शरीर को छोड़कर उड़ गया। अब्दुलरशीद को पानी पिलवाने और उसकी धर्म जिज्ञासा को शांत करने की भावना से स्वामी जी के चेहरे पर जो कृपा,संतोष और शान्ति की मुस्कराहट-पूर्ण मुद्रा आ विराजी थी। वह उनके मृत मुखमण्डल पर भी उसी प्रकार झलक रही थी।

प्रभु की वाणी वेद के उपदेशों का अनुसरण करते हुये आत्माहुति की जो लहर ऋषि दयानन्द ने चलाई थी, उसने उनके शिष्यों में बहुत गहरा प्रभाव किया है। उससे आर्यसमाज की सर्वसाधारण जनता में भी बहुत गहरी बलिदान की भावना उत्पन्न हो गई है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाले सर्वसाधारण आर्यसमाज की आवश्यकता होने पर बात की बात में अपने जीवन का बलिदान कर देते हैं पर अपने सिद्धिन्तों और धर्म को नहीं छोड़ते, जितने चाहे उतने उदाहरण इस संबंध में यहां दिये जा सकते हैं। स्थानाभाव से निर्देश के रूप में केवल एक-दो उदाहरण ही हम यहां दे सकेंगे।

आर्यसमाज के इतिहास के प्रारंभिक दिनों की घटना है। आर्यसमाज का अस्पृश्यता-निवारण का आन्दोलन जोर पकड़ रहा था। पंजाब के रोपड़नगर में एक पण्डित सोमनाथ रहा करते थे। वे अपने नगर और आस-पास के प्रदेश में दलितोद्धार का काम बड़े बल और उत्साह से कर रहे थे। शहर और बिरादरी के लोग उनसे नाराज हो गये। उन्हें और उनके परिवार को बिरादरी से गिरा दिया गया। शहर के सब कुओं से उनके लिए पानी भरना बन्द हो गया। पं० सोमनाथ इससे विचलित नहीं हुये। उन्होंने जोहड़ों और नहर से पानी लेकर पीना आरम्भ कर दिया। यह पानी साफ नहीं हाता था। इसके कुछ दिन निरन्तर सेवन से उनकी माता रोगी पड़ गई। डाक्टरों का इलाज आरम्भ हुआ। पर रोगिणी को लाभ न हुआ। डाक्टरों के यह पूछने पर कि रोगी को पानी कैसा दिया जाता है उन्हें सब स्थिति बताई गई। उन्होंने कहा कि रोगी को जब तक कुएं का पानी न पिलाया जायेगा तब तक उसे आराम नहीं होगा। पर कुएं का पानी तो बिरादरी वालों से अछूतोद्धार के काम में क्षमा मांगने से और भविष्य में यह काम न करने की प्रतिज्ञा करने से ही मिल सकता था। पं० सोमनाथ इसके लिए तैयार न थे। उधर माता अच्छी नहीं हो रही थी। सोमनाथ उदास रहने लगे। माता ने उनकी चिन्ता भांप ली। उसने पुत्र से चिन्ता का कारण पूछा! पुत्र ने सब सच-सच कह दिया। वीर माता ने रोगशय्या पर से मुस्करा कर कहा— "बेटा! मैं कब तक जीती रहूंगी? मैंने तो एकदिन मरना ही है। अभी सही। तुम मेरी खातिर धर्म न छोड़ना, धर्म जान से प्यारी चीज

है। वह मेरी जान से भी प्यारी है। तुम अपने धर्म पर डटे रहो बेटा! मैं धर्म की खातिर हंसते-हंसते मरुंगी।" और पं० सोमनाथ की माता सचमुच हंसते-हंसते मर गईं। पीछे से बिरादरी वालों ने सोमनाथ के परिवार के लिए स्वयं ही कुओं से पानी भरने की स्वीकृति दे दी।

सन् १९०४ की एक घटना है। फरीदकोट रेलवे स्टेशन पर पण्डित तुलसीदास नाम के एक स्टेशन मास्टर थे। वे दृढ़ आर्यसमाजी थे। अपने काम से जो समय खाली मिलता था, उसमें आर्यसमाज का प्रचार किया करते थे। शहर के जैनी लोगों से इनका विशेष रूप से वाद-विवाद रहा करता था। जैनी लोग इनकी युक्तियों से बड़े तंग रहा करते थे। वे इन्हें मार्ग से हटा देना चाहते थे। एकबार पण्डित तुलसीराम ने बाहर से आर्य उपदेशक से बुलाकर आर्यसमाज के सिद्धान्तोंका खूब प्रचार कराया। नास्तिकवाद का खूब खण्डन हुआ। इस पर जैनी लोग पंडित तुलसीराम से बेहद चिढ़ गये। एकदिन पण्डित जी कहीं अकेले जा रहे थे। गोपीराम नाम के एक जैनी ने मौका देखकर पिसी हुई लाल मिरचें इनकी आंखों में झोंक दीं। इस प्रकार इनके देखने में असमर्थ हो जाने पर उस नृशंस ने इनके पेट में छुरा घोंप दिया। लोगों को पता चलने पर इन्हें अस्पताल में लाया गया। बहुत औषधोपचार किया गया। पर आप बच न सके। इस प्रकार आहुति दे दी।

काश्मीर राज्य के महाशय रामचन्द्र नामक एक महाजन थे। ये राज्य की तहसील में खजांची थे। आपको दलितोद्धार के काम से अगाध प्रेम था। तहसील के काम से जो वक्त बचता था उसमें आप यही काम किया करते थे। अरबनूर तहसील में बुटहरा नामक एक ग्राम है। वहां के मेघ दलितों में आपने वैदिक धर्म के प्रचार का खूब काम किया। वहां के राजपूत लोग इनके इस काम से क्रुद्ध रहने लगे। म० रामचन्द्र जी ने दलित बालकों के लिए एक पाठशाला खोलनी चाही। राजपूतों ने इसका घोर विरोध किया। नौबत यहां तक आ पहुंची कि १४ जनवरी १९२३ के दिन राजपूतों ने इकट्ठे होकर इन पर लाठियों की वर्षा आरम्भ कर दी। लाठियों की वर्षा से इनका अंग-अंग टूट गया। ये मूर्छित हो गये। पता लगने पर लोग इन्हें उठाकर अस्पताल में लाये। इलाज बहुत हुआ। पर चोटें इतनी सख्त थीं कि ये बच न सके। २० जनवरी को इनका प्राणान्त हो गया। इनके बलिदान से राजपूतों के हृदय बदल गये। जो विरोधी थे, उन्होंने पाठशाला के लिए भूमि और धन दिया। इनकी स्मृति में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के तत्त्वावधान में बुटहरा में प्रतिवर्ष एक शहीदी मेला लगता था।

आर्यसमाज के इतिहास से इसी प्रकार के २०-२२ बलिदानों की कथा यहां और लिखी जा सकती हैं। पर स्थानाभाव हमें ऐसा करने की आज्ञा नहीं देता।

सन् १९३९ में आर्यसमाज की ओर से हैदराबाद रियासत में जो सत्याग्रह संग्राम लड़ा गया था, उसके बलिदानों की कहानी ऊपर निर्दिष्ट बलिदानों से अलग है। वह सारा सत्याग्रह ही महान् बलिदान था। धर्म के इतिहास में वह सत्याग्रह अद्भुत कथा है। वह

आर्यसमाज का अमर गौरव है। हैदराबाद रियासत की प्रजा में हिन्दुओं की संख्या कोई ९० प्रतिशत थी। रियासत का राजा मुसलमान था। धर्मान्ध मुसलमानों को रियासत में हिन्दुओं की इतनी भारी संख्या सहन नहीं होती थी। वे हिन्दुओं की संख्या को कम करना चाहते थे। इसके लिए कई प्रकार के उपाय किये जाते रहे। आर्यसमाज का प्रचार मुसलमानों के मनसूबों में रुकावट डालता रहा। आर्यसमाज के प्रचार से जब हिन्दुओं को अपने सच्चे धर्म का पता लग जाता तो वे फिर मुसलमानों के बहकावे में नहीं आते। और जो भूल से मुसलमान हो गये थे वे फिर अपने धर्म में आ जाते। मुसलमान प्रचारकों को यह स्थिति असह्य प्रतीत हुई। उन्होंने आर्यसमाज के **विरुद्ध** राज्य के अधिकारियों के कान भरने आरम्भ कर दिये। मुस्लिम शासक मुल्लाओं के बहकाने में आ गये। उन्होंने आर्यसमाज को राजद्रोही संस्था समझ लिया। धीरे-धीरे राज्य की ओर से आर्यसमाज के काम में रुकावटें डाली जाने लगीं। अवस्था यहां तक आ गई कि आर्यसमाज के लिए अपने धर्म का प्रचार कर सकना सर्वथा असम्भव हो गया। प्रचार तो दूर रहा। आर्यसमाजियों के लिए अपने धार्मिक कृत्य और साप्ताहिक सत्संग कर सकना भी असम्भव हो गया। राज्य की आज्ञा बिना न मंदिर बन सकते थे, न अग्निहोत्र हो सकते थे, न मंदिरों पर "ओ३म्" की ध्वजायें लग सकती थीं, न वार्षिक उत्सव, न सत्संग और न कोई व्याख्यान हो सकते थे। ऐसा नियम कर देना ही आर्यसमाज के जन्म-सिद्ध अधिकारों पर कुठाराघात था। इसपर विचित्र बात यह थी कि मागने पर राज्याधिकारी ऐसी आज्ञा नहीं देते थे। रियासत के आर्यसमाज लोग सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्वावधान में निरन्तर ६ साल तक चिट्ठी पत्री द्वारा तथा राज्याधिकारियों से मिलकर अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए यत्न करते रहे। पर राज्य की ओर से कोई सुनवाई न हुई।

अन्त में तंग आकर २० जनवरी १९३८ के दिन महात्मा नारायण स्वामी जी की अध्यक्षता में आर्यसमाज के जन्मसिद्ध अधिकारों की रक्षा के लिए आर्यों की शिरोमणि सभा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने सत्याग्रह संग्राम छेड़ दिया। भारत के प्रत्येक प्रान्त से आर्यों के दल के दल आकर रियासत में घुसने लगे और वहां अपने धर्म का प्रचार करने लगे। रियासत के अधिकारियों ने इन आर्य वीरों को मारना-पीटना और जेलों में ठूंसना शुरू कर दिया। जेलों में असह्य यंत्रणायें दी जाने लगीं। घोर यंत्रणायें सहकर भी आर्यवीर स्वयं शान्त रहते थे। किसी को कटुवचन तक भी नहीं कहते थे। कष्ट सहते थे और राज्याधिकारियों को सुबुद्धि देने के लिए भगवान् से प्रार्थना करते थे।

इस समय प्रत्येक आर्यवीर ने ब्राह्मणवृत्ति धारण कर ली थी। सत्याग्रह संग्राम युद्ध ही ब्राह्मणों का है। सत्याग्रह का योद्धा प्रतिद्वन्द्वी पर प्रहार नहीं करता है। उसके प्रहार सहता है। प्रहार सहकर अपने हृदय को सद्भावना और भगवान् से प्रार्थना द्वारा विरोधी के हृदय को जीतना चाहता है। इस युद्ध में आर्य वीरों ने ब्राह्मणत्व के इसी हथियार से काम लिया। राज्याधिकारियों द्वारा सत्याग्रही आर्यवीरों पर होने वाले

अत्याचारों का समाचार सुनकर आर्य जनता भयभीत नहीं हुईं। इन समाचारों से जनता में जोश, उत्साह और उमंग और अधिक बढ़ने लगे। रियासत में जाकर सत्याग्रह करने वाले आर्य वीरों के दलों का तांता बंध गया। आर्यसमाज के नेता, प्रचारक और जनता धड़ाधड़ सत्याग्रह के लिए जाने लगे। माताओं ने अपने पुत्रों को, पत्नियों ने अपने पतियों को और बहिनों ने अपने भाइयों को उनके माथे पर तिलक लगा और प्रेम का पाथेय देकर स्वयं सत्याग्रह के लिए प्रस्थापित किया। सत्याग्रही आर्य वीरों से रियासत की जेलें भर गईं। रियासत के लिए सत्याग्रहियों का सम्भालना भारी हो गया। उसके हाथ-पैर फूल गये। इसके साथ ही आर्यों के त्याग, तप, कष्टसहिष्णुता और विशुद्ध धर्म-प्रेम ने राज्याधिकारियों के हृदयों को हिलाना आरम्भ किया। उन्होंने स्थिति पर गम्भीरता से सोचना आरम्भ कर दिया। उन्हें अपनी भूल पता चली, परमात्मा ने उनके हृदयों में बल दिया। उन्होंने आर्यसमाज के धर्म-प्रचार के जन्मसिद्ध अधिकार को उसे फिर से देकर अपनी भूल को सुधारने का निश्चय कर लिया। १९ जुलाई को रियासत की सरकार ने इस संबंध में अपनी घोषणा प्रकाशित कर दी। इस घोषणा की शब्द रचना से आर्यसमाज सन्तुष्ट न हुआ। सत्याग्रह अबाध गति से चलता रहा। पुनः ८ अगस्त को राज्याधिकारियों की ओर से १९ जुलाई को घोषणा का और अधिक स्पष्टीकरण किया गया। इस स्पष्टीकरण में आर्यसमाज को सन्तोष हो गया और उसी ८ अगस्त के दिन सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने सत्याग्रह समाप्त करने की घोषणा कर दी और इस प्रकार आर्यों के धर्म-प्रेम और तज्जन्य तप, त्याग और कष्टसहिष्णुता ने अधर्म और अत्याचार पर विजय प्राप्त की।

मुट्ठी भर आर्यसमाजियों ने अपने अधिकारों की रक्षा के लिए इस सत्याग्रह के समय जिस आत्म-त्याग और बलिदान की भावना का परिचय दिया उससे सब देखने वाले स्तम्भित रह गये थे। ८ अगस्त तक १०५७९ सत्याग्रही जेलों में जा चुके थे। इसके अतिरिक्त कोई ३००० सत्याग्रही उस समय भिन्न-भिन्न केन्द्रों में कूच करने के लिए बैठे थे और नये सत्याग्रही धड़ाधड़ भरती हो रहे थे। जो सहसा-सत्याग्रह के बन्द हो जाने के कारण जेलों में न जा सके। फिर यह भी स्मरण रखना चाहिए कि सत्याग्रह का स्थान सत्याग्रहियों के अपने नगरों के समीप न था। सत्याग्रहियों के अपने नगरों से वह स्थान सैकड़ों और हजारों मील दूर था। सत्याग्रहियों को हजार-हजार डेढ़-डेढ़ हजार मील तक चलकर सत्याग्रह के स्थान में पहुंचना होता था। इससे सत्याग्रह के संचालन और उसके प्रबन्ध की कठिनाइयों का अनुमान सहज ही किया जा सकता है। इस सत्याग्रह में आर्यसमाज को ११ लाख रुपये खर्च करने पड़े थे।

इस सत्याग्रह में राज्याधिकारियों के हाथों वीरों ने जो घोर कष्ट सहे, उनकी कथा यहां लिख सकना संभव नहीं है। कोई ऐसा कष्ट नहीं था जो सत्याग्रहियों को न दिया गया हो। उनके रहने के स्थान मैले से मैले थे। उन्हें भोजन खराब से खराब और अव्यवस्थित रूप में दिया जाता था। चक्की पिसवाने और पत्थर कुटवाने

जैसे घोर परिश्रम के काम उनसे लिये जाते थे। अनेक सत्याग्रहियों को भयंकर रूप से मारा और पीटा जाता था। निर्वस्त्र करके उनके शरीरों पर कई-कई दर्जन बेंत भी अनेक अवस्थाओं में लगवाये जाते थे। रोगी हो जाने पर औषधोपचार की कोई समुचित व्यवस्था न थी और भी अनेक प्रकार के कष्ट सत्याग्रहियों को रियासत की जेलों में सहने पड़ते थे, और यह सब कुछ उन्हें सहना पड़ता था अपने धर्मप्रेम के कारण। धर्मप्रेम के अतिरिक्त आर्यवीरों का और कोई दूसरा अपराध न था।

इन अमानुषिक अत्याचारों के कारण २८ सत्याग्रहियो का रियासत के जेलों में ही प्राणान्त हो गया। इन २८ बलिदानों में से एक-एक की कहानी रोमांचकारिणी है। स्थानाभाव से हमें इन कहानियों के लिखने के लोभ का संवरण करना पड़ता है। सत्याग्रह के इतिहास में इनका विस्तृत वर्णन मिल सकता है। इतना भारी बलिदान करके आर्यसमाज ने हैदराबाद के धर्मयुद्ध में विजय प्राप्त की थी।

आर्यसमाज में यह तो आत्म-त्याग और बलिदान की भावना है, आर्यसमाज इस प्रकार भारी से भारी त्याग करके जो लोक-सेवा का कार्य करता रहता है, उससे वह जनता में सर्वप्रिय हो गया है। आर्यसमाज के स्थापना-काल से लेकर अब तक प्रति दसवें वर्ष में आर्यसमाजियों की संख्या दुगनी होती जा रही है। १९३१ की जनगणना में आर्यसमाजियों की संख्या एक करोड़ तक थी। १९४० की गणना प्रकाशित नहीं हुई है। प्रभु करें कि आर्यसमाज इसी प्रकार फलता-फूलता रहे।

स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा लिखित

ग्रन्थों के आधारभूत ग्रन्थों में पातञ्जल महाभाष्य का प्रमुख स्थान

लेखक : पूज्य पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक

(यह लेख श्री पण्डित जी की एक नवीन कृति 'स्वामी दयानन्द और उनका कार्य' का एक भाग है। श्रद्धेय पंडित जी ने उदारतापूर्वक इसे यहां देने की अनुमति दी है।)

राजेन्द्र जिज्ञासु

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जितने भी ग्रन्थ लिखे वा लिखवाये उन्हें प्रधान तथा निम्नलिखित वर्गों में बांट सकते हैं—

(१) **वेदभाष्यः**— चतुर्वेद-विषयसूची एवं ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका सहित ऋग्वेद, यजुर्वेद के भाष्य।

(२) **कर्मकाण्ड के ग्रन्थः**— प्राचीन अत्यन्त आवश्यक कर्मकाण्ड को प्रचलित करने के लिये लिखे गये ग्रन्थ। यथा—आर्याभिविनय, पञ्चमहायज्ञविधि और संस्कार-विधि।

(३) **व्याकरणविषयक ग्रन्थः**— यथा—पाणिनीय अष्टाध्यायी का भाष्य और वेदांगप्रकाश के निघण्टु तथा धातु पाठ को छोड़कर शेष भाग।

(४) **खण्डन-मण्डन के ग्रन्थः**— यथा—भ्रमोच्छेदन, भ्रान्तिनिवारण, वेदान्तिध्वान्तनिवारण, शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण, वेदविरुद्धमतखण्डन, भागवतखण्डन आदि। इनमें आरम्भ के दो ग्रन्थों का सम्बन्ध वेद

भाष्य के साथ है तथा अन्तिम ग्रन्थ प्रारम्भिक कृति है।

(५) **खण्डन-मण्डन के ग्रन्थः–** वैदिक सिद्धान्तों के मण्डन और अवैदिक सम्प्रदायों के खण्डन में लिखा गया प्रमुख ग्रन्थ–सत्यार्थ-प्रकाश।

(६) **सामान्य जनों के लिये उपयोगी ग्रन्थ–:** यथा–व्यवहारभानु, गोकरुणानिधि, आर्योद्देश्यरत्नमाला, संस्कृतवाक्यप्रबोध आदि।

(७) **कतिपय शास्त्रार्थ ग्रन्थः–** यथा–काशी शास्त्रार्थ (सं. १९२६ वि.= नवम्बर १८६९), मेला चांदपुर आदि। इन शास्त्रार्थों का लेखन स्वयं स्वामी दयानन्द सरस्वती ने किया था, यह इनकी अन्तःसाक्षी से विदित होता है। काशी शास्त्रार्थ के प्रथम संस्करण (दिसम्बर सन् १८६९) के साथ **'सद्धर्मविचार'** भी मुद्रित हुआ है।

(८) **आर्यसमाज के नियमों की व्याख्याः–** बम्बई आर्यसमाज के सन् १८७५ में निर्धारित २८ नियमों की व्याख्या।

(९) **पत्र एवं विज्ञापन–:** यद्यपि इनकी ग्रन्थों में गणना नहीं हो सकती, तथापि स्वयं स्वामी दयानन्द द्वारा लिखित होने से इनका भी हमने यहां परिगणन किया है।

हमने स्वामी दयानन्द सरस्वती के उपरिनिर्दिष्ट समस्त ग्रन्थों को न केवल सूक्ष्मदृष्टि से पढ़ा है। अपितु इनके प्रामाणिक संस्करण सम्पादित एवं प्रकाशित किये हैं। इनमें सहस्रों टिप्पणियां और १०-१२ प्रकार के परिशिष्टों में अत्यन्त उपयोगी विविध सूचियां भी दी हैं। ऋग्वेदभाष्य का थोड़ा सा भाग ही हम छाप सके। यजुर्वेदभाष्य पर पूज्य गुरुवर्य श्री पं. **ब्रहमदत्त**। जिज्ञासु जी ने १५ अध्याय तक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विवरण लिखा (जो दो भागों में छपा है)। उसमें भी मेरा बहुत सहयोग रहा।

इतना परिश्रम करने पर भी मैंने स्वामी दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थस्थ लेखों को यथावत् समझ लिया है, यह कहना दुराग्रहमात्र होगा। स्वास्थ्य के अत्यन्त गिर जाने तथा साक्षात् कार्य करने के योग्य न होने पर भी उनके कई लेखों के स्पष्टीकरण की प्रक्रिया चालू है। मैं इतना कह सकता हूं कि स्वामी दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों पर जितना कार्य मैंने अकेले किया है, उतना किसी एकाकी व्यक्ति ने तथा आर्यसमाज की किसी मान्य संस्था ने नहीं किया।

मैंने स्वामी दयानन्द प्रदर्शित आर्षपाठ-विधि से वेदांग और उपांग पर्यन्त अपने अपने विषयों के पारंगत गुरुजनों से १४ वर्ष अध्ययन किया है। अनुसन्धान कार्य में अन्तर्राष्ट्रिय स्तर पर ख्यातिप्राप्त प्रसिद्ध **इतिहासज्ञ** श्री पं० भगवद्दत्त की सदृश महानुभाव का मुझे चिरकालीन सान्निध्य प्राप्त हुआ है। सहस्रों तथा अमुद्रित ग्रन्थों का मैंने पारायण किया है। इनसे मुझे स्वामी दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों को समझने में अत्यन्त सहायता मिली है। इस दृष्टि से मैंने स्वामी दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों को जिस रूप में समझा है वह इस प्रकार है–

स्वामी दयानन्द ने स्वयं **घोषणा** की है कि मैंने जो कुछ लिखा है वह **ब्रह्मा** से लेकर जैमिनि पर्यन्त (बौधायन पर्यन्त) ऋषि-मुनियों के प्रोक्त

ग्रन्थों के आधार पर लिखा है। इसलिए उन्होंने अपने वेदभाष्य आदि ग्रन्थों के लेखन में वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, मनुस्मृति, निरुक्त, अष्टाध्यायी और पातञ्जलमहाभाष्य आदि विविध ग्रन्थों की भरपूर सहायता ली है। परन्तु स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जिस सूक्ष्म दृष्टि से महाभाष्य को आत्मसात् करके उसके वचनों को अपने ग्रन्थों में उद्धृत किया है, उस प्रकार किसी प्राचीन लेखक ने महाभाष्य का उपयोग नहीं किया। बड़े-बड़े विद्वान् महाभाष्य को केवल अष्टाध्यायी की व्याख्या रूप में व्याकरण मात्र का ग्रन्थ मानते हैं, परन्तु स्वामी दयानन्द सरस्वती पाणिनीय अष्टाध्यायी की व्याख्या के साथ महाभाष्य को अनेक विद्याओं का कोष ग्रन्थ समझते थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेदार्थ एवं लोकव्यवहार को निदर्शित करने में महाभाष्य का किस प्रकार उपयोग किया है, इसका संक्षिप्त निदर्शन कराना हम आवश्यक समझते हैं।

वेदार्थ में महाभाष्य के वचनों का उपयोगः— स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के 'व्याकरणनियम-विषय' में अष्टाध्यायी के सूत्रों के साथ महाभाष्य के अनेक वचन उद्धृत किये हैं। उनमें से निदर्शनार्थ कुछ वचन उद्धृत करते हैं। यथा—

(१) **अर्थगत्यर्थः शब्दप्रयोगः, अर्थं प्रत्याययिष्यामीति शब्दः प्रयुज्यते**

।।१।१।४४।

अर्थात्— अर्थ का बोध कराने के लिए शब्द का प्रयोग किया जाता है। अर्थ का बोध कराऊंगा, इस विचार से शब्द का प्रयोग किया जाता है। इस वचन की वैशेषिक दर्शन के **'बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे'** (६।१) अर्थात्— वेद की रचना बुद्धिपूर्वक की गई है, के साथ करें।

(२) **प्रातिपदिकनिर्देशाश्चार्थतन्त्रा भवन्ति। न काञ्चित् प्राधान्येन विभक्ति-माश्रयन्ति। तत्र यां यां विभक्तिमाश्रयितुं बुद्धिरुपजायते सा सा आश्रयितव्या।**

१।१।५५

अर्थात्— प्रातिपदिक का निर्देश अर्थ की प्रधानता को लेकर किया जाता है, वे किसी विभक्ति का प्रधानरूप से आश्रय नहीं करते। वहां (व्यवहार में) जिस-जिस विभक्ति को आश्रय करने की बुद्धि उत्पन्न होती है, उस उसका आश्रयण करना चाहिए।

इस वचन की वैयाकरणों के **'सूत्रे लिंगवचनमतन्त्रम्'** (पा० म०—४।१।९२) अर्थात्—सूत्र में लिंग और वचन गौण हैं, के साथ करें।

उक्त दोनों महाभाष्य के वचनों को स्वामी दयानन्द सरस्वती ने संवत् १९३३ में छपवाये अपने ऋग्वेदभाष्य के नमूने के अंक में प्रथम मंडल के द्वितीय सूक्त के प्रथम मंत्र की व्याख्या में भी पृष्ठ २४ पर उद्धृत किया है।

(३) **अचेतनेष्वपि चेतनवदुपचारो दृश्यते।** ४।१।२७।।

अर्थात्— अचेतन पदार्थों में भी चेतन के समान व्यवहार देखा जाता है।

इस वचन का निर्देश स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सं० १९३२ में प्रकाशित पञ्चमहायज्ञविधि के अन्त में मुद्रित लक्ष्मी

सूक्त के ५, ७, १२ संख्यांक मंत्रों के भाष्य में **'अचेतनेष्वपि चेतनवदुपचाराद् अदोषः'** के रूप में किया है।

लोक में अचेतन में चेतनवद् व्यवहार प्रायः देखा जाता है। वहां उस अचेतन द्रव्य में किसी अधिष्ठात्री आदि देवता की कोई कल्पना नहीं करता, परन्तु वेद में अग्नि, वायु आदि अचेतन द्रव्यों के चेतनवत् सम्बोधनादि को देखकर मध्ययुगीन वेदभाष्यकारों ने **अधिष्ठात्री देवता** की कल्पना कर ली। अचेतन द्रव्य में चेतनवत् व्यवहार— **'कूलं पिपतिषति'** नदी का किनारा गिरना चाहता है। यहां अचेतन में इच्छा का अभाव होने से इसका तात्पर्य होता है— **"किनारा गिरने वाला है।"** स्वामी दयानन्द सरस्वती ने मध्ययुगीन अधिष्ठात्री-देवतावाद से छुटकारा दिलाने के लिये **'वायवा याहि दर्शत'** (ऋ० १।२।१) आदि के भाष्य में इसका चेतनवद् व्यवहार के संबोधन के रूप में व्याख्या न करके तात्पर्यनिदर्शक **'वायुरायाति'** (= वायु आता है) के रूप में किया है।

स्वामी दयानन्द के वेदभाष्य में अचेतन पदार्थों के साथ संबोधन विभक्ति का प्रथमाविभक्त्यन्त और मध्यमपुरूष के क्रिया पद का प्रथम पुरुष के रूप में किया गया अर्थ देखकर अनेक विद्वान् नाक भौं सिकोड़ते हैं और इसे मनमानी कल्पना मानते हैं। ऐसे लोगों को **'कूलं पिपतिषति'** के किनारा गिरने वाला है' इस तात्पर्यार्थ रूप में कोई सन्देह नहीं होता।

सांख्यदर्शनकार ने कहा — **'लोके व्युत्पन्नस्य वेदार्थप्रतीतिः'** (= लोकव्यवहार में व्युत्पन्न पुरुष को ही वेद के मूल तात्पर्य की प्रतीति होती है। इसी बात को ध्यान में रखकर स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका के 'वैदिक प्रयोग विषयः संक्षेपतः' में लिखा है—

'व्याकरणरीत्या प्रथममध्यमोत्तमपुरुषाः क्रमेण भवन्ति। तत्र जडपदार्थेषु प्रथमपुरुष एव, चेतनेषु मध्यमोत्तमौ च। अयं लौकिकवैदिकशब्दयोः सार्वत्रिको नियमः। परन्तु वैदिकव्यवहारे जडेऽपि प्रत्यक्षे मध्यमपुरुषप्रयोगाः सन्ति। तत्रेदं बोध्यम्— जडानां पदार्थानामुपकारार्थं प्रत्यक्षकरणमात्रमेव (तस्य) प्रयोजनमिति।

इमं नियममबुद्ध्वा वेदभाष्यकारैः सायणाचार्यादिभिस्तदनुसारतया स्वदेशभाषयाऽनुवादकारकैर्यूरोपाख्यदेशनिवास्यादिभिर्मनुष्यैर्वेदेषु जडपदार्थानां पूजास्तीति वेदार्थोऽन्यथैव वर्णितः।'

अर्थात् व्याकरण की रीति से प्रथम, मध्यम और उत्तम पुरुष अपनी-अपनी जगह होते हैं। अर्थात् जड़ पदार्थों में प्रथम ही चेतन में मध्यम वा उत्तम ही होते हैं। यह लोक और वेद के शब्दों में साधारण नियम है। परन्तु वेद के प्रयोगों में जड़ पदार्थ भी प्रत्यक्ष हों तो वहां मध्यम पुरुष का प्रयोग होता है। वहां यह भी जानना चाहिए कि ईश्वर ने जड़ पदार्थों को प्रत्यक्ष कराके केवल उनसे उपकार लेना जनाया है, अन्य प्रयोजन नहीं है।

इस नियम को न जानकर सायणाचार्य आदि भाष्यकारों, तथा उन्हीं के बनाए हुये भाष्यों के अवलम्ब से यूरोपदेशवासी विद्वानों ने वेदों में जड़ पदार्थों की पूजा का अन्यथा वर्णन किया है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने मध्यकाल में आश्रित अन्वयपूर्विका मन्त्र व्याख्या लेखन का परित्याग करके प्राचीन आर्षकालीन परम्परानुसार स्ववेद भाष्य में यथाक्रम मन्त्रपदों की व्याख्या की है। यास्कीय निरुक्त में भी यथाक्रम **मंत्रपदों की** व्याख्या मिलती है, परन्तु उसमें दूर पठित उपसर्ग को क्रियापद के साथ जोड़कर ही मन्त्रार्थ दर्शाया है। परन्तु स्वामी दयानन्द सरस्वती ने प्रतिमंत्र पदार्थ में क्रिया से साक्षात् असम्बद्ध व्यवहित उपसर्गों का यथास्थान यथाक्रम व्याख्यान किया है। इस व्याख्या का आधार है पातञ्जलमहाभाष्य का निम्नलिखित वचन—

(४) **'उपसर्गाश्च पुनरेवमात्मका यत्र क्रियावाची पदं श्रूयते तत्र क्रियाविशेषमाहुः। यत्र हि न श्रूयते तत्र ससाधनां क्रियामाहुः'** (महा० ५।२।२८)

अर्थात्— उपसर्गों का यह स्वभाव है कि जहां क्रियावाची शब्द प्रयुक्त होता है वहां वे क्रिया की विशेषता को कहते हैं और जहां क्रियावाची शब्द प्रयुक्त नहीं होता, वहां वे साधन (कारक-कर्त्ता, कर्म आदि) सहित क्रिया को कहते हैं अर्थात् संसाधन क्रिया को अध्याहृत करते हैं।

मंत्रों में प्रायः क्रियापदों और संबोधनों के दो प्रकार के स्वर उपलब्ध होते हैं। जहां ये पद पाद के आदि में प्रयुक्त होते हैं वहां ये उदात्त होते हैं और जहां ये पाद के मध्य वा अन्त में प्रयुक्त होते हैं वहां ये अनुदात्त होते हैं। उदात्तपद की वाक्यार्थ में प्रधानता होती है और अनुदात्त पद की अप्रधानता। अतः मंत्रपदानुसार व्याख्या करने पर उदात्त क्रियापद और सम्बोधन के अर्थ की प्रधानता यथावत् रहती है। अन्वय करने पर क्रियापद को अन्त में जोड़ना पड़ता है। इससे उसके अर्थ का वैशिष्ट्य नष्ट हो जाता है। यथा—

आ त्वा कण्वा अहूषत, गृणन्ति विप्र ते धियः।
देवेभिरग्न आगहि।
(ऋ० १।१४।२)

पदक्रमानुसार अर्थ होगा— सब ओर से तुझे कण्व बुलाते हैं, स्तुति करते हैं। हे विप्र! तुम्हारी बुद्धियों की। देवों के साथ हे अग्ने! आओ।

इस मंत्र में द्वितीय पाद के आरम्भ में होने से **गृणन्ति** पद उदात्त है। अतः यहां स्तुति क्रिया की प्रधानता द्योतित होती है।□ अन्वय में **गृणन्ति** पद को अन्त में ले जाने पर वह स्वरशास्त्र के नियम से अनुदात्त होगा और उसका अर्थ गौण हो जायेगा□। इसी प्रकार तृतीय पाद में **'अग्ने'** पद मध्य में आने से अनुदात्त है। अतः यहां संबोधन होने पर भी अकेले अग्नि के आगमन की अप्रधानता और पाद के आरम्भ में **देवेभिः** का निर्देश होने से देवों के साथ आगमन की प्रधानता द्योतित होती है।

लोक में भी क्रिया पद के आदि वा अन्त में बोलने पर विशिष्टार्थ की प्रतीति होती है। यथा—

गच्छग्रामम् = जा गांव को।
ग्रामंगच्छ = गांव को जा।

इन दोनों में प्रथम वाक्य में **गच्छ** क्रिया की प्रधानता जानी है। उससे **'तत्काल गांव जा'** यह अर्थ ध्वनित होता है। द्वितीय वाक्य में **गच्छ** की प्रधानता न होने से तात्कालिक गमन अभिप्रेत नहीं होता, केवल गांव जाने का आदेशमात्र जाना जाता है।

वाक्यरचना में पदक्रम निर्देश भी विशेष महत्त्व रखता है। हनुमान् सीता को खोजकर जब लौटकर राम के पास जाते हैं तो वे कहते हैं—

दृष्टा सीता मया राम!

हनुमान् को आता हुआ देखकर राम के मन में प्रथम भाव पैदा होता है— सीता कहीं दिखाई पड़ी भी या नहीं? अतः हनुमान् कहते हैं— **दृष्टा**= देखी है। सीता को देख या अन्य स्त्री को? इस संशय की निवृत्ति के लिए हनुमान् कहते हैं— **सीता**। स्वयं देखी वा अन्य ने देखी? इस संशय के निवृत्यर्थ हनुमान् कहते हैं—**मया**।

अब यदि इसे अन्वयपूर्वक कहें—**हे राम! मैंने सीता को देखा,** तो इससे राम के मन में क्रमशः उत्पन्न होने वाले भावों का यथाक्रम समाधान नहीं होता।अतएव **महाभाष्यकार** ने कहा है—

यथेष्टं प्रयोगे भवति आहर कुम्भामा, कुम्भामाहर (१।१।१।)।

सामान्यतया यहां समझा जाता है कि संस्कृत भाषा में वाक्य रचना में पदों को चाहे किसी क्रम से रख दो, अर्थ समान ही होगा परन्तु यह धारणा मिथ्या है। वेद में तो क्रिया पद तथा सम्बोधन पद के आरम्भ में आने पर उनके उदात्त होने से अर्थ का वैशिष्ट्य तो जाना ही जाता है, परन्तु अन्य पदों के अर्थ में भी स्थान या क्रम के कारण कुछ न कुछ वैशिष्ट्य जाना जाता है। जैसे ऊपर उद्धृत मंत्र के **'देवेभिरग्न आगहि' में देवेभिः** के प्रारम्भ में पठित होने से उनके सहित अग्नि का आगमन इष्ट है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के भाष्य की विशेषता पदार्थ में है। हां; जिन लोगों को काव्य, साहित्य अन्वयपूर्वक पढ़ने-पढ़ाने का स्वभाव बन चुका है वे बिना अन्वय के पदार्थ समझने में असमर्थ होते हैं। अतः ऐसे मध्यम कोटि के व्यक्तियों के लिए स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेदभाष्य में अन्वय की भी व्यवस्था की है और जो साधारणजन हैं, उनको भी मंत्र का कुछ तात्पर्य समझ में आ जाये, इसलिए मंत्र का भावार्थ भी दर्शाया है।

मन्त्रोक्त पुंल्लिग पद का स्त्रीलिंग रूप में भी अर्थनिर्देश— महाभाष्यकार पतञ्जलि ने **'ऊह'** के प्रसंग में वेदार्थविषयक एक विशिष्ट तत्त्व का व्याख्यान इस प्रकार किया है—

(५) **ऊहः खल्वपि—न च सर्वैर्लिंगैर्न च सर्वाभिर्विभक्तिभिः वदे मंत्रा निगदिताः। ते च यज्ञगतेन पुरूषेण यथायथं विपरिणमयितव्याः** (महा० १।१।आ०१)।

अर्थात् वेद में सब लिंगों और सब विभक्तियों से युक्त मंत्र नहीं पढ़े हैं। उनकी यज्ञों के प्रसंग में यथातथ ऊहा कर लेनी चाहिए।

उस प्रसग में पूर्वोक्त वैयाकरण नियम **'सूत्रे लिंगवचनमतन्त्रम्'** का संबंध भी जान लेना चाहिए।

इस वचन में केवल लिंग और वचनों के विषय में कहा है, परन्तु यज्ञों में प्रातिपदिक का भी ऊह होता है। जैसे—पौर्णमासेष्टि प्रकरण में हवि के निर्वाप के दो मंत्र पढ़े हैं—

अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि, अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं निर्वपामि (यजु० १।१३)।

अर्थात्— मैं अग्नि देवता के लिए हवि को ग्रहण करता हूं, अग्नि सोम देवताओं के लिए हवि को ग्रहण करता हूं। यदि किसी को सौर्येष्टि के लिए हवि का निर्वाप करना हो तो मंत्र पढ़ा जायेगा **'सूर्याय त्वा जुष्टं निर्वपामि'**, इन्द्राग्नी देवताक यज्ञ में मन्त्र पढ़ा जायेगा—**इन्द्राग्निभ्यां त्वां जुष्टं निर्वपामि।**

महाभाष्य के उपर्युक्त वचन में 'न सर्वैलिंगैः' पाठ है। पाणिनीय व्याकरणानुसार लिंग शब्द पुमान्, स्त्री और नपुंसक के लिए प्रयुक्त होता है, परन्तु कातन्त्र व्याकरण में लिंग शब्द के प्रातिपदिक का निर्देश किया जाता है। प्रातिपदिक किसी न किसी लिंग से युक्त होता है। अतः महाभाष्य के उक्त वचन में लिंग शब्द से तद्विशिष्ट प्रातिपदिक का ग्रहण करना उचित है अन्यथा विकृतियागों में प्रातिपदिक का ऊह किस आधार पर होगा?

स्वामी दयानन्द सरस्वती वैदिक मतानुसार स्त्री और पुरूष का समान अधिकार मानते थे। यास्कीय निरुक्त में एतद्विषयक स्वायम्भुव मनु का एक श्लोक पढ़ा है—

अविशेषेण पुत्राणां दायो भवति धर्मतः।
मिथुनानां विसर्गादौ मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् (निरु० ३।४)।

गृह्यसूत्रों के विवाह प्रकरण में वर के प्रतिज्ञा मंत्र पढ़े हैं। परम्परानुसार इन मंत्रों से वर ही वधू से प्रतिज्ञा करवाता है, परन्तु स्वामी दयानन्द सरस्वती ने संस्कारविधि में प्रतिज्ञा-मन्त्रों का अर्थ करते समय वधू के द्वारा वर से प्रतिज्ञापरक अर्थ भी किया है। यह अर्थ **'यज्ञगतेन पुरुषेण यथायथं विपरिणमयितव्याः'** वचन के अनुसार **मया पत्या** के स्थान पर **मया पत्न्या, पत्नी त्वमसि** के स्थान में **पतिस्त्वमसि** आदि का विपरिणाम स्वीकार करके दर्शाया है। वैदिक विवाह की सप्तपदी के अनुसार विवाहितमान स्त्री को सखा का दर्जा दिया है— **सखे सप्तपदी भव।** जैसे पुरुषों के पुरुष मित्र परस्पर समान अस्तित्व रखते हैं, कोई किसी से छोटा या बड़ा नहीं होता, उसी प्रकार पति सप्तपदी के मंत्र में विवाहितमान नारी को सखा कहकर समानता का दर्जा देता है। इसलिए विवाह प्रकरण के प्रतिज्ञा मंत्रों के द्वारा दोनों का प्रतिज्ञाबद्ध होना आवश्यक है।

(६) **संस्कारविधि** की रचना स्वामी दयानन्द सरस्वती ने गृह्यसूत्रों आधारं पर की है। उसमें जिन मंत्रों के अर्थ स्वयं ग्रन्थकार ने लिखे हैं उनमें महाभाष्य का आधार स्पष्ट प्रतिभासित है। यथा— प्रतिज्ञा मंत्रों के अर्थ।

(७) विवाह-प्रकरण में विवाह के अनन्तर **उसी रात्रि में गर्भाधान करने का** तथा **तीन दिन ब्रह्मचर्य पालन के उपरान्त** चतुर्थ रात्रि में गर्भाधान का विधान किया है। ये दोनों विधियां परस्पर विरुद्ध-सी प्रतीत होती हैं। इस विरोध का निवारण **"पक्षान्तरैरपि परिहारा भवन्ति"** (महा० १।१। ऋलृक्) के अनुसार ही किया जा सकता है।□

इसीलिए स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में पाणिनीय अष्टाध्यायी में समान महाभाष्य को भी वेदार्थ में विशेष सहायक माना है—

मनुष्यैर्वेदार्थविज्ञानाय व्याकरणाष्टाध्यायीमहाभाष्याध्ययनम्।। (द्र०—पठन-पाठन विधि)

(८) **महाभाष्य के पाठ को बिना उद्धृत किये उसके आधार पर व्याख्या करना:**— पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न के द्वारा निरुक्त के **अग्निः पृथिवीस्थानः** (७।२४) को उद्धृत करके 'अग्नि का अर्थ ईश्वर नहीं हो सकता' आक्षेप का भ्रान्तिनिवारण ग्रन्थ में जो उत्तर स्वामी दयानन्द सरस्वती ने दिया है वह अष्टाध्यायी १।१।८ सूत्र के महाभाष्य में उल्लिखित 'प्रासादावासी-न्याय' के अनुसार है। महाभाष्य में लिखा है—

"**तद्यथा—केचित् प्रासादवासिनः, केचिद् भूमिवासिनः, केचिदुभयवासिनः। तत्र ये प्रासादवासिनः गृहान्ते ते प्रासादवासिग्रहणेन। ये भूमिवासिनो गृहान्ति ते भूमिवासिग्रहाणेन। ये तूभयवासिनः गृहान्त एव ते प्रासादवासिग्रहणेन, भूमिवासिग्रहणेन च।**" महा० १।१।१८।।

इसी प्रकार जो ब्रह्म पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में सर्वत्र व्यापक है वह **पृथिवीस्थान** के ग्रहण से गृहीत होता है। (द्र०—भ्रान्तिनिवारण-दयानन्दीय लघुग्रन्थ संग्रह पृष्ठ २१३)।

(९) अब हम स्वामी दयानन्द सरस्वती के उन ग्रन्थों का उल्लेख करते हैं, जिनमें उन्होंने महाभाष्य के उद्धरण दिये हैं—

(क **सत्यार्थप्रकाश** (क्रमशः ६१, १०२, ५२३)—

सामृतैः पाणिभिर्घ्नन्ति गुरवो न विषोक्षितैः।

लालनाश्रयिणो दोषास्ताडनाश्रयिणो गुणाः।। महा० ८।१।८।।

श्रोत्रोपलब्धिबुर्द्धिर्निर्ग्राहाः प्रयोगेणाभिज्वलित आकाशदेशः शब्दः। महा० अ० १, पा० १, आ० १।।

आद्यन्तविपर्ययश्च। महा० ३।१।१२३।।

(ख) **भ्रमोच्छेदन** (क्रमशः पृष्ठ १४९, २५४)□

एकतिङ् वाक्यम् महा० २।१।१।।

क्वास्ताः क्व निपतिताः। महा० १।२।९।।

(ग) **भागवतखण्डन** (पृष्ठ ४६९)□

वसिस्संप्रसारिणी।□ द्र०—महा० ७।२।१०।।

(घ) **व्यवहारभानु** (क्रमशः पृष्ठ ५०३, ५०६)—

चतुर्भिः प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति। आगमकालेन स्वाध्यायकालेन प्रवचनकालेन व्यवहारकालेनेति। महा। अ० १, पा०१ आ०, १।।

सामृतैः पाणिभिर्घ्नन्ति गुरवो न विषोक्षितैः।

लालनाश्रयिणो दोषास्ताडनाश्रयिणो गुणाः।। ८।१।८।।

(१०) **पत्र आदि में महाभाष्य के उद्धरण:–** स्वामी दयानन्द सरस्वती ने महाभाष्य का विविध रूप से आश्रय केवल अपने ग्रन्थों की रचना में ही नहीं लिया, अपितु पत्रों, शास्त्रार्थों, प्रवचनों एवं आर्यसमाज के नियमों की व्याख्या तक में महाभाष्य के आवश्यक उद्धरण दिये हैं। यथा–

(क) **पत्रों में–**

जोधपुराधीश यशवन्त सिंह को लिखे गये पत्र में "**प्रधानाप्रधानयोः प्रधाने कार्य सम्प्रत्ययः– महाभाष्य**" पाठ उद्धृत है। (द्र० – ऋ० द० स० के पत्र और विज्ञापन, भाग-२ पृष्ठ ७४४, सं० २०३८)।

देश हितैषी पत्र के सम्पादक के नाम लिखे समीक्षा पत्र में '**गौणमुख्ययोः मुख्ये कार्यसम्प्रत्ययः' यह व्याकरण महाभाष्यकार का वचन है'** पाठ उपलब्ध होता है। (द्र० वही, पृष्ठ ५९५)।।

(ख) **शास्त्रार्थ में–**

व्याकरणे कलमसंज्ञा क्वापि लिखिता नवेति।

यह प्रश्न स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सं० १९२९ के काशी शास्त्रार्थ में किया था (द्र०–ऋ० द० स० के शास्त्रार्थ और प्रवचन, पृष्ठ ४१)। इस शास्त्रार्थ को पं० सत्यव्रत सामश्रमी ने भी स्वीय **प्रत्नकम्रनन्दिनी पत्रिका में छापा था, वहां इसका पाठ इस प्रकार है–**

'कलम संज्ञा कस्य? (गर्जन्) वद! वद!' (वही पृष्ठ २२९)।

(ग) **प्रवचनों में–**

धावतः स्खलनं न दोषाय भवति। महाभाष्य।

पूना प्रवचन (८) (द्र०–ऋ० द० स० के शास्त्रार्थ और प्रवचन पृष्ठ ३६६)। हमें यह वाक्य महाभाष्य में नहीं मिला।

ब्राह्मणेन (निष्कारणो धर्मः) षडंगो वेदोऽध्ये (यो ज्ञे) यश्चेति।

महाभाष्य अ० १, पा० १, आ० १।। (वही पृष्ठ ३७८)।

(घ) **आ० स० के नियमों की व्याख्या में–**

व्याख्यान–जैसा "असिद्धं बहरिंगमंतरङ्ग्ने....." (नियम १७)

इन प्रमाणों से यहं अत्यन्त स्पष्ट है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती के समस्त ग्रन्थ लेखन-कार्य तथा पत्रों, शास्त्रार्थों और प्रवचनों तक में पातञ्जल महाभाष्य व्याप्त है। दूसरे शब्दों में उनके समस्त लेखन-कार्य को महाभाष्य पर आश्रित कह सकते हैं। वस्तुतः महाभाष्य स्वामी दयानन्द सरस्वती के रग-रग में व्याप्त था। आवश्यकता पड़ने पर वे उसके किसी भी वचन का कहीं भी प्रयोग करने में पूर्ण सक्षम थे।

इसके आगे हम स्वामी दयानन्द सरस्वती के जीवन के एक लक्ष्य **वेदोद्धार** तथा उससे साक्षात् सम्बद्ध कार्यों का वर्णन करेंगे।

WORSHIP

Pandit SUDHAKARA CHATURVEDI

The vedic equivalent for the English word worship is upasana. The very term is richly significant and stands out distinctly. Literally, the word upasana means to sit

in proximity. The belief in the existence of a corporeal God gave rise to idolatry and even those religions that profess to be iconoclastic, have become idolatrous in some way or other. But, Vedic Dharma has nothing to do with image-worship, as, according to the vedas, God is absolutely formless and incorporeal and our readers have read enough about it. And most of those who take to worship, do so with the belief that God will be pleased that way and fulfils their several desires, not always spirtual, and mostly worldly. But, real concept of God, as expounded in the Vedas, rules out the possibility of God being pleased or displeased, as pleasure and displeasure have no relevance to God, who is absolutely changeless and totally unaffected. When man conceives God in his own image, he thinks that God also feels pleased and displeased like himself. According to the teachings of the Vedas, worship is not an external ritual, but it is an internal process. Man worships God, to elevate his own soul and not to please God. As stated above, the Vedas do not sanction idol-worship. God being formless, any form or figure that we give to idols is purely imaginary and they have nothing to do with God. Rigveds says:

Pra thuvidyumnasya sthhavirasya
ghrishverdivo rarapshe mahima
prithivyah।
nasya shathrurnaprathimana
masthi na prathisttih purumayasya
sahyoh॥
[Rigveda : 6-18-12]

"[Mahima] The greatness, [pra thuvi dyumnasya] of the all-powerful, [sthha virasya] eternal, [ghrishveh] and the creative Lord, [rarapshe] far exceeds, [divah, prithivyah] the limits of the celestial and terrestrial regions. [Na asya shatruh] There is no enemy for Him. [Na pratimanam asti] nor is there anything to match Him. [Na pratishthih] No installation, [purumayasya sahyoh] of the omniscient and omnipotent Lord." In Yajurveda, we read:

Na thasya prathima asthi yasya
nama mahadyasha
[Yajurveda : 32-3]

"[Na tasya pratima asti] There is no idol of Him, [yasya nama mahadyashah] whose name is greatly famous." The very thought that God could be influenced by our worship is repulsive, in so far as it brings God also to the level of us human being. Atharva veda says:

Svaryasya cha kevalam thasmai
jyesttaya bramhane namah
[Atharva veda: 10-8-1

"[Namah] Salutations, [tasmai iyeshthaya Brahmane] to that Great Supreme Spirit, [yasya svah] whose bliss, [kevalam] is pure and unadulterated" No one can add to his Bliss, nor can anyone take away any part of it. The Very concept of worship in the Vedas is different. We have already stated that the word upasana literally means to sit in proximity. When related to worship, it means sitting in proximity of God. The readers have already read that God is all pervading.

This characteristic of pervasiveness of God renders any statement that He is far off from us, impossible When He is all-pervading, He pervades through our body and soul too. Then, what sense does sitting in proximity carry? All of us are near Him, and He is not somewhere far away from us. Why use the term upasana then? It is a pertinent question and it is to be answered. Distance is of three kinds, from the point to time, from the point of space and from the point of knowledge. Distance as related to time cannot be imagined between God and ourselves, because both God and we souls exist eternally and simultaneously. And distance as related to space must also be ruled out, for God is always within us and we, within Him. Now, only the third category of distance remains and due to the ignorance of the soul and on account of its being conditioned by mind, which is engrossed in material objects, we do not feel the nearness of God. Though He is nearer than the nearest object to us. This distance related to knowledge is to be wiped out and the process of wiping it out is given the name upasana. Mind is the means through which soul establishes its communion with God. The nature of mind is constant activity: it sets ifself on some object. If the mind is allowed complete freedom, it functions outwardly and applies itself to external objects, which are material and hence worldly. We have to exercise control over our minds and withdraw it from the external world, with a view to concentrate it on God, who is antryamin, i.e. the inner soul, the soul of our soul. It is an entirely internal process, devoid of all external rituals. The following two mantras shed very good light in the process of upasana:

Asta chakra navadvara devanam poorayodhya।
thasyam hiranyayah koshah svargo jyothiravrithah॥
[Atharva Veda : 10-2-31]

Tasmin huranyaye koshe thryare thrith prathisthithe।
thasminyadrukshamathmanvath thadvai brahmavido viduh॥
[Atharvaveda : 10-2-32]

"[Devanam pooh] The town of the divine entities. [Ayodhya] which is invulnerable, [ashta chakra] has eight circles and, [navadaraa] nine exits [tasmin] within that, [hiranyayah koshah] is the golden apartment, [svargah] blissful and [jyotisha avritah] covered by spiritual lustre"

"Tasmin hiranhaye [koshe] within that golden apartment, [thryare] which has got the three qualities of matter [tripratishthhite] and which has been graced by the three eternal entities. [Tasmin] in that [yat yaksham atmanvat] is residing the wirshipable God along with the soul. [Brahmavidah] The knowers of the supreme being. [tat vai viduh] know that indeed."

Heart is the centre not only for the circulation of blood; but it is the place, where the soul resides and within that, the God too. No doubt, the God is

everywhere; but, if we turn outwards,the gross material object attract the mind. While grasping the gross matter which is pervaded by God, God, the pervasive is lost sight of. But if we turn our minds inside it first dives into the depths of the soul, which is subtler than matter and ultimately into the God, who is pervading the soul. Introversion of the mind is the prerequisite of vedic mode of worship, because, there is no existence of gross matter within the soul, the latter being subtler than the former and only God, who is subtler than soul exists in the soul and it is the most rational and scientific approach to the realization of God. In Yahurveda, we read the following Mantra:

**Venasthathpannihitham guhasad-
yathra vishvam bhavathye-
kaneedam।**

**thasminnidam sam cha vichaithi
sarvam sa othaprothasya
vibhooh prajasu।।**

[Yajurveda : 32-8]

"[Venah] The learned and enlightened one, [pashyat] sees, [tat guhasad nihitam] that entity, hidden and seated in the cave of the heart, [yatra] in whom, [vishvam] the whole universe, [bhavati] becomes, [ekaneedam] one residence, or appears to be a small nest. [idam saryam] all this, [sam eti, vi eti cha] forms and disintegrates, [tasmin] in Him. [sah vibhooh] That omni-present God, [otah protah cha] pervades like warps and woofs, [prajasu] in the created beings." The mantra is too explicit to need any explanation. God is to be realized within our souls and we are not lost if we continue to be extroverts and search for Him outside, An actual feeling, a real experience that we are seated very near the God, man, within Him, by concentrating our minds on Him is real worship. This requires no temples, churches or mosques. Our very bodies are moving temples. Wherever we are, we can worship Him. Bhakti, or devotion, as it is understood today, finds little support in the Vedas, because, the so-called bhakti cult depends upon external rituals of worship, with the requisite images and all other paraphernalia. The stock argument that we want some object, with a gross form to concentrate our minds upon the pervaded and not the pervasive. By thinking of and concentrating one's mind upon the divine qualities of God, one can easily train one's mind to take the infallible spiritual path and one can actually experience God's presence in one's own life and within one's soul. To say that ignorant masses cannot take to this mode of worshop, is to rule out all possibilites of their spiritual uplift, by allowing them to worship what is not God.

Now, naturally, the question arises: why this worship at all? Certainly it is not to achieve worldly objects. In His infinite mercy, God has bestowed on us what all we need to lead a comfortable life. all physical comforts we can adequately draw from the material world. We have to worship God to receive from Him, what

we cannot get from the world. Let us not forget for a split second that what all we possess in world, is His gift. But, even with these gifts, valuable as they are, our souls crave something other than these gifts; they seek something different from these material acquisitions. This physical world can give us physical happiness; but the peace of mind and the spiritual joy— this world can never give. Man's soul cannot rest satisfied with material food and drink. It needs spiritual food too, to nourish and nurture it. Let us read this mantra from Rigveda:

Thathsavithrvrineemahe vayam
devasya bhojanam।
Shrestham sarvadhathamam thu-
ram bhagasya dheemahi।।
[Rigveda : 5-82-1]

"[Vayam Vrineemahe] we beseech, [tat bhojanam] that food, [savituh devasya] of the all-creating and inspiring benevolent Lord. [Dheemahi] Let us meditate upon and assimitale, [shrestham] the best, [sarvadhatam] and the supremely all-sustaining, [turam] energy, [bhagasya] of the effulgent Lord."

What is this food of God? What is this energy? This cannot be the usual food, nor can it be the usual energy. Bliss, or ananda is the divine food, and peace is the divine energy. God being bodyless, incorporeal, we cannot think of the worldly food and physical energy in relation to Him. The material world lacks both these divine entities, i.e. bliss and peace. there is no greater food than bliss; no greater energy than peace. Whitout them, all the wealth of the whole world, cannot equal one single person. So, in order to get spiritual joy and peace, we worship God.

But, worship the Vedas speak of, is not an easy things. Persons, who indulge day in and day out in carnal pleasures, people, whose lives are unrestrained and luxurious, connot worship, because, it requires concentration of mind and people delving in luxury can hardly concentrate their minds read this following mantra:

Tham huvema yathasruchah
subhasam shukrashochisham।
Vishamagnimajaram prathyameedyam।।
[Rigveda : 8-23-20]

"[Yata surchah] exercising absolute control over the laddles, [huvema] let us worship, [tam] that, [subhasam] nobly brilliant, [shukrashochisham] sin-oblite-rating, [ajaram] ever young, [pratnam] eternal; [eedyam] and adorable, [visham Agnim] supreme guide of all the people." While eight words are employed to describe the worshipable Lord, one single word is used herein to describe the worshipper. And what a significant word is that? The word 'sruk' means a spoon or a laddle that is used to take water or any liquid diet from the containers and serve it to the eaters. In the performance of the havan also, such spoons are used. to take water for sipping cermonially or offering ghee to the holy fire. What happens if the performer loses control over ths spoons and pours water into the fire and spirnkles

ghee all round? Anything may happen; but to be sure, havan shall not be performed that way. Let us apply the analogy to our own bodies now. We have five sense organs, five functionary organs and mind. These eleven organs are like eleven spoons. If they are under our control, the yajna in this body is satisfactorily performed. Just like the spoons, these organs take something from outside and serve it to the soul. Upasana is a yajna of the highest order, through which we seek to establish our direct contact with our Lord. If our minds, eyes, ears, noses, palates and touch organs, along with the faculty of speech are unrestrained and indulge in worldly affairs, where is worship? So, the first and the foremost duty of a person, who is desirous of qualifying himself or herself to worship, is to practise absolute self-control and restrain his or her organs. In this connection, we can read the following Mantra, with utmost benefit:

Yajnasya chaksuh prabhuthir-
mukham cha vacha shrothrena
manasa juhomi ।
Imam yajnam vithatham vishva-
karmana devayanthu sumanasya
manah ।

[Atharvaveda : 9-58-5]

"[Chakshuh] The eye, [cha] and, [mukham] the palate, [yajnasya prabhritih] are the upholders of the sacrifice. [juhomi] I perform sacrifice, [vacha] with speech, [shrotrena] ears, and [manasa] with the mind. [Devah] Let the learned ones, [sumanasya manah] improving their mental acumen, [yantu] make their own, [imam yajnam] this yajna, [vitatam] spread and ordained [vishvakarman] by the omniparous Lord."

Every organ in the body must be used for achieving something noble, the noblest object worth achieving being God Himself. It is thus clear that the first pre-requisite for Vedic worship is absoulute self-control. The following mantra explains what the preparation for worship exactly is

Na papaso manamahe narayaso
na jalhavah ।
Yadinvindram vrishanam sacha
suthe sakhayam krinavamahai ।।

[Rigveda : 8-61-11]

"[Yadi nu] If in fact, [krinavamai] we have to make, [vrishanam indram] the munificent Almighty, [sakhayam] our Friend, [sute sacha] in the word unitedly [manamahe] we will worship Him, [na papasah] not being sinful, [na arayasah] not being destitutes, and [na jalhavah] not being characterless."

Thus, purity of thought, word and deed is the first thing that one has to cultivate, if one has to prepare himself for the noble act of worship. Realization of God is possible, only when we cleanse ourselves of all impurities and develop the divine qualities that are God's. The following mantra is worth studying:

Thvam hyagne agnina vipro
viprena santhsaths ।
Sakha sakhya samidhyasa ।।

[Rigveds : 8-43-14]

"[Agne] O Lord of Eternal Light! [thvam] Thou art, [viprah] omniscient, [san] truthful, and [sakha] friend of all, [samidhyase] thou art realized, [agnina] by a man of light, [viprena] scient, [sath] truthful and [sakhya] friendly person." This is the vedic conception of bhakti or devotion—sharing with God, His divine qualities. Vedas enjoy upon all, the performance of Sandhaya and Havan in the morning in the evening every day, in order to facilitate the process of developing divine qualities. When we develop the divine qualities, our love for God will reach such dimensions as to make us feel that we have to be immortal. Listen:

Apama somamamrith abhooma
aganma jyothiravidhama devan I
Kim noonamasmanjrinavadarathih
kimu dhoorthiramritha marthyasya I I
[Rigveda : 8-68-3]

"[Amrita] O Immortal Lord! [apama] we have drunk, [somam] the nectar of Thy Devotion; [amrita abhooma] we have ourselves become immortal, [aganma jyotih] we have acquired spiritual light. [Avidama devan] and we have imbibed the divine qualities. [Kim noonam] what, indeed. [krinavat can do [aratih] the enemy, [asman] to us? [kim u] what, again, [dhoorith] the high-handedness, [martya-sya] of the mortal?"

If we follow the Vedic injunction, give up the ostentations and hollow external worship God internally, we are sure to add to the stature of mankind, because, by such worship, we grow really noble and bring peace and happiness, not only to ourselves, but to the whole mankind

We may conclude this chapter, with the observation, that according to the Vedas, jnana karma and upasna are not entirely independent of one another. All the three are interwoven in a harmonious way and go to make a threefold path. A real follower of Vedic Dharma cannot profess to belong either to the path of knowledge, or to the path of action, or the path of devotion. Either he belongs to all the three, or belongs to none, as, there is no jnana without karma and bhakti, no karma without jnana and bhakti, no bhakti without jnana and karma. This is what the Veda says about it:

Thribhih pavithrairupupodhhya-
rkam hrids mathim jyothiranu
prajanan I
Varshisttam rathramakritha
svadhabhiradidyava prithivee I I
paryapashyath
[Rigveda: 3-26-8]

"One should [apupot] purify, [arkam] one's soul that is adorable, [Tribhih pavitraih] by the trio—pure knowledge, right action and real devotion, [prajanan] knowing correctly, [matim] the object of realisation, [hrida] cordially, [jyotih anu] according to or following the spiritual light. [Sradhabhih] by the virtue of one's own self-elevating quality, [akrita] one should realize, [varshishtham ratnam] The Resplended Lord, the Most Benevolent. [at it] Only after that. [pari apashyat] one can understand correctly, [dyava prithh-

ivee] the celestial as well as the terrestrial worlds"

Such noble souls, that know the science of all these three indivisible components of Dharma, are known as "Traividyas", it.e., the knowers of three sciences.

SONG OF PEACE

George Bernard Shaw

We are the living graves of murdered beasts
slaughtered to satisfy our appetites.
We never pause to wonder at our feasts.
If animals like men. can possibly have rights.
We pray on Sundays that we may have light
To guide our footsteps on paths we tread.
We are sick of war, we do not want to fight.
The thought of it now fills our hearts with dread.
And yet we gorge ourselves upon the dead.
Like carrion crows, we live and feed on meat.
Regardless of the suffering and pain,
We cause by doing so.
If thus we treat,
The defenceless animals for sport or gain,
How can we hope in this world to attain
The peace we say we are so anxious for?
We pray for it, over hecatombs of slain,
To God while be outraging the moral law.
Thus Cruelty begets its offspring war.

[From: "The Indian Vegetarian Congress Quarterly" Jan-March, 1967]

महर्षि दयानन्द की वैदिक विचार-धारा

प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु', वेद सदन, अबोहर

महर्षि दयानन्द वेदानुसार तीन पदार्थों को अनादि मानते हैं। आत्मा, परमात्मा व प्रकृति। इन तीनों का न कभी जन्म हुआ और न कभी नाश होगा। विज्ञान भी आज इस वैदिक सिद्धान्त को स्वीकार कर चुका है कि Matter can neither be created nor can it be destroyed. अर्थात् प्रकृति न कभी पैदा की जा सकतीं है और न ही इसको नष्ट किया जा सकता है। आत्मा के पुनर्जन्म का सिद्धान्त भी विश्व के बड़े-बड़े विचारकों को मान्य है। यह जन्म हमारा प्रथम जन्म नहीं है और यह जन्म जीव का अन्तिम जन्म नहीं है। मृत्यु के पश्चात् जन्म व मृत्यु से पूर्व जन्म का होना एक स्वाभाविक व तर्क संगत माना जाता है।

हिन्दुओं में शंकराचार्य आदि आचार्यों के प्रभाव सें यह भ्रान्त विचार फैला हुआ है कि जीव का कोई अस्तित्व ही नहीं। केवल ब्रह्म ही एकसत्ता है। दक्षिण भारत में तो इस विचार का जन-मानस पर गहरा प्रभाव है। इन सब आचार्यों ने भी 'अहं' शब्द का प्रयोग किया है। 'अहं' का अर्थ है 'मैं'। इस 'अहं' शब्द की धातु का अर्थ है जिसका हनन न हो, नाश न हो। इससे यह भी सिद्ध हो गया कि मोक्ष की अवस्था में जीव सच्चिदानन्द परमेश्वर को प्राप्त करके आनन्द को तो भोगता है परन्तु जीव का ईश्वर में लय नहीं हो जाता। जीव का अस्तित्व तब भी बना रहता है। यदि जीव का अस्तित्व ही वहां न रहा तो जीव अमर कैसे हुआ? 'अहं' का

फिर अर्थ क्या हुआ? फिर मोक्ष को प्राप्त कौन करता है? मुक्ति का आनन्द कौन भोगता है?

संसार में फूल का चित्र देखकर चित्रकार की कला की सब प्रशंसा करते हैं। प्रत्येक कार्य में कोई कर्ता को मानना ही पड़ता है। नियम का नियामक होता है। व्यवस्था का व्यवस्थापक होता है। प्रति क्षण जगत् में कुछ बन रहा है, कुछ टूट रहा है और यह सब कुछ नियमबद्ध हो रहा है। नियम सर्वत्र कार्य कर रहे हैं। विश्व में Universe में Uniformity एकरूपता है तभी तो इसे Universe कहा जाता है। इस ब्रह्माण्ड में विविधता भी थोड़ी नहीं। विविधता में एकरूपता है तो केवल Laws नियमों की है। वेद कहता है कि इस ब्रह्माण्ड के भीतर एक सूत्र है। इसी कारण इसे Universe कहा जाता है। वैज्ञानिक नियम जहां नित्य (Eternal) हैं वहां सार्वभौमिक (Universal) भी हैं।

इसी से सिद्ध होता है कि विश्व का एक नियन्ता है जो सर्वव्यापक भी है और नित्य भी है। मत-पंथों के लोग प्रभु को सर्वव्यापक नहीं मानते। कोई उसे चौथे आसमान में मानता है तो कोई सातवें में God in the Heaven ऐसे वैसे वाक्यों का प्रयोग जब पढ़े-लिखे लोग करते हैं तो मुझे बड़ा आश्चर्य होता है। भारत के प्रधान मंत्री ने गत दिनों अमृतसर के बड़े सिख गुरुद्वारा हरमन्दिर की यात्रा के समय कहा था। "ऊपर वाले का आशीर्वाद लेने आया हूं।

सिख गुरुओं ने भी ईश्वर को ऊपर नहीं माना। वे भी वैदिक सिद्धान्त के मानने वाले थे कि ईश्वर सर्वव्यापक है। महर्षि दयानन्द की देन यह है कि ईश्वर हम में है और हम ईश्वर में है। He is within us and we are within Him.

वह प्रभु हम से दूर नहीं। वह ऊपर भी है, नीचे भी है। बाहर भी है, भीतर भी है। यजुर्वेद का ४०वां अध्याय ईश्वर-विषय में सब भ्रान्तियों को दूर करता है।

एक छोटी सी पत्थरी पचास ग्राम की हमारे शरीर में बनजावे तो कितना कष्ट होता है। शल्य-चिकित्सा से भी कई बार रोग नहीं जाता और यदि ईश्वर की काया मानी जावे तो हमारे अन्दर ईश्वर की काया कैसे समायेगी फिर इससे भी छोटे-छोटे शरीरों में शरीर का विकास व रक्त का सञ्चार किसके द्वारा होता है? माता के गर्भ में शिशु को कौन बनाता है?

फिर जीव ब्रह्म भेद की बात कर लें। यदि ब्रह्म ही एक सत्ता है तो संसार में पाप-ताप कहां से आ गया? फिर अन्याय व अन्यायी की क्या व्याख्या होगी? फिर कृषि, व्यापार व सारा व्यवहार किसलिए? हम अपने को एक दूसरे से भिन्न क्यों मानते हैं? एक हंसता है, दूसरा रोता है। यह भेद क्यों? कहा जाता है कि यह सब अविद्या के कारण हैं।

ऋषि दयानन्द का प्रश्न है कि अविद्या गुण है वा गुणी? गुण है तो किसका गुण है? ब्रह्म ही अविद्या का शिकार हो जाता है तो फिर वह पूर्ण कैसे? परमानन्द कैसे? शुद्ध कैसे? पाप रहित कैसे? फिर अद्वैतवादी उपदेश किसको देते हैं? फिर भक्ति किसकी और कौन करता है? भक्त कौन और भगवान् कौन? फिर आशीर्वाद के वचनों की क्या सार्थकता?

महर्षि दयानन्द सन्ध्योपासना को

मानव-जीवन का प्रथम कर्त्तव्य (primary duty) मानते हैं। ऐसा क्यों? संसार में कई रोग हैं परन्तु रोगों में महाभयानक रोग तो मानसिक रोग ही है। पाप का कारण क्या है? पाप भी तो दूषित मानसिक विचारों के कारण अथवा दीनता के कारण किए जाते हैं। पाप पर तो थोड़ी चर्चा आगे करेंगे। अभी हम प्रार्थना तथा उपासना पर ही कुछ प्रकाश डालना चाहेंगे।

ईश्वर की उपासना क्यों करें? क्या इससे पाप के दण्ड से बच जावेंगे? क्या हमारे किए हुए पाप क्षमा किए जावेंगे?

ऋषि दयानन्द यह वैदिक घोषणा करते हैं कि किए हुये कर्म के फल से हम बच नहीं सकते। जैसे भौतिक जगत् में Law of Causation का कोई अपवाद नहीं, वैसे ही कार्य-कारण सिद्धान्त आत्मिक जगत् में चलता है। यह है कर्म-फल का सिद्धान्त। इसका भी कोई अपवाद नहीं। प्रार्थना-उपासना का फल तो कुछ और ही है। सन्ध्योपासना पाप से बचाती है, पाप के फल से नहीं बचाती। सन्ध्या करने से, स्तुति, प्रार्थना व उपासना से हम अहंकार व हीनता के भाव superiority or inferiority complex से बचेंगे।

ये दोनों भाव ही पाप का मूल कारण हैं। मनसा परिक्रमा आदि मंत्रों के पाठ से, उन पर विचार से जीव को ईश्वर की सर्वव्यापकता व ईश्वर के सर्वशक्तिमान होने का जब ज्ञान व अनुभूति होगी तो फिर पाप से बचेगा। उसका अहंकार मिटेगा। उसको अपनी अल्पज्ञता व प्रभु की सर्वज्ञता का बोध होगा। मैं क्या हूं और वह क्या है— जब इसका ज्ञान होगा तो अहंकार नहीं रहेगा। अहंकार पाप का एक बड़ा मूल है और पतन का द्वार है। क्या यह सन्ध्या का कोई कम लाभ है? और यह कितना बड़ा वैज्ञानिक व मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है। यह कैसा सरल व गहन दार्शनिक चिन्तन है।

अंहकार के कारण हम दूसरों को तुच्छ समझने लगते हैं और इससे सामाजिक वातावरण दूषित होता है। घृणा, द्वेष व असंतोष यहीं से जन्म लेते व पनपते हैं।

पाप का एक मूल हीनता का भाव भी है। ईर्ष्या व अशान्ति की जननी यह भाव भी है। मैं सुखी हूं। कोई कष्ट नहीं। मेरा स्वयं का अपना घर है। किराया नहीं देना पड़ता परन्तु मेरा घर चार कमरों का है। पड़ोसी का श्वेत पत्थर marble stone का है और उसमें पन्द्रह कमरे हैं। बस आ गया मन में हीनभाव ईर्ष्या आ विराजी। मन में अशान्ति रहने लगी। मेरे पास वस्त्र हैं, जूता है सब आवश्यक वस्तुयें हैं। परन्तु पड़ोसी का टी० वी० रंगदार है, उसके बूट अमरीका के हैं, घड़ी बहुत मूल्यवान् व जापानी है। उसके घर एक स्वचालित कैमरा भी आ गया है, उसके कपड़े सब विदेश से आए हैं और उसकी नयनक (spectacles) भी इटली या जर्मन से आई है।

इन कारणों से मैं दुखी हूं। मन में हीनता के कारण प्रतिक्षण निराशा है। निराशा के कारण उत्साह गया। उत्साह गया तो पुरुषार्थ भागा और पुरुषार्थ के जाने से अकर्मण्यता ने डेरा डाल दिया। अकर्मण्यता के विराजने से मन में पाप के भाव ऐसे घुसे हैं कि मैं अपने आपको पराजित व तिरस्कृत अनुभव करता हूं।

सन्ध्या करेंगे तो अपने आपको प्रभु का पुत्र समझेंगे। हमें यह अनुभव होगा कि वह हमारे अंग संग है। वह दयालु व न्यायकारी है। वह प्रभु विश्व का स्वामी है परन्तु उसके पास तो चप्पल भी नहीं। कारण उसके पांव ही नहीं। क्या हुआ जो मेरे पास वस्त्र तो हैं। प्रभु के पास तो एक अंगोछा भी नहीं। उसके नयन ही नहीं, नयनक की तो बात ही क्या। मेरे पास कुर्सी तो है, उसके पास तो एक कुश का आसन भी नहीं। कारण वह निराकार है और वह सर्वव्यापक होने से कहां आएगा, कहां जायेगा, क्या उठेगा और क्या बैठेगा। जब उठने-बैठने का प्रश्न नहीं तो वह आसन व सोफे का क्या करेगा?

इन विचारों के आने से मन से हीन भाव भगेंगे और चित्त से अशान्ति व ईर्ष्या भी जावेगी। स्फूर्ति का सञ्चार होगा। मन प्रफुल्लित भी होगा। आनन्द स्रोत बहेगा। हमें सच्ची शान्ति प्राप्त होगी। दुर्दिन भगेंगे सौभाग्योदय होगा।

और जो लोग प्रार्थना के द्वारा पांप का क्षमा होना मानते हैं, क्या वे यह बता सकते हैं कि ऐसे चिन्तन से सदाचार का बोलबाला क्या हो सकेगा? क्या यह विचार पाप की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन नहीं देगा?

अब लेख को समाप्ति की ओर ले के चलते हैं। ऋषि दयानन्द मुक्ति से पुनरावृत्ति भी मानते हैं। हमारे हिंन्दूभाई वैदिक दर्शन को न समझने से यह मानते हैं कि एकबार मुक्त होने पर जीव सदा के लिए मुक्त हो जाता है। यह अवैज्ञानिक चिन्तन है। यह वेद विरुद्ध मान्यता है। यह सर्वथा अदार्शनिक विचार है। जिसका आदि है उसका अन्त भी होगा। जो बना है सो टूटेगा। सीमित कर्म का फल भी सीमित ही होगा। मुक्ति किन्हीं पुण्यकर्मों का ही तो फल है। यह कर्म जब सीमित थे तो फल भी सीमित ही होगा। मुक्ति का जब आदि है तो अन्त भी निश्चित मानना पड़ेगा। रायचूर के वल्लभ मत (कर्नाटका) अनुयायी एक आचार्य श्री कृष्ण ने अपनी एक मराठी पुस्तक में आर्यसमाज की इस शास्त्रोक्त मान्यता की पुष्टि की है। वह इसे वेद सम्मत होने से मानते हैं।

हमारे मुसलमान व ईसाई बंधु यह तो मानते हैं कि स्वर्ग (Heaven) व नरक (Hell) में जीव अपने अच्छे व बुरे कर्मों से जावेंगे और यह भी साथ के साथ मानते हैं कि ईसा व मुहम्मद पर विश्वास लाने से स्वर्ग या नरक में प्रवेश होगा परन्तु हम पूछते हैं कि यदि स्वर्ग व नरक में जीवों को इस जन्म के भले व बुरे कर्मों के कारण सुख व दुःख भोगना पड़ेगा तो इस जन्म का सुख व दुःख किन कर्मों के फलस्वरूप होगा? जब मृत्यु के बाद का जन्म (स्वर्ग व नरक में जीव का जाना पुनर्जन्म ही तो है) मानते हैं तो फिर पूर्वजन्म का होना भी अपने आप सिद्ध हो जाता है।

"उपासकों की परिभाषा में प्रार्थना और प्रतिज्ञा पर्याय हैं। हाथ पसारे हैं तो हाथ हिलाने भी स्वयं होंगे।"

आचार्य पं. चमूपति जी

पूज्य स्वामी जी और योग विद्या

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसकंल्पमस्तु।।[37]

(यत्) जो (देवम्) दिव्य गुणों वाला (मन), (जाग्रतः) जागते हुये (मनुष्य) का, (दूरम्) दूर (उत्+आ+एति) चला जाता है, (सुप्तस्य) सोए हुये (मनुष्य) का (उ+तथा) भी वैसे (एव+एति) ही जाता है (तत्) वह (दूरङ्गम्) दूर दूर तक जाने वाला (ज्योतिषाम्) (इन्द्रियरूप) ज्योतियों में से (एकम्+ज्योतिः) प्रधान ज्योति (मे+ मनः) मेरा मन (शिवसकल्यम्) भले विचारों वाला (अस्तु) होवे।

पूज्य श्री स्वामी वेदानन्द कृत स्वाध्याय संग्रह से साभार

भावार्थ;– जो दिव्य मन जाग्रत अवस्था में दूर-दूर निकल जाता है और उसी प्रकार सोने की दशा में भी बहुत दूर चला जाता है, वह दूर-दूर जाने वाला, ज्योतियों की ज्योति अर्थात् इन्द्रियों का प्रकाशक मेरा मन शुभ सकंल्पों वाला हो।

यज्ञ-हवन में वेद के 'शिव संकल्प' मंत्रों का हम पाठ करते हैं। प्रभु के सद्ज्ञान वेद की इन ऋचाओं में मन की अद्भुत शक्तियों का वर्णन किया गया है। इन मंत्रों में मनोविज्ञान का सार दिया गया है। मन के संबंध में बीज रूप में दिया गया यह ज्ञान प्रभु की बहुत बड़ी देन है। योग-विद्या का मूल इन्हीं मंत्रों को यदि कह दें तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं। ये मंत्र ब्रह्म विद्या की अक्षय राशि हैं। इन मंत्रों में एक नित्य सत्य है जिसका संबंध किसी देश विशेष वा वर्ग विशेष के लिए नहीं। इन मंत्रों में मनोविज्ञान के सार्वभौमिक सिद्धान्तों का प्रकाश है। इन मंत्रों का मर्म जानकर व तदनुसार आचरण करके मनुष्य अपनी सतत्साधना से मानसिक शक्तियों का अद्भुत विकास कर लेता। योगी महात्मा सहज रीति से (जादूगरी या चमत्कार दिखाने के लिए नहीं) दूसरे के मन की बात भी जान जाते हैं। घटित होने वाली घटना का उन्हें आभास हो जाता है। बहुत दूर घटित होने वाली घटना को भी योगीजन सहज रीति से जान लेते हैं परन्तु सहजरीति से। तमाशा के लिए नहीं। पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी के जीवन की ऐसी कुछ घटनाएं हम यहां देते हैं।

जिसे तुम लेने जा रहे हो, वह आने ही वाला है

मठ के खेतों में गेहूं की कटाई होने वाली थी। काम बहुत था। खेतों में आचार्य जगदीश जी ने ब्र० सुभाषचन्द्र शयोकन्द से विचार किया कि श्री ब्र० चन्द्रशेखर के आने से कार्य ठीक होगा। ब्र० शेखर अपने घर नूरपुर गया हुआ था। ब्र० सुभाष ने कहा, "तो क्या पता शेखर कब तक आए?"

आचार्य जगदीश जी ने कहा, "तो आप जा कर उसे बुला लावें।"

ब्र० सुभाष ने कहा, "स्वामी जी से छुट्टी कैसे मांगू?"

आचार्य जी ने कहा, "स्वामी जी से कहो कि मैंने पठानकोट अंपनी बहिन से मिलने जाना

है। बहिन से भी मिल लेना और वहीं से नूरपुर जाकर शेखर को साथ लेते आना।''

दोनों में यह विचार-विमर्श हुआ। ब्र० सुभाष ऐसा ही निश्चय करके मठ में आ गया। पूज्य स्वामी जी स्नानागार से स्नान करके आ रहें थे। सुभांष ने पठानकोट जाने की अनुमति मांगी।

सहज स्वभाव से स्वामी जी ने कहा, ''जिसे तू लेने जा रहा है, वह तो अभी बारह बजे मठ में पहुंच जावेगा। जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। शेखर तो आने वाला है।''

ब्र० सुभाष पूज्य स्वामी जी के मुख से ये शब्द सुनकर दंग रह गया। शेखर का तो नाम ही उसने नहीं लिया था। अभी खेतों में आचार्य जी व ब्र० सुभाष की बात हुई थी। स्वामी जी को कैसे आभास हो गया कि यह शेखर को बुलाने जा रहा है।

इतने में मठ में दोपहर के भोजन की घण्टी बजी। ब्र० शेखर ठीक बारह बजे मठ में पहुंच गया।

स्वामी जी महाराज ने कहा, ''ले वह तेरा साथी आ गया।''

यह घटना मनोविज्ञान का विषय है। यह योग का विषय है। साधक इसके रहस्य को जानते हैं। ऐसी घटनायें कोई चमत्कार नहीं और न ही सृष्टि-नियम के विरुद्ध हैं। निर्मल मन वाले मुनि महात्माओं के जीवन में तो ऐसी घटनायें घटती ही हैं। कई बार साधारण गृहस्थों को भी किसी घटना के घटित होने का आभास हो जाता हैं। ऐसी घटनायें रोचक भी होती है और शिक्षप्रद भी।

और श्री स्वामी जी प्रतीक्षा में देर तक खड़े रहे

कोई बहुत पुरानी घटना नहीं है। दीनानगर समाज के पुराने नेता श्री ला० देवदत्त जी के सुपुत्र श्री जयचन्द्र का निधन हो गया। ला० देवदत्त जी के पुत्रों में सम्पत्ति के विभाजन पर कुछ मतभेद था। ला० पृथ्वीचन्द व जयचन्द्र जी के पुत्र श्री भारतेन्दु ओहरी आदि ने विचार कर पूज्य श्री स्वामी जी को मध्यस्थ मान लिया। स्वामी जी ने कुछ और प्रतिष्ठित सज्जनों को साथ लेकर उनकी सम्पत्ति का बटवारा कर दिया। सबके एक समान भाग कर दिये।

अगले दिन प्रातः स्वामी जी भ्रमण के समय निकले और मठ से थोड़ी दूरी पर तूतों वाले बाग के द्वार पर ला० पृथ्वीचन्द्र जी की प्रतीक्षा में खड़े हो गये। बहुत प्रतीक्षा की परन्तु ला० पृथ्वीचन्द्र उधर सैर को नहीं आए। वह भी प्रतिदिन भ्रमण के लिए आया करते थे। इसीलिए स्वामी जी वहां उनकी प्रतीक्षा में खड़े रहे।

इधर ला० पृथ्वी चन्द्र मठ में पहुंच गये और स्वामी जी महाराज की प्रतीक्षा करने लगे। स्वामी जी महाराज प्रतीक्षा करके मठ में आ गये तो सामने लाला जी मिले और कुछ कहने लगे। स्वामी जी महाराज ने कहा, ''आप कुछ न कहिये, जो आप कहना चाहते हैं, वह मैं ही आपको सुनाता हूं''

लाला पृथ्वीचन्द्र हैरान थे कि स्वामी जी मेरी बात मुझे क्या बतायेंगे?

स्वामी जी ने उनके कुछ कहने से पूर्व

कहा, "आप यही बताने आए हें कि भारतेन्दु जी को निर्णय स्वीकार नहीं।"

लाला पृथ्वी चन्द्र जी ने कहा, "जी हां! ऐसी ही बात है। भारती ने यह बटवारा अस्वीकार कर दिया है। मैं यही बताने आया हूं।"

पाठक पूछेंगे कि स्वामी जी को इसका पता कैसे लग गया? श्री महाराज को रात्रि स्वप्न में यह पता चल गया कि श्री भारतेन्दु ओहरी को मध्यस्थ का निर्णय अस्वीकार है।

'गेहूं की फसल इस बार ख़राब होगी'

सन् १९८८ की बात है। विद्यार्थियों की परीक्षा के दिन थे। आचार्य जगदीश जी ने जम्मू एक परीक्षा देने जाना था। जब स्वामी जी ने उन्हें जम्मू जाने की अनुमति दी तो साथ के साथ कह दिया, "इस बार गेहूं का फसल नष्ट होगा।"

और ऐसा ही हुआ। भारी वर्षा के कारण जो फसल खड़ी थी, वह भी नष्ट हो गयी और जो कटी थी वह भी वहीं खेतों में पड़ी सब सड़-गल गयी। मठ के पके पकाए फसल का एक दाना भी मठ में न आया।

पूज्य स्वामी जी पीड़ा से सिसकियां लेने लगे

कुछ वर्ष पहले की बात है श्री स्वामी जी चम्बा दयानन्द मठ में सोये हुये। रात्रि उठ बैठे। पीड़ा के कारण सिसकियां सी लेने लगे। श्री स्वामी सुमेधानन्द ने कहा, "गुरु जी क्या कष्ट है?"

श्री महाराज ने कहा, "दर्द है।"

स्वामी सुमेधानन्द जी ने कहा, "आप स्वयं एक कुशल वैद्य हैं। आपको यह दर्द कैसा लगता है? हम औषधि अभी लाते हैं।"

स्वामी जी ने कहा, "इसकी कोई औषधि नहीं।"

"तो कहिए कष्ट क्या है? हम कुछ तो करें", स्वामी श्री सुमेधानन्द जी ने फिर दोहरा-दोहरा कर पूछा।

स्वामी जी ने कहा, "आचार्य जगदीश राजस्थान में कहीं गये हैं। उन्हें वहां कोई कष्ट है। इस कारण मुझे यहां चैन नहीं। हम उनकी कैसे सहायता करें?"

स्वामी सुमेधानन्द जी ने कहा,"हम कल ही अपना एक ब्रह्मचारी जगदीश जी की सेवा के लिए भेज देते हैं। जो कुछ होगा, करेंगे। आप व्याकुल न हों। उनका पता दीजिए।"

स्वामी जी ने कहा,"मेरे पास उनका पता भी नहीं परन्तु वह बड़े कष्ट में हैं।"

जब जगदीश जी राजस्थान से लौटे तो स्वामी सुमेधानन्द जी ने पूछा, "अमुक दिन रात्रि के समय आपको क्या कोई कष्ट था?" श्री जगदीश जी ने बताया कि तब मुझे बड़ा भयकंर ज्वर था। मुझे कष्ट ही कष्ट था। मैं ऋषि-उद्यान में था। वहां कोई किसी को पूछने वाला नहीं। जैसे रेत का एक कण दूसरे से पृथक रहकर ही ठीक रहता है वैसे ही वहां मनुष्य को मनुष्य से कोई लगाव नहीं। मुझे कोई जल तक देने वाला नहीं था। मेरे लिए भोजन, दूध औषधि की व्यवस्था तो किसी ने क्या करनी थी।

श्री जगदीश जी की बात सुनकर स्वामी सुमेधानन्द जी ने स्वामी सर्वानन्द जी महाराज की चम्बा की उपरोक्त घटना उन्हें सुनाई।

सन् १९६२ में चीन ने भारत पर एक भयंकर आक्रमण किया। उपसी (NEFA) व लद्दाख की धरती का सहस्रों वर्ग मील का क्षेत्र चीन ने हड़प लिया। यह भू भाग आज पर्यन्त चीन के जबड़ों में हैं।

इस आक्रमण से पूर्व कई बांर पूज्य स्वामी जी महाराज को कई बार ऐसे स्वप्न आए कि आपको सदा यही लगता कि अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित विशाल जन समूह उत्तर दिशा से आ रहा है। पर्वतों पर शत्रु सेनायें चढ़ाई कर रही हैं। आपको जब-जब ऐसा स्वप्न आया आप सोच में पड़ जाते कि ऐसे स्वपन क्यों आ रहे हैं। कारण समझ में नहीं आया। उन दिनों भारत-चीन की परस्पर मैत्री थी। हिन्दी चीनी भाई-भाई के जयघोष यह देश लगाता था। श्री नेहरू जी ने चीन के प्रधानमंत्री चऊ एन्न लाई के साथ एक समझौता करके 'पञ्चशील का नारा दिया था अतः उत्तर से आक्रमण की किसी को आशंका न थी परन्तु नेहरू जी के मित्र ने जब विश्वासघात किया तो देश का घोर अपमान हुआ। हमारी राजनैतिक साख गिर गई। वह कलंक का टीका अब तक हम नहीं धो सके। मन की शक्तियों की चर्चा करते हुये और योग संबंधी कुछ शंका समाधान करते हुये स्वामी जी ने अपने स्वप्न की बात बताई थी। मन भूत, भविष्य व वर्तमान में व्यापक होकर अपनी विचित्र शक्तियों का प्रकाश करता है। ये घटनायें इसी के कुछ उदाहरण हैं।

तू ने झूठ बोल-बोल कर पैसे इकट्ठे किए

एक भाई मठ में आते-जाते रहते हैं। कुछ सेवा कार्य करते ही है। श्री स्वामीजी उनका पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं।

एकदिन वह मठ की यज्ञशाला में इधर-उधर कुछ देख रहे थे। ऐसा लग रहा था कि कुछ खो बैठे हैं और उस खोई वस्तु को खोज रहे हों। शास्त्री चन्द्रशेखर जी ने पूछा, "श्रीमान् जी! क्या खो गया है जो बड़ी व्यग्रता से खोज रहे हैं?"

वह बंधु बोले, "किसी ने मुझे एक सौ रुपये का नोट दिया था, वह कहीं गुम हो गया है।"

शास्त्री जी ने कहा, "गुम कहीं कर आए हो तो यहां फिर क्या खोज रहे हो? तुम्हारा कोई नोट गुम नहीं हुआ। तुम झूठ बोल रहे हो। सौ का नोट तुम्हें किसने प्रदान कर दिया?"

यह बातचीत चल ही रही थी कि श्री स्वामी जी वहां आ गये और पूछा, "क्या बात है?"

शास्त्री शेखर जी ने फिर वही बात कही, "यह कह रहा हे मेरा एक सौ का नोट गुम हो गया है। कहता है कि किसी ने इसे दिया था। कोई नोट गुम नहीं हुआ। स्वामी जी यह झूठ बोल रहा है।"

स्वामी जी महाराज ने कहा, "नोट तो इसका कहीं गुम हुआ है परन्तु इसे दिया किसी ने नहीं। इसने लोगों से झूठ बोल-बोल कर एक-एक सौ रुपये लिया है कि मेरी पत्नी का रसौली का ओपरेशन हुआ है। इसकी पत्नी का कोई ओपरेशन नहीं हुआ।"

उस व्यक्ति को संबोधित करके स्वामी जी बोले, "तेरे जुड़वां बच्चे हुये हैं। दोनों मरे हुये पैदा हुये हैं। तू ने लोगों को झूठ कहा कि मेरी पत्नी का ओपरेशन हुआ है।"

अब वह व्यक्ति चुप हो गया। उत्तर में स्वामीजी को कुछ न कहा। आचार्य जगदीश जी से उस सज्जन ने एकान्त में कहा, "यह बात तो सच्च है कि मेरी पत्नी ने दो बच्चों को जन्म दिया। दोनों ही मृत पैदा हुए परन्तु हमने तो किसी को भी यह बात नहीं बताई। केवल घर घर के व्यक्तियों को ही इसका पता है। बताने से लाभ ही क्या था? स्वामी जी महाराज को कैसे पता लग गया कि मेरे यहां दो बच्चों का जन्म हुआ और दोनों ही मृत पैदा हुए।" ऐसी दो-चार घटनाएं प्रतिवर्ष घटती हैं. जब मिलने जुलने वाले व मठ वासी यह देखकर चकित हो जाते हैं कि श्रीस्वामी जी को पूर्व घटित घटना व निकट भविष्य में घटित होने वाली घटना का सहज ज्ञान हो जाता है। ऐसी कई घटनाएं आचार्य जगदीश जी ने एक रजिस्टर में लिख रखी हैं। उनके मिल जाने पर वे सब घटनायें प्रकाशित कर दी जायेंगी। पाठक पुनः स्मरण रखें कि इसमें चमत्कारों जैसी कोई बात नहीं। सृष्टि नियम विरुद्ध इसमें कुछ भी नहीं। ये सब मानसिक शक्ति के चमत्कार हैं। वैदिक योग-विद्या प्रभु के सृष्टि-नियमों को अटल मानती है।

आज न जावें

श्री आचार्य जगदीश जी २९ नवम्बर प्रातः हमें मिलने के लिए मठ से चलने लगे। स्वामी जी महाराज को पहले कह रखा था। चलने लगे तो श्रीस्वामी जी ने कहा, आज मत जावें, कल चले जाना।

आचार्य जी ने कहा, "नहीं! स्वामी जी महाराज मैं तो आज ही आवश्य जाऊंगा।"

श्री स्वामी जी महाराज ने कहा, "अच्छा फिर तीन बार गायत्री का जप करके बस पर बैठना।"

आचार्य जी ने दीनानगर से बस पकड़ी। गायत्री जप भूल गये। बस दीनानगर से चलकर बटाला पहुंचकर बिगड़ गई। वहां से एक और बस पकड़ी। यह बटाला से आकर जीरा में बिगड़ गई। फिर नई बस लेनी पड़ी। यह तीसरी बस लखोके ग्राम में आकर बिगड़ गई।

रात पड़ गई। आचार्य जी आतंकवाद के इस युग में एक ट्रक में बैठकर फ़ाजिल्का पहुंचे। रात वहां किसी ढाबे में काटी। प्रातः अबोहर पहुंचे।

वह महापुरुष धन्य है जिन्हें शुभ-अशुभ का पूर्वाभास हो जाता है। यह मन की साधना का विषय है। इसमें फलित ज्योतिष वा जादूगरी जैसी कोई बात नहीं। किसी घटना का पूर्वाभास हीना और बात है और अंध विश्वासपूर्ण भविष्यवाणियों को मानना सर्वथा दूसरी बात है। पाठकों को अधविश्वास पूर्ण भविष्य वाणियों के चक्र में कभी नहीं आना चाहिए।

पूज्य स्वामी जी कार्यक्रम रद्द करके मठ लौट आए

यहं सन् १९७२ की बात है कि श्री स्वामी जी महाराज तीन दिन के लिए लुधियाना गये। स्वामी जी वहां जाकर केवल एक ही दिन रुके। अगले ही दिन सब कार्यक्रम रद्द करके मठ में आ गये।

आते ही मठ वालों से पूछने लगे, "मुसाफिर कहां है?"

उसे क्या हुआ?

कब हुआ?

क्यों हुआ? कैसे हुआ? ऐसे प्रश्नों की बोछार-सी कर दी। यह सब कुछ स्वामी जी महाराज के व्यवहार के विपरीत था। इससे पहले जब कभी आप यात्रा से लौटते तो पूरे मठ के समाचारों की जानकारी लेते। गोशाला, बिल्ली व कुत्ते तक को उनके पीछे ठीक-ठीक समय पर पानी मिला, खाना मिला--- ये सब बातें पूछा करते परन्तु आज तो किसी गाय के बारे में नहीं पूछा। कुत्ते को दूध-रोटी मिली व नहीं.... यह भी न पूछा।

श्री स्वामी जी के मठ से जाते ही श्री कुन्दनलाल मुसाफिर रुग्ण हो गये। वह कभी रुग्ण नहीं होते थे। ग्रन्थ में अन्यत्र भी कई बार उनकी चर्चा हमने की है। वह आर्यसमाज के बलिदानी व तपस्वी योद्धा थे। भिक्षा के लिए नित्य जाया करते थे। स्वामी जी महाराज से उनकी दो शर्तें थीं कि मैं आपका पुराना कुर्ता पहना करूगा और जब रोहतक कथा के लिया जाया करेंगे तो मैं साथ जाऊंगा।

प्रभु का प्यारा सच्चा ऋषिभक्त दिन हो व रात सर्दी में एक ही कम्बल में घूमता व उसी मे सोता था। स्वामी जी को पता लगा कि वह रुग्ण है। उड़ीसा के ब्र० कृष्ण जी मुसाफिर के बड़े भक्त थे। स्वामी जी ने कहा, "कृष्ण जी जाओ मुसाफिर जी को नीचे कमरा न. एक के सामने धूप में ले आओ।"

श्री कृष्ण गये और मुसाफिर जी को फार्मेसी के ऊपर वाले उनके कमरे से नीचे ले आए। मुसाफिर ने स्वामीजी के पीछे खाना-पीना बंदकर दिया था। श्री स्वामीजी महाराज भक्त की सेवा में लग गये। सिर पर हाथ फेरते गये और कहा, "दूध पी लो, उठो, भोजन कर लो।"

मुसाफ़िर धुन के धनी थे। कहा, "महाराज! अब बस।"

श्री महाराज को प्रतिदिन १२ बजे सरल हृदय मुसाफिर जी वार व तिथि बताया करते थे। अब स्वामी जी भी समझ गये कि इनका शरीर छूटने वाला है। स्वामी जी ने आर्यसमाज की नींव के इस पत्थर तपस्वी त्यागी मुसाफिर से कहा, "अब हमें दिन, वार व तिथि कौन बताया करेगा?"

अच्छा हुआ कि पूज्य स्वामी जी लौट आए। अगले ही दिन ठीक ग्यारह बजे श्रीमान् कर्मवीर, धर्मवीर, कुन्दन लाल जी मुसाफिर चल बसे। जिन्होंने भी मठ में मुसाफिर जी को सेवा करते देखा था, वे सब अनुमान लगा सकते हैं कि उनके निधन से मठ की व आर्यसमाज की क्या क्षति हुई।

एक घटना घटेगी— यह टल नहीं सकती

एकबार श्री स्वामी जी रात्रि के समय गोशाला का निरीक्षण करके आ रहे थे। आचार्य जगदीश जी पीछे-पीछे थे। स्वामी जी ने सहज रीति से कहा, "एक मास के भीतर कोई घटना घटेगी। वह टल भी नहीं सकती।"

श्री जगदीश जी ने पूछा कि क्या घटना घटेगी? स्वामी जी ने कहा, "यह नहीं कह सकता।"

और एक मास में श्रीयुत जयचन्द्र जी सुपुत्र स्वर्गीय ला० देवदत्त जी का निधन हो गया। वह साढ़े १२ बजे मठ में स्वामी जी से

मिलकर गये और दो बजे सूचना आ गई कि श्री जयचन्द्र चल बसे। वह स्वामी जी के बड़े भक्त थे। हैदराबाद सत्याग्रह के एक वीर सत्याग्रही थे। उनके निधन को सारे दीनानगर ने एक बहुत बड़ी क्षति माना।

मठ को एक बढ़िया गाय दान में मिली?

श्री स्वामी जी मठ में नहीं थे। पीछे एक व्यक्ति मठ में आया और श्री आचार्य जगदीश जी से कहा कि मैंने मठ को एक गाय दान करनी है। श्री जगदीश जी ने कहा, ''हम गाय दान में नहीं लिया करते।'' उसने कहा, ''मैंने किसी निमित्त से दान में नहीं देनी, अपनी प्रसन्नता से दे रहा हूँ।''

उसके बहुत कहने-सुनने पर जगदीश जी ने कहा, ''पहले मैं गाय को देखूंगा फिर हां करेंगे।''

उस व्यक्ति ने कहा, ''देख लीजिएं।''

श्री शेखर शास्त्री व जगदीश जी गये। गाय देखी। गाय १२ किलो दूध देती थी। इन्होंने कहा, ''हमें जंच गई है परन्तु स्वामी जी के आने पर पूछकर ही ले सकते हैं। उनके बिना पूछे हम हां नहीं कर सकते।''

उसने कहा, ''ठीक है। स्वामी जी से बात कर लेना।''

स्वामी जी के लौटने पर जगदीश जी ने सारी बात बताई। सब कुछ सुनकर श्री स्वामी जी ने कहा, ''परन्तु वह गाय तो रुग्ण है। नहीं लेनी चाहिए।'' श्री जगदीश जी ने कहा, ''नहीं! हम देख आए। ठीक ठाक है।'' स्वामी जी ने कहा, ''अच्छा! जैसे आपकी इच्छा। लेनी है तो ले लो।'' गाय मठ में आ गई। स्वामी जी को गाय का दूध निकाल कर दिखाया। बीस दिन गाय ठीक ठाक दूध देती रही। बीस दिन बीते तो गाय को मिरगी के दौरे पड़ने लगे।

स्वामी जी ने इस दुखिया की भी सेवा करनी थी सो बहुत सेवा की परन्तु वह न बची। मर गई। बीस नवम्बर सन् १९९० के दिन उस गाय के निधन पर आचार्य जगदीश जी को बड़ा दुःख हुआ कि हमने स्वामी जी महाराज की बात न मानकर कितनी बड़ी भूल की।

दूध में जल का मिलाना पाप है

यह सन् १९६९ की घटना है। उन दिनों मठ में दूध की कुछ कमी थी। आचार्य जगदीश तब मठ में नये-नये आये थे। विशारद में पढ़ते थे। गोशाला की सेवा इन्हें सौंपी गई। प्रातः-सायं दूध निकालना व गर्म करना इन्हीं का काम था।

सब ब्रह्मचारी जब यज्ञ-सन्ध्या के पश्चात् कुटिया पर स्वामी जी को नमस्ते करने जाते। जगदीश जी गोशाला से दूध लाकर इसे गर्म करने में लगे रहते। समझ कम थी। स्वामी जी के लिए दूध अलग निकाल कर उसे गर्म किया जाता, शेष में जल मिलाकर उसे गर्म करके सब में बांटा जाता था।

एकदिन स्वामी जी ने ब्र० जगदीश को बुलवाकर कहा, ''चौधरी दूध में जल न मिलाया कर। दूध में पानी मिलाना बड़ा पाप होता है।'' ब्र० जगदीश झूठ बोलकर अपनी भूल को छुपाना ही चाहता था कि श्री स्वामी जी ने साथ के साथ कह दिया कि यदि जल मिलाना ही है तो मेरे लिए अलग दूध मत निकाला करें। सारे दूध में जल मिलाया जावे। मुझे भी उसी में

से दिया जावे। मैं भी पानी वाला दूध ही पियूंगा। इन प्यार भरे शब्दों को सुनकर जगदीश जी ने अपनी भूल का सुधार तो कर लिया परन्तु उन्हें यह आश्चर्य हुआ कि इन्हें यह कैसे पता लगा कि उनके लिए अलग से दूध गर्म किया जाता है।

यह ब्रह्मचारी कुछ करके दिखाएगा

१९६९ के ग्रीष्मकाल की बात है। श्री महाराज कुटिया के सामने वाले वृक्ष की घनी छाया के नीचे चटाई बिछाकर बैठे थे। ब्र० जगदीश को पञ्चतन्त्र पढ़ा रहे थे। थोड़े समय के पश्चात् वैद्य साईंदास जी आए और डाक दे कर चले गये। स्वामी जी ने बीच में पढ़ाना बन्द कर दिया। डाक देखने लग गये। डाक में एक पांच पैसे वाला कार्ड (अब पन्द्रह पैसे का) आया। उसकी लिखाई देखकर जगदीश से कहा, ऐसा सुलेख होना चाहिए। ऐसा ही लिखा करो। अपनी लिखाई को सुधारो।

श्री स्वामी जी ने पत्र पढ़ा और विचारों में डूब गये। श्री महाराज की विचार-मग्नता को तोड़ते हुये ब्र० जगदीश ने पूछा, "महाराज यह पत्र कहां से आया है?"

स्वामी जी ने कहा, "यह पत्र शुक्रताल से आया है। स्वामी जी ने तत्काल कह दिया, यह ब्रह्मचारी बड़ा होनहार है। यह बहुत बड़ा कार्य करेगा।"

थोड़ी देर मौन रहकर फिर कहा, "यह पढ़ तो नहीं सकेगा।"

उसी समय एक कार्ड लिया और उस ब्रह्मचारी को लिखा, आप तुरन्त चले आईए। आपकी सब व्यवस्था यहां कर दी जायेगी। कुछ दिन के पश्चात् गोपाल नाम का एक ब्रह्मचारी मठ में आ गया। स्वल्पकाल में यह ब्रह्मचारी सबको भा गया। अपनी सेवा, विनम्रता, गुरु-भक्ति, अनुशासन-प्रियता व धर्मभाव के कारण इस ब्रह्मचारी ने मठ में आने-जाने वाले सब आर्यों को आकर्षित कर लिया।

अब यही ब्रह्मचारी आर्यजगत् के विख्यात् संन्यासी यति-मण्डल के मंत्री स्वामी सुमेधानन्द जी दयानन्द मठ चम्बा हैं। सचमुच आप कोई परीक्षा नहीं दे सके परन्तु संस्कृत के विद्वान् हैं बहुत स्वाध्यायशील हैं। स्वामी जी महाराज के सच्चे व पक्के शिष्यों में से एक हैं।

"मैं जानता हूं कि यह मठ के काम आएगा"

जब ब्र० गोपाल शुक्रताल में थे तो वहां एक छोटा सा ब्रह्मचारी महावीर भी रहता था। ब्र० गोपाल उसके व्यवहार से बहुत प्रभावित थे। जब ब्र० गोपाल मठ में आ गये तो छोटा ब्रह्मचारी भी मठ का पता लगा कर यहीं आ गया। मठ में छोटे ब्रह्मचारियों को लिया नहीं जाता। स्वामी जी ने उसे मठ में रखने की स्वीकृति न दी। ब्र० गोपाल ने बहुत कहा परन्तु स्वामी जी न माने। अन्त में ब्र० गोपाल जी ने कहा, "तो फिर मैं भी मठ से जाऊंगा।

इसको किसी गुरुकुल में साथ रखकर ही पढ़ाऊंगा।"

स्वामी जी ने कहा, "तो आप भी जा सकते हैं।"

ब्र० गोपाल जी का ब्र० जगदीश जी से भी विशेष स्नेह था, अब भी है। जगदीश जी को पता चला तो आप श्री स्वामी जी के पास

गये और हठपूर्वक गुरुजी से कहा कि इस छोटे ब्रह्मचारी को अपवाद के रूप में मठ में पढ़ने की अनुमति दें।

स्वामी जी ने तब कहा, "मैं भी जानता हूं कि यह मठ के काम आएगा। आज्ञाकारी बनेगा।"

फिर कहा, "अच्छा, जा गोशाला में गऊओं को जाकर देख। हमने इस ब्रह्मचारी को रख लिया।"

आज वही ब्र० महावीर चम्बा दयानन्द मठ के संस्कृत विद्यालय के आचार्य हैं। वही ब्रह्मचारी आजीवन मठ का हो गया है। श्री स्वामी जी की कही हुई बात अक्षरशः सत्य निकली।

रक्ष की कहानी

मठ से जुड़े सब लोग मठ के पुराने कुत्ते रक्ष को आज पर्यन्त नहीं भूले। उस कुत्ते की सूझबूझ व कर्त्तव्य-निष्ठा को देखकर मानव-बुद्धि चकित रह जाती थी। स्वामी जी महाराज उसके बारे में कहा करते थे कि यह योग-भ्रष्ट है। पूर्वजन्म में योगसाधना करता था। किसी कारण से भ्रष्ट हो गया। कुछ एक का मत है कि मठ के वातावरण के कारण उसमें कुछ अद्भुत विकास हो गया।

मठ में विद्यानिधि नाम का एक ब्रह्मचारी था। स्वामी जी महाराज की कुटिया पर झाड़ू लगाने का कार्य उसे सौंपा गया। एक दिन वह झाड़ू लगाने गया। रक्ष कुटिया पर था। स्वामी जी कुटिया पर नहीं थे। रक्ष ने ब्रह्मचारी को अन्दर प्रवेश नहीं करने दिया। ब्रह्मचारी अन्दर जाने का यत्न करता तो रक्ष डटकर विरोध करता। इतने में स्वामी जी महाराज आ गये। आपने कहा, "कुत्ते को क्यों तंग कर रहे हो? क्या बात है?"

उसने कहा, "स्वामी जी यह मुझे अन्दर ही नहीं जाने देता।"

स्वामी जी ने कहा, "यह हो नहीं सकता। तुम लगता है कि मठ छोड़ कर जाने वाले हो। इस कारण कुत्ता तुम्हें कुटिया में प्रवेश नहीं करने दे रहा। और कोई कारण नहीं हो सकता। आपके मन में अवश्य कोई बात आ चुकी है।"

ब्रह्मचारी ने कहा, "नहीं! ऐसी कोई बात नहीं।"

स्वामी जी ने कहा, "तो बिना कारण के रक्ष तुम्हें अन्दर जाने से कैसे रोक सकता है? आज तक क्यों नहीं रोका?"

पन्द्रह दिन बीते कि वह ब्रह्मचारी बिना बताए मठ से चला गया।

इसके तो दो-चार दिन शेष हैं

एक रमेशानन्द नाम के साधु मठ में आ गये। उन्हें अण्डकोश वृद्धि का रोग था। मठवासियों ने स्वामी जी से कहा— इसका ओपरेशन करवाना चाहिए। स्वामी जी ने कहा, "करवा लो, वैसे यह ठीक नहीं होगा।"

आचार्य जगदीश उसे गुरदासपुर ले गये परन्तु उस भले साधु ने वहां ओपरेशन करवाने से ही इन्कार कर दिया। औषधि भी नहीं लेता था।

आचार्य जगदीश जी ने स्वामी जी से फिर कहा, न यह साधु जी ओपरेशन करवाते और न ही औषधि का सेवन करते। इन्हें मठ में न रहने दें।

स्वामी जी ने अत्यन्त गंभीर होकर कहा, "इसके तो बस दो-चार दिन ही शेष है।"

आचार्य जगदीश जी ने कहा, "यह कैसे? इस साधु की आयु ही क्या है। यह तो अभी कई वर्ष जियेगा।"

स्वामी जी के रोकने पर भी ब्रह्मचारियों ने एकदिन उसका सामान बस पर रखकर उसे पठानकोट भजे दिया। प्रातःकाल बस पर भेजा, सायंकाल वह फिर मठ में आ गया। यहां आकर ठीक तीसरे दिन कमरा नम्बर १२ में चार बजे मृत पाया गया। बड़ी सुखरूप मृत्यु उसे प्राप्त हुई। किसी को भी कष्ट न दिया और न ही उसे कोई कष्ट विशेष हुआ। तब सबको आश्चर्य हुआ कि स्वामी जी महाराज ने सहज अनुभूति से जो कुछ कहा था, वह सर्वथा सत्य सिद्ध हुआ।

जब स्वामी जी महाराज रुग्ण हो गये

कुछ वर्ष पूर्व जब श्री स्वामी जी महाराज बहुत रुग्ण हो गये तो उनकी स्थिति चिन्ताजनक सी लगने लगी। स्वामी जी का भार केवल ३३ (तैंतीस) किलोग्राम ही रह गया। तब श्री बाबू जयचन्द्र जी व अन्य प्रतिष्ठित सज्जन उन्हें काकड़ हास्पीटल अमृतसर में ले गये। डाक्टरों ने आपका ओपरेशन करने से इन्कार कर दिया। यह बड़ा विकट कार्य था। डाक्टरों को पता था कि यह महात्मा आर्यजगत् के एक मूर्धन्य संन्यासी व अत्यन्त पूजनीय विभूति हैं। इसलिए वे इस स्थिति में ओपरेशन करके कोई अपयश नहीं लेना चाहते थे।

भक्तजन बहुत चिन्तित हुये कि क्या किया जाये। प्रतिक्षण आपके स्वास्थ्य में सुधार की बजाए बिगाड़ हो रहा था परन्तु आप सर्वथा शान्त थे। स्वामी जी महाराज ने भक्तों को उदास देखकर डाक्टर को बुलवाया और बड़े धैर्य से कहा, "आप घबरायें मत, आपेरेशन कर दें। मैं अभी मरूंगा नहीं।"

श्रीमान् डाक्टर बलवन्तसिह जी ने ओपरेशन कर दिया और पूज्य श्री स्वामी जी महाराज ठीक-ठाक हो गये।

स्वामी जी का हास्य-विनोद

श्री स्वामी जी महाराज का स्वभाव बड़ा मृदुल है। आप बड़े प्रेमल हैं। बालक हो वा वृद्ध, सबके साथ अत्यन्त स्नेह से बातचीत करते हैं। विद्वान् हैं और संन्यासी भी, इसलिए आपके विचारों में गम्भीरता है। कुछ लोगों में बड़प्पन व विद्या के अंहकार के क़ारण शुष्कता देखी जाती है। यह बात स्वामी जी में कतई नहीं है। हास्य-विनोद का गुण बड़ों के व्यक्तित्व को और भी निखार देता है। यह गुण आप में गुरु शिष्य परम्परा से आया है। आपके हास्य-विनोद की कुछ घटनायें हम यहां देते हैं।

'मैं देख रहा था कि तू गिरा कैसे है'

मठ के एक वानप्रस्थी भागवतानन्द जी बड़े सरल स्वभाव के सज्जन हैं। वह अल्पशिक्षित हैं परन्तु, बड़े ईश्वर भक्त और सत्यनिष्ठ हैं। उनकी सरलता के कारण स्वामीजी व सब मठवासी उनसे बड़ा स्नेह करते हैं। उनमें अपने ही ढंग का कुछ अनूठापन है।

एक दिन भागवतानन्द जी पाकशाला के सामने वाले नल पर हाथ-पैर धो रहे थे कि गिर गये। स्वामीजी पास ही खड़े थे। कुछ हंस पड़े।

भगवतानन्द बोले, स्वामीजी मैं गिर पड़ा हूं। आप पास ही खड़े हैं, मुझे उठाया नहीं। स्वामीजी महाराज ने कहा, "मैं तो यह देख रहा हूं कि तू गिरता कैसे है?"

स्वामी जी का यह उत्तर जिस जिसने भी सुना, बहुत हंसा। सभी भक्त भगवतानन्द का अनूठापन जानते हैं और सबको पता है कि स्वामी जी उसका विशेष ध्यान रखते हैं। आज स्वामीजी उसके गिरने के ढंग को देख रहे हैं।

'पता लगा कि साधु फिसल भी सकते हैं'

एकबार श्री स्वामी सोमानन्द जी महाराज बरामदे में घूम रहे थे। कहीं केले का छिलका पड़ा हुआ था। उन्होंने देखा नहीं। वह केले के छिलके के कारण चलते हुये फिसल गये। उन्होंने वह छिलका उठाया और स्वामी जी महाराज के पास लाकर कहा, "स्वामी जी ये लड़के कैसे मूर्ख हैं– केला खाकर छिलका बरामदे में फेंक दिया। मैं फिसल गया।"

स्वामी सर्वानन्द जी महाराज सुनकर हंस पड़े और कहा, "चलो यह तो पता लग गया कि साधु फिसल भी सकते हैं। बड़ा सावधान रहने की आवश्यकता है।"

यह उत्तर पाकर पूज्य स्वामी सोमानन्द जी भी खिलखिलाकर हंस पड़े।

'इसमें गाय-भैंस तो स्नान करेंगी नहीं'

एकबार प्रातःकाल की वेला में श्री स्वामी सुवृतानन्द जी पाकशाला में आए तो देखा कि एक पात्र में दूध पड़ा है। रात्रि ढक कर न रखा गया इसलिए उसमें दो-तीन मक्खियां पड़ गईं। स्वामी सुवृतानन्द जी दूध न ढकने के कारण पाचक को कुछ कह रहे थे। कई ब्रह्मचारी भी वहां थे। पाचक भी गर्म होकर कुछ कह रहा था।

इतने में स्वामी सर्वानन्द जी महाराज भ्रमण करके लौटे और स्वामी सुवृतानन्द जी से कहा, "स्वामी जी क्या बात है? क्यों प्रातःकाल ही गर्मागर्मी हो गई?"

स्वामी सुवृतानन्द जी ने कहा, "स्वामी जी देखिए– रात्रि इसने दूध ढक कर नहीं रखा। इसमें मक्ख्यिां गिर गई हैं।"

बड़े स्वामी जी ने देखा तो पात्र में थोड़ा सा दूध था। देखकर कहा, "तो स्वामी जी इसमें तो मक्खियां ही गिरेंगी और गाय-भैंसें इसमें स्नान थोड़ा करेंगी।"

पास खड़े सब ब्रह्मचारी स्वामी जी की यह टिप्पणी सुनकर बहुत हंसे। स्वामी सुवृतानन्द जी व पाचक की गर्मा-गर्मी सब एकदम दूर हो गई।

'नौका से किधर को पार होंगे'

श्री पं० निरञ्जनदेव जी ने मठ के पाचक को कहा– मुझे भोजन अभी दे दो। दाल जैसी है, वैसी ही दे दो। उसने बड़ी थाली में दाल डाल दी। चपातियां गर्म-गर्म दे दीं। दाल के पानी पर चपातियां तैर रही थीं। कभी थाली के इस ओर कभी उस छोर। पण्डित जी भी हाथ लगा लगाकर देख रहे थे कि ठण्डी हुई हैं या नहीं। पण्डित जी अपने कार्य में तल्लीन थे।

स्वामी जी पं० निरञ्जन देव जी के पीछे आकर खड़े हो गये। यह सारा दृश्य स्वामी जी देख रहे थे। पण्डित जी की क्रीड़ा देखकर स्वामी जी हंस पड़े।

पण्डित जी ने कहा, "स्वामी जी आप क्यों हंस रहे हैं?" स्वामी जी ने कहा, "मैं तो यह देख रहा हूं कि आप नौका पर चढ़कर किस पार उतरेंगे।"

'आपके लिए देवी नहीं, लेवी सिद्ध हुई'

श्री आचार्य सुखलाल जी शास्त्री एम० ए० लिखते हैं कि जब मैं मठ में पढ़ता था। उन दिनों एक व्यक्ति जम्मू की ओर से मठ में आया। उसने स्वामी जी से अपनी व्यथा कही। उसने श्री महाराज से कहा कि मेरा सामान चोरी हो गया है। उसी में मेरे पैसे थे। मेरे पास मार्ग-व्यय भी नहीं है। मेरी सहायता कीजिए। घर जाने तक का मार्ग-व्यय मांगा। **वह व्यक्ति वैष्ण व देवी के दर्शन करते आया था।**

स्वामी जी ने उसे मार्ग-व्यय के पैसे दे दिये। वह व्यक्ति मद्रास से चला था। बिना किसी जान-पहचान के उस पौराणिक की विपदा की घड़ी में उसकी सहायता करना एक बहुत बड़ी बात थी। उसे मार्ग-व्यय देकर स्वामी जी ने उसे हंसते हुये कहा कि तुम वैष्णव देवी की यात्रा के लिए घर से निकले। लोग उसे देवी बताते हैं परन्तु तुम्हारे लिए तो वह लेवी सिद्ध हुई।

स्वामी जी महाराज के कुछ पत्र

हिन्दी में पत्र साहित्य के जनक ऋषि दयानन्द जी महाराज हैं। हिन्दी में सर्वप्रथम ऋषि दयानन्द के पत्रों के संग्रह ही छपे। महात्मा मुंशीराम जी, आचार्य चमूपति, श्री पं० भगवद्दत्त जी को इसका श्रेय जाता है। इस युग में आचार्य प्रवर युधिष्ठिर जी मीमांसक ने इन पत्रों पर जो काम किया है, उसका मूल्याकंन। सब गुणियों ने किया है। गुजरात प्रदेश के श्री कमल पुंजाणी ने हिन्दी में पत्र साहित्य पर ही पी एच० डी० किया है।

आर्यसमाज में सर्वप्रथम रक्तसाक्षी पं० लेखराम जी ने ऋषि-जीवन में ऋषि के पत्रों का पुष्कल प्रयोग किया। उस अद्वितीय जीवनी में पण्डित जी ने ऋषि के कई पत्र दिये हैं।

इसी परम्परा को इन पंक्तियों के लेखक ने भी आगे निभाने का यत्न किया है। स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के जीवन-चरित्र में उनके कुछ पत्र दिये। फिर पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय के जीवन-चरित्र में अपने नाम (मेरे नाम) लिखे कई पत्र दिये। रक्तसाक्षी पं० लेखराम के जीवन-चरित्र में भी खोजकर उनका एक पत्र व एक विज्ञप्ति दे सका। मुनिवर गुरुदत्त जी की जीवनी में भी उनके पत्र दिये।

इस ग्रन्थ के लिए स्वामी जी महाराज के कई भक्तों व शिष्यों को पूज्य स्वामी जी के पत्रों के लिए लिखा व कहा परन्तु किसी ने भी इसमें सहयोग नहीं किया। केवल एक पत्र स्वामी सुमेधानन्द जी दयानन्द मठ चम्बा ने भेजा है। इसके दो कारण हो सकते हैं:—

(१) आर्यों ने स्वामी जी के पत्र ही सुरक्षित नहीं रखे (२) प्रमादवश हमें पत्र नहीं भेजे।

हमारे पास स्वामी जी के और भी साठ तक पत्र होंगे परन्तु, यहां हमने कालक्रम से कुछ ही पत्र दिये हैं। दूसरों को लिखे कुछ पत्र भी हो जाते तो विविधता हो जाता। हमें भी आनन्द आता। इन पत्रों में कहीं-कहीं कोमा व

विराम आदि चिन्ह हमने दिये हैं। दो पत्र ग्रन्थ के आरम्भ में देना ही उचित जाना।

पाठक अन्यत्र पढ़ेंगे कि स्वामी सत्यानन्द जी ने रामचन्द्र को घर पर पत्र लिखा तो उसमें आप शब्द का प्रयोग पढ़कर राम गद्गद् हो गये। यह स्वामी सत्यानन्द जी का बड़प्पन था। पाठक इन पत्रों में स्वामी श्री सर्वानन्द जी (पूर्व पं० रामचन्द्र जी) के बड़प्पन के दर्शन करेंगे। 'सादर नमस्ते' व 'बहुत स्नेह के साथ सादर नमस्ते' आदि लिखना इनकी महानता है। हमारे जैसे साधारण गृहस्थों व समाज-सेवकों को इतना प्यार व आदर देना इनके हृदय की विशालता है। यह इनकी मृदुलता का प्रकाश है। क्या मैं इतने प्यार का पात्र भी हूं? यही सोचता रह जाता हूं।

द० मठ
दीनानगर
२७-१०-८२

सेवा में,

श्रीमान् प्रा० श्री जिज्ञासु जी,
सादर नमस्ते।

आपका पत्र तथा ड्राफ्ट मिला। २-११-८२ से यहां मठ में कथा करनी है दीवाली तक, इसलिए आपके पास आना नहीं हो सकेगा। धीरे-धीरे थोड़ा-थोड़ा लिखा जा रहा है।

च्यवनप्राश जल्दी ताज़ा बनाकर भेजने का यत्न हो रहा है। बनते ही भेज दिया जाएगा। एक सप्ताह लगेगा। बच्चों को आशीर्वाद।

भवदीय
सर्वानन्द

दीनानगर
द० मठ
१७-५-८४

सेवा में,

श्री जिज्ञासु जी,
बहुत स्नेह के साथ नमस्ते।

आपका पत्र मिला। पुस्तक लगभग कितने पृष्ठ की बनेगी। इसके अन्त में कुछ भंजन छपने ठीक हों तो एक स्वामी शंकरानन्द जी की हस्तलिखित भजनों की कापी आपको भेज देवें। इसमें से आपको जो भजन पसन्द हों, वे लिए जावें। श्री पं० गणपति जी की जीवन सामग्री आपने खोज की है यह बड़ा उपकार किया है। इसके लिए आपको बहुत-बहुत धन्यवाद। बच्चों को आशीर्वाद।

भवदीय
सर्वानन्द

दीनानगर
द० मठ
१८-१०-८४

सेवा में,

श्रीमान् जिज्ञासु जी,
नमस्ते।

आपका पत्र मिला। आपने १५०० रुपये भेजने के लिए लिखा है सो कुछ दिन में भेज सकेंगे। पुनः सारे धन का व्योरा भेजने का कष्ट कीजिएगा। कुछ पुस्तकें वहां अपने पास भी रख लें। वहां भी बिक सकती हैं। २५ पुस्तकें श्री डा० विद्याधर जी शर्मा एम० ए० पी एच० डी० हिमाचल संस्कृति संस्थान चन्द्र भवन गुलेर कांगड़ा, इस पते पर भेजें। एक पुस्तक

का मूल्य क्या रखा है? अधिक पुस्तकें बिना मूल्य ही जायेंगी। चौ० जी के परिवार को भी मुफ़्त ही देनी होंगी।[38]

भवदीय
सर्वानन्द
दीनानगर
द० मठ
२१-१-८५

सेवा में,
श्रीमान् जिज्ञासु जी,
नमस्ते।

ईश्वर से आपके सर्वविध सुख की कामना करता हूं। आपका पत्र और ड्राफ्ट भी मिला। इसमें से कुछ फार्मेसी में तथा कुछ पुस्तकों के हिसाब में डल जाएगा।

(२) आपने मार्च में अबोहर आने को लिखा है। उन दिनों परीक्षाएं समीप होने से आने का समय पता नहीं मिलता है कि नहीं। इस वर्ष पढ़ाई नहीं हो सकी है।

(३) आप पूज्य स्वामी जी महाराज[39] की घटनाओं की खोज करते ही रहते हैं, यह आपका बहुत बड़ा पुरुषार्थ है।

(४) महर्षि दयानन्द जी की फिल्म नहीं बननी चाहिए। नाचने गाने वालों में महर्षि को लाना उनका अपमान ही होगा। आप इस विषय में लेख लिखें। दहेज, जातपात, वर्णव्यवस्था, इस प्रकार की चीज़ों पर फिल्म भले ही बने किन्तु, महर्षि की फिल्म न बननी चाहिए। सभी समाचार पत्रों (पंजाब, देहली) में जल्दी लेख भेजें। आपके लेखों का प्रभाव होगा।

सबको नमस्ते।

भवदीय
सर्वानन्द

दयानन्द मठ
दीनानगर
९-३-८७

सेवा में,
श्रीमान् प्र० राजेन्द्र जिज्ञासु जी,
बहुत स्नेह के साथ नमस्ते।

ईश्वर से आपकी दीर्घायु तथा अच्छे स्वास्थ्य की कामना करता हूं। आपका पत्र मिला, बम्बई औषधि भेजने के लिए। एक सप्ताह तक औषधि का निश्चय करके भेज दी जायेगी। खाने की सब विधि और पथ्यादि सब लिख दिया जाएगा। मेरे आंख में मोतिया उतर आया है। दांत कष्ट दे रहे हैं। इसलिए दांतों को भी निकलवाना है। सबको यथायोग्य नमस्ते।

भवदीय
सर्वानन्द
दीनानगर
द० मठ
२२-४-८७

सेवा में,
श्रीमान् जिज्ञासु जी,
नमस्ते।

आपका पत्र मिला। आने की बात सोचता हूं फिर किसी कारण रुकना पड़ जाता है। कलकत्ते वालों ने क्या लिखा है यह जानने की इच्छा है। आर्यों का आदि देश तो आपके वहां कई हजार लगनी चाहिए। यह पुस्तक भारत की विभिन्न भाषाओं में छप[40] तथा फैल रही है।

भवदीय
सर्वानन्द

दीनानगर
दयानन्द मठ
१३-१०-८७

सेवा में,

श्रीमान् प्रा० जिज्ञासु जी,

बहुत स्नेह के साथ सादर नमस्ते।

ईश्वर से सब परिवार की दीर्घायु तथा उत्तम स्वास्थ्य की कामना करता हूं। अबोहर से आने के पश्चात् पुत्री रश्मि के लिए औषधि भेजी थी। उसके संबंध में सूचित करने की कृपा करें। सब परिवार को यथायोग्य नमस्ते।

भवदीय
सर्वानन्द

दीनानगर
द० मठ
१९-१०-८८

सेवा में,

श्रीमान् प्रा० जिज्ञासु जी,

सादर नमस्ते।

ईश्वर से सब परिवार की दीर्घायु तथा सुख की कामना करता हूं। आपका पत्र मिला। तदनुसार ही यहां से १०-११-८८ को चलकर सायंकाल तक आपके पास पहुंच सकूंगा। अबोहर से अजमेर जाना होगा। सबको यथायोग्य नमस्ते।

भवदीय
सर्वानन्द

दीनानगर
द० मठ
११-३-८९

सेवा में,

श्रीमान् जिज्ञासु जी,

नमस्ते।

आपका पत्र मिला। श्री ब्र० ब्रह्मदेव जी का पत्र भी आया है। तीन विद्यार्थी भेजेंगे। एक पहला, दो अन्य। उन्हें पत्र लिख दिया कि भेज देवें।

उन्हें यहां रखें या चम्बा में इसका निर्णय आप ही करें। जैसा आप लिखेंगे वैसा होगा। आपका ड्राफट मिल गया।

भवदीय
सर्वानन्द

दीनानगर
द० मठ
२७-७-८४

सेवा में,

श्रीमान् प्रा० जिज्ञासु जी,

नमस्ते।

धन भेज रहे हैं। चौधरी जी की फोटो भी उनका पौत्र भेज रहा है। किसी प्रकार जीवन-चरित्र में लग सके तो लगवाएं। बिना फोटो जीवन-चरित्र में न्यूनता रहती है।

भवदीय
सर्वानन्द

दीनानगर
द० मठ
१-८-८९

सेवा में,

श्रीमान् प्रा० जिज्ञासु जी,

सादर नमस्ते।

आपका पत्र मिला। २२ या २३ को

पहुंचने का विचार है। ठीक ता. कुछ दिन पहले दी जा सकेगी। यदि कार्य प्रातः हो तो सायंकाल २४-८-८९ को ही चल सकते हैं। २५ को किसी समय दीनानगर पहुंच सकेंगे। [17] स्वामी सहजानन्द जी साथ होंगे। सबको नमस्ते।

भवदीय
सर्वानन्द

दीनानगर
द० मठ
१४-९-८९

सेवा में,

श्रीमान् प्रा० जिज्ञासु जी,
सादर नमस्ते।

आपका पत्र मिला। श्री धर्मवीर जी को पत्र लिखा है।

सोलापूर में हैदराबाद सत्याग्रह की अर्द्ध शताब्दी ४-११-८९ मना रहे हैं।[41] वहां जाने का मार्ग कौन सा है? लिखें।

आप भी तो जायेंगे। यदि अजमेर से जाना हो तो किस मार्ग से? अजमेर में ऋषि मेला भी इन ही तारीखों में है। सुना है डी० ए० वी० कालेज वाले भी सोलापूर में यही अर्द्ध शताब्दी मना रहे हैं।

दोनों पृथक-पृथक हैं या एक ही हैं?

भवदीय
सर्वानन्द

दीनानगर
द० मठ
२१-१२-८९

सेवा में,

श्रीमान् जिज्ञासु जी,
सादर नमस्ते।

आपका पत्र मिला। इसके अनुसार आज ही दवा बम्बई डाक से रवाना हो जायगी। जैसे और सेवन करनी है[42] सब विधि लिख दी है। वहां दूध का प्रबंध होगा कि नहीं, यह पता नहीं।

भवदीय
सर्वानन्द

स्वामी सुमेधानन्द जी चम्बा के नाम एक महत्वपूर्ण पत्र

दीनानगर
द० मठ
११-१०-९०

सेवा में,

श्रीस्वामी जी,
नमस्ते।

ईश्वर कृपा से मठवासी सुखपूर्वक होंगे। श्री जिज्ञासु जी को आपने या किसी अन्य ने जीवन-चरित्र लिखने के लिए कहा है। यह सर्वथा अनुचित है। जीवित लोगों का जीवन-चरित्र कभी नहीं लिखा जाता। यह बहुत ही नियम विरुद्ध कार्य है। केवल संस्मरण लिखे जाते हैं। विभिन्न लोगों के लेख होते हैं। जीवन-चरित्र नहीं लिखे जाते।

ऋषि तथा बालिका को आशीर्वाद। शास्त्री जी को नमस्ते।

भवदीय
सर्वानन्द

सुरभित उद्यान

एक विश्व-व्यापी शंका का समाधान

भले बुरे की पहचान क्या है?

एक व्यक्ति ने श्री स्वामी जी से पूछा कि भले-बुरे की पहचान क्या है। आजकल यह पता ही नहीं चलता कि भला कौन है वा बुरा कौन? न ही यह पता चलता है कि सच्चा कौन है और ईमानदार कौन है?

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि यदि ध्यान से देखा जाये तो सब कुछ पता लग जाता है जैसे कोई व्यक्ति अपनी आय से अधिक व्यय करता है तो स्पष्ट पता चल जाता है कि यह व्यक्ति ईमानदार नहीं।

यह बातचीत २५ जनवरी १९९० को मठ में हुई।

मन की निर्मलता के लिए क्या किया जावे?

भिवानी हरियाणा की ओर से एक पौराणिक साधु मठ में आया। एकदिन स्वामीजी से पूछा, "मन चित्त कैसे शुद्ध होते हैं?"

स्वामी जी ने कहा, "भक्ति के जल से ही चित्त के मैल धोए जाते हैं।"

यह १५ फरवरी १९९० को मठ में उस साधु से कहा था

ईश्वर की कृपा कब होगी?

एकदिन श्री स्वामी जी किसी को समझा रहे थे तो कहा, "जब तक आपका हृदय-परिवर्तन न होगा और बालकों की भांति सरल व्यवहार नहीं करेंगे तब तक ईश्वर की कृपा नहीं होगी।"

युग भयंकर आ रहा है।

"मानवसमाज की पहली बुराईयां अभी निर्मूल नहीं हो सकीं पर अब नए प्रकार की अन्य बुराईयां बड़ी तीव्र गति से उत्पन्न तथा बलवती हो रही हैं। मनुष्य का खाना-पीना, रहन-सहन, विचार, लेन, देन, व्यवहार की सभी मर्यादायें टूट रही हैं। नियम-अनियम का विचार अगोचर हो रहा है। आचार दुराचार का भेद मिट रहा है। ईश्वर को अनावश्यक वस्तु समझा जा रहा है। वाममार्ग अपने यौवन पर आने को है।"[43]

आर्यों का जीवन श्रद्धा सम्पन्न हो

"यदि आर्यों के जीवन में आर्यत्व आ जाए ये सच्ची श्रद्धा से सम्पन्न हो जाएं तो मतावलम्बी लोगों की बनावटी बातों में लोग न फंसकर आर्यसमाज की शरण में आ जाएंगे। आर्यसमाज का भविष्य आर्यों के जीवन से ही बनेगा और वैदिक धर्म का प्रचार भी तभी होगा जब इनके जीवन अन्यों के लिए श्रद्धेय होंगे।"[44]

आदर्श संन्यासी और आदर्श ब्रह्मचारी

"संन्यासी व ब्रह्मचारी अपना जीवन समर्पित करके कार्य करते हैं। उसे ऐसे नहीं लगता कि वेतन मिलेगा कि नहीं मिलेगा अथवा न्यून मिलेगा तो कार्य बन्द कर देगा वा थोड़ा कार्य करेगा। वह तो कार्य करेगा। उसमें किसी निमित्त की अपेक्षा नहीं रखता। यह उसके जीवन के कर्त्तव्यों में से एक है। इसके साथ बंध व मोक्ष का विचार जुड़ा हुआ है। धूप हो, सर्दी

हो, भूखा हो, सत्कार हो, तिरस्कार हो– ये सब कुछ उसके तप का साधन बन जाते हैं। विघ्न नाम की कोई चीज नहीं।"

मठ में भिक्षा का भोजन क्यों

"यह भिक्षा वह नहीं जो भिखारी विवश होकर मांगता है। मठ के पास इतना सामर्थ्य है कि न मांगे तो भी अपने पुरुषार्थ से दोपहर का काम चला सकता है किन्तु चलाता नहीं। इस लिए कि मठ की एक आधार भूमि विकृत हो जाएगी। यह समाज से हटकर व्यक्ति प्रधान हो जाएगा।"

भिक्षा कैसे की जावे?

मठ से जो भी संन्यासी वा छात्र भिक्षा के लिए जावेगा उसे पूरा पता होगा कि किसी से अन्य कुछ बात नहीं करनी है, न ही परिचय बनाना है। यदि पता चल जाए कि छात्र ने किसी के घर बैठकर भोजन करके फिर भिक्षा लाया है तो यह मठ के आदर्शों के अनुकूल नहीं होगा। सम्भव है मठ छोड़कर जाना पड़ जाए। ..... परिचय होना बुरी बात नहीं परन्तु इससे भिक्षा की परम्परा कलुषित हो सकती है। लोग मुख देखकर देने लग जायेंगे। इससे और भी कई दोष लग सकते हैं। अतः भिक्षा इस ढंग से करनी है जैसे कि हम किसी को जानते ही नहीं और न ही कोई हमें जानता है। जिसने दिया ले लिया, नहीं दिया आगे चल दिये। परिचय होने पर एक और भय हो सकता है क्या दिया? क्या नहीं दिया और क्यों नही दिया? ये सब बातें मन में दौड़ने लग जाएंगी अतः भिक्षा न तो भिखारी की भांति मांगनी है कि दे ही दो और न ही परिचय से मांगनी है। संन्यासी वा ब्रह्मचारी के ढंग से भिक्षा करनी है।"[45]

स्वामी सर्वानन्द वचन सुधा

१. उस परमपिता परमात्मा की भक्ति सच्चे हृदय से करो।

२. ईश्वर को सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, सर्वव्यापी, निराकार, सर्वान्तरयामी, सर्वज्ञ, अमर समझो।

३. जब तुम अपने जीवन को प्रारम्भ करो तब अपने आगे अच्छा लक्ष्य रखो।

४. जो कुछ काम करना चाहो, पक्की इच्छा से करो, जिस से तुम को सफलता होगी। किसी काम को करने से पहले मन में दृढ़ संकल्प कर लो फिर उस में हाथ डालो। अपने कार्य को सिद्ध करने के लिए सब शक्ति लगा दो।

५. तुम जो कुछ करो, अच्छा करो, बुरे कामों में कभी ध्यान न दो।

६. तुम्हें हमेशा ध्यान रहे कि परमपिता परमात्मा सदा तुम्हारे कार्यों को देख रहा है।

७. अपनी शक्ति के अनुसार कार्य करो, किसी कार्य को हाथ में लेने से पहले उस पर पूर्ण विचार करो।

८. कोई कार्य आरम्भ करने पर उसको बीच में ही छोड़ मत दो, क्योंकि कठिनाईयों से कोई काम खाली नहीं होता। सुन्दर गुलाब के पौधे पर भी कांटे होते हैं।

९. किसी की मदद न चाहो, किसी पर अवलम्बित न रहो, अपनी शक्ति पर पूर्ण विश्वास रखो और अपना कार्य किया करो, परमात्मा तुम्हारी मदद करेंगे।

१०. आशावादी बनो, कभी निराश मत हो। अपने हृदय से यही सोचो कि जो होता है,

ठीक ही होता है। तुम्हारी इच्छाएं अच्छी होंगी तो तुम्हारा कार्य भी अच्छा होगा।

११. अपने व्यवहार में अच्छे रहो, कभी हिम्मत न हारो।

१२. स्वच्छता भी ईश्वर का एक रूप है। इसलिए सदा साफ और सुथरे रहो।

१३. बाहरी स्वच्छता के साथ-साथ आंतरिक स्वच्छता अर्थात् मन की शुद्धता रखो।

१४. तुम में अनेक गुप्त शक्तियां हैं, उन को जागृत करो।

१५. हल्कि से हल्कि वस्तु भी कभी-कभी प्रकृति की सुन्दरता बढ़ाती है, इसलिए संसार की कोई वस्तु व्यर्थ मत समझो। हर एक वस्तु उपयुक्त है।

१६. अधिक तर्कना कर मन चञ्चल न करो। किसी बात पर पूर्ण विचार किये बिना अपना मत न दो।

१७. किसी से ईर्ष्या द्वेष न करो, कभी हृदय में नीच कल्पनाओं को स्थान न दो।

१८. बोलने में किसी का भय न करो, स्पष्ट बोलो, मन में पाप मत रखो। निष्कपट हृदय के मनुष्य की परमेश्वर सदा सहायता करता है।

१९. सभ्यता से रहो, किसी काम में लगे रहने पर भी अपने अतिथि का उचित सत्कार करो। उसके साथ अच्छा बर्ताव रखो।

२०. दयावान बनो कोई तुमसे सहायता मांगे तो उदार हृदय से सहायता करो। उस के लिए किसी प्रकार की शर्त न करो और न अपना-पराया विचारो। तुम्हारे अच्छे कामों का पारितोषिक किसी अदृश्य शक्ति द्वारा तुम्हें अवश्य मिलेगा।

२१. विनीत और स्वाभिमानी बनो। छोटे मनुष्यों से बोलते समय घमण्ड की बातें न करो, संसार को ही अपना परिवार समझो।

२२. आत्माभिमान, आत्मज्ञान और आत्मावलम्बन ही तीन उच्चतर दशा को पहुंचाने वाले मार्ग हैं। सत्य का अवलम्बन बुद्धिमानी का लक्षण है। उसके परिणाम की चिन्ता न करो।

२३. किसी बात का अभिमान न करो। संसार में तुमसे अच्छे मनुष्य अनेक हैं, इसलिए तुम अपने को केवल अधिक बुद्धिमान मत समझो और अपनी शक्ति को बढ़ाने के यत्न किया करो।

२४. अपनी साख बनाए रखो। लोगों का विश्वास तुम से उठ जाने पर तुम किसी काम के न रहोगे इसलिए व्यवहार में साफ रहो।

२५. ईमानदारी भी एक अच्छी नीति है। सामान्य बातों में भी ईमानदार बनने में आप का कुछ नहीं लगता किन्तु मिलता बहुत है। बेईमान मनुष्य, मनुष्य जीवन में कभी सफल नहीं होता।

२६. किसी बात की शेखी न करो। अपना कार्य शब्दों की उपेक्षा कृति से कर दिखाओ, बहुत से मनुष्य बोलते बहुत और करते कुछ नहीं। तुम करो बहुत और थोड़ा बोलो।

२७. जब दूसरे तुम्हारी तारीफ करें तब तुम स्वयं अपनी तारीफ मत करने लगो।

तारीफ मांगने से नहीं किन्तु दूर करने से मिलती है।

२८. सदा निर्भय रहो, उत्साह से ही जय मिलती है। तुम में आत्म विश्वास होगा तो तुम कभी नहीं पिछड़ोगे। संकटों को देख कर भागो मत किन्तु बेधड़क उनका सामना करो, उन का तुम पर कुछ भी असर न होगा।

२९. संकटों से डरने की अपेक्षा उन्हें ढूंढा करो। जब उनसे तुम परिचित हो जाओगे, तब तुम्हारा हृदय दृढ़ होगा और तुम्हारे लिए जीवन भर में डरने की कोई बात न रहेगी।

३०. आज का काम कल पर मत छोड़ो। कौन जानता है कि कल होगी कि नहीं। जो कुछ करना है आज ही कर लो, क्योंकि कल के बीच में रात है। तब तक कदाचित विचार बदल जाये।

३१. कोई दान या सत्कार्य तुरन्त कर दो क्योंकि सब समय एक सी अवस्था नहीं रहती।

३२. लोग जैसा तुम से बर्ताव रखें, वैसा तुम भी रखो। यदि तुम लोगों से आदर चाहते हो तो तुम भी लोगों का आदर करो। यदि तुम लोगों से प्रेम चाहते हो तो तुम भी प्रेम करो।

३३. सब मुनष्यों से भ्रातृभाव रखो और जहां तक हो सके उनका भला करो। एक दूसरे की सहायता करना मनुष्य का कर्तव्य है, यदि तुम मनुष्य मात्र को बन्धु समझोगे तो तुम्हारे मन में सदा सुख और आनन्द बना रहेगा। यदि तुम शान्त स्वभाव बनोगे तो निस्सन्देह आनन्द का अनुभव करोगे।

३४. सब को एकसा देखने और उनका भला करने में सच्चा सुख है। यदि तुम दूसरों के कुछ काम न आये, तो इस जीवन से क्या लाभ है?

३५. प्रतिदिन सांयकाल को विचार किया करो कि तुम मनुष्य जाति के लिए क्या-क्या कर सकते हो?

मरना उसका भला जो जीये अपने लिये।
जीना उसका भला जो मरता सब के लिये।।

मनुष्य चाहे तो समाज का बहुत भला कर सकता है। परस्पर प्रेम और एकता के बिना संसार का काम नहीं चल सकता। हम घर या जाति के कार्यों में एक होते हैं। वही नियम समाज और धर्म के कामों में क्यों न चलाया जाये। यदि तुम अपने लोगों को संसार में अच्छी दशा में देखना चाहते हो तो समाज को सुधारो।

३६. किसी की निन्दा न करो, जहां तक हो सके सब का भला करो। कोई तुम पर क्रोध करे तो तुम नम्र बनो, इसी में तुम्हारा बड़प्पन है। धन, यौवन, घर या गाड़ी घोड़ों का घमण्ड न करो। क्योंकि तुम्हारे साथ उनमें से कुछ भी नहीं जायेगा। तुम्हारे अच्छे कार्य तुम्हारा धर्म, तुम्हारी भक्ति ही दूसरे जगत् में तुम्हारी सहायता करेगी।

३७. इस संसार में सबसे मूल्यवान वस्तु समय है। गया वक्त फिर हाथ आता नहीं। इसलिए एक क्षण भी व्यर्थ खर्च न करो और समय को अच्छे कामों में लगाओं।

३८. अमीर, गरीब, तरुण, वृद्ध, सभी की इन्तजार मृत्यु कर रही है, इसलिए अपने कार्य अभी कर लो। अपने सामान एकत्र कर आत्मा को पहिचान लो और उससे सामना करने के लिए प्रस्तुत हो जाओ।

३९. ज्ञान का अन्त नहीं है। समय बीत रहा है, जीवन छोटा है, अनुभव थोड़ा है और न्याय दुर्लभ है। भूतकाल निकल गया वर्तमान चला है और भविष्यत भी वर्तमान के कार्यों के अनुसार होगा इसलिए भाईयो! उठो और अपने कार्यों को समझो।

४०. देशभक्त बनो, मातृभूमि और अपने देश भाईयों से प्रेम करो। अपने भाईयों का भला करो, सहानुभूति रखो, और उन्हें संकटों से बचाओ। गरीब और दीन दुखियों को सहायता दो, तथा अपनी और देश की दशा सुधारो।

४१. किसी काम को करने से पहले उसके लाभ-हानि को सोच लो। बोलना सहज है, परन्तु करना कठिना है। इसलिए कार्य की कठिनाईयों को जानकर फिर उसे आरम्भ करो जिससे सफलता प्राप्त होने में सुगमता होगी।

४२. मत देने में जल्दी न करो, हर एक बात को पहले सुन लो, फिर उस पर खूब विचार करो तब अपना मत दो।

४३. जो बात समाज के लिए हानिकारक है, वह एक व्यक्ति के लिए कभी लाभदायक नहीं होती।

४४. दूसरों को उपदेश करने से पहले अपने आचरण को सुधारना सीखो।

४५. मित्र बनाते समय सावधान रहो। धन को देख बहुत से मित्र हो जाते हैं और विपत्ति में उनकी परीक्षा होती है। इसलिए सच्चे कौन और झूठे कौन हैं? यह देख कर किसी से मित्रता करो।

४६. बिना जांच-पड़ताल के किसी पर एकाएक विश्वास न करो, नहीं तो पीछे से पछताना होगा।

४७. निर्बल को अच्छी दृष्टि से देखो, समय पड़ने पर उसकी सहायता करो।

४८. प्रतिदिन यह अवश्य सोच लिया करो कि आत्मा अमर और देह नाशवान है।

४९. अपनी बात पर अटल रहो। अगर तुम किसी से वादा करो तो उसे पूरा करने की कोशिश करो।

५०. प्रतिदिन सूर्योदय से पहले उठो, नित्य स्नान करो, स्नान के बाद दयामय परमात्मा की पूजा और उसका गुणगान गाओ।

आचार्य जगदीश जी ने इस वचन-सुधा का संग्रह किया। पूज्यपाद स्वामी जी के प्रवचनों में से ये वचन चुने गये।

पड़ा हुआ था कहीं एक दिन, कुम्हार घर ले आया।
गीला किया, पांव से रौंधा, पीटा चाक चढ़ाया।।
खूब घूमाया और आग में, कितने दिनों तपाया।
मिट्टी का वह ढेल तुच्छ तब, कहीं पात्र कहलाया।।

लोभी भंवरों की टोलियाँ ठहर न पायेंगी।
धूर्त बगुलों की पंक्तियां कहीं सिधायेंगी।।
इस परम रम्य सरोवर के सूख जाने पर।
प्रेंमी ये दीन मीन आह! कहां जायेंगी।।

कविरत्न 'प्रकाशचन्द्र'

श्री स्वामी जी और हिन्दी रक्षा सत्याग्रह

सन् १९५७ में आर्यसमाज ने पंजाब में हिन्दी रक्षा के लिए एक आन्दोलन चलाया। आन्दोलन तो १९५६ से ही आरम्भ हो गया था परन्तु सत्याग्रह १९५७ के मई तथा जून से आरम्भ किया गया। तब हरियाणा पूरा व हिमाचल का भी अधिकांश भाग पंजाब में ही था। आर्यसमाज की मांग किसी भाषा के विरोध में नहीं थी। आर्यसमाज की मांग तो भाषा स्वातन्त्र्य की थी। जो लोग हिन्दी भाषा के माध्यम से पढ़ना चाहें और आरम्भ से ही हिन्दी भाषा पढ़ना चाहें उन्हें उनका यह अधिकार मिलना चाहिए। इसके विपरीत शासन की ओर से गुरुमुखी लिपि में पंजाबी की अनिवार्यता थी और अब भी है। तब देश के प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू थे। वह सदा यह रट लगाते रहते थे कि हिन्दी किसी पर थोपी नहीं जायेगी। श्री जवाहरलाल के पश्चात् भी उनकी पुत्री व दोहित्र तथा अपने आपको धर्मनिर्पेक्ष कहने वाले जनता दलिए (पूर्व कांग्रेसी) भी यही रट लगाते रहते हैं।

आश्चर्य है कि देश के सब भागों में मुसलमानों को उर्दू माध्यम से शिक्षा पाने की छूट है। भारत की राष्ट्रभाषा या किसी भी भारतीय भाषा पर अधिकार न रखने वाला व्यक्ति इस देश में ऊंचें से ऊंचा पद पा सकता है। यह हमारे देश का निरालापन है। इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए।

हम यही कहेंगे कि मूलरूप में आर्यसमाज की मांग हिन्दी रक्षा सत्याग्रह में इतनी ही थी कि हमें हिन्दी पढ़ने पढ़ाने की स्वतंत्रता हो। हिन्दी व पंजाबी किसी की पढ़ाई की अनिवार्यता न हो। राज्य की नौकरियां पाने वाले दोनों भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करें। इस मांग में कुछ भी संकीर्णता नहीं है परन्तु स्वतंत्रता की दुहाई देने वाले नेहरू जी के राज में इस मांग को मनवाने के लिए सहस्रों व्यक्तियों को जेल जाना पड़ा। कई एक को अपनी जानें देनी पड़ीं। बहुअकबरपुर (ज़िला रोहतक) में ग्रामीणों पर ऐसे-ऐसे अत्याचार ढाए गये कि जिन्हें पढ़-सुनकर व्यक्ति कांप उठता है।

यहां आन्दोलन के इतिहास में जाने की आवश्यकता नहीं है। इस आन्दोलन में श्री स्वामी सर्वानन्द जी के योगदान की ही चर्चा करनी है। उस समय इस आन्दोलन पर बहुत कुछ लिखा गया और बाद में डा० सत्यकेतु जी आदि ने लिखा है परन्तु किसी ने भी आन्दोलन में मठ के या स्वामी जी के योगदान की कोई चर्चा नहीं की है। इसके तीन कारण हैं। तीन में से एक कारण तो यह है कि श्री स्वामीजी अपने द्वारा किए गये कार्य को इस ढंग से करते हैं कि किसी को पता ही नहीं चलने देते। यह कार्य तो इतिहासकारों व लेखकों का है कि वे तथ्य व सत्य की पूरी-पूरी खोज करके वास्तविक इतिहास को प्रकाश में लावें।

इस आन्दोलन में स्वामी जी के योगदान के विषय में पहली बात तो हम यही कहेंगे कि पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी के उद्योग, सूझबूझ व

पुरुषार्थ के बिना हरियाणा इस आन्दोलन में कभी भी सिर-धड़ की बाजी न लगाता। उन दिनों सभा हरियाणा वालों के हाथ में थी। तब कुछ भाई पत्रों में ऐसे-ऐसे लेख व समाचार देते दिलाते रहते थे जिससे हरियाणा व पंजाब के आर्यों में कलह व कटुता बढ़ती ही गई। ऐसी स्थिति में जब घर में फूट हो, आन्दोलन क्या चल सकता है?

तब आर्यसमाज में केवल एक ही ऐसा व्यक्ति था जिस का हरियाणा वाले भी पूरा मान करते थे और जो चुपचाप दोनों पक्षों के सिर जोड़ने के लिए हर सम्भव प्रयास करता रहा। वह व्यक्ति हमारे स्वामी जी महाराज थे। उस समय के कई नेता अभी भी जीवित हैं। वे हमारे कथन की पुष्टि करेंगे। हम यहां एक बहुत बड़ी घटना की चर्चा करते हैं जिसका कुछ इने-गिने लोगों को ही पता है। इससे स्वामी श्री सर्वानन्द जी के योगदान का पता सबको चल जावेगा?

सत्याग्रह आरम्भ हो चुका था। सहस्रों व्यक्ति जेल जा चुके थे। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महामंत्री श्री पं० जगदेव सिंह सिद्धान्ती भी कारागार में बन्दी थे। श्री महाशय कृष्ण जी ने अपने प्रताप में एक लेख दे दिया कि सभा के अधिकारी एक वर्ष के लिए चुने गये थे। एक वर्ष से अधिक समय हो गया है। सभा का नया चुनाव कौन करवाएगा? मंत्री कारागार में है। चुनाव होना चाहिए। यह उस लेख का सार था।

इस लेख से खलबली-सी मच गई। सरकार से तो टक्कर ले रखी थी और घर की यह स्थिति कि चुनाव करवाने की चिन्ता....। आर्यसमाज के समाने एक विकट समस्या थी। स्वामी सर्वानन्द जी जेल में श्री सिद्धान्ती जी से मिले। वे हरियाणा के सर्वमान्य नेता थे। गम्भीर विद्वान् थे। बड़े साहसी आर्य थे परन्तु सैनिक स्वभाव के अड़ियल योद्धा थे। उन्होंने स्वामी सर्वानन्द जी से स्पष्ट कह दिया कि यदि हमारी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर महाशय कृष्ण चुनाव ही चाहते हैं तो मैं जेल से क्षमा मांग कर बाहर आऊंगा। मेरे साथ सभी हरियाणा वासी जेलों से बाहर आयेंगे। हम चुनाव करवा देंगे। सिद्धान्ती जी से किसी के लाख मतभेद क्यों न हों, सब इस बात से सहमत हैं कि वे न तो क्षमा मांगने वाले व्यक्ति थे और न पीठ दिखाने वाले। उन्होंने महाशय जी के लेख की प्रतिक्रिया स्वरूप कलेजे पर पत्थर रखकर ही यह बात कही थी।

स्वामी सर्वानन्द जी ने उन्हें शान्त किया। अब श्री स्वामी जी सभा के मंत्री बाबू रामनाथ भल्ला सें मिले। श्री भल्ला समय तो बहुत देते थे परन्तु बहुत भीरु व्यक्ति थे। सभा के विधान में अंकित था कि विशेष परिस्थितियों में चुनाव एक वर्ष के लिए टल सकता था। स्वामी जी ने श्री भल्ला से कहा कि मेरे साथ चलकर महाशय जी को यह कार्यवाही रजिस्टर दिखाओ। वह ऐसा डरपोक निकला कि सरकार के भय के कारण महाशय जी के पास जाने में असमर्थता प्रकट की। स्वामी जी ने वह रजिस्टर लेकर महाशय कृष्ण को दिखाया और उन्हें भी शान्त किया व समझाया कि इस समय चुनाव की मांग करने के परिणाम बड़े घातक होंगे। स्वामी सर्वानन्द जी के समझाने से महाशय जी

ने अपनी चुनाव की मांग छोड़ी। अब इस एक घटना से हमारे सुविज्ञ पाठक उस आन्दोलन में स्वामी जी के योगदान का ठीक-ठीक मूल्याकंन आप कर लें।

जेल से हम बाहर आए तो श्री सिद्धांन्ती जी ने हमें स्वयं यह घटना सुनाई। पूज्य स्वामी जी के मुख से भी हमने यह सारा वृत्तान्त सुना।

श्री स्वामी जी की जेल जाने की बारी तो न आई परन्तु बाहर रहकर ही आप आन्दोलन के लिए सब-कुछ करते रहे। आपके विशेष प्रभाव से अमृतसर, गुरदासपुर व जम्मू क्षेत्र से जत्थे पर जत्थे जेलों में गये। आर्यसमाज दीनानगर व दयानन्द मठ ने कई जत्थे भेजे। स्त्रियों व विद्यार्थियों ने भी गुरदासपुर जिला से कई जत्थे जेल भेजे।

जेल जाते हुये मार्ग में ही रुग्ण होकर प्राण देने वाला प्रथम सत्याग्रही प्रियदर्शन दयानन्द मठ का ही पुराना विद्यार्थी था। जब फिरोजपुर के केन्द्रीय कारावास में निर्मम अमानुषिक लाठी प्रहार से सैंकड़ों सत्याग्रही घायल हो गये और वीर सुमेरसिंह का बलिदान हो गया तो स्वामी जी महाराज हम लोगों का पता करने जेल गये थे। रोगियों के लिए चोटों की औषधि सबके लिए देकर आये थे। जेल की डयोढ़ी में जब श्री स्वामी जी महाराज ने हम से एक-एक घायल का पता पूछा तो उनके हावभाव को देखकर किसी कवि का यह पद्य हमें याद आ गयाः—

हो पीड़ा किसी को तो तड़पा करूं मैं,
लगन कोई ऐसी लगा दीजिएगा।

संक्षेप में हम पुनः यह कहेंगे कि स्वामी जी का स्वभाव जोड़ने का है। उन्होंने आर्यों को जोड़ने का ही सदा प्रयत्न किया। इसके बिना कोई आन्दोलन चल ही नहीं सकता।

गो-रक्षा आन्दोलन के सर्वाधिकारी

श्री स्वामी जी महाराज ने गो-रक्षा आन्दोलन में एक प्रमुख भूमिका निभाई। सन् १९६७ में देशभर में गो-रक्षा के लिए एक प्रचण्ड आन्दोलन चलाया गया। देश के प्रत्येक भाग से भारी संख्या में आबाल-वृद्ध कारागार में गये। इस आन्दोलन में साधु, महात्माओं ने अद्वितीय उत्साह दिखाया। लोकसभा तक एक विशाल जनसमूह शान्त-प्रदर्शन करता हुआ गया। शासन ने आन्दोलन को बदनाम करने के लिए इसमें समाज विरोधी तत्त्वों को भी घुसेड़ दिया। भीड़ ने कुछ उग्र प्रदर्शन किया तो इन्दिरा जी की सरकार ने बड़ी निर्ममता से गो-भक्तों को गोलियों से भून दिया। ऐसे ही जैसे वर्ष १९९० में मुलायम सिंह वी० पी० सिंह की सरकार ने अयोध्या में राम भक्तों का संहार किया। कितने गो-सेवक वीरगति पा गये, यह आज तक कुछ भी अता-पता नहीं चला परन्तु इतना तो निश्चित है कि यह गिनती सैंकड़ों और हजारों तक है।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (हरियाणा की तब पृथक् सभा नहीं थी) ने आर्यसमाज करोलबाग, नई दिल्ली में अपना सत्याग्रह-शिविर खोल दिया। प्रतिदिन वहां से सत्याग्रही जत्थे निकलते थे। सहस्रों वीर वहां से बन्दीगृह में गये। सभा ने पूज्य स्वामी जी को इस शिविर का सर्वाधिकारी बनाया। आपने कुछ समय तक शिविर का सञ्चालन किया फिर आपने भी

सत्याग्रह कर दिया और जेल में चले गये। और कई जेलों में रहे। शासन ने जेलों में भले ही गो-भक्तों को कष्ट दिये परन्तु आप सरीखे तपोनिधि के लिए बन्दीगृह का जीवन भी आनन्दप्रद था। आपने तब लेखक को बन्दीगृह से एक पत्र लिखा था जिससे हमें यह अनुभव हुआ कि जेल-जीवन में आपको एक अद्भुत आनन्द की अनुभति हो रही है।

दीनानगर से मोही ग्राम तक पद-यात्रा

विक्रम सम्वत् २०३४ (सन् १९७७ ई०) में श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी की जन्म-शताब्दी बहुत धूमधाम से उनके जन्म स्थान मोही ग्राम में मनाई गई। एक छोटे से ग्राम में जहां आर्यसमाज की शाखा कभी भी नहीं रही, वहां ऐसे सफल समारोह की किसी ने कल्पना भी न की होगी। देहली, पंजाब, हरियाणा व हिमाचल तथा जम्मू के आर्यलोग तो मोही पहुंचे ही और भी दूरस्थ स्थानों से कई श्रद्धालु मोही पहुंचे। पंजाब के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री प्रकाशसिंह ने भी विशाल समारोह को संबोधित किया।

इस समारोह की सफलता का श्रेय मोही ग्राम की सारी जनता को जाता है। स्वामी स्वतंत्रानन्द जी के छोटे भाई सरदार बलवन्त सिंह जी का उद्योग भी प्रशंसनीय था। समारोह की सफलता के लिए पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज ने मठ से एक पद-यात्रा आरम्भ की। मार्ग में पड़ने वाले ग्रामों, कस्बों व नगरों में शताब्दी का सन्देश देते हुय, यज्ञ-हवन तथा प्रवचन करते हुये श्री स्वामी जी ने शताब्दी की सफलता का वातावरण बना दिया। आपकी अमृतवर्षा से आर्यसमाज का प्रभाव बढ़ा। आर्यवीरों में उत्साह पैदा हुआ और चारों ओर से "मोही चलो— मोही चलो" की आवाज आने लगी। केवल एकदिन के कार्यक्रम के लिए लोग इतनी सर्दी में एक छोटे से ग्राम के लिए कम ही निकलते हैं परन्तु मोही वालों को भी यह देखकर बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ कि मोही में जन्मे निर्मोही सन्त स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज को श्रद्धाञ्जलि देने के लिए दूर-दूर से भर-भर कर बसें पहुंचीं। देशभर के कई मूर्धन्य आर्य विद्वान्, संन्सासी व नेता पहुंचे। पुस्तक-विक्रेता पहुंचे। हरियाणा सरकार के प्रतिनिधि के रूप में डा० मंगलसेन पहुंचे।

श्री स्वामी सर्वानन्द जी ने अपने शिष्यों व मठ के स्नातकों को कोई विशेष आदेश भी न दिया। उनके एक संकेत मात्र पर मठ से संबंधित सैंकड़ों संन्यासी, ब्रह्मचारी व वानप्रस्थी 'मोही' पहुंच गये। अनेक शिष्य तो पद-यात्रा में ही साथ हो लिए। हमने मार्ग में पड़ने वाले ग्रामों में देखा कि जहां न जान, न पहचान वहां की धर्मपरायण भारतीय जनता बड़ी श्रद्धा से आपके स्वागत को आती, आशीर्वाद मांगती और प्रवचन भी सुनती। सेवा-सत्कार करने में जनता का उत्साह अत्यधिक था। जहां-कहीं रात पड़ जाती। पद यात्रियों के निवास व भोजन की कोई समस्या ही न होती। प्रचार होता, लोग उपदेश सुनते और रोगी अपना दुखड़ा लेकर आते तो उन्हें औषधि भी मिलती। यह यात्रा प्रचार की दृष्टि से इतनी सफल रही कि हमने अनेक भाई-बहिनों को यह कहते सुना था कि ऐसी एक यात्रा तो प्रतिवर्ष निकलनी ही चाहिए। दुर्भाग्य से इसके शीघ्र पश्चात् पंजाब व देश की राजनैतिक स्थिति में चिन्ताजनक

बिगाड़ पैदा हो गया। अब तक भी स्थिति में कुछ सुधार नहीं हो सका।

पीड़ितों की सहायता के लिए

जब-जब गुरदासपुर ज़िला व आसपास के क्षेत्र में कोई दैवी आपदा आई तब-तब स्वामीजी महाराज पीड़ितों की सहायता के लिए आगे आए। इस क्षेत्र में यदा-कदा बाढ़ तो आ ही जाती है। आपके संन्यास ग्रहण करने के कुछ समय पश्चात् पंजाब के कई भागों में भयंकर बाढ़ आई थी। दीनानगर मठ को सहायता केन्द्र बना कर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने तब पीड़ितों की बहुत सेवा की। श्री स्वामी जी के मार्गदर्शन में पूज्य स्वामी सुरेन्द्रान्द जी सारे सहायता शिविर का सञ्चालन करते रहे।

और भी ऐसे अनेक अवसर आए जब दयानन्द मठ नें आगे आकर दुखियों के दुःख निवारण का ऐसा कार्य किया कि सिख भाई भी धन्य-धन्य कहते सुने गये। स्वामी जी अपने द्वारा की गई सेवाओं की चर्चा नहीं करने देते और न मठवासियों को ऐसा वृत्तान्त देने की अनुमति देते हैं, इसलिए हम आंकड़े देने में असमर्थ हैं।

अभी दो वर्ष पूर्व हरियाणा तथा पंजाब में विनाशकारी बाढ़ आई। भारत की सीमा पर रावी पार के ग्राम, जो दीननगर से बहुत दूर नहीं, भारत से बाढ़ के कारण कट गये। लोगों के पास खाने-पीने को कुछ न रहा, चूल्हा जलाने के लिए लकड़ी भी न रही तब पूज्य स्वामी जी ने उन सबकी सुधि ली। क्षेत्र के प्रतिष्ठित सिख ग्रामीणों ने पूज्य स्वामी जी के संकेत पर सोत्साह सेवा कार्य में सहयोग किया। मठ की सारी जनशक्ति व साधन बाढ़-पीड़ितों की सहायता में जुटा दिये गये। ट्रालियों, ट्रैक्टरों पर लाद-लाद कर चावल, रोटियां व आचार बाढ़ में घिरे लोगों तक पहुंचाये गये। लोग भूख से मरे जा रहे थे। सरकार तो तब तक अपनी फाईलों को ही उलट-पुलट रही थी। मठ ने क्या किया, यह वहां की जनता जानती है परन्तु स्वामी जी हमें सारा विवरण नहीं देने देते, इसलिए हम भी विवश है। किसी को यह भ्रम न रहे कि आर्यसमाज कुछ करता ही नहीं, इसलिए ये पंक्तियां लिख दीं।

एक आन्दोलन के सूत्रधार

एक षड्यन्त्र का प्रतिकार

ऋषि-भक्ति से यह छलकता हृदय

डी० ए० वी० कालेज शोलापुर व चंडीगढ़ के एक पूर्व प्राचार्य पं० श्री राम शर्मा मुस्लिम कालीन भारतीय इतिहास के एक प्रसिद्ध विद्वान् थे। आर्यसमाज के साहित्य व इतिहास से उनका कभी कोई लगाव रहा हो, ऐसा उनके किसी भी लेख व व्यवहार से कोई भी प्रमाण नहीं दिया जा सकता। उनका आर्यसमाज के मूर्धन्य विद्वानों व साधुओं से ही कभी कोई सम्पर्क नहीं रहा था।

वे कालेज से सेवा-मुक्त हुये परन्तु नौकरी मुक्त होने की प्रवृत्ति न थी। उन्होंने काम खोज लिया। हरियाणा सरकार ने अपने आर्यसमाजी शिक्षामंत्री के प्रभाव से ऋषि दयानन्द का एक अच्छा जीवन-चरित्र छपवाने का निर्णय किया। पंजाब विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्रीमान् ला० सूर्यभानुजी के

सौजन्य से प्रिंसिपल श्रीराम जी ने इस राशि तक अपनी पहुंच कर ली। यह कार्य पण्डित श्री राम जी को सौंपा गया।

अब पण्डित जी ने पत्रों में विज्ञापन दिये कि मास्टर लक्ष्मण जी लिखित ऋषि जीवन किसी के पास हो तो दीजिए। यह पुस्तक चाहिए, वह चाहिए। पण्डित जी बुढ़ापे में ऋषि-जीवन के अध्ययन में जुट गये। उनका यह उत्साह वन्दनीय था। वह करनाल आदि कई स्थानों पर ऐसी पुस्तकों को प्राप्त करने के लिए पुरानी आर्यसमाजों व पुराने आर्यसमाजियों के पास भी गये।

इस कहानी को सार से आगे कहें तो हम यह कहेंगे कि श्री राम जी ने ऋषि-जीवन संबंधी अपनी खोज जन्म, गृहत्याग, वैराग्य, संन्यास, योग-साधना आदि से आरम्भ न करके झट से ऋषि के देह-त्याग से अपना अनुसंधान आरम्भ किया। शोध को शीर्षासन करवाना भी तो एक चमत्कार ही था।

आर्य प्रादेशिक सभा के स्वर्गीय विद्वान् उपदेशक श्री पं० त्रिलोकचन्द्र जी शास्त्री ने हमें महाशय हंसराज जी आर्य की बेरटा नगरी में यह बताया कि प्रिंसिपल शर्मा अपनी पुस्तक में यह विषैला प्रचार करने जा रहे हैं कि ऋषि का बलिदान विषपान से नहीं हुआ, वे रोग से मरे थे।

यह सुनकर हम चौंक पड़े। हमारे सामने भी एक धर्म-संकट खड़ा हो गया। यदि हम तत्काल प्रिंसिपल शर्मा के इस भ्रामक विचार का खण्डन आरम्भ कर देते तो सम्भव है कि वह अड़ियल व स्वभाव से ही दुराग्रही होने के कारण कोई और विनाशकारी कुचाल चलते। यदि पुस्तक छप जाने पर बोलें तो भी पुस्तक के छपने से बड़ी हानि हो चुकी होगी। हम चुपचाप ऋषि के बलिदान संबंधी प्रमाण एकत्र करने लग गये और आचार्य सत्यप्रिय जी आदि मित्रों से कहा कि वह भी प्रिं० शर्मा के षड्यन्त्र का भण्डा फोड़ करने की तैयारी करें।

प्रिंसितल शर्मा ने बड़ी चतुराई से प्रादेशिक सभा के पत्र आर्य जगत् व दैनिक मिलाप में 'ऋषि के अन्तिम दिन' जैसा कुछ शीर्षक देकर एक लेख दिया जिस की तान इस बात पर तोड़ दी कि ऋषि को विष नहीं दिया गया।

इस लेख के छपते ही हमने दैनिक प्रताप देहली व परोपकारी मासिक में तत्काल इसका उत्तर भेज दिया जिसमें लिखा कि उस समय के राजस्थान के सब नामी इतिहासकार ऋषि के बलिदान के ऐतिहासिक तथ्य की पुष्टि करते हैं।

पूज्य श्री महात्मा आनन्द स्वामी जी ने हमारे लेख को आधार बना कर झटपट एक अच्छा लेख पत्रों में देकर श्रीराम शर्मा को झकझोरा।

प्रश्न था कि अब आगे कैसे इस षड्यन्त्र का सामना करें। प्रिंसिपल शर्मा की पुस्तक छपने से रुकनी चाहिए। आर्य जगत् को कैसे प्रेरित करके आन्दोलन किया जावे। कठिनाई तब यह थी कि वेश-द्वय हरियाणा, पंजाब के आर्यों में वैमनस्य बढ़ा कर पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा को हथियाने में लगे थे। बहुतों का ध्यान इस चुनाव की ओर लगा था।

हमें पता चला कि श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज सिहंपुरा रोहतक में प्रान्तीय आर्य महासम्मेन में आ रहे हैं। हमें पक्का विश्वास था कि यदि पूंज्य स्वामी जी इस कार्य में रुचि लेंगे तो हमें पूरी सफलता मिलेगी। हम सिंहपुरा पहुंचे। स्वामी जी से बात की । आपने वहीं एक बैठक इस प्रयोजन से बुलवा ली। श्री पं० जगदेव सिंह जी सिद्धान्ती ने इस प्रश्न पर बड़ी दृढ़ता दिखाई। हमारा एक भाषण भी वहां इस विषय पर हुआ। हमने ऋषि के विषपान की पुष्टि में प्रमाणों की झड़ी लगा दी। इससे आर्यों में उत्साह का सञ्चार हुआ और यह आन्दोलन चल पड़ा।

बैठक में स्वामी जी महाराज का हम सबको आदेश मिला कि इस झूठ की पोल खोलो और अपने इतिहास को विकृत होने से बचाओ। आर्य मर्यादा में निरन्तर व अन्य पत्रों में भी मैंने लेख पर लेख देने आरम्भ कर दिये। स्वामी सर्वानन्द जी महाराज, महात्मा आनन्द स्वामी जी, पूज्य पं० नरेन्द्र जी हैदराबाद जैसे महापुरुष हमारी पीठ थपथपा रहे थे। सिद्धान्ती जी की हुंकार से अरिदल में कम्पन पैदा हुई। सब विद्वानों का हमें समर्थन मिला। इस विषय पर सबसे पहले लेख दैनिक प्रताप दिल्ली ने छापा फिर तो इतने लेख लिखे कि प्रतिदिन दो तीन लेख लिखकर भेजने पड़ते। अन्य विद्वानों ने भी लेखनी उठा ली।

प्रिंसिपल शर्मा ने लेखक के विरुद्ध एक पत्र अबोहर के प्राचार्य श्री नारायणदास ग्रोवर को भेजा। उन्होंने इस पत्र पर Please Discuss कृपया विचार करने के लिए मिलें, लिखकर मुझे बुलवाया। मैंने श्री प्रा० अशोक आर्य जी को पत्र दिखाकर कहा कि मैं श्री ग्रोवर से कहूंगा कि यदि प्रि० शर्मा कालेज कमेटी से मुझ पर दबाव डलवाकर मुझे चुप कराना चाहते हैं तो यह जान लीजिए कि मैं नौकरी छोड़ सकता हूं। त्याग पत्र दे दूंगा। मैं ऋषि दयानन्द व आर्यसमाज पर वार नहीं सह सकता हूं। स्वामी सर्वानन्द जी महाराज मेरी सर्विस का प्रबन्ध कर लेंगे।

मैंने जाकर पूछा कि किसलिए मुझे बुलाया है। मेरे लेखों का दायित्व कालेज पर नहीं। न कालेज मुझे इस विषय में पूछ सकता है। महात्मा आनन्द स्वामी जी, स्वामी सर्वानन्द जी, श्री पं० नरेन्द्र जी, ज्ञानी पिण्डी दास, प्रो० रामसिंह जी व सिद्धान्ती जी सब मेरी पीठ पर हैं। उनके कहने पर मैंने उन्हें महात्मा आनन्द स्वामी जी का एतद्विषयक एक महत्वपूर्ण पत्र दिखाया। इसकी प्रतिलिपि करवाकर उन्होंने प्रि० शर्मा को भेज दी और कहा, ''यह बड़ा हठी व्यक्ति है। क्या करें?''

इस पत्र को पाकर शर्मा जी और झुंझलाए। महात्मा जी के विरुद्ध एक लेख किसी पत्र में दे दिया। प्रि० शर्मा की पुस्तक इधर-उधर भटकती हमने भी पढ़ी व देखी। छप न सकी। स्वामी सर्वानन्द जी महाराज व आर्य युवक समाज अबोहर ने महर्षि के विषपान पर हमारी एक पुस्तिका भी तब छपवाई। प्रिंसिपल शर्मा इस आन्दोलन से इतने घबराये कि कभी अजमेर, कभी सार्वदेशिक सभा के कार्यालय व कभी श्री प्रिं० रामचन्द्र जी जावेद के पास गये। उन्होंने आज तक सार्वदेशिक के कार्यालय की ओर कभी मुंह नहीं किया था।

'सार्वदेशिक' शब्द से ही वह चिढ़ते थे।

आपने विवश होकर लिखा कि जिज्ञासु जी कहते हैं कि विख्यात इतिहासज्ञ श्री गौरीशंकर ओझा ने ऋषि के विषपान से बलिदान के तथ्य को स्वीकार किया है। यदि जिज्ञासु जी मुझे ओझा जी का प्रमाण दिखा दें तो **"मेरी बुद्धि भी ठिकाने आ जावे।"**

मैंने वैदिक धर्म उर्दू साप्ताहिक में लेख देकर प्रमाण पस्तुत करने की चुनौती स्वीकार की और लिखा शर्मा जी अब तक जो झूठ प्रसाारित करके करोड़ों आर्यों की भावनाओं से खिलवाड़ करते रहे हैं, उसके लिए प्रायश्चित करें। प्रादेशिक सभा के प्रिंसिपल सन्तोषराज जी द्वारा यह सन्देश भी भेजा कि जब चाहें हमारे घर पर आकर प्रमाण देख लें।

आर्यसमाज के इतिहास में यह भी एक अपने ही ढंग का आन्दोलन था। सबको ऐसा ही लग रहा था मानो प्रिं० शर्मा व उनके पीछे जो शक्तियां थीं, उनसे मैं टक्कर ले रहा हूं परन्तु इस आन्दोलन के सूत्रधार तो हमारे पूज्यपाद स्वामी सर्वानन्द जी महाराज थे। वही हमारे प्रेरणास्रोत थे।

उन्हीं दिनों प्रिं० शर्मा के अनर्गल प्रचार से उनके कोमल हृदय को इतनी चोट लगी कि ऋषि-भक्ति से छलकते उनके हृदय से ये भाव निकले, "ऐसे लोग जब सत्य को स्वीकार न करें और झूठ व दुराग्रह पर ही अड़ जावें तो फिर इनका इलाज दण्डा ही होता है।"

स्वामी जी जैसे शान्त-मूर्ति महात्मा के इन शब्दों से उनकी कोमल परन्तु उग्र भावनाओं का पता चलता है। आर्यजाति अपने पूर्वजों का अपमान होते देखकर जब चुप होती है तो विरोधी इस कायरता का लाभ उठाते हैं। धूर्त राजनेता इसे 'सहनशीलता' व उदारता की संज्ञा देते हैं। यह आर्यजाति की आत्मघाती नीति है।

प्रिंसिपल शर्मा ने श्री प्राध्यापक जयदेव आर्य नारनौल से स्वयं कहा था कि हमने आर्यजनता को लेखों व भाषणों से इतना उत्तेजित कर दिया कि उसे धमकी भरे पत्र मिले। वह इन पत्रों व धमकियों से भी डर गया। आर्यजाति अपना व अपने पूर्वजों का अपमान सहती जावे व अपने अधिकार दूसरों के लिए छोड़ती जावे तो यह सहनशीलता व उदारता है। ऐसी सहनशीलता PATIE-NCE तो PATIENT रोगी में ही मिलेगी। स्वस्थ समाज व स्वस्थ व्यक्ति तो चोट की पीड़ा पर तिलमिलायेगा भी और आत्म रक्षा के लिए उत्तर भी देगा। हमें हर्ष है आर्यसमाज में तब कई विपरीत परिस्थितियों के होते हुए भी हम इस आन्दोलन में सफल हुए। इसका बहुत बड़ा श्रेय पूज्य स्वामी जी महाराज को प्राप्त है। यदि पूज्य स्वामी जी तब सिंहपुरा में बैठक न बुलाते तो फिर इतिहास क्या मोड़ लेता, यह अनुमान लगाया जा सकता है। घर में मची आपाधापी का लाभ श्रीराम शर्मा. को ही मिलता।

केरल में वैदिक धर्म प्रचार आन्दोलन के संरक्षक

आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द के जीवन काल में श्री शंकर शास्त्री केरलीय नाम के एक विद्वान् ने वैदिक धर्म ग्रहण किया

परन्तु वह उत्तरभारत में ही कहीं रह गये और ऋषि जी के बलिदान के कुछ समय पश्चात् उनका भी निधन हो गया। ऋषि की वैदिक विचारधारा केरल में प्रवाहित हुई। महात्मा चट्टम्पि स्वामी जी जैसे महान् विद्वान् संन्यासी ने वहां वैदिक नाद गुंजाया। श्री नारायण गुरु स्वामी जी ने भी एक ईश्वरवाद, जाति भेद निवारण, ओंकार उपासना, प्रतिमा-पूजन निषेध आदि पर बल देकर वैदिक मान्यताओं का प्रचार किया फिर भी आर्यसमाज़ वहां पांव न जमा सका। स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज व स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी स्वयं केरल गये। कुछ प्रयास हुए परन्तु आर्यसमाज ने वहां निरन्तर प्रचार न किया।

फरवरी १९६४ में श्री पं० नरेन्द्र भूषण जी ने अपने प्रान्त में वैदिक धर्म प्रचार का आन्दोलन आरम्भ किया। कड़ा संघर्ष करते हुये सफल तथा विफल होते हुये वह इस कार्य में जुटे रहे। अब पच्चीस वर्ष से ऊपर समय हो गया है, वे वहां निरन्तर वैदिक धर्म प्रचार व शुद्धि-कार्य कर रहे हैं। इसका मुख्य श्रेय पूज्य श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज को ही प्राप्त है।

आप आरम्भ से ही केरल के कार्य में अपना संरक्षण व सहयोग देते आ रहे हैं। श्री नरेन्द्र भूषण जी की प्राण-रक्षा के लिए व बढ़ते हुये कार्य को ध्यान में रखकर वहां अपने कार्यालय की आवश्यकता थी। पन्द्रह सहस्र रुपये का 'महर्षि दयानन्द भवन' क्रय किया गया। इसमें स्वामी जी ने तीन सहस्र रुपये पठानकोट आर्यसमाज से दिलवाए और पांच सहस्र मठ से दिया। पूज्य स्वामी जी की सहायता के बिना यह कार्य कदापि संभव नहीं था।

एकबार हमने केरल में स्वामी स्वतंत्रानन्द आयुर्वैदिक औषधालय का विचार बनाया। स्वामी जी ने इसके लिए मठ से औषधियां भिजवा दीं। वैद्य तो वहां भी हैं परन्तु उत्तरभारत में निर्मित औषधियों का उनके द्वारा पूरा-पूरा लाभ न पहुंच सका। कुछ यह भी अड़चन थी कि उनकी आयुर्वेद की पद्धति उत्तर से कुछ भिन्न भी है। इसलिए यह परीक्षण विफल रहा।

सन् १९६८ में पं० नरेन्द्र भूषण जी मठ में गये। आप समझते थे कि पूज्य स्वामीजी औषधालय के बारे पूछताछ करेंगे। स्वामी जी ने चर्चा ही न छेड़ी। श्री पं० नरेन्द्र भूषण जी ने स्वयं ही बात चला दी और कहा, "मेरी अनुभवहीनता समझिए कि यह परीक्षण सफल नहीं रहा। उत्तरभारत की आयुर्वैदिक विधि को जानने वाला कुशल वैद्य हमें मिला नहीं।"

स्वामी जी महाराज के हृदय की विशालता देखिए। आपने उत्तर में एक वाक्य कहा:—

"सबसे सब प्रकार के कार्य नहीं हो सकते।"

एक बार मैंने कहा, "स्वामी जी नरेन्द्र भूषण जी हमारी तो सुनते नहीं, आप इनको ताड़ें कि दिन-रात लिखते ही न रहा करें। एक सीमा में ही साहित्य-सृजन का व स्वाध्याय का कार्य ठीक है। स्वास्थ्य नष्ट हो गया तो क्या होगा?"

स्वामी जी ने कहा, "जिनको ऐसी धुन लग जावे, उनको यदि रोका जाये तो उससे स्वास्थ्य की अधिक हानि होती है। इस कार्य से उनको आत्म शान्ति की प्राप्ति होती है।"

इस लम्बे समय में पं० नरेन्द्र भूषण जी की कई आशायें पूरी न हुई, कई कामों में वह विफल रहे परन्तु, पूज्य स्वामी जी ने उनकी विफलताओं को सामने नहीं रखा, वह क्या कर पाए हैं और क्या कर रहे हैं, यह देखकर निरन्तर सहायता दिये जा रहे हैं। 'आर्य भारती प्रैस' के लगाने में सहयोग किया, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका व अन्य साहित्य के प्रकाशन में जब भी कहा गया, पूरा-पूरा सहयोग किया। इसका यह फल निकला है कि इस साधु की कृपा से आचार्य नरेन्द्र भूषण जी आर्यसमाज के इतिहास में एक बेजोड़ साहित्यकार बनकर चमक रहे हैं। ऋषि के जितने ग्रन्थों का अनुवाद व प्रकाशन आपने किया है और कोई नहीं कर सका।

अभी कुछ वर्ष पूर्व केरल में अथर्ववेद से यज्ञ हुआ। 'श्रीधर देशम ट्रस्ट' नाम की एक संस्था ने इसमें बड़ा सहयोग किया फिर भी कुछ आर्थिक कठिनाइयां थीं। पूज्य स्वामी जी ने तुरन्त दस सहस्र रुपये का सहयोग करके आचार्य श्री नरेन्द्र भूषण जी को संकट से उभार दिया। इस यज्ञ का ही यह प्रभाव पड़ा कि केरल की एक प्रख्यात संस्था SROUTHA SASTHRA PARISHAD

(श्रौत शास्त्र परिषद्) के महामंत्री श्री डा० टी० आई० राधा कृष्णन् जी ने आचार्य नरेन्द्र भूषण जी के नाम अपने आठ सितम्बर १९८९ के पत्र में यज्ञों में पशु-हिंसा के विषय में यह विश्वास दिलाया है:—

"One thing I want to assure is that the idea of inmolation of animal has never occured at any time in our discussion on yajna. In Kerala, I think, it is now taken for granted that there will be no such thing in any yajna."

अर्थात् "एक बात का मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि प्रस्तावित यज्ञ के बारे में विचार-विमर्श करते हुये किसी भी समय यज्ञ में पशु-हिंसा की कोई बात नहीं हुई। मैं समझता हूं कि केरल में अब सदा-सदा के लिए यह निश्चित समझिए कि किसी सोम-यज्ञ में कभी भी पशु हिंसा न होगी।"

आर्यसमाज की यह बहुत बड़ी विजय है। इसका श्रेय पूज्य स्वामी जी के मार्गदर्शन को ही प्राप्त है।

केरल संबंधी स्वामी जी महाराज की महानता का परिचय देने वाली एक और घटना आचार्य नरेन्द्र भूषण जी के शब्दों में ही यहां उद्धृत करना अच्छा रहेगा।

"एकबार मेरे एक कृपालु 'जीवनदानी' जी एक वयोवृद्ध साधु व एक भजनीक को लेकर केरल आ टपके। साधु जी को लाने में तो कुछ तुक भी थी परन्तु ऐसे भजनीक का केरल में क्या उपयोग था, जिसे हिन्दी भी न आती हो? अब वह जीवनदानी सुना है कि इंगलैण्ड में कुछ नौकरी करते हैं। जीवनदानी जी तो

जानबूझ-कर मेरा अपमान करने के लिए केरल पधारे थे।

एकदिन सायंकाल को स्नानादि करके महर्षि दयानन्द भवन में मुझसे कहा कि हमारा प्रवचन कराओ। प्रवचन कराना अला-दीन का दीप रगड़कर भूत को बुलाने वाली बात नहीं। मैंने कहा कि दो-चार दिन ठहर के प्रवचन करवाऊंगा तब तक हम केरल यात्रा का प्रबंध करायेंगे। जीवनदानी ने बात न मानी। दूसरे दिन चल पड़े। उत्तर भारत में आकर यह प्रचार किया कि वहां एक भी व्यक्ति शुद्ध नहीं हुआ और कुछ भी कार्य नहीं हो रहा। इससे मुझे व जिज्ञासु जी को अपमानित् करना ही अभीष्ट था।

संयोग से उन दिनों श्री गोविन्द प्रसाद पूर्व पादरी पीटर को (PETER) हिसार विद्यालय में अध्ययन के लिए भेजा था। जिज्ञासु जी ने जालंधर में एक आर्यसमाज के उत्सव पर उसे संवाददाताओं के सामने लाकर कहा– इनसे पूछो कि यह कौन है और कौन था? गोविन्द जी ने कहा मैं पूर्व पादरी पीटर हूं। २५०० दो सहस्र पांच सौ ईसाइयों के साथ आचार्य श्री नरेन्द्र भूषण जी द्वारा शुद्ध होकर वैदिक धर्मी बना हूं। इससे जीवनदानी जी के झूठ की पोल तो खुल गई परन्तु यह कोई कम आश्चर्य की बात नहीं कि पूज्य श्री स्वामी जी ने आज पर्यन्त मुझे से अथवा जिज्ञासु जी से इस घटना की चर्चा तक नहीं की। आपकी महानता का क्या कहना।"

आगे लिखा है, "केरल में चालीस सहस्र तक विधर्मी हम शुद्ध कर चुके हैं। आर्य जाति के लोगों का धर्मच्युत होना हमने रोक कर दिखाया है। अन्य हिन्दू संस्थायें भी हमारा अनुकरण करते हुये अब शुद्धि का कार्य कर रही हैं। स्वामी जी के शिष्य महात्मा प्रेम प्रकाश जी वानप्रस्थी व श्री डा० ओमप्रकाश जी गुप्ता जी जान से इस शुभ कार्य में लागे हुये हैं। यदि स्वामी जी ने मेरा हाथ न थामा होता तो केरल में आर्यसमाज न होता, न मैं होता और आर्य जाति का फिर क्या होता? यह पाठक अनुमान लगा सकते हैं।"

वैदिक यति-मण्डल की स्थापना

महर्षि दयानन्द बलिदान शताब्दी अजमेर में मनाने का विचार बन रहा था। कुछ प्रतिष्ठित आर्य पुरुष किन्हीं कारणों से अजमेर में शताब्दी मनाने के विरुद्ध थे। उनके क्रथन व सोच में भी कुछ बल था परन्तु भावना प्रधान सब आर्य पुरुषों का यह विचार था कि ऋषि ने देह-त्याग अजमेर में किया था। अतः बलिदान शताब्दी अजमेर में ही मनानी चाहिए। इसी प्रश्न पर विचार करने के लिए तथा साधुओं, ब्रह्मचारियों व वानप्रस्थियों को संघटित करने तथा अशिक्षित व अल्प शिक्षित ऐसे लोगों को प्रशिक्षित करने के लिए व आर्यसमाज के सामने उपस्थित अन्य समस्याओं पर विचार करने के लिए दयानन्द मठ दीनानगर में एक बैठक बुलाई गई।

इसमें एक सौ के लगभग संन्यासी, वानप्रस्थी व ब्रह्मचारी सम्मिलित हुये। महात्मा दयानन्द जी, स्वामी ओमानन्द जी, स्वामी दीक्षानन्द जी, स्वामी सोमानन्द जी, स्वामी सुबोधानन्द जी, स्वामी सुमेधानन्द जी

चम्बा, स्वामी विद्यानन्द जी (तब संभवतः संन्यासी नहीं थे), ब्र० आर्य नरेश जी, आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस सम्मेलन में वैदिक यति-मंडल की स्थापना का सर्व सम्मत निर्णय लिया गया। सब आर्य साधुओं, वानप्रस्थियों व नैष्ठिक ब्रह्मचारियों को इसका सदस्य बनने के लिए प्रेरित किया गया।

पूज्य् स्वामी सर्वानन्द जी को यति-मण्डल का आजीवन प्रधान चुना गया। उन्हें मंडल को चलाने के लिए अपना सहयोगी मण्डल नियत करने का अधिकार दिया गया। सब सदस्यों को स्वामी जी के निर्देश के अनुसार कार्य करने को कहा गया। मण्डल के सदस्यों को अपने कार्य-कलाप का विवरण स्वामीजी को भेजते रहने के लिए कहा गया। यति-मंडल की पहली सफलता यही थी कि महर्षि की बलिदान शताब्दी अजमेर में मनाने का, जो निर्णय इसने लिया, आर्यजगत् ने उसी को मान्य किया।

पूज्य स्वामी सर्वानन्द जीं के रूप में एक निष्कलंक, तपस्वीं, त्यागी विद्वान् महात्मा का नेतृत्व पाकर यति-मण्डल ने आर्य समाज को कुछ झंझोड़ा। गुरुकुल आमसेना उड़ीसा, दयानन्द मठ रोहतक, गुरुकुल गौतम नगर, आबू पर्वत, गाजियाबाद, दयानन्द मठ चम्बा व गुरुकुल झज्जर में यति-मण्डल की कई महत्वपूर्ण बैठकें हो चुकी हैं। यति-मण्डल की स्थापना का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ है कि अब यति-मण्डल के नाम पर किसी भी समय व किसी भी स्थान पर सौ-पचास साधु-वानप्रस्थी व ब्रह्मचारी किसी भी धार्मिक व सामाजिक विषय पर विचार करने के लिए एकत्र हो जाते हैं।

मई १९८९ में यति-मंडल ने नेपाल में एक समारोह किया। इसका आगे कुछ वृत्तान्त दिया जावेगा। विराट्नगर, नेपाल में भी यति-मण्डल की दो दिन बैठक होती रही। देश के सब भागों के साधु-महात्माओं को एक सूत्र में पिरोने का यह एक अच्छा प्रयास है। श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज के व्यक्तित्व के प्रभाव से ही ऐसा हो पाया है। उनके बिना यह कदापि संभव नहीं था। इससे पूर्व भी आर्यसमाज में कई बार ऐसे प्रयास किए गये परन्तु इतनी सफलता कभी भी प्राप्त न हुई। पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी, वेदविद् स्वामी वेदानन्द जी, लौहपुरुष स्वामी स्वतंत्रानन्द जी, श्री स्वामी अभेदानन्द जी, स्वामी आत्मानन्द जी व श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु जैसे महापुरुषों के काल में भी ऐसी संस्था की आवश्यकता अनुभव की जाती रही परन्तु कोई विशेष सफलता न मिली।

आज आर्यसमाज में कोई भी प्रश्न खड़ा होता है तो आर्यजन यति-मंडल का क्या निर्देश है? यह जानना चाहते हैं। यति-मंडल के प्रधान स्वामी सर्वानन्द जी जो कुछ कहेंगे, वह सर्वथा धर्महित में होगा। स्वामी जी जो निर्णय देंगे सो पक्षपात रहित होगा, ऐसा आर्यजनता को पूर्ण विश्वास है। दलबन्दी की दलदल में पड़ना उनके स्वभाव के सर्वथा विपरीत है। अपनी मान-प्रतिष्ठा की उन्हें कतई भूख नहीं। उन्हें तो दिनरात परोपकार व वेद-प्रचार की ही चिन्ता रहती है।

स्वामी सर्वानन्द जी की आर्यसमाज को यह एक ठोस देन है कि आपने यति-मंडल की स्थापना करके भविष्य के लिए एक मार्ग प्रशस्त कर दिया है। न केवल यति-मंडल की स्थापना ही की है प्रत्युत उसे खड़ा भी कर दिया है। आगे आने वाले समय में भी इस संस्था को ऐसे ही किसी पूज्य मुनि महात्मा का नेतृत्व प्राप्त होगा। यह हमें आशा व विश्वास है। इस मंडल की स्थापना का एक लाभ यह भी है कि कुछ दिन के लिए घर-बार छोड़े हुये यतियों को स्वामी जी जैसे महान संन्यासी के सम्पूर्ण व्यवहार को निकट से देखने का अवसर मिलता है। साधु का उठना, बैठना, बोल-चाल, खानपान कैसा हो, यह ऐसे महापुरुष के संग रहने से ही तो पता चलेगा।

यति-मण्डल की बैठकें एक ही स्थान पर नहीं होती। देश के विभिन्न स्थानों पर ये बैठकें आयोजित की जाती हैं, इससे आर्यसमाज के संगठन को बड़ा बल मिलता है। देश से बाहर विराट्नगर, नेपाल में भी यति-मण्डल एक सम्मेलन कर चुका है। यह हम पीछे बता चुके हैं। पूज्य स्वामी जी के तप-त्याग से ही इस संस्था का ऐसा स्वरूप बन सका है।

परोपकारिणी सभा के प्रधान

इस समय आप महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित परोपकारिणी सभा के प्रधान पद को सुशोभित कर रहे हैं। कुछ सज्जनों ने १९८६ ई० में ऋषि मेला के अवसर पर आपको इस सभा का सदस्य चुनना चाहा परन्तु एक सज्जन ने ऐसा खेल खेला कि स्वामी जी तब सदस्य न बनाए जा सके। आप चुनाव में पड़ना पसन्द ही नहीं करते। सर्वसम्मति से चुन लिए जाते तो बात और होती। अगले वर्ष सन् १९८७ में आपको उक्तसभा ने सर्वसम्मति से अपना सदस्य चुन लिया। सन् १९८८ में आप सभा के प्रधान चुन लिए गये।

सभा में अधिकांश सदस्य ऐसे हैं जिन पर घर-गृहस्थी का ही बहुत भार है और कुछ ऐसे हैं जो कई-कई सभा संस्थाओं में कई प्रकार के दायित्व सम्भाले हुये हैं। इस लिए यह सभा अपने अस्तित्व का परिचय नहीं दे पाती। ऋषि के ग्रन्थों का प्रकाशन अवश्य करती रहती है। श्री स्वामी सर्वानन्द जी को प्रधान चुनकर सभा कुछ आगे पग रखती है या नहीं, यह आने वाला समय बताएगा। अजमेर में साधु आश्रम की स्थापना का स्वप्न स्वामी दर्शनानन्द जी ने लिया था। अब उपदेशक विद्यालय की स्थापना का विचार भी बना है। सभा इन योजनाओं में कहां तक सफल होती है, इसके संबंध में अभी कुछ कहना कठिन है।

जब तक समय देनें वाले दो-चार संन्यासी तथा महात्मा सभा को पूरा समय नहीं देंगे. इसकी स्थिति में सुधार नहीं हो सकता। राजस्थान के भाइयों में इस समय तो कोई ऐसा सज्जन दिखाई नहीं देता, जो इन कार्यों के लिए ऋषि उद्यान में जीवन समर्पित कर दे।

विविध महासम्मेलनों में

जब से श्री स्वामी जी ने संन्यास ग्रहण किया है आप को विविध महासम्मलनों की अध्यक्षता करने की प्रार्थना आर्यजन करते रहते हैं। हरियाणा प्रान्त के अनेक प्रान्तीय आर्यसम्मेलनों की अध्यक्षता आप ही ने की है।

दादरी, सिहपुरा व रोहतक के महासम्मेलनों का अध्यक्ष पद आपने सुशोभित किया। आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा ने सभा का शताब्दी सम्मेलन भी मनाया। उसके अध्यक्ष भी आप ही थे। सभा के स्वामी श्रद्धानन्द पुस्तकालय की आधारशिला भी आप ही ने रखी।

आबू पूर्वत के गुरुकुल की नींव आपसे ही रखवाई गई। गुरुकुल झज्जर व गुरुकुल एटा के महोत्सव जो गत वर्षों में मनाये गये, उनमें मुख्य अतिथि आप ही थे। गुरुकुल एटा ने आपको अपना अधिकारी भी चुना है। समर्पण शोध संस्थान ने आपको अपना अध्यक्ष चुना है।

अजमेर में ऐतिहासिक महर्षि बलिदान शताब्दी समारोह के अवसर पर ध्वजारोहण आप के कर-कमलों द्वारा हुआ था। यह एक विचित्र बात है कि इस युग में जब सब लोग पदों के लिए मरते हैं, इस वीतराग साधु में कभी भी किसी पद को ग्रहण करने की इच्छा जागती ही नहीं। गुरुदेव ने अन्तिम समय जो आदेश दिया था उसका पालन करते हुये आप पदों से सदा दूर-दूर ही रहे हैं तथापि आपके महान् त्याग व सौम्य स्वभाव, निर्मल जीवन के कारण अब अनेक संस्थायें आपका नेतृत्व व आशीर्वाद चाहती हैं। इसलिए किसी ने आपको अपना कुलपति चुना है तो किसी ने आपको अपना प्रधान बनाया है और किसी संस्था के आप संरक्षक हैं। जैसे कीच बीच रहकर भी कमल उस से अप्रभावित ही रहता है। वह जल से सदा ऊपर ही रहता है। इसी प्रकार दलबन्दी की दलदल के इस युग में निर्लेप रहकर अपना कार्य करते रहते हैं। झगड़े मिटाना आप का काम है। मिलाप करवाना आप का काम है। सभा संस्थाओं द्वारा भी आप यही कार्य किये जा रहे हैं।

नेपाल में शान्ति-यज्ञ व आर्य साधु सम्मेलन

नेपाल विश्व का एकमात्र हिन्दु राष्ट्र है। भविष्य में यह राष्ट्र हिन्दु रहता है अथवा हिन्दु विरोधी...... यह समय ही बताएगा। भारत के धर्म-विरोधी तत्त्व व विश्व की कट्टरपंथी ईसाई, मुस्लिम शक्तियों को इस वीरों की खान का हिन्दु होना बड़ा अखर रहा है। धर्म निर्पेक्षता के नाम पर हिन्दु द्वेषी शक्तियां इस पर अधिकार जमाने के लिए सिर तोड़ यत्न कर रही हैं। दुर्भाग्यपूर्ण बात तो यह है कि नेपाल में शताब्दियों से अंधविश्वास व रूढ़ियों का बोलबाला है। नेपाल के गोरखों की शूरता का संसार में दूसरा उदाहरण पाना यदि असम्भव नहीं तो अति कठिन अवश्य है।

समय-समय पर आर्यसमाज के महात्माओं व विद्वानों ने नेपाल में धार्मिक जागृति व सामाजिक चेतना पैदा करने का यत्न किया। कई नेपाली युवक गुरुकुल सिकन्दराबाद व अन्य गुरुकुलों में शिक्षा प्राप्ति के लिए प्रविष्ट हुये। एक परम पराक्रमी साहसी आर्यवीर शुक्रराज ने गुरुकुल सिकन्दराबाद से शिक्षा प्राप्त करके अपने देश नेपाल में जन-जागरण का शंख फूंका। वेद-ज्योति के प्रसार के लिए उसने अपना जीवन लगा दिया। वहां के शासकों व पोंगा पंथियों को ज्ञान उजाला अच्छा

न लगा। नेपाली जनता ने तो वीर शुक्रराज को अपना मुक्तिदाता जाना व माना परन्तु वहां के शासकों ने अपने हित-अहित को न समझा।

वीर शुक्रराज को वृक्ष से लटका कर फांसी दण्ड दिया गया। उसने वीरगति पाई। वह रक्तसाक्षी बनकर आज अपने देशवासियों के लिए प्रेरणा स्रोत बन चुका है। उसके बलिदान के पश्चात् भी कई गोरखा युवक गुरुकुलों से विद्वान् बनकर निकले परन्तु आर्यसमाज नेपाल में अपने पांव न जमा सका। आह! यह कितने दुर्भाग्य की बात है कि नेपाल को हिन्दु कहने वाले शासन ने ईश्वर की वाणी वेद के रक्षक, पोषक व प्रकाशक आर्यसमाज को नेपाल में पनपने ही न दिया।

श्री ब्र० नन्दकिशोर की प्रेरणा से वैदिक यति-मण्डल ने मई सन् १९८९ के अन्तिम सप्ताह नेपाल के विराट्नगर में एक शान्ति-यज्ञ व आर्य साधु सम्मेलन आयोजित किया। इस सारे कार्यक्रम की आर्य पत्रों में कोई Publicity (प्रचार) न हुआ। किसी भी सभा ने इस अयोजन को न तो कोई महत्त्व दिया और न ही इसमें कोई सहयोग दिया फिर भी बिना किसी विज्ञप्ति व अपील के इस कार्यक्रम में काश्मीर से लेकर कर्नाटक तक के प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

यह सब पूज्य स्वमी सर्वानन्द जी महाराज के व्यक्तित्व का आकर्षण व प्रभाव था कि यह कार्यक्रम अत्यन्त सफल रहा। सम्मेलन के आरम्भ होने से कई दिन पूर्व विराटनगर में यज्ञ आरम्भ हो चुका था। इसके ब्रह्म श्री आचार्य सत्यप्रिय जी शास्त्री थे। पूज्य श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज अपने शिष्य स्वामी सहजानन्द जी व मठ के कई महात्माओं व ब्रह्मचारियों के साथ देहली पहुंचे। देहली में आर्यसमाज चूना मण्डी, पहाड़गंज में आपके ठहरने की व्यवस्था थी।

स्वामी जी ने इस आर्यसमाज को सन्देश भेजा कि हम अपने भोजन आदि की व्यवस्था स्वयं करेंगे। यह स्वामी जी का बड़प्पन था परन्तु आर्यसमाज के प्रधान जी भला इस सुझाव को कैसे मान सकते थे? उक्त आर्यसमाज ने अपने पूज्य संन्यासी व उनकी मण्डली का यथोचित सेवा-सत्कार किया।

इधर स्वामी सुमेधानन्द जी गुरुकुल झज्जर वाले आर्यसमाज नया बांस, देहली में पहुंचे। आपने इस आर्यसमाज को यह प्रेरणा दी कि स्वामी जी के साथ जाने वालों के भोजन की व्यवस्था नया बांस, आर्यसमाज करे। अपनी सजीली परम्पराओं के अनुसार आर्यसमाज नया बांस ने हम सब लोगों के लिए जो श्री महाराज के साथ देहली से चले थे— भोजन, जल, मिठाई का ऐसा बढ़िया प्रबंध किया कि जिसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। इस आर्यसमाज के कुछ सज्जन स्वामी जी को विदाई देने के लिए स्टेशन पर भी पहुंचे थे।

मार्ग में स्टेशनों पर प्रचार करते हुये कड़ी गर्मी में यह दल जोगबनी पहुंचा। वहां ब्र० नन्दकिशोर जी स्थानीय लोगों के साथ स्वागत को आए हुये थे। स्टेशन से धर्मशाला बहुत दूर थी। श्री स्वामी जी को जीप पर बैठने के लिए कहा गया। आपने कहा, "मैं सब लोगों के साथ पैदल ही चलूंगा।"

इस बात का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। गली-बाज़ारों से भजन बोलते हुये व जयकारे लगाते हुये आर्य साधु, वानप्रस्थी, ब्रह्मचारी, गृहस्थी स्त्री-पुरुष धर्मशाला में पहुंचे। वहां रात्रि के समय श्री पं० सत्यपाल जी पथिक के भजन, प्राध्यापक राजेन्द 'जिज्ञासु' का व्याख्यान व पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी का प्रवचन व आशीर्वाद हुआ। प्रातःकाल महात्मा हरद्वारी लाल ज़ी गुरुकुल सिंहपुरा, रोहतक ने बड़े भक्तिभाव से यज्ञ-हवन की व्यवस्था की। महात्मा जी के भजन हुये और प्राध्यापक राजेन्द्र जिज्ञासु का वेदोपदेश हुआ। यह सारी व्यवस्था लाला सीताराम जी ने की थी। फिर जोगबनी से विराट्नगर को प्रस्थान किया। उन दिनों भारत व नेपाल के संबंध बड़े कटु थे फिर भी नेपाल के राज्य कर्मचारियों वे नेमाली जनता की आर्य साधुओं के प्रति श्रद्धा भक्ति देखने योग्य थी। किसी ने भी किसी प्रकार से हमें परेशान न किया।

विराट्नगर के एक मन्दिर में यज्ञ व अन्य कार्यक्रम रखा गया। वहीं रहने की सब व्यवस्था थी। भोजन आदि की व्यवस्था अत्युत्तम थी। एक सार्वजनिक सभा में प्रमुख आर्य विद्वानों व संन्यासियों का स्वागत सम्मान किया गया। श्री स्वामी जगदीश्वरानन्द जी, श्री सत्यपाल जी पथिक, आचार्य श्री सत्यप्रिय जी, स्वामी विद्यानन्द जी, प्राध्यापक राजेन्द्र जिज्ञासु के इस अवसर पर व्याख्यान हुए। नेपाल के पूर्व प्रधानमंत्री श्री नगेन्द्र ने इस समारोह में बड़ा प्रभावशाली भाषण दिया। अन्त में पूज्य स्वामी श्री सर्वानन्द जी ने नेपाल राष्ट्र को अपना शुभ आशीर्वाद दिया।

प्रतिदिन यज्ञ-हवन के पश्चात् भी श्री स्वामी विद्यानन्द जी व पूज्य श्री स्वामी सर्वानन्द जी श्री पं. वेदप्रकाश जी के सारगर्भित वेदोपदेश होते रहे। महिलाओं ने भी अपना सम्मेलन किया। मीरायति जी आदि के व्याख्यान तथा भजन हुये।

इस अवसर पर प्रतिदिन यति-मण्डल की बैठक होती रही। वैदिक धर्म प्रचार को बढ़ाने व वैदिक धर्म पर अन्दर व बाहर से होने वाले आक्रमणों का उत्तर देने के लिए सजग व सक्रिय होने की सबको प्रेरणा मिली।

विराट्नगर में पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज के कर-कमलों से आर्यसमाज मन्दिर व गुरुकुल की आधारशिला रखी गई। नगर से बाहर बहुत दूर गुरुकुल स्थापित हो चुका है। शोभायात्रा निकालते हुये भजन बोलते हुये सोत्साह गुरुकुल भूमि में पहुंचे। नेपाल के पूर्व प्रधानमंत्री श्री नगेन्द्र अपनी कार लेकर आए और पूज्य स्वामी जी को कार में बिठाकर गुरुकुल-भूमि की ओर चलने की प्रार्थना कीं। श्री स्वामी जी ने कहा, "मैं सभी के साथ वहां पैदल ही चलूंगा।"

इस पर श्री नगेन्द्र अपनी कार होते हुये भी स्वामी जी के साथ वहां तक पैदल ही गये। एक महान् संन्यासी के प्रति उनकी यह श्रद्धा देखकर सब पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा।

गुरुकुल-भूमि में स्वामी ओमानन्द जी के गुरुकुल झज्जर के ब्रह्मचारियों के आसनों के व्यायाम देखकर सब बहुत गद्गद् हुये। इस अवसर पर विराट्नगर के नये गुरुकुल के लिए जनता ने उदारतापूर्वक दान दिया। श्री लाला

सीताराम जी जोगबनी के पुरुषार्थ व सहयोग की सभी ने बड़ी प्रशसा की। विराटनगर का यह साधु-सम्मेलन व यज्ञ एक प्रारम्भिक प्रयास था। नेपाली जनता तो इसमें अधिक न थी। वर्षा भी इसका एक कारण था परन्तु आरम्भिक पग तो आरम्भिक ही होता है। यह आशा की जाती है कि नेपाली आर्यवीर श्री पं० पीताम्बर जी, उनके सहयोगी मित्र, लाला सीताराम जी, सीलीगुड़ी के पं० रतिराम जी व ब्र० नन्दकिशोर जी जैसे पुरुषार्थी, परमार्थी इस नन्हे गुरुकुल को उन्नत विकसित करने के लिए सब कुछ करेंगे। यह वाटिका फूले फलेगी। इस गुरुकुल के द्वारा नेपाल में नव-जीवन का सञ्चार होगा। पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी यति-मण्डल द्वारा इस गुरुकुल को सब प्रकार की सहायता पहुंचा रहे हैं। श्री स्वामी जी का यह स्वभाव है कि वे दायें हाथ से उपकार करते हैं तो बायें हाथ को पता भी नहीं लगने देते। इसलिए अब तक इस गुरुकुल के लिए उन्होंने क्या-कुछ किया है, यह बता पाना हमारे लिए भी कठिन है। हम तो इतना ही जानते हैं कि यह सब कुछ उन्हीं के आशीर्वाद व प्रेरणा का फल है। स्वामी जी ने अपने जीवन में कई संस्थाओं का निर्माण किया है। उनको सृजन का एक वरदान प्राप्त है। उनके द्वारा संचालित प्रत्येक संस्था का अपना-अपना महत्त्व है परन्तु गुरुकुल विराट्नगर का तो विशेष महत्त्व माना जावेगा।

भविष्य में यहां से बड़े -बड़े विद्वान् व कर्मवीर ब्रह्मचारी निकलेंगे। इस तपोभूमि में कई सम्मेलन व शिविर लगेंगे। अभी से यह गुरुकुल दूर-दूर के धर्मप्रेमियों के लिए एक आकर्षण रखता है। यात्री गुरुकुल आने-जाने लग गये है। पूज्य स्वामी जी ने एकबार फिर वहां यतिमंडल की बैठक रख ली तो फिर इस लहर को और बल मिलेगा।

फूले फले संसार में यह रम्य वाटिका,
वैदिक पवित्र धर्म का जग में प्रचार हो।

नेपाल के यज्ञ में रामराज का एक दृश्य

श्री स्वामी सुमेधानन्द जी ने विराट्नगर में यज्ञ व संन्यासी-सम्मेलन की एक रोचक प्रेरणाप्रद घटना हमें स्मरण करवाई। अबोहर से मेरे साथ मेरी पुत्री कु० कविता आर्या तथा हमारे एक स्नेही चौ० रायसिंह जी का सुपत्र श्री संजय भी गये थे। जोंगबानी से बसों पर विराट्नगर गये थे। सभी यात्री एक बस पर तो जा नहीं सकते थे। इसलिए बस यात्रियों को छोड़ कर फिर पीछे वालों को लेने आती थी।

हम सब विराट्नगर पहुंच गये तो पर्याप्त समय बीत जाने के पश्चात् संजय कुमार ने मुझे कहा कि मेरी अटेची यहां नहीं पहुंची। मैंने कहा कि अटेची तो तेरे पास ही थी, गई कहां? तू साथ नहीं लाया?

उसने कहा, ''जोगबानी में जब सामान बस में रखा जा रहा था तो मैंने अपनी अटेची भी रखवा दी थी। मैं अगले चक्र में यहां पहुंचा।''

अब यह बात सुनकर मैं स्तब्ध रह गया कि इसने छोटी-सी अटेची भी अपने हाथ में न रखी। किसी को सौंपी भी नहीं थीं कि वहां पहुंच

कर बस से उतार लेना। अटेची में जहां वस्त्र थे, रुपये भी उसने अटेची में ही रख छोड़े थे। अटेची अब क्या मिलेगी, ऐसा मुझे लगा।

चिन्तित होकर श्री स्वामी सुमेधानन्द जी व कुछ अन्य सज्जनों से कहा कि ऐसी-ऐसी बच्चे से भूल हो गई है। उसके माता-पिता मुझे क्या कहेंगे? इसने न तो अटेची किसी के हाथ में थमाई और न ही अपने पास रखी। अब हम किससे पूछें? क्या करें?

स्वामी सुमेधानन्द जी ने अपने सहज साधुस्वभाव से कहा, "चिन्ता क्यों करते हो, मिल जावेगी। कहीं नहीं जाती अटेची। यहां से कहां जा सकती है। पूछते हैं यहां सबसे।"

कुछ ही समय में सबको इस बात का पता लग गया। तभी किसी ने कहा कि एक अटेची स्वामी सर्वानन्द जी को कोई सौंप गया है। उसका पता नहीं लग रहा, किस की है? स्वामी जी के पास जाकर देखा तो वह अटेची संजय की ही थी। स्वामी जी महाराज भी सब से पूछ रहे थे कि यह अटेची किस की है।

मथुरा की १९२५ ई० की महर्षि की जन्मशताब्दी में तो राम राज के ऐसे-ऐसे दृश्य सुने व पढ़े थे फिर कभी किसी धार्मिक महासम्मेलन में ऐसा सात्विक वातावरण देखने को नहीं मिला। जहां भी कोई समारोह होता है जेबकतरे व लुटेरे श्रद्धालुओं से पहले ही पहुंचे जाते हैं। और कोई ठग्ग न भी पहुंच जावे जूताचोर तो सर्वत्र घुस ही जाते हैं। श्री स्वामी सर्वानन्द जी ने ऐसे भद्र भाव भर दिये कि अवाञ्छित तत्त्व इस कार्यक्रम में न पहुंचे।

रोग-निवारण यज्ञ भी साथ-साथ

श्री स्वामी जी नेपाल में अपने साथ एक झोले में औषधियां भरकर भी ले गये थे। वैसे तो वहां और भी कई साधु महात्मा, ब्रह्मचारी औषधियां लेकर गये थे। अतः किसी भी यात्री को कुछ हो जाने पर कुछ भी परेशानी नहीं होती थी।

सब यात्रियों ने पूज्य स्वामी जी महाराज की उपस्थिति का वहां यह पूरा-पूरा लाभ उठाया कि जिसको भी वहां कुछ हुआ या पहले से ही कोई रोग था, सब भागे-भागे स्वामी सर्वानन्द जी महाराज के कमरे पहुंच जाते। श्री महारांज ने ऐसे एक-एक यात्री की कहानी सुनकर और्षाध अपने पास से दी। कई बहुत मूल्यवान् औषधियां भी उनके पास थीं। सब वितरित कर दी गईं। उनंका यह सेवा-यज्ञ चलता ही रहा। दिन हो या रात अथवा प्रभात। कुछ रोगी स्वामी जी को घेरे ही रहते थे। इस अखण्ड यज्ञ की महिमा हम यहां क्या लिखें। स्वामी जी बताते नहीं हैं परन्तु हम अनुमान-प्रमाण से कह सकते है कि आपने इस अवसर पर सहस्रों रुपये की औषधियां बांटी होंगी। यात्रियों ने तो लाभ उठाया ही, नेपाल के भाई भी महात्माओं से जड़ी-बूटी औषधि पूछने आते थे। वानप्रस्थी सूर्यदेव जी तो चुंगी पार करते हुये ही गोरखा वीरों की इस सेवा में लग गये। इससे आर्य महात्माओं का बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा।

असहाय के सहाय हों उपकार हम करें,
अभिमान से बचें, हृदय निर्भय उदार हो।

स्मृतियों के टापू में

मान होता है नहीं धन धाम से।
मान होता है न सुन्दर चाम से।।
मान ऊंची डिगरियों से भी नहीं।
मान होता है सदा शुभ काम से।।

कविरत्न 'प्रकाशचन्द्र'

अष्टम परिच्छेद

प्रातःकाल प्रभु-कीर्तन करन

श्री रामकृष्ण जी वानप्रस्थी आर्यसमाज दीनानगर के मंत्री थे। धर्मवीर रक्तसाक्षी पं० लेखराम जी के बलिदान पर्व से एक दिन पूर्व वे मठ में आए और श्री स्वामी जी से कहा, कल पं० लेखरामजी के बलिदान पर्व पर प्रभात फेरी निकलेगी। कृपया ब्रह्मचारियों को भेजिएगा।"

सायंकाल हवन-सन्ध्या के पश्चात् जब ब्रह्मचारी श्री महाराज के चरण-स्पर्श करने गये तो आपने मंत्री जी की सूचना सबको सुना दी। सभी ब्रह्मचारियों ने कहा, "मैं चलूंगा, मैं भी चलूंगा, मैं भी चलूंगा।"

पूज्य स्वामी जी ने पूछा, अच्छा! प्रातःकाल कौन सा भजन बोलेंगे? ब्र० सुभाष ने कहा, "मैं भजन बोलूँगा—

सिर जावे तो जावे मेरा वैदिक धर्म न जावे।
हम रुकना झुकना क्या जाने, हम बढ़ते हैं सीना ताने।"

इस पर स्वामी जी ने कहा, "प्रातःकाल की वेला में सिर क्यों जाने देते हो? सिर पर ही क्यों लेते हो? प्रातःकाल की अमृत वेला में प्रभु भक्ति के भजन बोलने चाहिएं। "प्रातः की वेला प्रभु कीर्तन की वेला है।" यह कितना उत्तम व व्यावहारिक उपदेश है। हुतात्माओं का वीरों का पुण्य स्मरण, उनका यशोगान अत्यावश्यक है परन्तु प्रभु भक्ति की वेला में—प्रभु कीर्तन ही मुख्य कर्त्तव्य है यह संस्मरण गुरुकुल येडशी रामलिंग (महाराष्ट्र) से आचार्य श्री सुभाष जी ने भेजा है।

उस दिन भोजन नहीं किया करते

पूज्य आचार्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज ब्रह्मचारियों को भूल सुधार के लिए उपदेश देते हैं, समझाते हैं परन्तु कोई बार-बार भूल करे तो फिर दण्ड भी देते हैं। आचार्य सुभाष जी लिखते हैं कि जिस दिन श्रद्धेय स्वामी जी किसी विद्यार्थी को दण्ड देते थे, उस दिन वे भोजन नहीं किया करते थे। इससे प्रमाणित होता है कि किसी को दण्ड देकर उनकी आत्मा को अति कष्ट होता है।

जब प्यार से पास बुलाकर दूध पिलाया

आचार्य सुभाष जी ने ही अपने संस्मरणों में लिखा है कि मैं श्री सोनेराव जी के साथ मठ में पहुंचा था। मेरे पारिवारिक संस्कार बहुत पौराणिक थे। मैं अपनी पारिवारिक परम्परा का पालन करते हुए दृढ़तापूर्वक व्रत उपवास रखा करता था। मठ में पहुंचा तब भी एकादशी व्रत रखने में ढील नहीं आने दी। व्रत उपवास रख कर मैं अपने को बड़ा धार्मिक समझता था। मुझे ऐसा लगता था कि मैंने एकादशी के दिन उपवास करके विशेष पुण्य अर्जित कर लिया है।

एकदिन भोजन की घण्टी बजी तो मैं भोजन करने नहीं गया। ब्रह्मचारी भोजन करके आ गये और मुझे पूछा कि तुम भोजन करने क्यों नहीं गये? मैंने कहा, "मैंने एकादशी का व्रत रखा है।" ब्रह्मचारियों ने कहा, "हम तुम्हारी यह बात स्वामी जी महाराज को बताएंगे।"

ब्र० सुभाष यह समझे कि स्वामी जी महाराज एकादशी व्रत की बात सुनकर मुझे आशीर्वाद देंगे और बहुत प्रसन्न होंगे। ब्रह्मचारियों ने स्वामी जी को जाकर बतला दिया कि सुभाष तो एकादशी व्रत के चक्र में भोजन करने नहीं आया। स्वामी जी ने तुरन्त सुभाष जी को बुलवाया और पूछा, "भोजन क्यों नहीं किया?

ब्र० सुभाष ने कहा, "मेरा एकादशी व्रत है।"

यह सुनकर श्री महाराज ने शिष्य को बड़ा डांटा और कहा बावला है। किस से पूछकर उपवास रखता है? पहले ही हड्डियों का ढांचा है और दुर्बल हो जावेगा। इस आयु में बलवान न बना तो फिर कब बनेगा? कैसे देश व समाज का काम होगा? कौन धर्म-रक्षा व धर्म-प्रचार करेगा?

ब्र० सुभाष समझा कुछ था और हुआ कुछ और अब मन से दुखी ब्रह्मचारी कुटिया से अपने कमरे की ओर चला और सोचा कि ब्रह्मचारी तो मेरी खिल्ली उड़ायेंगे। मेरी धार्मिकता की अच्छी पोल खुली।

अभी कमरे में नहीं पहुंचा था कि पीछे से फिर आवाज देकर श्रद्धेय स्वामी जी ने बुलवा लिया। प्यार से गुरुदेव बोले, "उपवास मत किया करें। गर्म-गर्म दूध मंगवाया। स्वयं शिष्य को पिलाया और कहा जाओ, अब पाकशाला में भोजन करो। सुभाष जी ने भोजन किया। यह उनके जीवन का अन्तिम एकादशी व्रत था। स्वामी जी महाराज की डाँट में कितना प्यार भरा हुआ था। ये उनके उपरोक्त शब्द बताते हैं। शिष्य के लिए प्यार, देश के लिए प्यार, धर्म के लिए प्यार और आर्यसमाज की कितनी पीड़ा है श्री महाराज को। बारम्बार उपरोक्त डाँट-डपट को पढ़िए तो श्रद्धेय मुनि के चरणों में स्वतः ही शीश झुकेगा। यह भी स्मरण रहे कि तब श्री सुभाष जी बहुत दुबले-पतले थे। अब तो शरीर ब्रह्मचर्य के तप से सुकठोर गठीला बनता जा रहा है।

वह फीकी चाय और वे मधुर भाव

आचार्य सुभाष जी ने ही अपने संस्मरणों में लिखा है कि एकबार हम तीनचार ब्रह्मचारी पूज्य स्वामी जी के साथ एक ग्राम में प्रचारार्थ गये थें। वहां से लौटे तो मार्ग में एक वृद्धा माता ने श्री महाराज को अत्यन्त आग्रहपूर्वक अपने निवास पर चलने को कहा। स्वामी जी ने मान लिया।

वहां गये तो स्वामी जी के बार-बार रोकने पर भी उस माता ने चाय बना दी। सबके आगे रख दी। इनमें कोई भी चाय पीने वाला न था। स्वामी जी ने उसकी श्रद्धा को देखकर चाय ले ली। ब्रह्मचारियों को भी लेनी पड़ी। चाय का घूंट पिया तो मीठा था ही नहीं। ब्रह्मचारियों की जान पर बन आई। करें तो क्या? कभी चाय का स्वाद न देखा था। आज चाय पीनी पड़ी तो

बिना मीठे के फीकी (अथवा कड़वी कहें) परन्तु स्वामी जी महाराज ने लेकर जो पीनी आरम्भ कर दी तो ब्रह्मचारी क्या करते?

स्वामी जी के बड़प्पन का ध्यान करके यह कह ही न सके कि माता जी आप तो मीठा डालना ही भूल गईं। सबने श्रद्धेय स्वामीजी के व्यक्तित्व का ध्यान रखते हुए श्रद्धालु माता के मधुर भावों की प्रतीक वह चाय पी ली। ब्रह्मचारियों को यह चाय कभी भूल सकती है क्या? इसमें मीठा भले ही न था परन्तु इसमें गुरु के जीवन का, तप का, संयम का, साधना का रस था। यह वाणी से नहीं, आचरण से उपदेश था।

श्रद्धेय स्वामी स्वतंत्रानन्द जी भी खीर में बूरा-खाण्ड की बजाए नमक डाल दिये जाने पर भी न बोले और खीर खा गये। गृहपति बाद में पछताया। आचार्य स्वतंत्रानन्द जी महाराज ने जिस शिष्य को घड़-घड़कर बनाया, वे भी उन्हीं के चरण-चिन्हों पर चलते हुए संन्यास की मर्यादाओं का कैसे-कैसे पालन कर रहा है—यह घटना उसका एक उदाहरण है। श्री महाराज की ऐसी-ऐसी घटनाओं को पढ़कर-सुनकर महर्षि दयानन्द जी, तपोधन स्वामी दर्शनानन्द जी, वीतराग स्वामी सर्वदानन्द जी, मुनिवर स्वामी आत्मानन्द जी महाराज जैसी विभूतियों का स्मरण हो आना स्वाभाविक ही है। आर्यसमाज जीवित है तो इसका कारण आर्यसमाज की सम्पदा या आर्यसमाज के ईंट-पत्थर के भवन नहीं हैं। आर्यसमाज के जीवन का रहस्य ऐसे-ऐसे मुनियों की साधना है।

दुखियों की सेवा का भाव

स्वामी शंकरानन्द व स्वामी सम्पूर्णानन्द जी आयु में स्वामी सर्वानन्द जी से बड़े थे। खाने-पीने में दोनों का संयम नहीं था। अतः रुग्ण रहते थे। जैसा कि औरों के संस्मरणों में भी आया है। स्वामी जी महाराज चपुचाप किसी को बिना बताए उनके मल-मूत्र को उठाते व उनके वस्त्र भी बदल देते यदि कोई ब्रह्मचारी रुग्ण हो जाता तो स्वामी जी स्वयं उसके पास जाकर औषधि देते और आप ही नहलाते। ऐसा श्री आचार्य सुभाष जी ने अपने संस्मरणों में लिखा है

पीयूषपाणि पूज्य स्वामी जी महाराज

स्वामी जी महाराज निराश-हताश रोगियों का अपने सुमधुर शब्दों से उत्साह बढ़ाते हैं। सर्पदंशी आ जावे तो स्वामी जी उसे मिट्टी के रोड़े, ढेले चबाने के लिए व थूकने के लिए कहते हैं जब खाकर थक जाता है तो फिर ऐसे रोगी को औषधि देते हैं। ऐसे रोगियों को ठीक करके भेजते हैं। वे साक्षात् पीयूषपाणि हैं, ऐसा आचार्य सुभाष जी ने अपने संस्मरणों में लिखा है।

प्रवचन में ऐसा कोई शब्द न हो

आचार्य सुभाष जी ने लिखा है कि स्वामी जी महाराज मुझे सत्यार्थप्रकाश की कथा करने के लिए आर्यसमाज में भेजते थे। फिर धीरे-धीरे मेरे वहां प्रवचन भी होने लगे। पूज्य स्वामी जी भी श्रोता बनकर साप्ताहिक सत्संग में बैठा करते थे। एकदिन मैंने प्रवचन दिया।

कुछ कण्ठ की हुई बातें कहीं और कुछ जो मन में सूझी सो कहीं। मुझे ऐसा लगा कि मैंने

बहुत जोशीला, ओजस्वी भाषण दिया है।

मठ में आया तो स्वामी जी ने मुझे कुटिया में बुलवा लिया और कहा "आपने भाषण में नालायक शब्द का प्रयोग किया। सत्संग में प्रवचन में ऐसे शब्दों का प्रयोग ठीक नहीं। यह सभ्यता नहीं। सत्संग में सदा सुमुधर शब्दों का प्रयोग किया करें।" ऐसा करने से प्रवचन का प्रभाव बढ़ता है। वक्ता की प्रतिष्ठा बढ़ती है। स्वामी जी महाराज स्वयं इसका मूर्तिमान् उदाहरण हैं।

श्री स्वामी बेधड़क जी ने भाव विभोर होकर कहा

हरियाणा प्रदेश के भारत प्रसिद्ध कर्मठ आर्य साधु व स्वतंत्रता सेनानी श्री स्वामी बेधड़क जी सन् १९७९ के आसपास बहुत रुग्ण हो गये। प्रचार फिर भी करते रहते थे। कुछ आर्य पुरुषों के आग्रह पर वे दयानन्द मठ दीनानगर चले गये।

कहने की तो आवश्यकता ही न थी। पूज्यपाद स्वामी सर्वानन्द जी महाराज ने श्री स्वामी बेधड़क जी के विश्राम की समुचित व्यवस्था कर दी। स्वयं श्री महाराज वयोवृद्ध स्वामी बेधड़क जी की सेवा में लग गये। समय पर उन्हें औषधि दी जाती। दिन में दो-तीन बार स्वामी जी स्वयं उन्हें गो दुग्ध पिलाते। उनको अपने वस्त्र भी न धोने दिये जाते।

स्वामी बेधड़क जी कुछ सप्ताह में रोगमुक्त हो गये। अपने स्वभाव के वशीभूत वे प्रचार में जुट गये। एकदिन बिना किसी पूर्व सूचना के वे हमारी कुटिया में पधारे। हमने कुशल-क्षेम पूछा तो स्वामी बेधड़क जी भाव-विभोर होकर बोले, "जिज्ञासु जी मैं मठ गया था। कई दिन वहां रहा। स्वामी जी ने मेरी सेवा में दिनरात एक कर दिया। एक दिन मैंने स्वामी जी से कहा कि आप मुझे औषधि दे रहे हैं, भोजन, दूध, वस्त्र व फल सब कुछ मुझे दे रहे हैं। मठ में सब साधुओं की इतनी आप देखभाल करते हैं, फिर आर्यसमाज में लोग यह क्यों कहते हैं कि साधुओं को कोई नहीं पूछता।"

बेधड़क जी ने बताया कि उनके इस प्रश्न के उत्तर मे स्वामी जी ने कहा, "मैं औषधि, भोजन व वस्त्र की व्यवस्था तो कर सकता हूं परन्तु बहुत से साधु ऐसे हैं जो टके चाहते हैं। मैं टके कहां से दूं?" ये शब्द कहकर स्वामी बेधड़क जी ने श्री स्वामी सर्वानन्द जी के सेवाभाव व महानता का जी भर कर बखान किया।

"इन्हें ईश्वर का वरदान प्राप्त है"

यह कोई १९६५ ई० के लगभग की घटना है। किसी आर्यसमाज का उत्सव था। कई उपदेशक तथा प्रचारक बैठे हुये थे। श्री स्वामी सुधानन्द जी भी वहीं विराजमान थे। इन पंक्तियों का लेखक भी पास ही बैठा था। किसी उपदेशक ने पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी की सेवा की एक कहानी सुनाई। बस, फिर क्या था, वहां हम लोगों की चर्चा का विषय ही स्वामी जी महाराज द्वारा पीड़ित दुखिया रोगियों की सेवा बन गया। तब स्वामी जी द्वारा अनेक बार रोगियों का मल-मूत्र उठाने की कई घटनायें सुनीं।

वयोवृद्ध दिवंगत स्वामी सुधानन्द जी चुपचाप बैठे सबकी बातें सुनते रहे। बहुत कुछ सुनने के पश्चात् बोले, "आप लोग स्वामी सर्वानन्द जी महाराज की सेवा का इतना यशोगान कर रहे हैं। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। स्वामी जी के किन्हीं पूर्वजन्मों के पुण्य कर्मों व साधना के फलस्वरूप उनको ईश्वर का वरदान प्राप्त है कि उनके हाथों सदैव रोगी रोग मुक्त होते रहेंगे और इन्हें सेवा के नये-नये अवसर मिलते रहेंगे। इनका यश बढ़ता ही रहेगा। बिना भाग्य के यश भी प्राप्त नहीं होता।"

जब कभी और जहां कहीं स्वामी जी महाराज की सेवा की चर्चा होती है, हमें श्री स्वामी सुधानन्द जी महाराज के ये शब्द याद आ जाते हैं।

जब बिहार में अकाल पड़ा

यह १९६७ की ही घटना होगी कि बिहार प्रदेश में भयकंर दुष्काल पड़ा। पंजाब, हरियाणा में भी बिहार के अकाल पीड़ितो के लिए अन्न-संग्रह हो रहा था। ग्रीष्म अवकाश में हम परिवार सहित मठ में गये। रविवार का दिन आया। हमें पूज्य स्वामी जी ने प्रचारार्थ पठानकोट आर्यसमाज में भेजा और कहा आप वहां केरल के कार्य का कुछ परिचय दे आना फिर वहां से हम सहायता भिजवा देंगे।

पठानकोट व्याख्यान देकर हम बाद दोपहर मठ लौटे। श्रीमती जी ने पीछे घटी एक घटना सुनाई। मठ की भूमि में उस वर्ष बहुत आलू पैदा हुये। कुछ बेच दिये गये, कुछ मठ के लिए सुरक्षित रख लिए गये और जो बहुत छोटे-छोटे आलू थे, वे मठ की पाकशाला के पास पड़े हुये थे। ये थे तो अच्छे परन्तु बहुत छोटे, ऐसे जिन्हें कोई भी खाना पसन्द न करे।

कुछ ब्रह्मचारियों ने कहा, "स्वामी जी इन्हें क्या करना है, इन्हें बाहर क्यों न फेंक दिया जाये?"

स्वामी जी ने कहा, ब्रह्मचारियो! देखो यह आलू गले-सड़े तो हैं नहीं। बहुत दिनों के भी नहीं। एक ही कमी है कि यह बहुत छोटे हैं। बिहार में हमारे भाई अन्न-संकट से मर रहे हैं। उन्हें ये आलू भी पेट भरने को नहीं मिल रहा। यदि हम इन्हें फेंक देंगे तो लोग क्या कहेंगे कि मठ के ब्रह्मचारी साधु चटोरे हैं। और कुछ नहीं तो इन्हें भून कर या उबाल कर नमक लगा कर प्रयोग किया जा सकता है।"

मेरी जीवन संगिनी श्री महाराज के मुख से ये शब्द सुनकर बड़ी प्रभावित हुई। इस महात्मा में परोपकार का कितना ऊंचा भाव है। दूसरे के दुःख-दर्द को मानो उसके हृदय में घुसकर देखते व अनुभव करते हैं। अपनी सुख-सुविधा के बारे में तो कभी सोचा ही नहीं। इन्हीं महापुरुषों के हृदय का निनाद है:—

हो पीड़ा किसी को तो तड़पा करूं मैं।
लग्न कोई ऐसी लगा दीजिए गा।।

'मुझे रोगियों के आने तक पहुंचा देना'

यह १९५५ ई० की घटना है। लेखराम नगर (कादियाँ) की वाल्मीकि सभा के श्री सरदारी लाल जी ने हमारे आर्यसमाज को कहा कि महर्षि वाल्मीकि के जन्मदिवस पर किसी विद्वान् महात्मा को बुलवा दें। मैं दीनानगर गया। स्वामी जी से विनती की। वाल्मीकि सभा

का कार्यक्रम रात्रि का था। स्वामी जी ने कहा, मैं अवश्य चलूंगा परन्तु मुझे प्रातःकाल रोगियों के आने से पूर्व पहुंचाने की व्यवस्था आप कर देना।

लेखरामनगर से रात्रि कोई बटाला की ओर आने का साधन न था और न ही प्रातःकाल कोई बस व गाड़ी निकलती थी। वाल्मीकि सभा की मांग भी हमें पूरी करनी थी। जो कुछ सम्भव होगा हम करेंगे, यह कहकर मैं स्वीकृति ले आया। स्वामी जी महाराज के पधारने से वह कार्यक्रम आशातीत सफल रहा।

प्रातःकाल एक घोड़े पर स्वामी जी को हमने धारीवाल या गुरदासपुर भेजा। बिना कुछ भी मार्गव्यय लिए अपनी गहरी छाप छोड़ कर मठ लौटे।

स्वामी जी की ऐसी कितनी ही घटनायें मुझे याद हैं। कौन सी दें व कौन सी छोड़ें?

अपमान का विषपान

यह १९५८ ई० की बात है। आर्य युवक समाज लेखराम नगर कादिया की तब भारत भर में धूम थी। युवक समाज के वार्षिकोत्सव पर स्वामी जी महाराज पधारे। प्रातःकाल के कार्यक्रम में आपका प्रवचन होना था। एक भजनीक श्री शेरसिंह ने भजन सुनाने की बजाए लम्बा भाषण झाड़ना आरम्भ कर दिया। स्वामी जी ने उसे प्रेम से कहा, "आपके भजन का आनन्द आ रहा था, आप भजन ही सुनायें।"

उसने बड़ी उपेक्षा से कहा, "मुझे भाषण देने में ही आनन्द आ रहा है।"

ऐसा कहकर उसने स्वामी जी का घोर अपमान किया। श्रोता उसके उस आपत्तिजनक व्यवहार को सह न सके परन्तु कुछ कह भी न सके। श्री स्वामी जी महाराज उसे कुछ कहने न देंगे इसलिए युवक समाज या आर्यसमाज के किसी अधिकारी व कार्यकर्त्ता ने श्री शेरसिंह को एक भी शब्द न कहा परन्तु उसकी धृष्टता सबके लिए असहच थी। स्वामी जी ने बड़ी शन्ति से अपमान का विषपान ऐसे किया मानो कि कभी कुछ हुआ ही नहीं। किसी से कभी इस घटना की चर्चा की ही नहीं और हम लोग इसे भूल नहीं पाते।

घटना की गम्भीरता का पता तो इसी से लगता है कि शेरसिंह को फिर लेखराम नगर कादियां के आर्यसमाज और आर्य युवक समाज ने कभी बुलाया ही नहीं।

'किसी के सामने उसकी बड़ाई नहीं करते'

यह सन् १९७० के आसपास की बात होगी। मठ में दोपहर के भोजन की घंटी बजी। बिहार से एक प्रज्ञाचक्षु, सज्जन भी मठ में आए हुये थे। उनके दो पुत्रों को मठ ने पढ़ाकर हिमाचल में अध्यापक भी लगवाया। भोजन करके हम लोग पाकशाला से बाहर आकर नल पर हाथ धोने लगे। एक ब्रह्मचारी नल चलाने लगा। प्रज्ञाचक्षु, जी को कहा गया कि पहले आप हाथ धो ले।

स्वामी जी यह देखकर झट से आगे आए और कहा, "हटो, मैं इनके हाथ धुलवाता हूँ।" सबने कहा, "ऐसा नहीं हो सकता।"

स्वामी जी नहीं माने। आपने स्वयं नल चलाया उसके व मेरे जैसे और भी कई अतिथियों के श्री महाराज ने हाथ धुलवाए।

वह प्रज्ञाचक्षु कवि व गायक है। उसने तत्काल स्वामी जी के बड़प्पन के विषय में कुछ कहा। स्वामी जी ने इस पर कहा, "सूरदास जी किसी के सामने उसकी बड़ाई नहीं किया करते।"

यह कहकर स्वामी जी ने उसे चुप करवा दिया और आज्ञा दी कि रेलगाड़ियों में या घूमते हुये सत्यार्थप्रकाशः व ऋषि जीवन से कुछ प्रसंग लेकर कविता बनाकर प्रचार किया करो। उसने श्री महाराज की यह आज्ञा शिरोधार्य की।

जब गुरु महाराज ने आँख दिखाई

यह उन दिनों की बात है जब पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज आर्य प्रतिनिधि सभा के अधिष्ठाता वेद प्रचार थे। सभा में एक भजनीक बिहारीलाल था। वह अनपढ़ तो था ही, मूर्ख भी था।

स्वामी जी महाराज अपने अनुशासन में बड़े कड़े थे। पुराने लोग जानते हैं कि आर्य प्रतिनिधि सभा की आर्यसमाजों का अनुशासन कैसा था। बिहारीलाल को अनुशासन अखरता था। किसी उत्सव पर बिहारीलाल ने बड़ी अशिष्टता का परिचय देते हुये पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज को कुछ शब्द कह डाले। स्वामी जी उसे सब प्रकार से दण्ड देने में सक्षम थे परन्तु बड़ों की रीति-नीति ही न्यारी होती है। चुपचाप शान्ति से उसकी बकवाद सुन ली। वे कहा करते थे ऐसे लोग दया के पात्र होते हैं।

जब बिहारीलाल अनापशनाप बोल रहा था तब पूज्य पं० रामचन्द्र जी भी स्वामी जी के समीप खड़े थे। आप स्वामी जी महाराज का अपमान न सह सके। स्वामी जी महाराज ताड़ गये कि राम (पूज्य स्वामी जी श्री महाराज को प्यार से राम कह कर ही पुकारा करते थे) अब बिहारीलाल को पीट देगा।

अपनी मोटी मोटी आंखों से स्वामी जी ने शिष्य को घूर कर देखा। शिष्य इतने से ही समझ गया कि बिहारीलाल को कुछ नहीं कहना। क्षमाशील ऋषि के शिष्य ने अपने सद्व्यवहार से आगे अपने शिष्य को क्षमा व दया का एक पाठ दिया। संन्यास क्या है? संन्यासी कैसा हो? यह जानने के लिए स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के व्यवहार को देखो व समझो। ऐसा वेदविद् स्वामी वेदानन्द जी कहा करते थे। जिस महापुरुष ने स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के सम्पूर्ण व्यवहार को जीवन में उतारने का सततं प्रयास किया है उनका नाम नामी ही स्वामी सर्वानन्द है।

"बड़ों का इतना सम्मान"

यह १९७३-७४ की बात होगी। आर्यसमाज में वेश सम्प्रदाय का पंजाबियों के कारण बोलबाला था। थोड़े ही समय में वेशों की उच्छृंखलता, अहंकार व सिद्धान्तहीनता के कारण सबका वेशों से मन भर गया। तब एकदिन ऐसी एक चर्चा में बड़े स्वामी जी (श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज) से सुनी हुई एक कहानी सुनाई। गांव में कहीं पंचायत में

बड़े-बड़े व्यक्ति इकट्ठे हो रहे थे। एक बच्चा कहने लगा कि हम भी पंचायत में जावेंगे। उसके ये शब्द सुनकर बहुत लोगों को अचम्बा हुआ। एक ने पूछ ही लिया, "पंचायत में तो बड़े व्यक्ति जाते हैं, तुम कैसे पंचायत में बैठोगे?"

तपाक से वह बोला, "हमारे बड़े मर गये, हम इसी कारण से अपने आप बड़े हो गये।"

यह कहानी सुनाकर स्वामी सर्वानन्द जी महाराज ने कहा कि आज हम सब स्वय को विद्वान् समझे बैठे हैं। हर कोई लीडर बना बैठा है। यदि आज स्वामी वेदानन्द जी, स्वामी स्वतंत्रानन्द जी, स्वामी आत्मानन्द जी, पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु व महात्मा नारायण स्वामी जी फिर से आं जायें तो हम लोगों को कौन विद्वान् मानेगा? जो अपने आपको लीडर मान रहें हैं– इनका स्थान कहां होगा?

आह! कितनी प्यारी बात कह गये।

कितने सुन्दर शब्दों में सत्य का प्रकाश किया। जो शिक्षा लेना चाहें, जिन्हें देश, धर्म व समाज की पीड़ा है, वे इससे बहुत उपदेश ले सकते हैं।

करतारपुर में कहा था

एकबार गुरु विरजानन्द स्मारक के उत्सव पर आपने बहुत भावनाशील होकर कहा था, "आर्यो! कभी पंजाब में हमारे पास चार दिग्गज विद्वान् थे। श्री स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ, स्वामी स्वतंत्रानन्द जी, आचार्य श्री मुक्तिराम् जी उपाध्याय व पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु। इनके पाण्डित्य का लोहा सभी लोग मानते हैं। आज इन जैसा एक भी विद्वान् पंजाब में नहीं। सोचो, इस अभाव को कैसे दूर करना है।

समय-समय पर ऐसे उद्गार प्रकट करके आप पूर्वजों के प्रति अपनी गहरी श्रद्धा का परिचय देते रहे हैं। इससे आपकी विनम्रता का भी पता चलता है।

'मैं तो ऋषिलंगर में भोजन करूंगा'

आर्यसमाज स्थापना शताब्दी महा-सम्मेलन दिल्ली पर आप पधारे। वहां संन्यासियों के लिए ऋषि लंगर की विशेष व्यवस्था। अन्य लोगों के लिए भोजन की व्यवस्था जहां-जहां लोग ठहरे हुये थे, वहां-वहां की आर्यसमाजों ने कर रखी थी। स्वामी जी महाराज ने एक दिन हमें कहा, "चलो लंगर में भोजन करें।"

हमें पता था कि भीड़ में स्वामी जी को वहां बड़ी कठिनाई होगी। हमने बहुत कहा कि कहीं अन्यत्र भोजन कर लें। आप यही कहते रहे कि मैं लंगर में सबके साथ भोजन करूंगा।

श्री स्वामी सोमानन्द जी, स्वामी सुमेधानन्द जी चम्बा वाले, इन पंक्तियों का लेखक व कुछ अन्य मठवासी भोजन के लिए पहुंचे तो वहां भीड़ के कारण कोई अन्दर ही न जाने दे। सेवा पर नियुक्त आर्यवीर कहते थे– भोजन का पास लाओ। हमारे पास तो न पास था, न फेल (Fail) क्या दिखाते। स्वामी जी ही आगे थे। उनको प्रवेश न दिया जाना, निरादर ही तो था। कोई पहचानता भी न था। मैंने कहा, "भाई पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी पधारे हैं।"

लुधियाना के श्री मतवालचन्द आर्य दौड़ कर आए। सबको रोककर स्वामी जी महाराज व हम सबको अन्दर किया और भोजन करवाया। श्री स्वामी सोमानन्द जी को व हमें यह व्यवस्था बड़ी अखरी कि ऐसे मूर्धन्य संन्यासी को हमारे ये प्रबंधक पहचानते तक नहीं परन्तु पूज्य श्री स्वामी जी पर इस उपेक्षापूर्ण व्यवहार व इतने बड़े महासम्मेलन में प्रबंध की इन त्रुटियों का कुछ भी विपरीत प्रभाव नहीं देखा गया। उनके लिए ये सब साधारण सी बातें थीं। उनके चित्त की शान्ति इन बातों से पूर्णतया अप्रभावित रही। यही उनकी विशेषता है।

'मैं तो शिविर में सबके साथ भोजन करूंगा'

सन् १९६२ में धूरी में आर्यवीरों का एक शिविर लगाया गया। पूज्य स्वामी जी महाराज इसमें पधारे। तब धूरी आर्यसमाज के प्रधान श्री बाबू मूलराज जी थे। वह श्री वैद्य साईंदास जी की जन्म-स्थली के हैं। देश-विभाजन के पश्चात् आपकी स्वामी जी से यह प्रथम भेंट थी।

आपने बड़ा आग्रह किया कि स्वामी जी उनके गृह पर भोजन करें परन्तु, स्वामी जी का बार-बार यही उत्तर था कि मैं तो शिविर में आर्यवीरों के साथ बैठ कर भोजन करूंगा। इतने वर्षों के पश्चात् श्री स्वामी जी के दर्शन करके श्री बाबू जी फूले नहीं समा रहे थे। उन्होंने आर्यसमाज के सब अधिकारियों के सामने अपनी यह विनती रखी। स्वार्गीय श्री बाबू पुरुषोत्तम लाल जी, महाशय प्रेमप्रकाश जी व श्री प्रतिज्ञपाल जी को लेकर बाबू जी मेरे पास आए कि स्वामी जी महाराज को उनके यहां भोजन करने के लिए मनाया जावे। सबके कहने पर स्वामी जी श्री मूलराज जी के गृह पर भोजन करने गये।

स्वामी जी यहां एक से अधिक दिन रहे थे सो कुछ-कुछ ध्यान आता है कि एक समय का स्वामी जी का भोजन श्री बाबू मूलराज जी के घर पर हुआ या घर से मंगवाया गया। स्वामी जी सब आर्यवीरों के साथ बैठकर भोजन करते थे। जो उन्हें मिलता था, वही लेते थे और कुछ नहीं। जाते समय आर्यसमाज से मार्गव्यय तक न लिया। ऐसें शुभ कर्म करते जाओ, यही आर्यसमाज को सन्देश दिया। आपके इस व्यवहार से कुमार युवक सब बड़े प्रभावित हुये।

'इस गाय को खुली छूट है'

दयानन्द मठ दीनानगर में एक गाय थी। कामधेनु गाय का वर्णन पुस्तकों में पढ़ा व गुणियों से सुना था परन्तु कभी कामधेनु देखी न थी। मठ में इस गाय के दर्शन करके मन आनन्दित हो जाया करता था। जब चाहो इसे दोह लो। भर-भर के बालटियां दूध देती थी। स्वभाव का तो कहना ही क्या। इस गाय ने मठ की बड़ी सेवा की।

इस गाय ने सात बछड़ों तथा चौदह बछड़ियों को जन्म दिया। स्वामी जी तो स्वभाव से ही सब प्राणियों की सेवा करके प्रसन्न होते हैं। परोपकारी गाय माता की सेवा तो उनकी

दिनचर्या का एक आवश्यक अंग है। इस गाय से पूज्य स्वामी जी विशेष स्नेह करते थे। वह गाय जब बहुत वृद्धा हो गई तो श्री महाराज ने सब मठवासियों को यह आदेश दिया कि इस गाय ने मठ की बड़ी सेवा की है। इसलिए अब इसे खुला छोड़ा जाता है। मठ में जहां भी इस का जी चाहे, यह आवे-जावे। इसे कोई रोके-टोके नहीं।

वह गाय स्वभाव से ही बड़ी शान्त थी। अतः मठ की वाटिका, खेतों आदि को कोई हानि न पहुंचाती थी परन्तु फिर भी स्वच्छन्द विचरते हुये वह मठ में जहां चाहे घूमे, गोबर करे, मूत्र करे, कुछ भी खाए इस कमरे में या उस कमरे में, बरामदे में अथवा फार्मेसी में चली जावे, उसे कोई कुछ नहीं कहता था। पूज्यपाद स्वामी जी उसको इस प्रकार कहीं भी विचरते देखकर बहुत प्रफुल्लित हुआ करते थे। वह भी दिन में कई बार श्री महाराज को कहीं भी किसी से बातें करते देखकर वहीं आ जाती। महाराज की छाती से लिपट-चिपट जाती। प्यार-दुलार मांगती और बातें सुनना चाहती।

गाय के मनोभावों को मुनि भली प्रकार समझते थे। प्यार से उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुये श्री महाराज उससे ऐसे वार्तालाप करते जैसें कि वह मूक नहीं है। इस स्वर्णिम दृश्य को देखकर सबका हृदय तरंगित हो जाता। इस गऊ का नाम स्वामी जी ने कामधेनु, ही रखा था। अब भी इसकी 'चांद' नाम की पुत्री मठ में है, जो पंजाब भर में गऊओं में ३३ लीटर दूध देकर द्वितीय आई है।

हिण्डोन की यज्ञशाला में

सन् १९८९ में जन्माष्टमी के पर्व पर पूज्य स्वामी जी आर्यसमाज हिण्डौन सिटी राजस्थान के निमन्त्रण पर वहां पधारे। श्री स्वामी सहजानन्द जी महाराज भी साथ थे। इसी अवसर पर श्री घूड़मल आर्य साहित्य पुरस्कार लेखक को दिया जाना था। पुरस्कार समिति व वहां के आर्यसमाज का यह नियम है कि मुख्य अतिथि के रहने की व्यवस्था स्वर्गीय सेठ घूड़मल के परिवार में की जाती है।

मैंने वहां के आर्यसमाज के अधिकारियों को लिख दिया था कि आप अपने नियमानुसार स्वामी जी से घर पर रुकने के लिए कह देखो परन्तु वे आर्यसमाज मन्दिर में ही ठहरेंगे इसलिए आर्यसमाज मंदिर में एक कमरे में उनके विश्राम आदि के लिए व्यवस्था कर रखें। स्वामी जी वहां पहुंचे। शास्त्रार्थ महारथी श्री पं० शान्ति प्रकाश जी भी उनके साथ थे। श्री प्रह्लाद कुमार जी आर्य ने प्रार्थना की कि आप लोग मेरी कुटिया में ठहरें परन्तु स्वामी जी ने कहा "आर्यसमाज में ही हम ठहरेंगे"।

आर्यसमाज मंदिर में जलकूप के साथ एक पुरानी यज्ञशाला है। स्वामी जी महाराज ने वहीं डेरा लगा दिया। पूज्य स्वामी सहजानन्द जी ने वहां कुछ झाड़ पूंछ कर दी। स्वामी जी ने कोई चारपाई भी बिछाने न दी। रात्रि को वहीं भूमि शयन किया। दूर-निकट से कई रोगी भी अपना -अपना दुखड़ा लेकर वहीं आए। सबको स्वामी जी ने देखकर औषधि लिखवा दी।

जब हिण्डौन से चले

स्वामी जी ने वापसी पर महावीर जी से गाड़ी पकड़नी थी। महावीर जी तक उन्हें छोड़ने की कार से व्यवस्था की गई। कार के पहुंचते ही स्वामी सहजानन्द जी को आज्ञा मिली कि चलो। मैंने कहा, अभी कुछ विश्राम कर लें, पर्याप्त समय है परन्तु आप अपने स्वभाव के अनुसार समय से बहुत पहले ही निकल जाया करते हैं। आर्यसमाज वालों को भी यह बात मैंने बता रखी थी।

आप जब वहां से निकले तो उस समय आर्यसमाज का एक भी सभासद पास न था। सब लोग सत्संग भवन में उत्सव की समाप्ति की व्यवस्था में लगे हुये थे। स्वामी जी महाराज चुपचाप चल पड़े। उनके मन में तनिक भी यह विचार नहीं आया कि ये लोग मुझे द्वार पर विदा करने नहीं आये। वे यह बात समझ ही नहीं पाये कि साधु महात्मा की विदाई के लिए हमें समय से पूर्वक सतर्क रहना चाहिए।

जब स्वामी जी निकल गये तो उन्हें फिर ध्यान आया कि उन्हें कुछ भेंट नहीं किया गया। मैंने कहा कि आप यहां भी भेंट करते तो सम्भवतः वे स्वीकार न करते परन्तु आपका कर्त्तव्य था कि आप अपनी भेंट लेकर विनती तो करते। पीछे मोटरसाईकल पर एक सज्जन गये और ग्यारह सौ रुपये मठ के लिए भेंट स्वीकार करने की विनती की। स्वामी जी ने कुछ न लिया। उस बंधु ने कहा यह राशि यतिमण्डल के लिए अथवा केरल उड़ीया में वेद प्रचार के लिए जहां भी चाहें आप व्यय कर दें। स्वामी जी ने कहा, "नहीं, आप इसे रखिए।"

वर्ष १९८९ में आप गंगानगर के उत्सव पर पधारे। यतिमण्डल की बैठक भी साथ ही रख ली गई। जब विदाई का समय आया तो आर्यसमाज के दो सज्जन सात सौ रुपया भेंट करने आए। आपने कहा, "कुछ नहीं चाहिए।"

फिर बहुत आग्रह करने पर कहा, "स्वामी दीक्षानन्द जी को पं० शिवकुमार शास्त्री पीठ के लिए भेज दें।" स्वामी जी मठ से अकेले ही नहीं आए थे, उनके साथ एक वानप्रस्थी और एक ब्रह्मचारी भी थे। ऐसी घटनाएं उनके जीवन में नित्य घटती हैं। उनमें धन की अथवा किसी भी वस्तु की तनिक भी लालसा नहीं। अनेक बार हमने देखा है कि भक्त जन परोपकार के किसी विशेष कार्य के लिए राशि भेंट करने मठ में जाते हैं तो आप कह देते हैं, "अभी रखिए, जब आवश्यकता होगी ले लेंगे।" लौहपुरुष स्वामी स्वतंत्रानंद जी, स्वामी आत्मानन्द जी महाराज, श्री महात्मा आनन्द स्वामी जी व स्वामी सर्वानन्द जी महाराज जैसे विरले साधु ही त्याग का ऐसा आदर्श स्थापित कर सकते हैं। हमने ऐसे भी स्वामी देखे हैं जो किसी संस्था की रसीद बुक आगे करके धन मांगने का कोई अवसर हाथ से निकलने ही नहीं देते।

स्वामी जी के जीवन में ऐसी भी अनेक घटनाएं घटी हैं जब भक्तों ने ड्राफ्ट के द्वारा या किसी व्यक्ति के द्वारा मठ में धन भेज दिया परन्तु आपने यह कहकर लौटा दिया कि अभी रखें, जब आवश्यकता होगी बता देंगे।

सिख नेता भाई जोधसिंह जी की पत्नी की प्रार्थना

भाई जोधसिंह जी पंजाब के एक जाने-माने शिक्षा शास्त्री, विद्वान् व सिख राजनेता थे। आपकी धर्मपत्नी कुछ अस्वस्थ रहने लगीं। आपका कोई निकट सम्बंधी दीनानगर में रेल वा डाक विभाग में कार्यरत था। वह मठ में आता-जाता था। घर में कोई अस्वस्थ हो तो मठ से ही औषधि लेता था। उसकी स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज व पं० रामचन्द्र जी दोनों पर बड़ी श्रद्धा थी।

भाई जोधसिंह जी के इस सगे ने अमृतसर में प्रिंसिपल भाई जोधसिंह जी से कहा कि आप एकबार मठ आएं, इन्हें (भाई जी की धर्मपत्नी को) वहां श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के आश्रम से औषधि लेकर देंगे। भाई जी स्वामी जी को जानते ही थे, परन्तु मठ कभी नहीं आए थे। पत्नी को दिखाने के लिए वे दीनानगर पहुंचे। ईश्वर कृपा से उन्हें पं० जी की औषधि से बड़ा लाभ हुआ। अब प्रिंसिपल साहेब यदा-कदा मठ में आते-जाते रहते और बड़े स्वामी जी से घण्टों धार्मिक व राष्ट्रीय विषयों पर चर्चा किया करते थे।

मठ से उनका प्रेम इतना बढ़ गया कि माता जी (भाई जी की पत्नी) का अब आग्रह था कि मठ से जब भी कोई अमृतसर आए तो हमारे घर पर अवश्य दर्शन देवे। कभी औषधि की आवश्यकता होती तो वहीं से लिख भी देते। श्री पं० रामचन्द्र जी अमृतसर आर्यसमाज के किसी कार्य के लिए जाते तो कभी-कभी माता जी के आग्रह पर प्रिंसिपल जोधसिंह जी के घर भी जाते।

एकबार पण्डित जी माता जी के निवेदन पर उनके निवास पर गये, विदा होने लगे तो माता जी ने मठ के साधुओं व ब्रह्मचारियों के लिए कम्बल लेने के लिए एक बड़ी राशि भेंट करनी चाही। पं० रामचन्द्रजी ने कहा, ''अभी हमारे पास कम्बल हैं।''

माता जी ने कहा, ''वहां साधु आते-जाते रहते हैं। इसलिए कम्बलों की आवश्यकता तो पड़ती ही हैं। आप ये पैसे ले लें।''

पं० रामचन्द्र जी ने कहा, ''जब कभी आबश्यकता होगी तो मंगवा लेंगे।'' माता जी के बारबार के आग्रह पर जब पण्डित जी ने यह दान स्वीकार न किया तो माता जी ने पूज्य पण्डित जी को एक अत्यन्त शिक्षाप्रद कहानी सुनाकर यह दान स्वीकार करने को कहा। वह कहानी सचमुच बड़ी हृदयस्पर्शी व शिक्षाप्रद है। इसे हम यहां देते हैं।

''शुभकर्म करने की भी एक वेला होती है''

माता जी ने बड़े गम्भीर स्वर में पण्डित जी से कहा, ''आप यह राशि ले लीजिए। फिर की फिर देखी जावेगी। शुभकर्म करने की भी कोई वेला होती है। जब मन में सद्विचार उठे तभी पुण्य कमा लेना चाहिए क्या पता फिर मन के भाव बदल जावें।''

अपने कथन की पुष्टि में माता जी ने पण्डित जी को यह कहानी सुनाई।

''अमावस्या वा पूर्णमासी का दिन था। मैं अमृत वेला में स्वर्ण मन्दिर गई। वहां से लौटते समय रिक्शा पर बैठी। रिक्शा वाले से पैसे नहीं पूछे। उसके फटे-पुराने वस्त्रों को देखकर

उसकी निधर्नता का ध्यान आया। मन में सोचा आज घर जाकर इसके बाल बच्चों के लिए कुछ वस्त्र भेंट करूंगी और मिठाई भी दूंगी ताकि यह पर्व (कोई त्यौहार एक दो दिन में पड़ता था) मना सकें। यह सोच ही रही थी कि घर पहुंच गई। रिक्शा से उतरकर उसे आठ आने भेंट किए। उन दिनों आठ आने बहुत समझे जाते थे।

रिक्शा चालक ने आवो देखा न तावो। यह अठन्नी क्रुद्धित होकर फेंक दी। "प्रातःकाल ठण्डी में बस आठ आने?" यह कहकर ही अपना रोष प्रकट नहीं किया, आगे भी जो मुंह में आया सो कहता गया।

माता जी को उसका यह व्यवहार बहुत ही बुरा लगा परन्तु, उसके क्रोध का उत्तर क्रोध से न देकर पूछा, "क्या चाहिए?" उसने कहा, "एक रुपया"।

उसे एक रुपया देकर माता जी बोलीं, "यह ले एक रुपया। तू ने अपनी ही हानि की है। मैं तो यह सोचती आई थी कि तेरे बच्चों के लिए वस्त्र व मिठाई भेंट करूंगी। जा अब तू एक रुपया ही ले। तू शान्ति से बात करता, कुछ संतोष दिखाता तो तेरा कितना हित होता।"

यह सुनकर रिक्शा चालक का रंग पीला पड़ गया। उसको अपनी भूल का शूल चुभा। अपने किए की क्षमा मांगी। अब क्या लाभ?

माता जी के मन का भाव बदल चुका था। उसे विदा होना पड़ा। उसके जाने के पश्चात् धार्मिक प्रवृत्ति की माता इस घटना पर विचार करती रहीं। रिक्शा चालक की तो हानि जो हुई सो हुई परन्तु, माता जी के हाथ से भी एक पुण्य होता होता रह गया।

यह कहानी सुनाकर माता जी ने पं० रामचन्द्रजी से कहा, यह राशि ले जाइए। मेरे मन में इस समय पुण्यकर्म करने का भाव जागा है। न जाने फिर मन में कैसे भाव आ जावें। यह कथन बड़ा ही मार्मिक व सारगर्भित है। पण्डित जी को यह बात इतनी अच्छी लगी कि वे इसे आज पर्यन्त नहीं भूल सके।

परन्तु पाठक यह न समझें कि यह कहानी सुनकर पण्डित जी ने माता जी की भेंट स्वीकार कर ली। आपने पुनः माता जी का आग्रह टालते हुये कहा, "नहीं माता जी जब आवश्यकता होगी आपसे कम्बल मंगवा लेंगे।"

पण्डित जी का यह उत्तर कोई रिवाजी नहीं था। तप, त्याग, अपरिग्रह आपके मन का स्थायी भाव है।

पाठकवृन्द! अब सोचिए कि श्री स्वामी जी महाराज युवावस्था में ही कैसा सोचते थे और इनका आचरण कैसा था। कैसे भव्य-भावों से इनका मन विभूषित रहा है।

रक्तपात रोकने के लिए भोजन छोड़कर चल पड़े

कोई १४-१५ वर्ष पुरानी घटना है। स्वामी जी महाराज रोगियों को देख रहे थे। बारह बजने ही वाले थे। ठीक बारह बजे मठ में भोजन की घण्टी लगती है। घण्टी लगने से कुछ समय पूर्व श्री महाराज ने लेखक से कहा कि भोजन के पश्चात् कुछ आवश्यक विचार-विमर्श करेंगे।

इधर घण्टी बजी तो उधर समीपवर्ती एक ग्राम से एक सिख सज्जन दौड़ता हुआ आया। हांपते-कांपते हुये उसने स्वामी जी से कहा कि शीघ्र मेरे साथ अभी चलिए। हमारे ग्राम में दो किसान परिवारों में झगड़ा हो गया है। किरपाणें, लाठियां किसी भी समय चल सकती हैं। रक्तपात टलने वाला नहीं लगता। वे किसी के समझाने पर भी नहीं समझ रहे। ग्राम के बड़ों ने मुझे आपके पास भेजा है कि आपको लेकर ही आऊं। आपही के जाने व समझाने-बुझाने से हमारे ग्राम में रक्तपात टल सकता है।

स्वामी जी महाराज ने मुझे कहा, "मैं ऐसे जा रहा हूं। आपसे रात्रि बात हो सकेगी।"

मैंने कहा, "भोजन?"

बोले, "भोजन अब क्या करूँ? जब वे लोग मठ से इतनी आस लगाए बैठे हैं कि मेरे जाने से ही मारकाट टल सकती है तो मुझे जाना ही चाहिए। यदि मैं विलम्ब करूं वा वहां न जाऊं तो वे लोग क्या सोचेंगे?

हम तो साधु हैं। हमारा तो काम ही झगड़े मिटाना है। यदि हमारे प्रयास से वहां शान्ति स्थापित हो जावे तो अच्छा ही है। उनकी धर्म में आस्था बढ़ेगी। लोगों की साधुओं के प्रति जो श्रद्धा है वह बनी रहेगी।"

कई घण्टे के पश्चात् आप वहां से लौटे। लड़ाई टल गई, और शान्ति स्थापित हो गई। दोनों पक्षों ने स्वामी जी का कहा मान लिया। स्वामी जी महाराज के हृदय से प्रसन्नता छलक रही थीं। उन्हें इस बात का सन्तोष था कि दो घर उजड़ने से बच गये। कोई मर जाता तो सारे ग्राम में शोक व्याप्त होता। न्यायालयों व पुलिस में झगड़े जाते। जन-धन की बर्बादी न हो, यह कितनी अच्छी बात है।

श्री स्वामी जी महाराज के मुख-मण्डल पर प्रसन्नता की रेखायें देख कर सब मठवासी भी आनन्दित हो रहे थे। और झगड़ा निपटाने में ही भोजन का समय निकल गया। रात्रि आपने भोजन किया।

ऐसी है लोगों की उनके प्रति श्रद्धा। झगड़ा होने पर लोग थाने से अथवा राजनेताओं से क्षमा मांगते हैं और मठ के आसपास के सब विचारों के लोग श्री स्वामी जी के पास अपने कष्ट निवारण के लिए आते हैं।

"स्वामी जी हमारी भेंट स्वीकार करें"

यह १९७८ के आस-पास की घटना होगी कि एक सिख सज्जन मठ में आए और कहा हमने ट्रैक्टर ले लिया है। अपनी बैलों की जोड़ी हम मठ में देना चाहते हैं। मठ के खेतों में बैलों से ही कृषि होती है। स्वामी जी ने कहा, "हमारे पास तो बैल हैं ही। आप अपने बैल बेच दीजिए।"

वह समृद्ध किसान अपनी बात पर अड़ा रहा कि हमने बैल मठ को ही देने हैं, बेचने नहीं।

स्वामी जी ने उसे कहा, "अच्छा! आप इन्हें तब तक अपने पास रखें जब तक हम इनकी कोई व्यवस्था न कर लें।" वह सज्जन फिर भी यदा-कदा मठ में आकर यह कहता रहा कि अपनी बैलों की जोडी मंगवा लो।

स्वामी जी यही उत्तर देते रहे कि कुछ समय इन्हें अपने पास रखिए।

जब कभी कोई कृषक स्वामी जी के दर्शनार्थ मठ में आता तो स्वामी जी उसे यही प्रेरणा देते कि उस भाई के बैलों की जोड़ी का कोई ग्राहक हो तो उनके पास भेज दें। श्री स्वामी जी मठ में बैल मंगवा कर बड़ी सुगमता से बेच सकते थे परन्तु आपकी इच्छा थी कि बैल उसी के घर पर बिकें और यह राशि उसी के परिवार में रहे। उसकी सात्विक भावना का स्वामी जी बड़ा आदर करते थे। लेखक इस घटना का प्रत्यक्षदर्शी है। उस कृषक का नाम श्री ज्ञानसिंह माड़ी वाले है।

जब 'प्रकाश' में श्री राम का प्रथम लेख छपा

श्री पं० रामचन्द्र जी स्नातक बनकर उपदेशक विद्यालय से निकले। वेद प्रचारार्थ कहीं गये। वहां प्रचार की बड़ी आवश्यकता थी। लोग श्रद्धा से सुनते भी थे। प्रयत्न की कमी थी। सभा ने उधर कभी ध्यान ही न दिया। इस कारण वह क्षेत्र उपेक्षित रहा।

पण्डित जी को आर्यसमाज के प्रमाद से दुःख हुआ। जवानी के दिन थे। लग्न थी, उत्साह था और त्याग भाव भी था। आपने 'प्रकाश' उर्दू साप्ताहिक में इस विषय पर एक लेख दिया और आर्यसमाज को, पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा को उस क्षेत्र में प्रचार की उपेक्षा करने के लिए व कर्त्तव्य पालन में प्रमाद के लिए बहुत कोसा।

'प्रकाश' के स्वामी महाशय कृष्ण जी ने लेख छाप दिया और साथ ही एक टिप्पणी दी। महाशय जी ने लेखक के उत्साह व लग्न की तो प्रशंसा की परन्तु आर्यसमाज पर कर्त्तव्य पालन न करने का सारा दोष देते हुये कोसने को अच्छा न बताया। महाशय जी का भाव यह था कि यह मत कहो कि आज तक आर्यसमाज ने कुछ नहीं किया। सब सोये ही रहे हैं। बहुत कुछ किया गया है। हां! बहुत कुछ करना अभी शेष है। नवयुवक यह मत सोचें कि उन्हें ही लग्न लगी है पहले वाले लोग तो सब उत्साह व लग्न से शून्य थे।

महाशय कृष्ण जी की इस टिप्पणी से पं० रामचन्द्र जी को निराशा नहीं हुई। न ही आप निरुत्साहित हुए। आपने इससे बड़ी शिक्षा ली। आपने फिर कभी लेख लिखने में तो रुचि न दिखाई परन्तु युवकों को यह शिक्षा देते रहे कि डट कर सेवा करो परन्तु ऐसा कभी मत सोचो कि तुम तो धरती का बेड़ा पार कर दोगे और तुम से पहले जो समाजसेवी देश सेवक हुये हैं वे सब निकम्मे थे। यह बात कितनी खरी व व्यावहारिक है, यह बुद्धिमान पाठक जानते हैं।

आज से कोई बीस वर्ष पूर्व हरियाणा में वेशपंथी उठे और अपने जीवनदान का ढोल आप बजाते हुये कहा कि आर्यसमाज की शताब्दी पर १९७५ ई० में आर्यसमाज को जनता की कचहरी में पेश होकर बताना पड़ेगा कि सौ वर्षों में आप कहीं आर्यराष्ट्र स्थापित नहीं कर पाए। इन्होंने We Are Determined एक लेख में यह भी घोषणा की थी कि हम पांच व्यक्ति कोई चुनाव नहीं लड़ेंगे। पांचों ने चुनाव लड़े। गद्दियों के लिए सब पापड़ बेले। एक वेश ने यहां तक कहा था कि १९७५ तक हरियाणा में आर्यराष्ट्र न बना तो दयानन्द मठ में मेरी समाधि बनेगी। किसी भी वेश की आज तक तो

मढ़ी या कब्र नहीं बनी। आर्यराष्ट्र किसी ग्राम में तो क्या बनना था, किसी के आफिस में भी न बन पाया।

वेशों के लम्बे-चौड़े दावों पर सुप्रसिद्ध आर्य कवि महाशय जैमिनि जी 'सरशार' ने तब लिखा था:'

ज़मीं को हम आसमां बनाएंगे,
आसमां को ज़मीं करेंगे।
जो इतनी बातें बना रहे हैं,
वे काम कुछ भी नहीं करेंगे।।

विश्व प्रसिद्ध उर्दू कवि की यह भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य निकली। श्री पं० रामचन्द्र जी का आचरण सब समाजसेवी युवकों के लिए एक उदाहरण है। घोषणाएं करने का क्या लाभ? दूसरों को सदा कोसने का परिणाम कुछ न निकलेगा। जो कुछ कर सकते हो, कर दिखाओ।

इसे मरने दो

यह जून १९७३ की घटना होगी। श्री स्वामी जी महाराज रात्रि दस बजे मंत्र पाठ के पश्चात् सबको मठ में सुलाकर भ्रमण के लिए निकले। श्रीमान् ब्र० आर्य नरेश जी व लेखक को पूछा, "क्या आप सड़क पर थोड़ा घूमने निकलेंगे।" हम दोनों व एक अन्य युवक भी साथ हो लिये। धर्म चर्चा करते हुये चल रहे थे कि आगे सड़क पर एक किनारे पर एक व्यक्ति सुरा पीकर अचेत गिरा पड़ा था।

ब्रह्मचारी जी ने दया भाव से कहा, "स्वामी जी यह देखिए गिरा पड़ा है।"

ब्रह्मचारी जी का भाव यह था कि स्वामी जी कहें तो इसे उठाया जावे और इसको बचाया जावे।

किसी के भी दुःख को देखकर द्रवित हो जाने वाले मुनि ने उत्तर दिया, "इसे पड़ा रहने दो। इसको उठाने का क्या लाभ? यह तो गिरता ही रहेगा।"

हम पर स्वामी जी के इस उत्तर का बड़ा प्रभाव पड़ा। हम कई दिन तक इस उत्तर की चर्चा करते रहे कि देखो श्री स्वामी जी किसी का भी दुःख नहीं देख सकते। प्रत्येक के कष्ट निवारण के लिए प्रतिक्षंण उद्यत रहते हैं परन्तु जिसकी प्रवृत्ति ही पतनोन्मुख हो उस पर समय व शक्ति लगाने को व्यर्थ मानते हैं। सचमुच यह अपकार है।

"मैं खेत बेचकर लगा दूंगा।"

एक बार एक नवयुवक अपने साथ अपने एक भाई को लेकर मठ में पहुंचा। औषधालय का समय निकल चुका था। वह फार्मेसी से कुछ मूल्यवान् औषधियां लेने आया था। उसके हाथों में कोई रोग था। हाथ काम करने के योग्य नहीं रहे थे। अकड़ रहे थे। परमानन्द जाखोलाड़ी के एक आश्रम के साधु ने औषधियां लिखकर दीं और कहा, यह मठ की फार्मेमी से लेकर सेवन करना। कहीं और से नहीं लेनी।

स्वामी जी उसे देखते ही समझ गये कि उसे क्या रोग है। कहा, "ये औषधियां किस के लिए चाहिए?" उसने कहा, "मेरे लिए परमानन्द के बाबा जी ने लिखवाई हैं और कहा है कि मठ से जाकर लाओ।"

स्वामी जी ने कहा, "तुम्हें और औषधि देंगे। तू ठीक हो जावेगा। ये मत ले। ये बड़ी महंगी है।" उसने कहा, "मूल्यवान् हैं तो क्या?

मैं खेत बेचकर भी लगा दूंगा। जान से कुछ अधिक प्यारा हो सकता है?"

स्वामी जी ने कहा, "बस! यही सोच है? तेरी खेती कितनी है?"

उसने बताया आठ-दस एकड़ है।

स्वामी जी ने कहा, "देखो आठ-दस एकड़ भूमि वाले का सामर्थ्य कितना है, यह हम जानते हैं। तू बाल-बच्चे वाला है। धन का ऐसे ही नाश न कर। ईश्वर ने निर्धनों के लिए बड़ी सस्ती और उपयोगीं गुणकारी औषधियां जड़ी-बूटियों के रूप में उगाई हैं। तुम नहीं जानते। हम ज़ानते हैं। ये औषधियां जो तू लिखवा कर लाया है, ये तो धनी-मानी सेठों के सन्तोष के लिए हैं।"

स्वामी जी के समझाने-बुझाने से वह युवक समझ गया। स्वामी जी ने उसे औषधालय से निःशुल्क सब औषधियां दे कर विदा किया।

यह तो मठ में प्रतिदिन होता है कि लोग दूर-दूर से फार्मेसी की मूल्यवान् औषधियां लेने आते हैं परन्तु स्वामी जी के व्यवस्थापक श्री महाराज की आज्ञा के बिना कोई मूल्यवान् औषधि किसी को नहीं बेच सकते। है धरती तल पर कोई ऐसा त्यागमूर्ति!

सोलापूर का वह पाखण्डी साधु

पन्द्रह वर्ष से भी कुछ अधिक पुरानी घटना है। एक साधु कहीं से घूमता-घुमाता मठ में आ गया। अंग्रेंजी, मराठी व हिन्दी जानता था। उसने कहा, मैं सोलापूर महाराष्ट्र से आया हूं। मैंने सोलापूर के कुछ लोगों के बारे में पूछा तो मैं समझ गया कि इसका वहां कोई विशेष संबंध नहीं। उसे अंग्रेज़ी चिकित्सा पद्धति का कुछ ज्ञान था। उसने कुछ दिन पश्चात् मठ में ही रहने की इच्छा व्यक्त की।

वह स्वामी जी के साथ औषधालय में पुड़ियां बांधने का कार्य करने लगा। पूज्य स्वामी जी उसे आयुर्वेद का ज्ञान देना व मठ की रीति व व्यवहार सिखाना चाहते थे।

एक बार स्वामी जी कुछ दिन के लिए किसी सामाजिक कार्य के लिए बाहर गये। औषधालय का कार्य उसे सौंप गये। साथ एक विश्वस्त अनुभवी ब्रह्मचारी को लगा गये। स्वामी जी के पीछे एक रोगी महिला औषधि लेने आई तो उस साधु ने कहा, "लेट जाओ, पेट दिखाओ।"

उस ब्रह्मचारी ने तत्काल उसे टोक दिया और कहा कि मठ का यह नियम नहीं। यहां किसी स्त्री-पुरुष की नाड़ी तक नहीं देखी जाती। महिला के पेट को स्पर्श करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

स्वामी जी लौटकर आए तो उस ब्रह्मचारी व मठवासियों ने यह सारी कहानी उन्हें सुना दी।

स्वामी जी ने तत्काल उस साधु को बुलाकर कहा, "आप यहां से अविलम्ब चले जावें। यहां आपका रहना ठीक नहीं है।" उसने बहुत अनुनय-विनय की और भविष्य में ऐसा न करने का आश्वासन भी दिया परन्तु स्वामी जी ने कहा, "आप चले जावें। आपका यहां रुकना उचित नहीं। आप मठ के योग्य नहीं है। हमारी कुछ सीमायें हैं। हम अपनी मर्यादायें नहीं तोड़ सकते।"

उस को जाना ही पड़ा। जिस-जिस जानकार को इस बात का पता चला, वह पूज्य स्वामी जी की दृढ़ता, आचरण की शुद्धता के लिए स्वामी जी महाराज की कट्टरता व मर्यादाओं के प्रश्न पर समझौता न करने की नीति की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगा। श्री डा० अविनाशचन्द्र जी वसु ने लिखा है:– "The Veda is uncompromising is its opposition to the evil".

अर्थात् प्रभु की निर्मल वाणी वेद बुराई से समझौता नाम की नीति को नहीं जानती।

स्वामी जी स्वभाव से कितने कोमल हैं, यह सर्वविदित है परन्तु आचार-व्यवहार के प्रश्न पर वे कितने कठोर हैं यह इस एक घटना से स्पष्ट है। ऐसी और भी कई घटनायें मठ में घटी है, जब मर्यादा के पालन में ढील दिखाने पर किसी भी व्यक्ति को मठ से चले जाने का निर्देश दिया गया। साधुओं के आचरण पर कोई अंगुलि न उठा सके, यह सब साधुओं को ध्यान रखना चाहिए। स्वामी जी सदा इस बात पर बल देते रहे हैं।

"और सर्प भी सारी रात साथ सोया रहा"

यह कोई तीस वर्ष पुरानी घटना है। रात्रि को भारी वर्षा आई। स्वामी जी महाराज कुटिया के बाहर चारपाई अथवा तख्तपोश पर सोये हुये थे, वर्षा के आने पर कुटिया में चले गये। कुटिया में पड़ी चारपाई पर कागज-पत्र बहुत सामान पड़ा ही रहता है।

स्वामी जी को कुटिया के भीतर चारपाई पर विश्राम करते हुये हमने तो कभी देखा नहीं। वे कुटिया में अपने स्वभावानुसार वर्षा आने पर उस रात्रि भी नीचे चटाई पर ही सो गये। प्रभात-काल में करवट बदली तो उन्हें लगा कि उनके नीचे कोई कोमल सी वस्तु है। उठकर टार्च जलाकर देखा तो पता चला कि उनके साथ रात्रि एक सर्प सोया रहा। श्री स्वामी जी ने उसे हाथ से परे करके कहा, "जा, अब प्रभात हो गई। चला जा।"

ऐसा कहकर उसे विदा कर दिया। वह चुपचाप चला गया। यह घटना हमें तब पता चली जब एकबार लेखक श्री महाराज से कुटिया में बैठे कोई वार्तालाप कर रहा था तो एक सर्प वहां दिखाई दिया। मुझे तो डर लगा। मैंने कहा, "स्वामी जी सांप।"

स्वामी जी महाराज ने दृष्टि उधर डाली तो बोले, "कोई बात नहीं। वर्षा ऋतु में ये आ ही जाते हैं।"

यह कहकर आपने उस सर्प को हाथ से ही परे कर दिया। वह कुटिया से चला गया। यह देखकर मैं बड़ा चकित हुआ। तब स्वामी जी ने स्वयं ऊपर वाली घटना सुनाई।

अरे ये कहां जावें?

हिसार के श्री सुभाष व लेखक मठ के ट्यूबवैल पर पूज्य स्वामी जी महाराज से वार्तालाप कर रहे थे। मठ के कुछ ब्रह्मचारी कुछ दूरी पर धान की पनीरी लगा रहे थे। स्वामी जी बातें भी कर रहे थे और ब्रह्मचारियों को भी देख रहे थे। तभी ब्रह्मचारियों में कुछ हलचल विशेष देखकर स्वामी जी समझ गये कि वहां सर्प निकल आया है। ब्रह्मचारी भी बड़े

निडर हैं। वे सर्प को मारने पर तुल गये।

स्वामी जी ने दूर से पुकार कर एक ब्रह्मचारी से पूछा, ''क्या बात है?''

उसने कहा, ''सर्प है।''

श्री स्वामी जी ने कहा, तो क्या बात है? चला जावेगा। मत कुछ कहो। वे घरो में भी न रहें और खेतों में भी उन्हें रहने न दो तो वें कहां जावें? कुछ नहीं कहता। मत कुछ कहो। चला जावेगा। स्वामी जी के रोकते-रोकते उन्होंने उसे मार दिया। इस पर श्री सुभाष जी ने कहा कि महर्षि पातञ्जलि का सूत्रः– **'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सनिन्धौ वैरत्यागः।**[46]

आज मेरी समझ मे आ गया। स्वामी जी ने अहिंसा की सिद्धि कर रखी है। उपरोक्त सूत्र का याष्य स्वामी जी महाराज का व्यवहार है।

तभी हमें बताया गया कि यदि काला सर्प निकल आए तो स्वामी जी मारने से रोकते नहीं परन्तु अन्य किसी सांप को स्वामी जी कुछ नहीं कहने देते।

''यह आश्रम मौज मारने वालों के लिए नहीं हैं''

एकबार मठ में पढ़ने वाले एक छात्र ने मुझे कहा कि मेरे लिए एक छात्रवृत्ति का प्रबंध करवा दें। मोगा के स्वार्गीय सेठ बलवन्त राय जी के न्यास से मैंने छात्रवृत्ति की व्यवस्था करवा दी। न्यास वाले राशि मेरे पास भिजवा देते। मैं मनी आर्डर से स्वामी जी के पास भेज देता। उन्हें लिख देता कि अमुक तमुक विद्यार्थी के लिए है।

दो-तीन बार राशि पा कर स्वामी जी ने मुझे लिखा, ''आप क्यों यहां पैसे भिजवाते हैं? यहां वस्त्र, बिस्तर, पुस्तकें, दूध, भोजन, औषधि व फल भी मिलता है। मठ में सब व्यवस्था है। यह आश्रम कुछ बनने वालों के लिए है। जिन्होंने ऐश (मौज) मारनी है, उनके लिए यह स्थान उपयुक्त नहीं है।''

''हमें धन नहीं चाहिए''

मास्टर पूर्णचन्द सभा की सेवा करते थे। उनका भी स्वामी स्वातंत्रानन्द जी से निकट का संबंध रहा। घर-गृहस्थी की उनकी विचित्र कहानी थी। वह सभा की सम्पत्ति की देखभाल व बेचने का काम मुखतारे-आम के रूप में किया करते थे। जीवन के अन्तिम दिनों में उनकी रुग्णता को देखकर सभा प्रधान श्री वीरेन्द्र जी ने उन्हें मठ को सौंप दिया।

स्वामी जी महाराज ने भी श्री वीरेन्द्र के पत्र को पाकर उन्हें लिखा कि मठ में भेज दो, हमीं सेवा करेंगे। श्री स्वामी जी ने दिन रात मास्टर जी की सेवा की। मल-मूत्र स्वामी जी स्वयं उठाया करते थे। स्वामी जी को अति-आवश्यक सामाजिक कार्य छोड़कर पूर्णचन्द्र जी की सेवा में लगना पड़ा।

हमें स्मरण है कि पुराने महापुरुषों के बारे श्री स्वामी जी के संस्मरण लेने के लिए हमने आग्रहपूर्वक उन्हें एक सप्ताह के लिए अबोहर बुलवाया तो मात्र तीसरे दिन आप मठ लौट गये। ''यह ठीक नहीं लगता कि दूसरे मास्टर जी का मल-मूत्र उठावें और मैं यहां रहूं। कोई यह न सोचे कि हम से रोगियों का मल-मूत्र उठवाया जाता है।''

यह कहकर आप चले गये। सेवा मठ ने की। बाद में मास्टर जी के भतीजे मठ गये और

कहा कि उनकी कुछ सम्पत्ति है, उसे मठ ले सकता है। स्वामी जी ने कहा, हमें किसी का धन नहीं चाहिए। धन की प्राप्ति के लोभ से हमने कभी रोगियों की सेवा नहीं की।

हम ऐसे कई लोगों को जानते हैं जिन की वृद्ध अवस्था में मरते समय तो स्वामी जी महाराज सेवा करते रहे परन्तु उनके मरणोपरान्त उनके कुटुम्बीजन मठ में पहुंच जाते। यह संसार की रीति-नीति है। श्री स्वामी जी ने कभी किसी के ऐसे व्यवहार पर आपत्ति नहीं की।

"आपको क्या पता गुड़ व शक्कर का"

श्री स्वामी जी महाराज ने काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार पर विजय पाने के लिए आश्चर्यजनक साधना की है। स्वामी जी महाराज के सम्पर्क में आने वाले किसी भी व्यक्ति से कभी भी यह सुनने को नहीं मिला कि अमुक अवसर पर आपको क्रोध करते देखा गया। इसके विपरीत ऐसी अनेक घटनायें मिलती हैं जब कि श्री स्वामी जी महाराज ने दूसरों की भयंकर भूल पर भी अत्यन्त शान्ति से उन्हें समझाया।

एकबार देहली के एक बाबू जी ने मठ में आकर स्वामी जी से वानप्रस्थ आश्रम की दीक्षा ले ली। आश्रम बदलने के कुछ ही समय के पश्चात् उस महानुभाव को पक्षाघात हो गया। श्री स्वामी जी ने उसे उत्तम से उत्तम आयुर्वैदिक औषधियां देकर चलने-फिरने के योग्य बना दिया। सर्दी के दिन थे, श्री स्वामी जी उसके सेवन के लिए एक पाक बनाने की तैयारी में लगे थे। उसमें गुड़ अथवा शक्कर भी डालनी थी। स्वामी जी ने किसी ब्रह्मचारी को शक्कर लाने को कहा। वह झटपट बहुत बढ़िया गुड़ ले आया।

गुड़ को देखते ही वह बाबू वानप्रस्थी आपे से बाहर हो गया। "यह क्या शक्कर है? यह तो गुड़ है।"

श्री स्वामी जी ने कहा, "गुड़ व शक्कर में क्या अन्तर है? गुड़ को थोड़ा तोड़ दो शक्कर बन गई।"

वह बाबू वानप्रस्थी झुंझला कर बोला, "आपको क्या पता गुड़ व शक्कर का?"

इस प्रकार क्रोध में स्वामीजी महाराज को बहुत कुछ कह गया। स्वामी जी सब कुछ सुनकर भी शान्त रहे। उस समय कुटिया के पास कई व्यक्ति स्वामी जी के चरणों में बैठे थे। उनमें से मैं भी एक था। उस बाबू वानप्रस्थी का व्यवहार हमें बड़ा आपत्तिजनक लगा। उसे यह भी ध्यान न रहा कि यह मेरे दीक्षा गुरु हैं। उसे पक्षाघात जैसे गन्दे रोग से बचाकर चलने-फिरने के योग्य बना दिया। यह उपकार भी वह भूल गया।

कुछ समय पश्चात् मैंने कहा, "स्वामी जी यह कैसा वानप्रस्थी है? यह आपका भी निरादर करता है।"

स्वामी जी ने कहा, "जिज्ञासु जी संस्थाओं में कई प्रकार के मनुष्यों से व्यवहार पड़ता है। यह पढ़-लिखकर भी अभी स्वाद के चक्र में पड़ा है। इसे स्वास्थ्य-लाभ की चिन्ता नहीं, यह तो स्वाद के पीछे है।"

श्री स्वामी जी महाराज की सेवा से वह और ठीक हो गया। फिर घर चला गया। उसके

पश्चात् देहली वा अन्यत्र हमने उसे कहीं नहीं देखा।

यदि उस दिन स्वामी जी वहां न होते तो स्वामी जी के प्रति ऐसी अनाप-शनाप करने पर कोई ब्रह्मचारी या मैं ही उसे पीट देता।

तब स्वामी जी बड़े दुखी हुये

यह बीस वर्ष पुरानी घटना होगी, कांगड़ा हिमाचल प्रदेश से एक रोगी मठ में आया। उसकी आयु कोई साठ वर्ष होगी। यह पता नहीं कि उसके परिवार में कोई और था या नहीं। उसे ज्वर था और साथ और भी कई रोग लगे हुये थे। सुन-सुनकर मठ में आ गया। श्री स्वामी जी उसका उपचार करते रहे। खाने-पीने व रहने की भी सब व्यवस्था मठ में कर दी। उसे पर्याप्त लाभ हुआ परन्तु अभी पूरा ठीक नहीं हुआ था।

वह ब्रह्मचारियों से झगड़ता रहता। ब्रह्मचारी उसकी सेवा से इतने तंग नहीं आए जितने कि उसके स्वभाव से। सदा खीजा-खीजा रहता था। स्वामी जी ब्रह्मचरियों को समझाते रहते कि उसे कुछ न कहा करो, लम्बे रोग के कारण यह चिडचिड़ा हो गया है परन्तु ब्रह्मच्चारियों से उसका दिन में कई बार झगड़ा हो जाता था।

एक दिन वह यह कहकर मठ से चला गया कि यहां स्वामी जी महाराज तो बड़े पूजनीय देवता है, ये ब्रह्मचारी अच्छे नहीं, ये मुझे यहां रहने नहीं देते। मैंने भी उसे जाते देखा। क्रोध के वशीभूत वह किसी की भी नहीं सुन रहा था।

उसके जाने कें पश्चात् स्वामी जी भी ब्रह्मचारियों के कमरों की ओर आ निकले। स्वामी जी को सारी बात का पता चला तो बड़े दुखी हुये। आपने तब अत्यन्त भावनाशील होकर कहा, "ब्रह्मचारियों ने ठीक नहीं किया। वह मठ की प्रसिद्धि सुनकर आया था। हमने इतने दिन उसकी सेवा भी की, उसे लाभ भी हुआ परन्तु इसका परिणाम क्या निकला? वह कुछ दिन और यहां रुकता तो पूर्णतया स्वस्थ हो जाता। अब वह मठ के बारे में क्या सोचेगा?"

श्री स्वामी जी महाराज को तब मैंने कितना दुःख मनाते देखा, यह शब्दों में नहीं बताया जा सकता। पर पीड़ा से व्याकुल होने वाले ऐसे थोड़े ही महापुरुष होते हैं।

मठ का यह नियम स्वामी जी ने क्यों तोड़ा?

मठ से दूर-दूर से सैंकड़ों रोगी प्रतिदिन आते हैं। औषधालय का यह नियम है कि १२ बजे तक औषधि मिलती है परन्तु हम लोग चालीस वर्ष से देख रहे हैं कि आस-पास के ग्रामों के रोगी भी जिन्हें यह पता है कि औषधालय बारह बजे बन्द हो जाता है, वे भी कई बार बारह बजे के पश्चात् औषधि लेने आते हैं।

जब आते है तो आकर यह भी हठ करते हैं कि औषधि बाबा जी से (पूज्य स्वामी जी महाराज) ही लेनी है किसी और से नहीं। कई बार स्वामी जी थके टूटे होते हैं, स्वयं रुग्ण होते हैं और मठ के व समाज के कार्यों में इस से विघ्न भी पड़ता है परन्तु रोगियों के इस हठ के आगे स्वामी जी को सदैव झुकते देखा।

आश्चर्य होता है कि लौह-पुरुष स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज जैसे महापुरुष का परम प्यारा चेला अपने गुरु द्वारा बनाए गये नियमं को ऐसे तोड़े। स्वामी जी महाराज तो नियम पालन में बड़े कड़े थे। स्वामी श्री सर्वानन्द जी इस नियम के लागू करने में इतने ढीले क्यों?

एक बार हमने इसका कारण पूछ ही लिया। स्वामी जी ने बताया कि एक बार औषधालय बन्द होने के पश्चात् जम्मू की ओर से कुछ मुसलमान गुज्जर आए। उनके साथ एक रोगी था। उसे सम्भवतः कुछ उदर शूल था। मैंने कहा अब कल आना। उन्होंने् बहुत कहा-सुना परन्तु मैंने यही कहा कि अब तो औषधालय बन्द हो चुका है। वे चले गये। रोगी को सम्भवतः घोड़ी पर लाये थे। वे लौट गये।

कुछ दूर गये थे कि पीड़ा के कारण रोगी की आह निकली। वह आह बड़ी दर्दनाक थी। वह आह मेरे हृदय में उतर गई। उस दिन के पश्चात् मैंने किसी रोगी को औषधालय के समय के पश्चात् भी नहीं लौटाया।

जो तड़प उठे जन पीड़ा से,
वह सच्चा मुनि मनस्वी है।
जो राख रमा कर आग तपे,
वह भी क्या खाक तपस्वी है।।

पुण्य आप लूटें और पाप हमें लगे

उन दिनों श्री स्वामी जी का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था। फिर भी कार्य में लगे रहते थे। रोगी दिनभर परेशान करते थे। लेखक भी तब मठ में गया हुआ था। आचार्य जगदीश जी व मठ के अन्य युवकों से कहा, ''क्या आप स्वामी जी का ध्यान नहीं रख सकते? रोगियों को आग्रहपूर्वक कहा करें कि बारह बजे के पश्चात् मत आया करें।''

आचार्य जगदीश जी ने कहा, 'हम तो रोगियों को रोक लें, स्वामी जी को कौन रोके? लोग आकर एक ही रट लगाते हैं कि बड़े बाबा जी से दवाई लेनी है और बड़े बाबा जी 'न' नहीं करते।''

मैंने स्वामी जी से कहा, ''आपका जीवन मूल्यवान् है। क्या आप यह नहीं जानते? आप विश्राम नहीं करते। रोगियों को रोकें कि बारह बजे के बाद औषधि नहीं मिलेगी। एक घंटा तो भोजन के पश्चात् विश्राम किया करें।''

पूज्य स्वामी जी ने कहा, ''क्या करें लोग मानते ही नहीं। कैसे रोकें?''

यज्ञशाला के समीप यह बात चल ही रही थी कि जम्मू की ओर से आठ दस मुसलमान गुज्जर आ गये। उनमें कुछ बड़ी आयु के थे और कुछ युवक। बड़े भक्ति भाव से, 'बड़े पीर जी से ही औषधि लेनी है' की रट लगाते हुये सबके रोकने पर भी कुटिया के पास महाराज के चरणों में आ विराजे।

स्वामी जी ने सबको देखा और औषधि तत्काल औषधालय से दिलवा दी। इतने रोगियों को देखने में समय तो लगा।

मैंने कहा, ''स्वामी जी ऐसे आपकी गाड़ी कब तक चलेगी?''

अपने मेघ गम्भीर स्वर में बोले, ''क्या किया जाये, लोग रुकते ही नहीं। वे इतनी दूर से आस लगाकर आए।' मैं 'न' क्या करता।''

मैंने कहा, स्वामी जी रोक तो मैं सबको अभी देता। वे कल आ जाते परन्तु वे यह सोचते कि हम मुसलमान हैं। इसलिए हमें इसने (मैंने) औषधि आज नहीं लेने दी। पुण्य तो सारा आप कमा रहे हैं, पाप हमें लगे। आप भी तो कुछ रोकें तब बात बनेगी। रोगी कहेंगे श्री स्वामी जी तो बड़े दयालु कृपालु हैं, ये चेले ही गन्दे हैं।

यह सुनकर स्वामी जी चुप हो गये। वास्तविकता यह है कि आपसे किसी का दुःख देखा ही नहीं जा सकता।

श्री पं० शिवकुमार शास्त्री का पत्र पाकर

श्री पं० शिवकुमार जी शास्त्री की श्रीमती आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर में रहने का मन बना चुकी थीं। एकदिन पं० शिवकुमार जी की अनुपस्थिति में उन पर पक्षाघात ने आक्रमण कर दिया। श्री पण्डित जी का इससे चिन्तित होना स्वाभाविक ही था। मैंने पण्डित जी से कहा कि पूज्य स्वामी जी को आप लिखिए उनके पास इस रोग की बड़ी अच्छी औषधि है। प्रभु कृपा से लग गई तो माताजी चलने-फिरने के योग्य हो जायेंगी।

पंडित जी ने मठ में पत्र लिख दिया कि जिज्ञासु जी से पता चला है कि आपके पास इस रोग की कोई बहुत अच्छी औषधि है यदि भेज सकें तो......।

श्री स्वामी जी ने पत्र पाते ही औषधि भेज दी। कुछ दिनों पश्चात् पण्डित जी मिले तो आपने बताया कि स्वामी जी की औषधि से बड़ा लाभ हुआ है।

इसके पश्चात् श्री स्वामी जी के कहीं दर्शन हुये तो पूछने लगे पंडित जी की पत्नी के लिए औषधि भेजी थी, फिर पता नहीं चला कि क्या-कुछ लाभ हुआ। यदि कोई और औषधि चाहिए तो भेजें?

मैंने कहा कि पण्डित जी मिले थे और बता रहे थे कि औषधि से विशेष लाभ हुआ है।

इससे पहले कि पण्डित जी का पत्र मठ पहुंचे पूज्य स्वामी जी ने पण्डित जी को पत्र लिख कर सब वृत्तान्त पूछा और तदनुसार औषधि भेजने की बात लिखी।

आर्यसमाज में विद्वानों, सेवकों व कार्य कर्त्ताओं की इतनी सुधि लेने वाले कुछ और नेता व संन्यासी होते तो आर्यसमाज में न विद्वानों का अभाव खलता और न ही कार्यकर्त्ताओं की कमी अखरती।

और भागीरथ गद्‌गद् हो गया

भागीरथ नाम का एक दुबला-पतला व्यक्ति फटे-पुराने, मैले-कुचैले वस्त्र पहने आर्यसमाज के उत्सवों पर कुछ पुस्तकें लेकर घूमा करता था। उसके पास पुस्तकें भी अच्छी न होती थीं। लघु पुस्तकें रखता था या फटी-पुरानी पुस्तकें उसके पास होती थीं।

हिन्दी सत्याग्रह के पश्चात् एक बार किसी समाज के उत्सव से होकर मठ पहुंच गया। स्वामी जी ने उसकी सब व्यवस्था करवा दी। अगले दिन जब उसने दोपहर का भोजन किया तो स्वामी जी ने उसे कहा, "तेरे पास क्या है?"

उसने अपना माल दिखा दिया। स्पष्ट है कि मठ के क्रय करने योग्य तो न था परन्तु पूज्य

स्वामी जी ने कहा— सारा यहीं रख दे। उसे सब पुस्तकों का मूल्य मिल गया।

उसे आज तक ऐसा दयालु-कृपालु, ग्राहक मिला ही न था। वह सारा माल खपा कर , इतने पैसे पाकर गद्‌गद्‌ हो गया।

किसी ने तब कहा, "स्वामी जी इसके पास कोई काम की पुस्तक तो है नहीं। ये क्या करेंगे?"

पूज्य स्वामी जी ने कहा, "कोई बात नहीं हवन की, सन्ध्या की, भजन की पुस्तकें ही तो हैं। सब बांट देंगे। यह आर्यसमाज का काम करता है। किसी से भीख तो मांगता नहीं। ऐसे लोग सड़कों पर, स्टेशनों पर मांगते-फिरते हैं। यह धर्म का काम करता है। यह आर्यसमाज का सेवक है। इसे हम नहीं पूछेंगे तो कौन पूछेगा?"

जब संन्यासी ने गृहस्थी के चरण-स्पर्श किए

पांच-छः वर्ष पहले की घटना है। पूज्यपाद स्वामी जी महाराज प्रचारार्थ मुम्बई महानगरी गये। आर्यसमाज काकड़वाड़ी में रुके थे। आपने जाते ही वहां आर्यसमाज में एक विद्वान् से पूछा, "पं० ईश्वर चन्द्र जी दर्शनाचार्य कहां रहते हैं? मुझे उनसे मिलना है।"

आर्यसमाज के लोगों ने कहा, "हम आपको साथ ले जाकर पूज्य पं० जी से मिलवा देंगे।"

श्री स्वामी जी को पण्डित जी से मिले बिना चैन नहीं आ रहा था। आप थोड़ी थोड़ी देर बाद पण्डित जी से मिलवाने की बात कहते रहे।

एक सज्जन स्वामी जी को पण्डित जी के पास ले गये। श्री स्वामी जी ने पण्डित जी को देखते ही पहचान लिया।

पण्डित जी ने संन्यासी पर अभी दृष्टि डाली ही थी कि परिव्राजकाचार्य मुनि ने श्री पं० ईश्वरचन्द्र जी दर्शनाचार्य के चरण-स्पर्श करके नमस्ते की।

गृहस्थी पं० ईश्वरचन्द्र जी यह दृश्य देखकर बड़े चकित से हुये कि यह क्या बात है। कहा, "महात्मन् आप यह क्या कर रहे हैं? मैं एक साधारण गृहस्थी हूं और आप एक संन्यासी होकर मेरे पांव छू रहे हैं। यह उलटी गंगा कैसी?

इस पर स्वामी जी ने अत्यन्त श्रद्धा भक्ति से कहा, "आप मुझे पहचान नहीं रहे। मैं आपका पुराना शिष्य हूं। आप से दर्शन पढ़े थे। आपका अभिवादन करना मेरा कर्त्तव्य है।" अब पंडित जी स्वामी जी को पहचान तो गये परन्तु उन्हें यह बड़ा अटपटा सा लगा कि एक ऐसे पूज्य संन्यासी ने उनके चरण छूए हैं।

स्वामी जी ने तब पंडित जी को एक अच्छी राशि भी भेंट की। पंडित जी के इनकार करने पर भी देकर ही हटे।

आपकी अब क्या इच्छा है?

तभी स्वामी जी महाराज ने पण्डित जी से कहा, "मेरे योग्य कोई सेवा? आपकी कोई इच्छा वा कोई कार्य जिसमें मठ सहयोग कर सके।"

तब पण्डित जी ने कहा, "मैं अपने सभी पूर्वज दार्शनिकों के जन्म स्थान, उनके आश्रमों

व उनसे संबंधित स्थानों की यात्रा करना चहता हूं। गौतम, कणाद आदि मुनियों के स्थान देखना चाहता हूं।"

श्री स्वामी जी ने कहा, जब आपका यात्रा पर जाने का विचार हो, एक पत्र डाल देना। मैं दस सहस्र रुपये भेज दूंगा। और भी आवश्यकता होगी तो भेज दूंगा।"

कुछ लोगों को अपने गेरू वस्त्र का अथवा वानप्रस्थी होने का बड़ा अभिमान होता है। श्री स्वामी जी महाराज जहां संन्यास की मर्यादा का बड़ा ध्यान रखते हैं, वहां उन्होंने कभी भी अपने चतुर्थ आश्रमी होने का व्यर्थ अभिमान नहीं किया। आपकी विनम्रता सबके लिए एक उदाहरण है। पूज्य विद्वानों, देश सेवकों व समाज सेवियों का सन्मान करना उन्हें सहयोग देना, प्रोत्साहित करना यह आपका स्वाभाविक गुण बन चुका है। पं० दयाशंकर जी के भतीजे श्रीयुत देवदत्त जी ने स्वामी सुमेधानन्द जी झज्जर वालों को यह घटना सुनाई।

जब गुरु शिष्य की खोज में भटक रहा था

आर्यसमाज स्थापना शताब्दी महोत्सव के अवसर पर देहली में श्री पं० ईश्वरचन्द्र जी दर्शनाचार्य स्वामी सर्वानन्द जी को यहां वहां खोज रहे थे। लाखों की भीड़ में कहीं भी उन्हें खोज पाना बड़ा कठिन था। श्री पण्डित जी कभी वेदी पर नहीं बैठते और स्वामी जी भी इस अवसर पर वेदी पर नहीं बैठे तो पता कैसे चले कि कौन कहां हैं।

इधर-उधर पण्डित जी सबसे पूछ रहे थे कि श्री स्वामी सर्वानन्द जी कहां है। किसी ने दूरसे मुझे जाते देखकर पण्डित जी से कहा, "वह प्रांध्यापक जिज्ञासु जा रहे हैं। इनसे पूछो, इन्हें स्वामी जी महाराज के ठिकाने का अवश्य पता होगा।"

पण्डित जी मेरे पास आए और कहा, "मैंने उन्हें संन्यासी के रूप में कभी नहीं देखा। वर्षों के पश्चात् यह अवसर मिला है। मैं उनके दर्शन करना चाहता हूं। मुझे मिलवा दें।" मैंने कुछ यत्न किया। जब स्वामी जी न मिले तो उनका पता पूछ लिया और कहा कि अब स्वामी जी को आपका पता बता दूंगा। वे अवश्य आपसे मिलेंगे।

स्वामी जी महाराज मिले तो मैंने बताया कि पण्डित ईश्वर चन्द्र जी आपसे मिलने के बहुत इच्छुक हैं। दोनों और से अब खोज चालू हो गई। स्वामी जी महाराज व पण्डित जी की भेंट हो गई।

गुरु की इसमें महानता है कि वह अपने शिष्य की कीर्ति सुनकर गद्गद् हो रहा है और उनके संन्यासी के रूप में दर्शन करने के लिए उसके मन में कितनी उत्कट इच्छा है। श्री पण्डित जी को पूज्य स्वामी जी के दर्शनों के लिए मैंने तब कितना विहवल पाया, यह शब्दों में बता पाना अति कठिन है।

स्वामी जी की पं० ईश्वरचन्द्र जी के लिए सोच

देश विभाजन के पश्चात् श्री पं० ईश्वरचन्द्र जी मुम्बई में जैनियों के एक महाविद्यालय में दर्शन पढ़ाने लगे। इस कारण वे समाज की कोई सेवा न कर सके। वैदिक

दर्शन पर कुछ लिख भी न सके। समाज के लिए एक प्रकार से पण्डित जी सरीखे असाधारण दार्शनिक का कोई उपयोग न रहा। सारा आर्य जगत् इस संबंध में चिन्तित तो रहता था परन्तु पण्डित जी को वहां से निकाल कर कहीं किसी कार्य पर लगाया जावे, इसके लिए आर्यसमाज भी कुछ न कर सका। प्रश्न कोई बहुत बड़ा न था। एक विद्वान् के भरण-पोषण की व्यवस्था करके, उन्हें चिन्ता मुक्त ही तो करना था।

पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी ने पण्डित जी को मुम्बई से निकालने का सब दायित्व ले लिया। जितना वहां मिलता था, उतनी दक्षिणा का सारा दायित्व अपने ऊपर ले लिया परन्तु पण्डित जी की भी एक कठिनाई थी। वे अपनी घर गृहस्थी के कारण मुम्बई न छोड़ सकते थे। इस पर स्वामी जी भी विवश थे। क्या करते। यह बात पूज्य स्वामी जी ने मुझे कोई २५ वर्ष पूर्व बताई थी।

स्वामी जी को विद्वानों का कितना ध्यान रहता है, यह इस घटना से हमें पता चलता है।

एक और विद्वान् का सब दायित्व लिया

पूज्य श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक ने एक बार सुनाया था कि स्वामी ओमानन्द एक दानी साहित्य प्रेमी को लेकर उनके पास बहालगढ़ आए और कहा कि पौराणिक बाबा करपात्री द्वारा ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के खण्डन में लिखे गये ग्रन्थ के उत्तर में वे संस्कृत में एक सुन्दर ग्रन्थ लिख दें। तब तक आचार्य विशुद्धानन्द जी का ग्रन्थ नहीं रचा गया था।

श्री मीमांसक जी ने कहा कि मैं शारीरिक दृष्टि से बहुत निर्बल हो गया हूं यदि मुझे आचार्य सत्यानन्द जी वेदवागीश की सेवाएं लेखक के रूप में मिल जायें तो यह कार्य संभव हो सकता है। पं० सत्यानन्द जी की घर गृहस्थी के लिए प्रतिमास जो आर्थिक सहयोग चाहिए वह स्वामी ओमानन्द जी को बता दिया गया।

श्रीमान् पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक ने कहा कि कुछ ही दिन में उनको पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी का दीनानगर से एक पत्र प्राप्त हुआ कि आप पं० सत्यानन्द जी वेद वागीश को बुलवा कर ग्रन्थ लेखन का कार्य आरम्भ कर दें। पण्डित सत्यानन्द जी की मासिक दक्षिणा प्रतिमास मठ भेजा करेगा। स्वामी जी महाराज की इस उदारता व धर्म रक्षा में उनके उत्साह व दूसरों को प्रोत्साहन देने की उनकी प्रवृत्ति से श्री मीमांसक जी बड़े प्रभावित हुए। यह हमें पता नहीं कि किन कारणों से फिर बहालगढ़ में यह कार्य आरम्भ न हो सका।

सरकारी अनुदान नहीं चाहिए

पूज्य स्वामी जी महाराज अपने परोपकार के कार्यों के लिए कभी सरकारी अनुदान नहीं लेते। मांगना तो दूर रहा आप बिना मांगे दिया गया अनुदान भी स्वीकार नहीं करते। श्री स्वामी सुबोधानन्द जी ने बताया कि एक बार डी० सी० ने आपको मठ द्वारा किए जा रहे अनेक परोपकारी कामों के लिए पांच सहस्र रुपया भेज दिया।

आपने धन्यवाद सहित यह राशि लौटा दी। तब उस सज्जन स्वभाव डी० सी० ने स्वामी जी से कहा था कि लोग कुछ भी काम न

करके सरकार से सहायता मांगते रहते हैं। अनुदान के नाम पर बड़ी ठग्गी हो रही है। बोगस संस्थायें लोगों ने बना रखी हैं। आप का औषधालय, गोशाला व दीन दुखी दलित, की सेवा का कार्य जिस उत्तम रीति से हो रहा है, उसे सभी जानते हैं। यह अनुदान ठोस कार्य के लिए व्यय हो, इस उद्देश्य से मैं देता हूं। लोग मांगते ही रहते हैं और आप हमारे देने पर भी नहीं लेते। स्वामी जी ने फिर भी अनुदान स्वीकार न किया।

वोट की राजनीति से दूर

श्री स्वामी सुबोधानन्द जी ने यह लिखा है कि पूज्य स्वामी जी नोट के साथ वोट की राजनीति से भी सर्वथा अलिप्त रहते हैं। विधान सभा का निर्वाचन हो अथवा लोकसभा वा नगर पालिका का आप मतदान में भाग नहीं लेते।

अपना वोट ही नहीं डालते प्रत्युत मठ का कोई साधु ब्रह्मचारी वोट नहीं डालता। राजनैतिक दलों के व्यक्ति आते हैं। आशीर्वाद मांगते हैं परन्तु स्वामी जी शुभकामनायें भेंट करते समय दलबन्दी में नहीं आते।

एक बार स्वामी जी ने स्वयं सुनाया था कि किसी ने स्वामी जी की शिकायत कर दी कि ये मठ वासियों को अपने मत के प्रयोग के अधिकार से वंचित करते हैं। यह एक दण्डनीय अपराध है। ऊपरसे इसकी जांच के आदेश दिये गये। एक जांच अधिकारी मठ में आ गया।

श्री स्वामी जी महाराज ने उस अधिकारी से कहा, "हमारा काम आपको कैसा लगा?"

उसने कहा, "आप द्वारा जन सेवा के कार्य की तो सभी यहां प्रशंसा करते हैं।"

स्वामी जी ने कहा, "आप देखते हैं कि मठ में सब प्रकार के सब विचार के लोग आते हैं। हम साधु हैं। साधु का काम है कि सबका उपकार सुधार करे। सबमें मेल कराना हमारा काम है। यदि हम किसी एक पार्टी के साथ बंध गये तो क्या यह अच्छा होगा? क्या आप चाहते हैं कि हम लड़ाई झगड़े मिटावें या स्वयं इनमें उलझें?"

श्री स्वामी जी के विचार सुनकर वह जांच अधिकारी बड़ा प्रसन्न हुआ और यह बात वहीं समाप्त हो गई।

मुझे मरने को स्थान चाहिए

श्री स्वामी जी की संन्यास-दीक्षा के कुछ ही वर्ष पश्चात् मठ में प्रसिद्ध विद्वान् स्वामी भूमानन्द जी एम० ए० का पत्र आया कि मुझे मरने के लिए स्थान चाहिए। क्या कहीं कोई ऐसा स्थान है?

स्वामी जी पत्र का आशय समझ गये। श्री स्वामी भूमानन्द जी को लिखा, "शीघ्र मठ में आ जाइए। यहां आपकी सेवा-सुश्रूषा होगी।"

वे मठ में पहुंच गये। स्वामी जी ने उनका उपचार आरम्भ किया। स्वास्थ्य में पर्याप्त सुधार हो गया फिर न जाने इकदम क्या गड़बड़ हो गई कि वे दोबारा रुग्ण हो गये और चल बसे।

तब पूज्य स्वामी सुव्रतानन्द जी ने मुझे बताया था कि श्री स्वामी जी महाराज उनको चारपाई के पास ही मल मूत्र करवाते। स्वयं ही

उठाते। स्वामी सुव्रतानन्द जी में बहुत सेवा भाव था। उन्हें पता था कि स्वामी भूमानन्द जी बड़े उच्च कोटि के विद्वान् लेखक हैं। इस लिए ऐसे साधु की सेवा का पुण्य वे भी प्राप्त करना चाहते थे। उन्होंने मुझे कहा, "जिज्ञासु जी! मैंने स्वामी सर्वानन्द जी महाराज से बहुत कहा, क्या सेवा का प्रसाद हमें नहीं लेने दोगे परन्तु, स्वामी जी ने हममें से किसी को अवसर नहीं दिया। आप ही मल मूत्र उठाते रहे।"

और मुझे मठ में ज्वर हो गया

स्वामी जी महाराज में परोपकार व जन सेवा का कितना गहरा भाव है इसके संबंध में एक आप बीती यहां देते हैं। यह सन् १९६४ के ग्रीष्म काल की घटना है। मैं सोलापूर से पंजाब आया। दक्षिण में वैदिक धर्म-प्रचार को बढ़ाने के लिए पूज्य स्वामी जी से विचार-विमर्श करने मठ पहुंचा। कुछ दिन मठ में ठहरा।

मुझे मठ में ज्वर हो गया। स्वामी जी ने मेरी बड़ी सेवा की। मैं स्वस्थ हो गया। स्नान की इच्छा हुई। स्वामी जी ने मुझे स्नानागार तक न जाने दिया। मेरी एक न सुनी। स्वयं बरामदे में आ गये। ब्रह्मचारी बालटियों में जल ले आए। मुझे कहा आप बैठ जायें। आप ही लोटे भर-भर कर मेरे ऊपर डालने लगे। इस प्रकार तो कोई मां ही कर सकती है। मुझे बड़ा संकोच हो रहा था परन्तु मेरी एक न चली।

बात यहीं तक होती तो भी कुछ था। स्वामी जी तो इससे भी आगे गये। मैं स्नान कर चुका तो कहा, "आप वस्त्र पहन कर विश्राम करें।" मेरा कच्छा भी मुझसे ले लिया। वह भी मुझे धोने नहीं दिया। मैंने बहुत कहा कि स्वामी जी यह ठीक नहीं।

ब्रह्मचारी भी कई पास खड़े थे। सबने कहा कि वे कच्छा धो देंगे परन्तु सेवामूर्त्ति पूज्य स्वामी जी ने मेरा कच्छा भी स्वयं धोया व निचोड़ा। जब-जब इस घटना का स्मरण हो आता है तो श्री महाराज के प्रति मुख से अनायास ही यह वाक्य निकल आता है:—

तेरा ऋण कैसे चुकाऊं?

उनकी गुरु-भक्ति की एक घटना

यह सन् १९६५ की घटना है। मैंने श्री महाराज की स्वीकृति व आशीर्वाद लेकर पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी का पहला जीवन चरित्र वीर संन्यासी लिखना आरम्भ किया। मुझे बड़े स्वामी जी के जीवन संबंधी कोई नई घटना मिलती तो मैं स्वामी सर्वानन्द जी को तत्काल लिख दिया करता था। यदि किसी घटना की जांच पड़ताल व पुष्टि करनी होती तो भी स्वामी जी को लिखा करता था। श्री स्वामी जी अत्यन्त व्यस्त होते हुये भी इस कार्य में विशेष रुचि लेकर मेरे पत्रों का यथा समय उत्तर दिया करते थे।

उन्हीं दिनों स्वामी सुधानन्द जी व पं० मेहरचन्द जी को दक्षिण में प्रचारार्थ बुलवाया। दोनों प्रचार-क्षेत्र में वर्षों से थे। दोनों से स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के संबंध में घटनायें जाननी चाहीं।

श्री पं० मेहरचन्द जी भजनोपदेशक ने एक सुनी सुनाई बात स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के बारे में सुना दी। यह कहानी शुद्ध गप्प थी परन्तु इस गप्प को घड़ने वाले सूफ़ी ज्ञानेन्द्र जी (जो इस्लाम छोड़ कर आए थे) थे। स्वामी जी के कड़े अनुशासन से दण्डित होकर आपने यह कहानी घड़ी थी। बड़ी चतुराई से

सूफी जी ने इस कहानी का प्लाट बनाया। सुनने वाले पर स्वामी जी के हृदय की कोमलता का प्रभाव पड़ता परन्तु झूठ तो झूठ ही होता है। इधर-उधर कानाफूसी करके सूफी ज्ञानेन्द्र ने यह गप्प प्रसारित कर दी। कुछ भोले-भाले भक्तों ने इस पर विश्वास कर लिया।

मैंने भी पं० मेहरचन्द्र जी से सुनकर इस कहानी को सत्य मान लिया और स्वामी सर्वानन्द जी को लिखा कि आपने स्वामी जी के गृह-त्याग के बारे में कभी यह बात नहीं बतलाई। एक पुराने व्यक्ति ने वैराग्य का कारण यह भी बताया है। क्या आप को कभी किसी ने यह कहानी सुनाई?

लौटती डाक से स्वामी जी का एक पत्र प्राप्त हुआ। पत्र की एक एक पंक्ति से लगता था कि इस मन घड़न्त कहानी से उनके हृदय को बड़ी टीस लगी। आपने मुझे लिखा कि आश्चर्य है कि आपने इस कहानी पर कैसे विश्वास कर लिया। किसने यह आपको बताई?

मैंने ईश्वर को धन्यवाद दिया कि यह गप्प शेष सामग्री के साथ मुद्रणालय मे न दी थी। छप जाती तो पृष्ठ ही निकालना पड़ता। अपने पूजनीय गुरु, बलिदानी नेता व बाल ब्रह्मचारी स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के प्रति आपकी गहरी निष्ठा तथा सत्य से प्रेम का जैसा परिचय मुझे तब मिला, मैं उसे भूल नहीं सकता।

पं० शिवकुमार जी कौन हैं?

श्री विद्यानन्द विदेह की पुस्तक विदेह गाथा छपी। श्रीमान् डा० भारतीय जी ने मुझे यह पुस्तक यह कहकर पढ़ने को दी कि यह **'आत्म स्तुति पर निन्दा पुराण'** पढ़कर इसी शीर्षक से इस पर कुछ लिखें। मैंने विहंगम दृष्टि से इस पोथे को पढ़ा। इतनी गन्दी और गप्पों से भरी इतनी बड़ी पुस्तक को पढ़ते हुये मेरा मन दुखता था। इसे लेकर मठ में पहुंचा। वहां भी थोड़ी देखी।

एक दिन मैंने स्वामी सर्वानन्द जी महाराज से कहा, "आप श्री पं० शिव कुमार जी शास्त्री को कब से जानते हैं?"

आपने कहा, "वे जब से सेवा क्षेत्र में हैं।"

मैंने कहा, "वे कौन हैं?"

श्री स्वामी जी ने कहा, "क्या आपको उनका पता नहीं कि वे हमारे एक यशस्वी विद्वान् वक्ता व एक प्रमुख आर्य पुरुष हैं?"

मैंने फिर कहा, "वे हैं कौन?"

स्वामी जी को मेरे प्रश्न पर बड़ा अचम्भा हुआ कि आज यह कैसा प्रश्न पूछ रहा है।

आपने कहा, "हमारे लिए तो वे एक माननीय विद्वान् हैं। इसके अतिरिक्त हमें जानने की क्या आवश्यकता? आप किस लिए यह प्रश्न पूछ रहे हैं?"

तब मैंने बताया कि श्री विदेह ने विदेह गाथा में पण्डित जी को ठाकुर शिव कुमार लिखा है। कभी भी किसी आर्य ने पण्डित जी को ठाकुर आदि नहीं लिखा। कोई जाति पांति के चक्र में नहीं पड़ा। श्री विदेह कितने बड़े खोजी थे कि पण्डित शिवकुमार जी की जात बिरादरी का पता निकाल लाए और अपनी गाथा में (जिसमें बिना प्रसंग के) इस बात को ले लिया कि पं० शिवकुमार ठाकुर हैं।

तब स्वामी जी ने कहा, "यह दुष्प्रवृत्ति बड़ी घातक है। लोग जाति पांति के पचड़े में पड़कर बड़ी हानि पहुंचा रहे हैं।"

जब श्री विदेह के संन्यास समारोह का निमंत्रण मिला

श्री विद्यानन्द विदेह बटाला में बहुत आया करते थे। वहां एक प्रार्थना सभा नाम की संस्था के श्री गोकुलचन्द इनको बुलवाया करते थे। गोकुलचन्द जी का प्रयोजन आर्यसमाज को हानि पहुंचाना था सो यह कार्य विदेह जी बड़ी चतुराई से किया करते थे। विदेह जी ने श्री स्वामी आत्मानन्द जी से बटाला में आकर उन्हें संन्यास देने की प्रार्थना की। स्वामी जी मान गये।

बटाला के कुछ सिद्धान्त प्रेमी आर्य पुरुष जो विदेह जी की आर्यसमाज को हानि पहुंचाने की प्रवृत्ति व आत्म प्रशंसा की अति से दुखी थे– वे भी इस बात से प्रसन्न हुये कि विदेह जी पूज्य स्वामी आत्मानन्द जी से संन्यास की दीक्षा ले रहे हैं। उनकी इच्छा यह थी कि इस अवसर पर स्वामी आत्मानन्द जी श्री विद्यानन्द से यह व्रत लें कि भविष्य में वह आर्य सिद्धान्तों के विरुद्ध प्रचार न करेंगे और आर्यसमाज को हानि नहीं पहुंचायेंगे।

इसी प्रयोजन से महाशय सत्यपाल जी, वैद्य दीवानचन्द जी आदि इस कार्यक्रम से एक दिन पूर्व मठ में आए और स्वामी सर्वानन्द जी महाराज से कहा कि आप भी इस अवसर पर बटाला आएं ताकि ये बातें विदेह जी से कही जावें। उन्हें आशा थी कि इस प्रकार वह अपनी नीति बदल देंगे।

श्री स्वामी सर्वानन्द जी ने इन सज्जनों की विनती स्वीकार न की? आपने कहा, "बटाला में संन्यास लेने की क्या तुक है? बटाला में कोई आर्यसमाज का उत्सव भी नहीं जिस पर यह दीक्षा ली जावेगी। बटाला कोई हमारा ऐतिहासिक स्थान भी नहीं जिस कारण वह भावनावश वहां संन्यास ले रहे है। गुरु संन्यास देने इनके पास चल कर आ रहा। यह तो ऐसे पूज्य विद्वान् के पास चलकर नहीं गये। यह कैसी संन्यास-दीक्षा?"

श्री स्वामी जी के इस कथन का बटाला वालों के पास कोई उत्तर न था। सबको यह बात जंच गई कि श्री स्वामी जी ने बटाला न जाने का निर्णय करके अपने संन्यास आश्रम की प्रतिष्ठा बढ़ाई है। एक संन्यासी को यही निर्णय लेना चाहिए। यह तुष्टिकरण की वेला न थी। प्रश्न था मर्यादा की रक्षा का।

इतिहास के विद्यार्थी के रूप में हमें वह दिन कभी नहीं भूल सकता जब महाशय सत्यपाल जी आदि मठ में आए थे। लेखक तब वहीं था। यह बात भी स्मरणीय है कि दयानन्द मठ दीनानगर में पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी, स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ, महात्मा आनन्द स्वामी जी, स्वामी आत्मानन्दजी महाशय कृष्ण, स्वामी सदानन्दजी कर्नाटक, श्री सिद्धान्ती जी, पं० प्रकाशवीर शास्त्री आदि सब नेता जाते रहे हैं। एक विद्यानन्द विदेह ही ऐसी मूर्त्ति हैं जो प्रतिवर्ष बटाला में सपत्नीक जाया करते थे परन्तु मठ में कभी भी नहीं गये। श्री विदेह के मन में स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के जीवन काल में अथवा उनके बाद न तो

अपने इस पवित्र धर्म स्थान को देखने का विचार आया और न ही मठ के दर्शनीय पुस्तकालय को देखने की चाह पैदा हुई। पूज्यों के दर्शन की तो बात ही बड़ी दूर की सोच थी।

इतिहास की रक्षा के लिए इस घटना को यहां देना अति आवश्यक समझा। इससे धर्म प्रेमी बहुत कुछ सीख सकते हैं।

और उस सिख भक्त ने तत्काल मांस-भक्षण त्याग दिया

श्री स्वामी स्वतंन्त्रानन्द जी की जन्म शताब्दी पर स्वामी जी महाराज ने दीनानगर से स्वामी जी के जन्म-स्थान मोही तक पद यात्रा निकाली। लुधियाना से चलकर पद यात्री मुल्लापुर नाम के स्थान पर रुके। वहीं रात्रि विश्राम किया। वहां एक सुशिक्षित सिख सज्जन जिसकी आयु चालीस वर्ष होगी, स्वामी जी के दर्शन करने आया। कुछ भक्त स्वामी जी के चरण दबा रहे थे। उसने भी बड़ा आग्रह करके पांव दबाने आरम्भ किये। स्वामी जी से कुछ धर्म चर्चा भी की।

स्वामी जी से आशीर्वाद मांगा। यह भी कहा जीवनोपयोगी कुछ उपदेश दीजिए। स्वामी जी ने कहा सत्य का पालन किया करो। मांस, मदिरा आदि दुर्व्यसनों से दूर रहिए। उसने कहा, "मैं कल से मांस-भक्षण छोड़ दूंगा।"

स्वामी जी ने कहा, "कल से नहीं अभी से ये बुराइयां छोड़ दीजिए।"

उसने कहा, "अच्छा! मैं अभी से इनको छोड़ने का व्रत लेता हूं। अब मांस नहीं खाऊंगा।"

भोजन का समय होने वालाथा। उस्मने कहा, 'अब आप भोजन कीजिए।"

स्वामी जी ने कहा, "आपको भी अब इस समय हमारे साथ भोजन करना होगा।"

पूज्य स्वामी जी महाराज के इस मृदुल व्यवहार से वह बड़ा प्रभावित हुआ। उसने इसमें अपना सन्मान समझा कि श्री स्वामी जी उसे इतने आग्रह से अपने साथ भोजन करवाने लगे हैं। यह भी एक विशेष सन्मान की बात है।

'ये सब कुछ आपके लिए हैं'

श्री पं० शान्ति प्रकाश जी की शारीरिक अवस्था का ध्यान रखते हुये आप उनके लिए कई प्रकार की बड़ी मूल्यवान् औषधियां लेकर श्रावणी पर्व के दिनों में सम्वत २०४६ को देहली पहुंचे। श्री पं० शान्ति प्रकाश जी को पहले ही सूचित किया जा चुका था कि एक विशेष कार्य के संबंध में विचार विमर्श के लिए आर्यसमाज नयाबांस देहली पहुंचें।

पण्डित जी बहुत रुग्ण थे और चोट भी लगी थी फिर भी देहली पहुंच गये। श्री स्वामी जी ने पूज्य पण्डित जी को पौष्टिक औषधियां भेंट की। उनका भार दस किलो तक होगा। उनमें मठ का च्यवनप्राश भी था। श्री पण्डित जी ने कहा, "यह किस लिए?"

पूज्य स्वामी जी ने कहा, इनका सेवन कीजिए और समाज की सेवा करते जाइए। आपकी निर्बलता व रोग-निवारण के लिए आपकी भेंट हैं।

यह है गुरु भाई के लिए प्यार।

यह है विद्वान् का सत्कार।

और यह है वेदप्रचार व समाज-सेवा का ध्यान।

पण्ड़ित जी तो आसानी से किसी से कुछ लेते नहीं परन्तु पूज्य स्वामी जी को गुरुवर स्वामी स्वतंन्त्रानन्द जी के आसन पर मानकर इनके सामने हार मान लेते हैं अतः भेंट स्वीकार कर ली।

'मैं पण्डित जी को मिले बिना नहीं जाऊंगा।''

पण्डित शान्ति प्रकाश जी रुग्णता व चोट के कारण समय पर देहली न पहुंच सके। पूज्य स्वामी जी अपने सुशिष्य स्वामी सहजानन्द जी के साथ पहुंच गये। नया बांस समाज के मंत्री श्री धर्मपाल जी के पास सौभाग्य से, पण्डित जी के सुपुत्र का जयपुर का फोन नम्बर था। दूरभाष से बात की तो पता चला कि वह अपने पुत्र के साथ देहली के लिए निकल चुके हैं। उन्हें वर्षा के कारण अधिक समय लग गया।

सार्वदेशिक सभा के प्रधान जी को सूचित किया गया कि पण्डित जी तो अभी नहीं पहुंचे, आप भी आ जावें ताकि विचार-विमर्श हो जावे। श्री स्वामी आनन्दबोध आ गये और यह कह गये कि पण्डित जी मैं (राजेन्द्र जिज्ञासु) निर्णय करके कार्य को सिरे चढ़ा दें। वास्तव में कार्य सत्यार्थप्रकाश के १४वें समुल्लास के संबंध में था जिसको सिरे चढ़ाने का अन्तिम निर्णय तो पण्डित जी ने ही करना था। वह इसके लिए योग्यतम व अधिकारी विद्वान् हैं — ऐसा सबका मत है। पंण्डित जी ने हमें सूचित कर रखा था कि वे पूज्य स्वामी जी के चरणों में अवश्य पहुंच जावेंगे।

अब एक समस्या खड़ी हो गई। स्वामी जी को आगे हिण्डौन जाना था। गाड़ी का समय हो रहा था। हिण्डौनवालों ने भारी संख्या में सायं स्टेशन पर श्री महाराज का स्वागत करके शोभा यात्रा निकालनी थी। हिण्डौन सिटी वहां के स्टेशन से चार पांच किलों मीटर की दूरी पर हैं। मैं चिन्तित था कि हिण्डौन के समाज वाले कितने परेशान होंगे।

श्री स्वामी जी से एक दो बार कहा कि हिण्डौन चलना चाहिए। श्री पं० शान्ति प्रकाश जी के नाम सन्देश छोड़ जाते हैं। श्री धर्मपाल जी ने सारा कार्य समझ ही लिया है। पत्रों द्वारा पूज्य पण्डित जी को सब जानकारी दी जा चुकी है। श्री धर्मपाल जी बता देंगे कि आपका सब प्रकार का सहयोग इस कार्य में रहेगा और जिन ग्रन्थों की आवश्यकता हैं वे मैं साथ लाया हूं। श्री धर्मपाल जी पण्डित जी को दे देंगे।

पूज्य स्वामी जी ने एक न सुनी और कहा, ''रुग्ण होते हुये, चोट लगने पर हमारा, वयोवृद्ध तपस्वी विद्वान् योद्धा मुझे मिलने आ रहा हैं, मैं उसे छोड़कर कैसे जा सकता हूं? वे आएंगे तो कितने निराश होंगे। आपने उन्हें मेरा नाम लिख कर आने को कहा। मैं उन्हें मिले बिना न जाऊंगा।''

बात भी ठीक थी। पण्डित जी ने बार-बार शारीरिक अवस्था के कारण कोई बड़ा कार्य हाथ में लेने से इन्कार कर दिया था। मैंने बड़े भावुकता पूर्ण पत्रों में लिखा कि पं० लेखराम का लहु पुकार रहा है कि आप जीवन

की इस वेला में यह कार्य करें। गुरुवर स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज ने इसी दिन के लिए आपको तैयार किया था और स्वामी सर्वानन्द जी महाराज आपसे यही आशा लगाए बैठे हैं। आप को ही यह कार्य करना है।

गाड़ी की कहानी तो यहां क्या दें। स्वामी जी की दृढ़ता से हम सब रुके। पण्डित जी पहुंच गये। उनके सिर पर लगी चोट व शरीर को देखकर हम.........। स्वामी जी के दर्शन करके पूज्य पण्डित जी खिल रहे थे। मानो उन्हें कोई कष्ट है नहीं। स्वामी जी महाराज भी पण्डित जी से मिलकर बहुत प्रसन्न हो रहे थे। पूज्य स्वामी सहजानन्द जी आग्रह करके उन्हें हिण्डौन सिटी में ले गये।

श्री स्वामी जी के मन में कार्यकर्त्ता, विद्वान् व किसी तपस्वी के लिए कितना प्यार व आदर है, यह घटना उसका एक उदाहरण है। महापुरुषों का ऐसा सद्व्यवहार ही साधारण पुरुषों को त्याग व बलिदान के लिए उभारता है।

श्री स्वामी जी विद्वान् के दर्शन करने निकले

कुछ वर्ष पूर्व श्री स्वामी जी महाराज ऋषि मेला पर अजमेर गये। उस वर्ष आर्यसमाज फुलेरा की ओर से श्री पं० शान्ति प्रकाश जी को महर्षि दयानन्द पुरस्कार प्रदान किया गया। स्वामी जी को श्री पं० शान्ति प्रकाश जी के आगमन की सूचना मिली तो आप उनके आवास का पता लगाकर स्वयं उन्हें मिलने गये। श्री पण्डित जी उन्हें अपने कमरा में पाकर फूले नहीं समा रहे थे। आपने स्वामी जी महाराज के चरण-स्पर्श कर नमस्ते करते हुये अपने बच्चों से कहा, "हमारे गुरुजी पधारे हैं। हम कितने सौभाग्यशाली हैं। इन्हें हमारा कितना ध्यान है।"

श्री पं० शान्तिप्रकाश जी के बच्चों पर पूज्य श्री स्वामी जी के शुभ आगमन का विशेष प्रभाव पड़ा। उन्हें पता लगा कि हमारे पिता जी के तप त्याग का समाज ने मूल्य डाला है। समाज में उनकी विशेष प्रतिष्ठा है।

स्वामी जी का तो इसमें बड़प्पन था ही। दर्शकों पर पण्डित जी के बड़प्पन का भी एक अनूठा प्रभाव पड़ा। पंडित जी ने कहा, "हमारे गुरु जी पधारे हैं।"

कितनी गहरी श्रद्धा है। यही आर्योचित व्यवहार है।

दर्शक जानते थे कि तकनीकी भाषा में स्वामी जी और पण्डित जी गुरु भाई हैं। हम पीछे बता चुके हैं कि गुरु महाराज के उत्तराधिकारी होने के नाते स्वामी जी महाराज पण्डित जी के लिए वैसे ही श्रद्धा के पात्र हैं जैसे श्री स्वामी स्वतंन्त्रानन्द जी महाराज।

श्री पं० धर्मपाल जी सिद्धान्तभूषण को खोज लाए

श्री पं० धर्मपाल जी सिद्धान्तभूषण श्रीमद्दयानन्द उपदेशक विद्यालय के एक सुयोग्य स्नातक थे। हिन्दी, उर्दू व पंजाबी के प्रभावशाली वक्ता थे। उन्होंने उपदेशक व पुरोहित के रूप में प्रशंसनीय कार्य किया। उनके मन में यह विचार समा गया कि सिख भाइयों की भांति प्रभु की वाणी पवित्र वेद पुस्तक को माथा टेकना चाहिए। इससे

आस्तिक्य भाव व श्रद्धा बढ़ेगी। आर्यसमाज के लोग पण्डित जी की विद्वत्ता व सेवा का बड़ा सन्मान करते थे परन्तु जड़ पदार्थ मूर्त्ति हो वा पुस्तक – किसी की पूजा वेद विरुद्ध है। इस कारण पण्डित जी से आर्य भाइयों का मतभेद हो गया। पण्डित जी प्रजातंत्रीय वोट प्रणाली व आर्यसमाज में प्रचलित दान प्रणाली में भी परिवर्तन चाहते थे।

उनका मत था कि चन्दे लेने की बजाए हम समर्पण भाव से आय का कुछ भाग पूज्य श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज जैसे किसी तपस्वी को भेंट किया करें। नेतागिरी में न पड़ें। स्वामी जी जैसा तपस्वी जो भी हमारा प्रमुख हो, उसकी आज्ञा में हम चलें। ये बातें तो विचारणीय थीं। पण्डित जी की वेद भक्ति का तो कहना ही क्या।

एक दिन इसी लहर में घर बार परिवार छोड़ कर कहीं चले गये। पूज्य स्वामी जी को उनकी समाज सेवा व विद्वत्ता का इतना मान था कि आपने उनकी खोज के लिए बड़ी भाग दौड़ की व कराई। उनका पता लगाया। उनको दीनानगर लाए। उन्हें अपने पास रखा। उनके परिवार के निर्वाह की सब व्यवस्था आपने की। आपके मन में यही पवित्र भाव था कि प्रभु की वाणी वेद के लिए इतनी श्रद्धा रखने वाले इस भक्त हृदय, तपस्वी त्यागी सरल विद्वान् को सम्भालना व उसके परिवार को पालना हमारा कर्त्तव्य है।

शरीर की सुधि क्यों न ली

आज तो मठ में दूध की नदियां बहती हैं। पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के समय में मठ में गोशाला न थी। रोगियों को दूध दिया जाता था। तब प्रातः अल्पाहार का भी कोई प्रबंध न था। बारह बजे ही भिक्षा का भोजन मिलता। प्रातः से बारह बजे तक सब जन अपना अपना कार्य करते रहते। स्वामी जी तब पं० रामचन्द्र के रूप में थे। पच्चास वर्ष की अवस्था थी। दूध घी खाने के दिन थे परन्तु............।

इस कारण आपका स्वास्थ्य कोई अच्छा नहीं था। श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी भी पण्डित जी के स्वास्थ्य के बारे में चिन्तित थे परन्तु श्री पं० रामचन्द्र जी न दूध पीते और न ही अपने लिए घी की कोई व्यवस्था करते। इनसे प्रतिमास सहस्रों रोगी स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करते। इनके लिए ग्रामीण कृषकों से घी दूध आना या मंगवाना क्या कठिन था परन्तु अपने लिए किसी से कुछ पाने की अभिलाषा से तो कभी किसी की सेवा की ही नहीं।

मुझे श्री स्वामी ईशानन्द जी ने एक बार बताया कि मैंने (स्वामी ईशानन्द जी ने) स्वामी स्र्वानन्द जी को उनके संन्यास के कुछ समय बाद कहा कि कुछ शरीर की भी सुधि लिया करो।

स्वामी सर्वानन्द जी ने उत्तर में कुछ ऐसे भाव व्यक्त किये कि अब क्या खाना-पीना है जब खाने के दिन थे तो क्या दूध घी लेता था। पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के लिए जब नियमित रूप से घी दूध का कोई प्रबंध न था तो मैं कैसे लेता? ऐसा करता तो अच्छा न लगता। और सबके लिए जब तक मठ में दूध आदि का प्रबंध न हो तो पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी अकेले कैसे लेते?

पाठक वृन्द! तनिक इन भावों की गहराई में तो जावें। कितनी गुरु भक्ति है। कैसा अनुपम त्याग है। स्वामी जी के पुरुषार्थ व सुप्रबन्ध से तो मठ की गोशाला दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करती गई और मठ के सब ब्रह्मचारियों, साधुओं व अतिथियों को दूध, दही मिलने लगा।

स्वामी श्री ईशानन्द जी ने उपरोक्त घटना मुझे स्वामी सर्वानन्द जी की सेवा भावना व तप त्याग की चर्चा के प्रसंग में सुनाई थी।

दीनानगर वाले महाराज जी कहां ठहरे हैं?

एकबार महात्मा आर्यभिक्षु जी ज्वालापुर से गुरु विरजानन्द स्मारक के उत्सव पर पधारे। आपने तब तक कभी स्वामी जी महाराज के दर्शन नहीं किए थे। स्वामी विज्ञानानन्द जी के पास स्वामी जी महाराज आकर बैठ गये। कुछ रोगी आकर स्वामी जी से अपने अपने रोग के लिए परामर्श कर रहे थे। कई आर्य पुरुष और भी वहां बैठे हुये थे। श्री आर्यभिक्षु जी वानप्रस्थी आए और बड़े आदर-भाव से कहा, "पता चला है कि दीनानगर वाले महाराज जी पधारे हैं, वे कहां हैं? मैं उनके दर्शन करना चाहता हूं।"

हम में से कई एक साथ बोले, "यह आपके सामने बैठे हैं स्वामी सर्वानन्द जी महाराज।"

उनकी दुबली-पतली काया व सरलता को देखकर महात्मा जी चकित से हुये और चरण-स्पर्श कर स्वामी जी का अभिवादन किया।

जालंधर विक्रमपुरा के उत्सव पर

कोई १५ वर्ष पूर्व की घटना है श्री स्वामी जी का आर्य समाज विक्रमपुरा जालंधर के वार्षिकोत्सव पर प्रातःकाल के समय उपदेश होना था। उपदेश का समय निकट आ रहा था और मन्त्री जी बड़े परेशान होकर इधर-उधर कुछ लोगों से पूछताछ कर रहे थे। स्वर्गीय टेकचन्द प्रभाकर से मंत्री जी ने पूछा, "क्या स्वामी जी आए हैं? कहीं देखे?"

श्री टेकचन्द जी ने कहा, मैंने देखे नहीं, "वेदी पर जिज्ञासु जी बैठे हैं। यह उनके पक्के चेले हैं। इन्हें पता होगा, यदि वे आए होंगे तो।"

मंत्री जी ने चिन्ता व्यक्त करते हुये मुझे आकर कहा, "वेदोपदेश पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी का होना था। क्या वे कहीं आए हैं?" मैंने वेदी के एक कोने की ओर संकेत करते हुये कहा, "वे काली कम्बली ओढ़े हुये", "ध्यान में निमग्न स्वामी श्री सर्वानन्द जी महाराज बैठे हैं।"

श्री मंत्री जी यह जानकर बहुत हर्षित हुये और आश्चर्य चकित भी कि यह तो सचमुच बड़े महान् पुरुष हैं जो किसी भी प्रकार के बाहच आडम्बर से सर्वथा दूर हैं। चुपचाप आकर इस प्रकार पीछे आकर बैठे गये हैं। मंत्री जी बोले कि हमें तो पता करने में अवश्य परेशानी हुई क्योंकि मैं (मंत्री जी) श्री महाराज को पहचानता न था। सर्दी के कारण काली कम्बली ओढ़ रखी थी। कम्बली न होती तो भगवे वस्त्रों से भी कुछ अनुमान हो जाता कि यह संन्यासी स्वामी सर्वानन्द जी महाराज है।

हम वर्षों से पूज्य स्वामी जी के इस स्वभाव को जानते हैं कि वे प्रत्येक उत्सव व समारोह में ऐसे ही चुपचाप आकर बैठ जाते हैं। बहुत लम्बी यात्रा करके कहीं पहुंचें तो भी जाकर कभी यह नहीं कहते कि जल चाहिए अथवा भोजन। अपवाद रूप में कहीं किसी से जल मांग लिया हो तो मैं कह नहीं सकता।

'यह स्वामी जी महाराज की प्रिय अटैची है'

पूज्य स्वामी जी महाराज सदैव एक झोला लेकर यात्रा पर निकलते हैं। उसमें स्वाध्याय के लिए वेद आदि रख लेते थे। उसी में कुछ औषधियां भी रख लेते। उन्हें पता ही है कि रोगी कोई न कोई उनके पास आ ही जाता है।

अब वृद्ध अवस्था के कारण अकेले तो कहीं आते जाते नहीं। यात्रा की कठिनाइयां भी बढ़ती जा रही है। बसों में भीड़ और गाड़ियों में धक्के। अब आपके साथ कोई ब्रह्मचारी वा स्वामी सहजानन्द जी आदि साधु-महात्मा होते हैं। अब स्वामी जी महाराज यात्रा में एक खाद वाला थैला रखते हैं। उसी में सब वस्त्र, कौपीन, लंगोट आदि सामान और उसी में औषधियां रख लेते हैं। मैंने चार छः बार श्री महाराज के पास यह थैला देखा तो हिण्डौन में स्वामी सहजानन्द जी से पूछ ही लिया कि स्वामी जी का सामान अब इसी में रहता है?

स्वामी जी ने कहा, "हां, यही महाराज की अटैची है और यह नहीं कि यह बदलकर नया थैला ऐसा ही रख लें। जब यह काम देता है तो नया थैला क्या करना है? नेपाल यात्रा में भी यही था। यह सब कुछ स्वामी जी महाराज का सहज स्वभाव बन चुका है।

वस्त्र भी धोने को नहीं दिये

कोई दो-तीन वर्ष पूर्व पूज्य स्वामी जी को मैंने अबोहर आने की विनती की। आप वानप्रस्थी रामकृष्ण जी के साथ यहां पधारे। जब स्नान करने चले तो मैंने आग्रहपूर्वक प्रार्थना की जो वस्त्र धोने वाले हैं, वहीं रख देना। मैं धो दूंगा। आपने कहा, "कोई वस्त्र धोने वाला नहीं।"

मैंने कहा, "जो वस्त्र पहने हैं यात्रा में स्वेद के कारण गन्दे हो गये हैं, ये वहीं रख आना।"

स्वामी जी स्नान करके निकले तो वहां कोई मैला वस्त्र न था। मैंने फिर बार-बार कहा कि वस्त्र मैं धोकर दूंगा आपने अपने वस्त्र नहीं धोने। आपने एक भी न सुनी। मेरी पुत्री कु० कविता आर्या ने कहा, "आप अब स्नानागार से कपड़े धोनें का साबुन ही उठा लें।" मैंने उत्तर में कहा, "स्वामी जी फिर भी हमें यह सेवा नहीं करने देंगे। मठ से साबुन भी साथ लाए होंगे।"

मैं देखता रहा आपने वानप्रस्थी राम कृष्ण जी को भी अपने वस्त्र नहीं दिये। भले ही वह आपके शिष्य हैं परन्तु आप उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा के कारण उनका बड़ा सम्मान करते हैं।

एक बार पूज्य स्वामी सहजानन्द जी महाराज के साथ हमारे परिवार में पधारे तब भी हमें वस्त्र धोने नहीं दिये। शरीर बहुत वृद्ध हो चुका है। हाथों में कुछ कम्पन भी है फिर भी स्वाबलम्बन का ऐसा व्रत ले रखा है कि दूसरों की

सेवा को तो प्रतिक्षण तत्पर हैं परन्तु अपनी सेवा का अवसर दूसरों को नहीं देते। स्वामी जी को जब कभी बहुत थका टूटा देखते हैं तो भक्तजन बहुत अनुरोध करके आपके पांव दबाने का सौभाग्य प्राप्त कर पाते हैं। पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज में भी यह विशेषता थी। बड़ा वैभव छोड़ कर संन्यासी बने थे। वयोवृद्ध थे फिर भी किसी को वस्त्र न धोने देते थे।

ऐसी विभूतियों का संन्यास लेना धन्य है। ये महापुरुष हम साधारण लोगों के सामने मर्यादायें स्थापित करते हैं।

यतिवर इतने दृढ़ प्रतिज्ञ

पूज्यपाद स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज अपनी कुटिया के सामने अपने तख्तपोश पर आसन जमाकर बैठ जाते। भक्तजन आकर पास बैंचों पर बैठ जाते। देश-धर्म की चर्चा चलती रहती। जब सत्संगी चले जाते तो स्वामी जी अपने स्वाध्याय, पत्र-व्यवहार व लेखन-कार्य में लग जाते। धूप आती और चली जाती। स्वामी जी अपना तख्तपोश इधर से उधर कम ही करते देखे गये। भक्तजन व मठवासी भी कई बार कहते थे कि धूप आ गई है, इधर-उधर तख्तपोश सिरका देते हैं परन्तु वे मस्ती से अपने कार्य में तल्लीन रहते। कुटिया के आस-पास कई वृक्ष हैं। कुछ समय पश्चात् छाया आ ही जातीं। साधु पर गर्मी, सर्दी, भूख, प्यास आदि का वह प्रभाव नहीं था, जो हम साधारण पुरुषों पर होता है। द्वन्द्वों को उन्होंने भली प्रकार से जीता हुआ था।

गुरुवर के जीवन का आपने निकट से अध्ययन किया। उनके व्यवहार को सूक्ष्म दृष्टि से देखते रहे और अपने जीवन में उतारने का पूरा-पूरा यत्न किया। हमने यह देखा है कि जब-जब श्री महाराज हमारी कुटिया में पधारे, हमने उनके लिए एक अलग कमरा आरक्षित कर दिया परन्तु आप कभी कमरे में नहीं ठहरे। बरामदें में या बाहर खुले में ही तख्तपोश पर आसन लगाते हैं। धूप आ जावे तो कभी नहीं कहते कि तख्तपोश छाया में करवा दो। हम ही विवश करके स्थान बदलते हैं। आपके इस व्यवहार को देखकर पूज्यपाद स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज की मोहिनीमूर्त्त का ध्यान आ जाता है। किस प्रकार वे शान्तचित्त होकर अपने तख्तपोश पर बैठे, लिखते-पढ़ते रहते थे।

श्री स्वामी जी महाराज पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के बारे में कहा करते हैं कि उनके जीवन में नियम ऐसे घुलमिल चुके थे कि नियम व व्यवहार को पृथक्-पृथक् करना कठिन था। सो ऐसे ही श्री स्वामी जी महाराज के लिए यम-नियम आदि अब जीवन का सहज व्यवहार व स्वभाव बन चुका है।

इतना प्यार! इतना सत्कार!

एक बार आचार्य नरेन्द्र भूषण जी केरलीय मठ में श्री महाराज के दर्शन के लिए गये। वहां से अबोहर मेरे पास आए। स्नान आदि के पश्चात् हमने जलपान करवाया तो आपने कहा, "यह लीजिए सब भोजन करें।"

हमने कहा, "यह क्या है?"

आपने कहा, "प्रातः जब चलने लगा तो स्वामी जी महाराज ने बड़े स्नेह से मार्ग के लिए भोजन बनवा दिया।"

प्रायः सभी विद्वानों को दूर की यात्रा पर निकलते हुए स्वामी जी ऐसे ही भोजन बनवाकर साथ देते हैं।

इतना प्यार व सत्कार देने वाले ऐसे महापुरुष ही संसार की शोभा होते हैं।

कहीं किसी पत्रिका व रिपोर्ट में नहीं देना

आज तक मठ की कोई रिपोर्ट नहीं छपी। मठ क्या कर रहा है, यह चर्चा करने की कोई आवश्यकता नहीं। सबके सामने है। लोग आएं और देख लें। यहां कुछ छुपा हुआ तो है नहीं। ऐसा स्वामी जी कहा करते हैं। अनेक बार स्वामी जी किसी संस्था वा व्यक्ति को सहायता देते हुये कहा करते हैं कि यह किसी को सुनाने बताने व पत्रों में देने के लिए नहीं है। बस, अपना कार्य करते जाइए।

डॉ० सत्यकेतु जी ने आर्यसमाज का इतिहास सात खण्डों में छापा। स्वामी जी ने मठ के बारे में एक पंक्ति लिखकर नहीं भेजी और डा० सत्यकेतु जी व उनके सहकारी मण्डल ने भी तनिक हाथ हिलाने व कुछ कष्ट करने की कृपा नहीं की। मठ का ५० वर्ष का गौरवपूर्ण इतिहास है। मठ एक जीवित संस्था है। इसके बारे में डा० सत्यकेतु जी ने जांच-पड़ताल करके कुछ भी नहीं लिखा। स्वामी जी महाराज ने इस इतिहास के प्रकाशन के लिए खूब धन दिया। डॉ० सत्यकेतु ने इस इतिहास में अनपढ़ों को तो शिक्षाशास्त्री बनाकर उनके चित्र दे दिये गये! परन्तु श्री स्वामी वेदानन्दतीर्थ, पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज जैसे अद्वितीय विद्वानों की शिक्षाशास्त्रियों में चर्चा नहीं।

स्वामी सर्वानन्द जी महाराज को इस उपेक्षा का तनिक भी खेद नहीं। लोकैषणा उन्हें छू नहीं पाई। किसी पाश्चात्य लेखक ने ठीक ही लिखा है:– "Those who are greedy of praise prove that they are poor in merit."

अर्थात् जिन्हें नाम की, ख्याति की, प्रशंसा की भूख होती है, वे थोथे होते हैं। उनमें गुणों की कमी होती है।

श्री स्वामी जी समझते हैं कि लोक-सेवा, धर्म-सेवा, देश-सेवा हमारा कर्त्तव्य है। यह ईश्वर की आज्ञा है। हमें प्रभु का आदेश पालन करना है। इसके लिए किसी भी व्यक्ति या संस्था से प्रशंसा व प्रमाण-पत्र की आवश्यकता नहीं है।

कबीरपंथी साधु उपेन्द्र की कहानी

एक कबीरपंथी साधु उपेन्द्र घूमते-घूमते मठ में आ पहुंचा। उस युवक साधु के शरीर में इतने कीड़े पड़ चुके थे कि वह कहता था कि जब मेरे शरीर में कीड़े चलते हैं तो मुझे उनके चलने का पता चलता है। रोग उसे खा चुका था। श्री स्वामी जी महाराज ने उसे मठ में रखकर महीनों उसकी चिकित्सा की। वह ठीक हो गया। ठीक होकर भी देर तक मठ में रहा। कुछ संस्कृत का पठन भी यहां किया। स्वस्थ होने पर वह हमारी पहचान में ही नहीं आता था। अब उसका ब्रह्मचर्य से तपा शरीर व तेजस्वी मुख देखकर सब कहते थे कि क्या यह वही उपेन्द्र है जो कुछ मास पूर्व मरणोन्मुख था

स्वामी जी की सेवा के कारण वह महाराज का बड़ा भक्त बन गया। अब भी स्वामी जी के सम्पर्क में है। और भूपेन्द्रानन्द के रूप में वेद-प्रचार व लोकहित में संलग्न है।

'जा मठ वाले स्वामी जी ही ठीक करेंगे'

एक पौराणिक साधु गुरदासपुर जिला व जम्मू क्षेत्र में मन्दिरों में कथा-कीर्तन करते करवाते रहते थे। उनके कई भक्त थे। लोगों पर अच्छा प्रभाव था। एकबार रुग्ण हो गये। जब ठीक न हुये तो भक्तों ने कह सुनकर गुरदासपुर से जम्मू भेज दिया। वहां भी रोग बढ़ता ही गया। भक्त कुछ ऊब गये तो कहा, "महात्मन्। आप दीनानगर जाइए। वहां मठ वाले स्वामी जी से ही आप ठीक होंगे।"

वह समझ गया कि ये लोग मेरे लम्बे रोग से अब तंग आ चुके हैं। ये मुझ से पिण्ड छुड़वाने के लिए ही मुझे दीनानगर का रास्ता दिखा रहे हैं। उसने उनसे कहा भी, "आज तक तुम यही कहते रहे कि आर्यसमाजी बड़े खराब हैं। ये लोग सनातन धर्म का नाश करने वाले हैं। हर घड़ी आर्यसमाज का खण्डन ही आप करते करवाते थे। अब आप मठ वाले स्वामी जी का गुणगान कर रहे हैं। कभी पहले भी आपमें से किसी ने मठ की प्रशंसा की क्या?"

उस साधु को दु:ख से विवश होकर मठ आना पड़ा। पूज्य स्वामी जी ने उसको उदार हृदय से ऐसे ही सम्भाला जैसे स्वामी भूमानन्द जी व स्वामी सुधानन्द जी आदि उन साधुओं को जो वर्षों दिनरात वेद-प्रचार में लगे रहे।

ईश्वर की ऐसी कृपा हुई कि वह साधु धीरे-धीरे रोग मुक्त हो गया। उसने तब गुरदासपुर व जम्मू के अपने भक्तों को कहानी सुनाई। ठीक होकर वह जहां भी गया, वह मठ की, आर्यसमाज की व पूज्य श्री स्वामी सर्वानन्द जी की प्रशंसा करते थकता नहीं था। एक बार देवी मंदिर दीनानगर में भी उसकी कथा थी। उसने सनातन धर्म का नाम ले लेकर सब उपदेश आर्यसमाज के दिये। यह सारा हृदय परिवर्तन स्वामी सर्वानन्द जी के व्यक्तित्व का प्रभाव था। उसने दीनानगर में भी अपनी कथा में पूज्यपाद स्वामी जी की महानता का बड़ा यशोगान किया।

स्वामी शुभानन्द जी का हृदय परिवर्तन

मठ के एक साधु हैं स्वामी शुभानन्द जी। इन्हें आर्यसमाज में कोई विरला ही व्यक्ति जानता है। मठ से संबंधित लोग इनके सेवा-कार्य से परिचित हैं। पूज्य स्वामी जी के सेवा कार्यों में इनका अन्न, धन व वस्त्र आदि से बड़ा सहयोग होता है। यह साधु आर्यसमाजों में कभी नहीं जाते। इनका कार्यक्षेत्र अपना ही है और कार्य की शैली भी अनूठी हैं।

लेखक इनको तब से जानता है,जब से वह मठ से जुड़े हैं। इनके हृदय-परिवर्तन की कहानी हमारे स्वामी जी का एक चमत्कार ही कहना चाहिए।

स्वामी शुभानन्द जी का उ० प्र० में कहीं बीहड़ वन में एक आश्रम था। यह वस्त्र नहीं पहनते थे। सर्दी हो या गर्मी कौपीनधारी यह महात्मा इधर-उधर विचरते रहते। बड़ा भ्रमण किया। अन्न भी त्याग दिया। केवल वृक्षों के पत्ते ही खाते। शरीर बहुत पतला होता गया। तप व सहनशीलता ये दो गुण बहुत थे।

एकबार अमरनाथ की यात्रा से लौटते हुये आप मठ के सामने से निकल रहे थे तो 'दयानन्द मठ' द्वार पर लिखा पढ़कर रुककर

मठ के भीतर चले गये। महर्षि दयानन्द कौन थे, यह इन्हें तनिक भी ज्ञान न था। मठ की यज्ञशाला पर ब्रह्मचारी पढ़ रहे थे। एक ब्रह्मचारी मोहनलाल ने कहा, "आओ महात्मा जी आप भी कुछ पढ़ लो।"

कौपीनधारी बाबा जी बोले, "हम तो साधु हैं। हमने पढ़कर क्या करना है?"

मोहनलाल बोला, "जो ज्ञान प्राप्त न करोगे तो फिर उपदेश क्या दोगे?"

यह बात बाबा जी को लग गई। आपने पूछा, "इस मठ के बड़े महात्मा कहां हैं?"

ब्रह्मचारियों ने संकेत से बता दिया। ये श्री स्वामी जी के पास गये। महापुरुष ने अपने सहज स्वभाव से इनका स्वागत करते हुये भोजन आदि के लिए पूछा। इन्होंने कहा, "आप क्या पढ़ाते हैं?"

स्वामी जी ने कहा, "संस्कृत पढ़ाते हैं। वेद, शास्त्र भी पढ़ाए जाते हैं।"

इस महात्मा ने कहा, "मुझे भी पढ़ाइए।"

स्वामी सर्वानन्द जी ने कहा, "साधु लोग नहीं पढ़ सकते। कारण यह है कि भगवे वेश का बड़ा मान-सम्मान है। साधु लोग चेले-चेलियों के पूजा-पुजापा में फंस कर दत्तचित होकर विद्या अध्ययन नहीं कर पाते।"

स्वामी शुभानन्द जी ने दोहरा-दोहरा कर कहा, "नहीं मैं एकाग्रचित होकर विद्या अध्ययन करूंगा।"

श्री स्वामी सर्वानन्द जी ने कहा, "भोजन कीजिए।"

इन्होंने कहा, "वर्षों से मैंने अन्न का परित्याग कर रखा है।" इसपर पूज्य स्वामी जी ने इन्हें बड़े प्रेम से वेद शास्त्र के प्रमाण देकर समझाया कि शरीर की रक्षा करना धर्म है। इसलिए अन्न का सेवन आपको करना चाहिए। धीरे-धीरे यह अन्न ग्रहण करना मान गये।

फिर स्वामी जी ने इन्हें कम्बल भेंट किया और वस्त्र धारण करने की सत्प्रेरणा दी। स्वामी शुभानन्द जी ने यह भी मान लिया। मठ में इन्हें पृथक् एक कमरा मिल गया। अन्न का सेवन करने से, दूध आदि लेने से शरीर पर निखार आने लगा।

अब विद्या अध्ययन भी आरम्भ हो गया। पूज्य श्री स्वामी जी ने स्वयं इन्हें महर्षि दयानन्द का कालजयी ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश पढ़ाना आरम्भ किया।

उन्हीं दिनों श्री स्वामी शुभानन्द जी ने मुझे स्वयं यह बताया था कि ज्यों-ज्यों मैं सत्यार्थप्रकाश पढ़ता गया मेरी आंखें खुलती गईं। मुझे ईश्वर प्रदत्त वैदिक धर्म के नित्य सिद्धान्तों का बोध हुआ। अंधविश्वास की कड़ियां टूट गईं। अब बत्तीस वर्ष से वह साधु आर्यजाति व वैदिक धर्म की सेवा में रत हैं। उनकी कार्य-पद्धति सारे आर्यजगत् से अनूठी है।

श्री स्वामी सर्वानन्द जी कोई धारा प्रवाह तो बोलते नहीं। आज की शब्दावली का प्रयोग करें तो हमारे स्वामी जी कोई Public Speaker (सार्वजनिक वक्ता) भी नहीं, फिर भी आपकी वाणी में यह क्या जादू है जो इतने तपस्वी, त्यागी, महात्मा आपने वैदिकधर्म के

रंग में रंग दिये हैं। हम इसका उत्तर खोजते हैं तो प्रभु की ज्ञान भरी वाणी हमारा समाधान करते हुये कहती है:—

'उर्वीरापो न काकुदः।'[47]

तपस्वी, त्यागी, संयमी, प्रभुभक्तों के कर्म विशाल होते हैं। वे कर्मवीर होते हैं, वाग्वीर नहीं।

पूज्य स्वामी जी कितने भावनाशील हैं

स्वामी सुव्रतानन्द जी ने गृहस्थी के रूप में आर्यसमाज की अविस्मरणीय सेवा की। उनका ग्राम दीनानगर के समीप ही था। अन्न पकने पर, घर में बाद में पहुंचता था, पहले मठ को भरी बैलगाड़ी आती थी। ऐसे परोपकारी महात्मा ने पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी को मठ के शैशवकाल में बड़ा सहयोग किया। समय आने पर घर-गृहस्थी का त्याग करके स्वामी सर्वानन्द जी से संन्यास की दीक्षा लेकर मठ की, जो सेवा की लेखनी सम्भवतः लिख न सके।

एकदिन न जाने स्वामी सर्वानन्द जी महाराज को क्या सूझा कि फोटोग्राफर को बुलवा भेजा और स्वयं एक कुर्सी उठा लाए। सब ब्रह्मचारियों व साधुओं को बुलवा लिया। फिर स्वामी सुव्रतानन्द जी को बड़े आदर से कुर्सी पर बिठाया।

उन्होंने कहा, "महाराज यह क्या कर रहे हो?" श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज ने कहा, "आपका फोटो लेना है। मठ में रखेंगे।"

भोले भाले वयोवृद्ध स्वामी सुव्रतानन्द जी महाराज बोले, मेरा फोटो क्या करोगे? मैं तो आपके पास ही हूं।"

स्वामी सर्वानन्द जी ने कहा, "आप हमारे मध्य हैं, यह ठीक है परन्तु आपका फोटो भी लेना है।" गुरु की बात सुव्रतानन्द कैसे टाल सकते थे। बैठ गये कुर्सी पर। इधर फोटोग्राफर ने अपने कैमरे का बटन दबाया और उधर स्वामी सुव्रतानन्द जी ने अपने सहज स्वभाव के अनुसार 'ओ३म्' कहा।

"स्वामी जी उठिए। बस, इतना ही काम था।" ये शब्द किसी ने कहे। स्वामी जी न उठे। उठाने को स्वामी जी व ब्रह्मचारी आगे हुये तो देखा कि वे तो चित्र खिंचवाकर चल बसे हैं। लगभग ९४ वर्ष की आयु थी। उनके वियोग का मठवासियों को दुःख भी था और सब इस शानदार मौत पर गर्वित भी थे।

पूज्य स्वामी जी ने इस वयोवृद्ध साधु प्रभुप्रिय, यज्ञ प्रेमी सन्त, अपने कर्मठ शिष्य से जिस स्नेह का परिचय दिया उस पर हमारे मुख से आचार्य चमूपति जी के ये शब्द अनायास निकलते हैं:—

'इस प्यार के सदके, दिलदार के सदके, मैं यार के सदके'

यह एक व्यक्ति से प्यार न था। यह किसी भक्त से या चेले से मोह न था। यह तो एक आदर्श के लिए समर्पित जीवन, एक निष्काम सेवक, सरल हृदय, सच्चे आर्य का सम्मान था। यह आश्रम मर्यादा का पालन करने वाले एक धर्मवीर, एक कर्मवीर का सत्कार था।

'यह कोई रोने-रुलाने का समय नहीं है'

श्री महाशय प्रेमप्रकाश जी ने धूरी में वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश का निर्णय किया।

यह कोई आकस्मिक निर्णय न था। वह वर्षों से आश्रम परिवर्तन की तैयारी कर रहे थे। उन्होंने श्री स्वामी जी से कहा कि मैं चारों वेदों का यज्ञ करके आश्रम बदलना चाहता हूं। यज्ञ की पूर्णाहुति पर मुझे आशीर्वाद दीजिए फिर चाहें तो धूरी में मुझे दीक्षा दे दें, चाहें तो मठ में साथ ले आवें व दयानन्द मठ में तृतीय आश्रम की दीक्षा दे दें।

स्वामी जी ने स्वीकार कर लिया कि यज्ञ के पश्चात् धूरी में ही आर्यसमाज मंदिर में दीक्षा दी जावेगी। दूर-निकट के बहुत आर्यपुरुष तब धूरी आए। दीक्षा के पश्चात् इस आश्रम परिवर्तन पर कई सज्जनों के भाषण होने लगे। अहमदगढ़ के महात्मा प्रेम भिक्षु जी ने बड़ी भावुकता से महात्मा बुद्ध के गृह-त्याग का चित्र खींचा और श्री महाशय प्रेम प्रकाश जी के आश्रम परिवर्तन का महत्त्व दर्शाने लगे। ऐसा करते हुये महात्मा प्रेम भिक्षु जी के नयन सजल हो गये। रूमाल निकाल कर अपनी आंखें पोंछने लगे। श्रोता भी भावनाओं में बह गये। प्रेमप्रकाश जी तब भी मुस्करा रहे थे।

पूज्य स्वामी जी ने लाउडस्पीकर हाथ में लिया और बड़ी दृढ़ता से कहा, "यह कोई रोने-रुलाने का अवसर नहीं है। प्रेम प्रकाश जी कहीं संसार से दूर नहीं जा रहे। वे आपके मध्य ही सेवा करेंगे। यह उनके कुल व आप लोगों के लिए बड़े हर्ष व गौरव का विषय है कि धर्म के लिए त्याग करके विस्तृत सेवा-क्षेत्र में आ रहे हैं।" पूज्य स्वामी जी के ये शब्द एक उपदेश भी था और एक भूल के लिए डांट-डपट भी।

ऐसा हमने प्रथम बार ही देखा कि स्वामी जी ने इतने जोश से लाउडस्पीकर हाथ में लिया था। इसका बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। सब विद्वानों ने एक स्वर से कहा कि स्वामी जी को यही करना चाहिए था, जो उन्होंने किया है। यदि वे ऐसा न करते तो यह स्वामी जी महाराज की भयंकर भूल होती। स्वामी जी के मार्मिक व ओजस्वी शब्दों से वातावरण एकदम बदल गया।

आचार्य देवप्रकाश की सेवा व उनकी स्मृति

स्वर्गीय आचार्य देवप्रकाश जी अमृतसर निवासी इस्लाम आदि मतों के एक मर्मज्ञ विद्वान् थे। उन्होंने मध्यप्रदेश में वर्षों समाज-सेवा की। वे जीवनभर प्रादेशिक सेवा के साथ जुड़े रहे। महात्मा आनन्दस्वामी जी उनका बड़ा ध्यान रखते थे। जीवन की अन्तिम वेला में जब रुग्ण हो गये तो स्वामी सर्वानन्द जी उन्हें मठ ले आए। वैसे कालेज पक्ष के लोगों में कोई अपवाद रूप में ही मठ का सहयोगी रहा है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि महात्मा आनन्दस्वामी व पं० भगवद्दत्त जी जैसे कुछ लोगों को छोड़कर प्रादेशिक सभा पर आरम्भ से ही राय बहादुर मूलराज व आचार्य विश्वबंधु के चेले ही छाए रहे हैं, जो हृदय से वेद को ईश्वर का नित्यज्ञान नहीं मानते थे। यह तथ्य उस विज्ञापन से पुष्ट होता है, जो डी० ए० वी० कालेज प्रबंधक समिति के राय बहादुरों व बड़े-बड़े प्रोफेसरों ने आचार्य विश्वबंधु काण्ड में महात्मा हंसराज का मनोबल गिराने के लिए छपवाया था।

दयानन्द मठ ने आचार्य देवप्रकाश जी को मठ में लाकर अपनी सजीली परम्परा में एक

कड़ी और जोड़ दी। पूज्य स्वामी जी ने आचार्य जी की बड़ी सेवा की। चिकित्सा की सब प्रकार की सुविधायें दीं। वे लम्बे समय तक मठ में उपचार करवाते रहे। उनकी सेवा के लिए न प्रादेशिक सभा से कोई पहुंचा और न डी० ए० वी० कालेज कमेटी ने साधारण पोस्टकार्ड डालकर पूछा कि आपका स्वास्थ्य कैसा है? आचार्य जी चल बसे। पं० जी के निधन से पूर्व स्वामी जी ने उनकी पुत्री को पण्डित जी के स्वास्थ्य की सूचना दी। वह आई और पिता से मिलकर चली गई फिर मृत्यु के पश्चात् सूचना पाकर उनकी पुत्री व नाती मठ में आए। आचार्य जी के पास जो पैसे व सामान था स्वामी जी ने उन्हें सौंप दिया। उन्होंने वह राशि ले ली।

आचार्य जी का अपना निजी पुस्तकालय अमृतसर में था। आपने यह पुस्तकालय मठ को दे दिया। उनके अभिनन्दन पर उन्हें जो राशि भेंट की गई थी वह कहीं सुरक्षित रखी हुई थी। यह राशि भी अपनी वसीयत में स्वामी जी के नाम कर दी थी।

पूज्य स्वामी जी ने यह राशि भी न ली। श्री पं० देवप्रकाश जी की स्मृति में एक स्मारक निधि बनाकर अमृतसर जिला में एक उपदेशक रखकर प्रचार की व्यवस्था कर दी। यह सारा प्रबंध एक समिति को सौंप दिया। श्री पं० देवप्रकाश जी का एक पैसा भी मठ के किसी कार्य में लगाया नहीं गया। इसे कहते हैं निष्काम सेवा। पुस्तकालय सम्भालने वाला उनका कोई प्रेमी भक्त वा संस्था सम्भाल लेते तो स्वामी जी पुस्तकें भी मठ में न लाते। इस प्रकार स्वामी जी महाराज ने पुस्तकालय को नष्ट होने से बचा लिया।

जो मिला सो खा लिया

श्री स्वामी जी महाराज गिदड़बाहा मंडी पंजाब पधारे। तब श्री मदनलाल जी आर्य अभी कालेज के छात्र थे और आपने गिदड़बाहा के आर्यसमाज में प्राण फूंक दिये। अबोहर से श्री अशोक आर्य व लेखक कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए पहुंचे। स्वामी ओमानन्द जी व कई और उपदेशक प्रचारक भी आए थे। आर्यसमाज मंदिर में ही पूज्य स्वामी जी के लिए भोजन मंगवाया गया। जब आप भोजन करने लगे तो गिदड़बाहा के वैद्य तोलाराम जी ने कहा, "स्वामी जी दही मंगवा दूं?" स्वामी जी ने कहा, "कोई आवश्यकता नहीं।" वैद्य जी ने फिर एक-दो बार ऐसे ही पूछा, "नहीं, मंगवा देता हूं। दही ले लीजिए।"

स्वामी जी ने अपने स्वभाव के अनुसार फिर यही कहा,"रहने दीजिए।"

स्वामी ओमानन्द जी पास बैठे थे। आपने कहा, "पूछते क्या हो। यह भी कोई पूछने वाली बात है? स्वामी जी महाराज जैसा साधु तो कहेगा नहीं कि मुझे कुछ मंगवा कर दो।"—

इस पर वैद्य तोलाराम जी ने किसी को भेजकर पास की किसी दुकान से दही मंगवा दिया।

स्वामी जी महाराज ने अपने खाने-पीने के लिए कभी कोई इच्छा प्रकट की हो, ऐसा हमने कभी नहीं देखा।

जब हिमाचल सभा ने स्वामी जी का अभिनन्दन रखा

यह सन् १९७८ के ग्रीष्मकाल की घटना है। आर्य प्रतिनिधि सभा हिमाचल प्रदेश ने

शिमला में आर्यसमाज शताब्दी समारोह आयोजित किया। तब उक्त सभा के प्रधान श्री स्वामी सुमेधानन्द जी महाराज चम्बा वाले थे।

इस अवसर पर हिमाचल के आर्यों ने पूज्य श्री स्वामी सर्वानन्द जी का सार्वजनिक रूप से अभिनन्दन करने का निर्णय किया। इसकी घोषणा जान बूझकर न की गई। शताब्दी कार्यक्रम में स्वामी जी के प्रवचन भी रखे गये।

श्री स्वामी जी शिमला पहुंचे ही नहीं। हिमाचल में आर्यसमाज के प्रचार की सुधि मठ ही लेता रहा है। सभायें तो बहुत लम्बे समय से निष्क्रिय सी हो चुकी हैं। अब हिमाचल में प्रतिनिधि सभा बनी तो कुछ हलचल पैदा हुई। इस सभा के प्रधान पूज्य स्वामी जी के शिष्य श्री स्वामी सुमेधानन्द जी ही थे। इसलिए सबको आशा थी कि आप शिमला पधारेंगे परन्तु आपको वहां न पाकर भक्तों को बहुत निराशा हुई।

कुछ सज्जनों ने बाद में स्वामी जी से न पहुंचने का कारण पूछा तो आपने बताया, "मुझे पता लग गया कि वहां मेरा अभिनन्दन करेंगे। इसकी कोई आवश्यकता नहीं। इसलिए मैंने जाने का विचार छोड़ दिया।" किसी कवि ने ठीक ही लिखा हैं:—

मान बढ़ाया जाता है कुछ मान से पीछे रह रह कर।

कभी भी सभा का अन्न-ग्रहण नहीं किया

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब में जब प्रान्तवाद व जाति पाति की आड़ लेकर कलह बढ़ गई। पदलोलुपता के कारण न्यायालयों में एक के बाद दूसरा अभियोग चलाया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि सभा पर रिसीवर बिठाया गया। रिसीवर के लिए दोनों पक्षों की पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी के नाम पर सहमति थी। स्वामी जी को पंजाब व हरियाणा उच्च न्यायालय ने रिसीवर नियुक्त कर दिया।

स्वामी जी रिसीवर के रूप में सभा को चलाते रहे। मठ के ही कार्य कुछ कम न थे, सभा के कार्यों का बोझ इतना था कि कार्याधिक्य के कारण आपके स्वास्थ्य पर भी इसका विपरीत प्रभाव पड़ा। आपको बार-बार भक्तों ने कहा कि आप अपने पास मठ में पत्र-व्यवहार के लिए किसी को रख लें परन्तु आप नहीं माने। सब पत्र-व्यवहार अपने हाथ से ही किया करते थे।

जालंधर सभा कार्यालय में आपको जाना-आना पड़ता था। सभा कार्यालय के कर्मचारियों श्री केदार सिंह आर्य व स्वर्गीय श्री नवाब सिंह ने एक बार लेखक को बताया था कि ऐसा त्यागी-तपस्वी महामानव मिलना कठिन है। जब स्वामी जी महाराज सभा कार्यालय आते तो कभी भी सभा के कोष से दूध, लस्सी आदि ग्रहण नहीं करते थे। भोजन का समय होता तो ये लोग कह देते कि हमारे गृह पर ही भोजन कीजिए। साधु ने उन दिनों किसी का आतिथ्य भी स्वीकार नहीं किया। सभा के कोष से तो भोजन करने का प्रश्न ही नहीं था।

श्री नवाबसिंह जी ने कहा, "जब भोजन का समय होता तो स्वामी जी अपने झोले से

चपातियां निकाल कर कहते-आओ सब भोजन करें।"

श्री महाराज मठ से ही अपना भोजन बनवाकर लाया करते थे। अपनी आवश्यकता से अधिक ही लाया करते थे ताकि सभा कार्यालय में कोई और व्यक्ति भी भोजन कर सके। जन-धन का इतना ध्यान रखने वाले इस महापुरुष का गुणगान हम कर नहीं सकते।

यह ठीक ही है कि एक गम्भीर विद्वान् व एक पूजयनीय साधु होने के नाते आपने अपने सहज स्वभाव से यह मर्यादा आर्यों के सामने रखीं।

हम पाठकों को स्मरण करवाना चाहते हैं कि श्री महाराज के इस आचरण के पीछे एक गौरवपूर्ण इतिहास है। पूज्य स्वामी वेदानन्द जी महाराज आदि बड़े-बड़े विद्वान् व नेता भाव-विभोर होकर यह सुनाया करते थे कि जब लौहपुरुष स्वामीं स्वतन्त्रानन्द जी महाराज आर्यप्रतिनिधि सभा के अधिष्ठाता वेद प्रचारक थे तो आपने सभा के कोष से अपने ऊपर सभा का एक भी पैसा व्यय नहीं होने दिया। आप वेदप्रचार अधिष्ठाता के साथ-साथ श्रीमद्दयानन्द उपदेशक विद्यालय के आचार्य पद को भी सुशोभित करते थे। सभा पर आपके भोजन का भी कुछ भार न था। उपदेशक विद्यालय में सभी के लिए भोजन तो बनता ही था। श्री महाराज तब भिक्षा का भोजन किया करते थे। दस वर्ष तक पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी ने सभा की सेवा की और एक बार भी गुरुदत्त भवन में सभा का भोजन स्वीकार नहीं किया। स्वयं भिक्षा मांग कर लाते कभी-कभी पं० रामचन्द्र जी आदि शिष्यों में से कोई भिक्षा मांग कर लाता।

पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज उन दिनों अपने श्रद्धेय आचार्य की कोख में ही तो थे। यह सब कुछ तभी सीखा था। उस त्याग के वैराग्य के गहरे संस्कार आप पर पड़े। यह उसी इतिहास की पुनरावृत्ति थी। श्री केदारसिंह ने कहा,"स्वामी सर्वानन्द जी सभा के नल से जल तो लेते थे, बस, और कुछ नहीं।"

संन्यासी होने के कारण भी सभा का ही कर्त्तव्य बनता है कि ऐसे पूज्य पुरुषों का अतिथि-सत्कार हो परन्तु यत्र सभा का संगठन तो एक प्रकार से भंग था। स्वामी जी स्वयं सभा थे। अतः उन्होंने अपने ऊंचे आचरण से अपने गुरु की गौरवपूर्ण परम्परा का पालन करते हुए, आर्यसमाज के इतिहास में एक स्वर्णिम अध्याय जोड़ा। खेद है कि जब सात खण्डों में आर्यसमाज का इतिहास छपा तो लेखकों की दृष्टि इस प्रेरणाप्रद इतिहास पर न पड़ी। यह सब कुछ ग्रंथों में छपा मिलता है। ऐसी विभूतियों का पावन-चरित्र आने वाली पीढ़ियों के लिए एक आदर्श रहेगा।

स्वामी जी पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं

कुछ वर्ष पूर्व परोपकारिणी सभा के प्रधान स्वामी ओमानन्द ने सभा में एक रिक्त स्थान होने पर पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज को सभा में लेने का सुझाव कुछ सदस्यों के सामने रखा। सुझाव अत्युत्तम था। इसमें सभा का ही गौरव था। पूज्य स्वामी जी उस वर्ष ऋषिमेला पर आमन्त्रित थे ही। उनके

कानों तक भी यह समाचार पहुंच चुका था कि उन्हें सभा का सदस्य बनाया जा रहा है।

वहां एक विचित्र स्थिति उत्पन्न हो गई। एक सेठ जी ने एक ताना-बाना बुन दिया। वह यह चाहते थे कि सभा में रिक्त दो स्थानों में से पहले एक स्थान के लिए उनकी बिरादरी के एक सेठ को चुना जावे फिर वह पूज्य स्वामी जी के नाम पर अपनी सहमति देंगे। उक्त सेठ जी ने भी पुरुषार्थ करके कुछ सदस्यों को अपने साथ मिला लियां। यह सेठ जी जानते थे कि स्वामी जी सर्वसम्मति से चुना जाना तो स्वीकार कर लेंगे। वे बहुमत से चुना जाना स्वीकार नहीं करेंगे। सेठ जी ने पूज्य स्वामी जी की इस पवित्र भावना का पूरा-पूरा लाभ उठाकर अपना अड़ियलपना दिखाया।

ऋषि मेला के उत्सव की वेदी पर परोपकारिणी सभा के कुछ सदस्यों ने इस स्थिति पर विचार किया। मुझे भी उस बैठक में बुलवा लिया। विचार यह बना कि स्वामी जी को तो सर्वसम्मति से ही लिया जावेगा। मतदान न होने देंगे। उस वर्ष यह विचित्र स्थिति देखकर रिक्त स्थानों को भरने का काम स्थगित कर दिया गया। श्री ओकांरनाथ जी मुम्बई वालों ने मुझे कहा, "आप हमारी ओर से पूज्य स्वामी जी को कह दें कि हम विवश हैं। इस कारण से उन्हें इस वर्ष सदस्य नहीं बना सकते।"

मैंने कहा, "स्वामी जी महाराज को कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। उनके स्वास्थ्य पर इन बातों का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। वे पदों के लिए सदा उदासीनता दिखाते हैं।"

अगले वर्ष पूज्य स्वामी जी सर्वसम्मति से सदस्य चुने गये परन्तु सेठ जी ने उस वर्ष भी अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया। लेखक से भी बात की और कहा, "एक व्यक्ति हमारा लिया जावे फिर स्वामी जी को सर्वसम्मति से चुन लिया जावे।" मैंने उस सेठ से कहा कि आप स्वामी जी जैसे महापुरुष के साथ अपने व्यक्ति को क्यों जोड़ते हैं? क्या कोई उनके तुल्य आपके पास है? श्री ओमप्रकाश जी झंवर की उपस्थिति में मेरी उस सेठ से बातचीत हुई।

जहां इस प्रकार की दुष्प्रवृत्ति, गुटबन्दी व बिरादरीवाद को देखकर हमारा मन तब दुखी हुआ वहां इन सब बातों से अलिप्त पूज्य स्वामी जी महाराज को यथापूर्व आनन्दित देखकर उनके प्रति हमारी श्रद्धा और भी बढ़ी। विचित्र बात तो यह थी कि स्वामी ओमानन्द जी के सुझाव का इसप्रकार विरोध करने वाला वह सेठ स्वामी ओमानन्द जी की ही देन था। वही उसे खोजकर परोपकारिणी में लाए थे। यही तो सार्वजनिक जीवन की व लोकतंत्र की एक विडम्बना है।

ईश्वर का ध्यान लगा कर

एकबार कोई रोगी औषधालय का समय निकल जाने पर आया तो स्वामी जी ने उसे कहा, "तुम्हें पता भी है कि औषधालय बारह बजे बन्द हो जाता है फिर भी आप अपने कामकाज निपटा कर हमारे कार्यों में रुकावट डालने के लिए इस समय आते हो।"

उसने कहा, "महाराज देर हो गई। यह हो गया। वह होगया। अब औषधि दे दीजिए।"

स्वामी जी ने कहा, "देखो। प्रातःकाल की वेला में बुद्धि भी अधिक निर्मल होती है। ईश्वर का ध्यान करने से ठीक-ठीक सूझता है। ईश्वर का ध्यान करके कार्य किया जावे तो फल अच्छा होता है। ऐसे ही औषधि दे देने से वैसा लाभ नहीं हो सकता।"

पास बैठे लोगों पर तो इस कथन का बड़ा प्रभाव हुआ कि पूज्य स्वामी जी का कितना ईश्वर-विश्वास है। ईश्वर की कृपा व आशीर्वाद को वे अधिक महत्त्व देते हैं। अपने ज्ञान व बुद्धि पर उन्हें अहंकार नहीं परन्तु वह रोगी तो नहीं स्वामी जी! 'कृपा कीजिए' की ही रट लगा-लगा कर औषधि लेकर ही टला।

अंधविश्वास में नहीं फंसने देते

एकबार करतारपुर में एक सज्जन ने आकर स्वामी विज्ञानानन्द जी रोहतक वालों से अपने किसी बच्चे के संबंध में यह पूछा, कि बालक बोल नहीं सकता। गूंगा है। कोई औषधि बताइए।

उसकी यह पुकार सुनकर वहीं बैठे स्वामी श्री सर्वानन्द जी महाराज ने उस व्यक्ति से कहा, "क्या जन्म से ही गूंगा है अथवा बाद में किसी घटना या रोग से वाणी में विकार आया?"

उसने कहा, "जन्म से ही ऐसा है।"

स्वामी जी ने कहा- "फिर कुछ नहीं हो सकता।"

ऐसा उत्तर पाकर भले ही उस पिता को कुछ निराशा हुई हो। वह महात्माओं के पास आस लेकर आया था। उसका हृदय टूटा होगा परन्तु श्री स्वामी जी ने उसको मिथ्या आश्वासन न देकर भटकने से बचाया। अपव्यय से बचाया। अंधविश्वास से बचाया और जो वास्तविकता है, उसका परिचय करवाया।

प्रायः ऐसे लोगों के साथ होता क्या है? वैद्य, हकीम, डाक्टर व नामधारी संन्यासी दुखी लोगों को ठगते हैं। बड़ी मूल्यवान् औषधियां भस्में देते हैं, चक्र कटवाते हैं और परिणाम स्वरूप रोगियों के पल्ले निराशा ही पड़ती है। शरीर का दुःख तो छूटता नहीं, ठगे जाने का दुःख और लग जाता है।

श्री स्वामी जी महाराज तो किसी को दुःख में देखकर उसके कष्ट-निवारण का यथोचित उपाय करना जानते हैं। अनेक बार परिचित हो वा अपरिचित असाध्य रोग से पीड़ित व्यक्ति को आप स्पष्ट कह देते हैं कि किसी विशेषज्ञ को भले ही दिखा दें परन्तु, मेरे ज्ञान व ध्यान में आपके रोग की कोई औषधि नहीं है।

अपने वैद्यक के ज्ञान, अनुभव व प्रसिद्धि की चर्चा, आपके मुख से कभी नहीं सुनी गई। महापुरुषों के यही तो लक्षण होते हैं।

सदैव प्रीति-रीति सिखाते हैं

यह १९५६ ई० के आरम्भ की बात है। दादरी में एक सफल हरियाणा प्रान्तीय आर्य महासम्मेलन हुआ। तब पृथक् हरियाणा राज्य नहीं बना था। पूज्य स्वामी जी को इस महासम्मेलन का अध्यक्ष चुना गया। उन दिनों स्वर्गीय महाशय कृष्ण हरियाणा के आर्यसमाजी नेताओंके साथ संघर्षरत थे और अपने लोकप्रिय दैनिक प्रताप में भी उनके विरुद्ध समाचार व

लेख देते रहते थे। तब 'प्रताप' देश के उर्दू पत्रों में सर्वाधिक प्रकाशित होता था।

'प्रताप' की इस नीति से हरियाणा वालों में भी रोष था। इससे कटुता बढ़ रही थी। दादरी आर्य महासम्मेलन में एक प्रस्ताव आया कि हरियाणा के आर्य 'प्रताप' का पूरा-पूरा बहिष्कार करें।

श्री स्वामी जी ने इस प्रस्ताव को सभा में आने ही न दिया। आपने बड़े प्रेम से, शान्ति से, हरियाणा के नेताओं को समझाया कि इससे कटुता, कलह, द्वेष और बढ़ेगा। आप जो कहना चाहते हैं, घर में एक दूसरे से कहें। मुझे कहिए। मैं स्वयं जाकर श्री महाशय कृष्ण को आपका उपालम्भ पहुंचा दूंगा।

हरियाणा वाले आपकी अमृतभरी वाणी का निरादर नहीं कर सकते थे। वह प्रस्ताव रोक लिया गया। पूज्य श्री स्वामी जी देहली गये और महाशय कृष्ण जी से गम्भीर वार्तालाप करते हुये उन्हें कहा कि यह उन जैसे प्रतिष्ठित व वयोवृद्ध नेता को भी शोभा नहीं देता कि वे 'प्रताप' में आर्यप्रतिनिधि सभा के मतभेद के समाचार दें। हरियाणा वालों के विरुद्ध लेख दें। इसमें समाज की ही हानि है। मिलकर चलने में लाभ हैं। यह सब कुछ किसी पत्रिका में नहीं छपा था। चुपचाप यह कार्य किया गया। पत्रों में आने की स्वामी जी को सदा अरुचि रही है।

यह विज्ञापन क्यों दिया?

श्री पं० निरञ्जनदेव जी ने एकबार पूज्य स्वामी जी महाराज के पवित्र भावों व आदर्श-जीवन की कुछ घटनाएं सुनाते हुऐ बताया कि पण्डित जी ने अपनी एक लघु पुस्तिका के अन्त में यह प्रकाशित कर दिया कि यदि आप शुद्ध आयुर्वैदिक औषधियों का प्रयोग करना चाहते हैं तो दयानन्द मठ फार्मेसी, दीनानगर से औषधियां क्रय किया करें।

श्री स्वामी जी ने यह लघु पुस्तिका कहीं से प्राप्त की। इसे पढ़ा और अन्त में फार्मेसी के बारे में ये शब्द पढ़े। जब पण्डित निरञ्जनदेव जी की स्वामी जी से भेंट हुई तो श्री महाराज ने पण्डित जी से पूछा, "आपने फार्मेसी के बारे में ऐसा क्यों लिखा? लोग सोचेंगे कि हमने यह विज्ञापन दिया है। फार्मेसी तो विज्ञापन देती नहीं।"

श्री पण्डित जी ने कहा, "यह विज्ञापन नहीं। मैंने तो आयुर्वैदिक औषधियों के बारे में लोगों की कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुये लोक-कल्याण के लिए यह सूचना छापी है। यह विज्ञापन तो क्या अपील भी नहीं है। यह तो मात्र एक सूचना है औषधियों में भी मिलावट होती है। वे भी शुद्ध नहीं मिलती। यह हमारे देश का दुर्भाग्य है।"

पूज्य स्वामी जी को पण्डित जी की बात तो जँच गई परन्तु आपने फिर भी उन्हें कहा, "भविष्य में ऐसा न करना। लोग तो यही समझेंगे कि यह मठ की ओर से विज्ञापन है।"

इन शब्दों पर किसी टिप्पणी की आवश्यकता नहीं। हमने कई साधुओं को देखा हैं, वे पूरा वर्ष सदा रसीद बुक व अपील से सुसज्जित घूमते हैं। यह भी कोई परोपकार का ढंग नहीं। हम मानते हैं कि श्री स्वामी सर्वानन्द जी भी एक जीव ही तो हैं और जीव अल्पज्ञ ही होता है। उनसे भी भूल संभव है परन्तु श्री स्वामी

वेदानन्द जी महाराज व स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के संबंध में लिखे गये शब्दों को दुहरायें तो हम कहेंगे कि यदि कोई साधु, संन्यास की मर्यादाओं व व्यवहार को समझना व सीखना चाहता है तो वह स्वामी श्री सर्वानन्द जी महाराज का अनुकरण करे। स्वामी जी को अपने आश्रम व वेश की शोभा का प्रतिक्षण ध्यान रहता है।

क्या हमारा कोई प्रतिनिधि आपके पास गया था?

कोई बीस वर्ष हो गये होंगे। ग्रीष्म अवकाश में मैंने कुछ दिन के लिए मठ में जाने का कार्यक्रम बनाया। पूज्य स्वामी जी को सूचना दे दी। उन्हीं दिनों अबोहर के ------ ------ स्वामी श्री महाशय का यहां से फार्मेसी के नाम एक पत्र गया कि ये औषधियां भेज दीजिए। मठ की फार्मेसी का यह नियम है कि ऐसे ही व्यापारियों को औषधियां नहीं भेजी जातीं। दीनानगर जाकर जिसका जी चाहे क्रयकर ले। फार्मेसी का एक और नियम है कि कोई भी मूल्यवान् औषधि स्वामी जी से पूछे बिना नहीं बेची जाती।

अबोहर से यह पत्र पाकर श्री देवदत्त जी भल्ला व्यवस्थापक फार्मेसी ने स्वामी जी से पूछा कि इस पत्र का क्या उत्तर देना है? विचार करने पर यह समझा गया कि यह महानुभाव मेरे कोई विशेष कृपालु होंगे। मैंने यह पत्र भिजवाया होगा। यह सोचकर स्वामी जी ने कहा, "जो मांगा है भेज दो।"

बिना कुछ पेशगी धन प्राप्त किये औषधियां भेज दी गईं। यह बिल्टी पाकर श्रीमान् जी ने बिल में और कटौती करके चैक वहां भेज दिया। बिल का पूरा भुगतान न होने पर भल्ला जी बड़े हैरान हुए। इतने में मैं पहुंच गया। मुझे बताया गया कि इस भ्रम से कि यह पत्र मैंने भिजवाया है, औषधियां भेजी गईं। उन्होंने पूरी राशि नहीं भेजी। पूछने पर यह उत्तर दिया कि हमें अन्य फार्मेसियां इतने प्रतिशत कमीशन देती हैं।

तब श्री देवदत्त जी ने लिखा, "क्या हमारा कोई प्रतिनिधि (Agent) आपके पास गया था कि हमसे औषधियां मंगवाओ? हमने Agent रखना तो दूर, कभी विज्ञापन भी नहीं दिया। मठ का कोई प्रेमी भक्त आपके पास विनती करने गया था कि यहां से माल मंगवाओ?"

इन बातों का यह महाशय जी क्या उत्तर देते? मैंने भी कहा कि आप तो फंस गये। अब आपके पैसे नहीं मिल सकते। स्वामी जी फार्मेसी का पैसा प्राप्त करने के लिए न्यायालय में अभियोग तो नहीं करने देते। बस, इतना ही कहकर इस काण्ड पर मिट्टी धूलि डाल दी, "लोग यह भी चाहते हैं कि औषधियां शुद्ध मिलें। कमीशन भी खाना चाहते हैं। ऐसे क्या लोक-कल्याण होगा?" इसके पश्चात् स्वामी जी कई बार अबोहर आए परन्तु किसी से भी इस बात की चर्चा नहीं छेड़ी।

यह तो एक घटना है। यदा-कदा चतुर व्यापारी मठ से ऐसी ठगी मारते ही रहते हैं

परन्तु स्वामी जी फार्मेसी विभाग को झगड़े में नहीं पड़ने देते। सब कुछ ईश्वर की न्याय-व्यवस्था पर छोड़ देते हैं।

दायें हाथ से देते हैं तो बायें को पता नहीं होने देते

श्री स्वामी जी महाराज ने अनेक बार विपदाग्रस्त लोगों की, कई ब्रह्मचारियों की, उपदेशकों की आर्थिक सहायता की है। जिसने भी सहायता मांगी, स्वामी जी ने कर करा दी। किसी की आवश्यकता पूरी होनी चाहिए, इसी में उन्हें सन्तोष की प्राप्ति होती है। दूसरों की समस्या सुलझाकर व पीड़ितों को दुःखमुक्त करके उन्हें विशेष आनन्द की अनुभूति होती है। विशेषता यही है कि वे दायें हाथ से किसी को सहायता देते हैं तो अपने बायें हाथ को पता नहीं लगने देते।

स्वयं ही कोई कृतज्ञता से बता दे तो बात दूसरी है अन्यथा उपकार करके जताना स्वामी जी का स्वभाव नहीं है। हमारे परिचित कितने ही निर्धन छात्रों को गुरुकुलों, कालेजों व विश्वविद्यालयों में आपने पढ़ाया है। उच्चशिक्षा का सारा व्यय दिया। ऐसे लोग पढ़-लिखकर समाज की सेवा न करें, धर्म प्रचार में कुछ कष्ट न उठायें और देश के प्रति अपना कर्त्तव्य न निभायें तो पूज्य स्वामी जी इसमें क्या कर सकते हैं। हमारे एक जानकार बंधु आज उद्योगपति हैं। पूज्य स्वामी जी ने उच्चशिक्षा का व्यय दिया परन्तु वह साधन-सम्पन्न व सुयोग्य होकर स्वामी जी का क्या ऋण चुका रहे हैं? महाराज का ऋण चुकाना क्या है? ऋषि-ऋण चुकाते जाओ।

'अच्छा कोई बात नहीं'

कोई १६-१७ वर्ष पुरानी घटना होगी। अबोहर में स्वामी केशवानन्द जी द्वारा स्थापित साहित्य सदन में केशवानन्द स्मारक औषधालय खोलने का निश्चय हुआ। एक सज्जन श्री पंछी के सुझाव पर औषधालय चलाने वालों ने दयानन्द मठ फार्मेसी को औषधियां भेजने के लिए लिख दिया। व्यापारियों को तो फार्मेसी न भी कर देती है परन्तु स्वामी केशवानन्द जी तो बड़े स्वामी जी के ही बड़े भक्त थे। इसलिए उनकी स्मृति में चलने वाले इस औषधालय को स्वामी जी ने औषधियां भेजने की अनुमति दे दी। बिना कुछ भी पेशगी धन मांगे फार्मेसी ने सहयोग किया।

बिल्टी अबोहर पहुंच गई। अब सदन वालों ने दीनानगर लिखा, ''यह शीशी टूट गई, वह फूट गई...।' मठ से उत्तर दिया गया कि आप टूटी-फूटी जो भी हों, लौटा दें, परन्तु इन भले लोगों ने भी साधुओं के स्वभाव का पूरा-पूरा लाभ उठाकर अपनी इच्छा के अनुसार वहां बिल का भुगतान किया। सारी राशि भी न भेजी और शीशियां टूट गईं—— इस आड़ में जितने जी में आया, पैसे काट लिये।

ऐसे ही आर्यसमाज अबोहर में श्री हंसराज पूर्वविधायक प्रधान बने तो ला० फ़कीरचन्द आदि दो-तीन महानुभावों ने समाज के नाम पर फार्मेसी से कोई पन्द्रह-बीस डिब्बे च्यवनप्राश मंगवा लिया। माल छुड़वाया नहीं। तब मठ से श्रीमान् देवदत्त जी ने मुझे यह सारी बात लिखी और फार्मेसी की ओर से अधिकार

दिया कि मैं माल छुड़ा कर जितने पैसे हो सकें, भेज दूं। मैंने च्यवनप्राश प्राप्त करके तुरन्त खपा भी दिया और राशि भी पूरी-पूरी पहुंचा दी। फार्मेसी के प्रबंधकों को अबोहर वालों के व्यवहार से इतना रोष आया कि देवदत्त जी ने कहा कि देखो, एक परोपकारी संस्था के साथ ये लोग कैसा व्यवहार करते हैं परन्तु पूज्य स्वामी जी महाराज ये सब सुनकर भी बड़ी शान्ति से यह कह देते,"चलो! कोई बात नहीं। संसार में ऐसे-ऐसे लोग भी होते हैं। हमें फिर भी बुरा नहीं सोचना चाहिए।"

राधास्वामी डेरा ब्यास से आई वह माता

पूज्य स्वामी जी का ध्यान आते ही मुझे एक घटना सहसा याद आ जाती है। श्री महाराज के संन्यास लेने के कुछ समय बाद की ही यह घटना है कि एक वृद्धा माता मठ में पहुंची। औषधालय का पता बाहर सड़क पर खड़े किसी सज्जन ने बता दिया। औषधालय में उस समय और भी बहुत स्त्रियां पुरुष बैठे थे। लेखक भी लेखरामनगर कादियां से गया था। कुछ सज्जनों के लिए औषधि लेनी थी।

उस माता ने खड़े-खड़े पूछा– "इस डेरे के बाबा जी कहां हैं? मैंने उनसे दवाई लेनी है।"

बैठे हुये लोगों में से एक साथ कई स्त्री-पुरुष बोले, "यही स्वामी जी तो हैं। सबको देखकर औषधि दे रहे हैं। तू भी बैठ जा, तुझे भी मिल जावेगी।"

स्वामी जी ने उस माता को बैठने का संकेत किया।

वह माता फिर बोली, "नहीं मैं तो बड़े महाराज जी से ही दवाई लूंगी। मैं राधास्वामी डेरा ब्यास से इतनी दूर से आई हूं। मुझे वहां बताया गया कि दयानन्द मठ दीनानगर में एक बड़े महाराज जी औषधि देते हैं।"

फिर हम में से कई लोगों ने कहा, "यही बड़े स्वामी जी हैं। यही औषधि देते हैं। बैठ जा, तुझे भी मिल जावेगी।"

वह माता फिर बड़ी दृढ़ता से बोली, "नहीं, मैं तो बड़े महाराज से ही दवाई लूंगी। वे कहां है? मैं बहुत दुखी हूं। मुझे एक समय से यह कष्ट है, वह कष्ट है।"

हम लोगों को समझ न आई कि यह क्या बात है कि माता जी को हमारे कहे पर विश्वास ही नहीं हो रहा। फिर लोगों ने कहा, "माता जी बड़े महाराज जी यही हैं, जो आपके सामने हम सबको देख रहे हैं।"

तब बड़े भोलेपन से वह बोली, "देखो, ऐसी बात मत करो। मुझे ब्यास में सत्संगियों में से कुछ ने बताया है (मठ से औषधि लेते रहे होंगे) कि दीनानगर मठ में ऐसे बड़े (हाथ भुजायें फैलाकर संकेत किया) महाराज जी हैं, ये तो बड़े दुबले-पतले हैं। अब हम सब समझ गये। स्वामी सर्वानन्द जी अब तक चुप थे, वे भी हंसकर कुछ बोले। हमने अब माता जी से कहा, "वे बड़े महाराज जी चल बसे हैं। रोगियों को तो तब भी यही देखा करते थे।"

स्वामी सर्वानन्द जी ने तब बड़ी सरलता व भावुक हृदय से उस भोली माता को कहा, "माता जी, वे महाराज तो बहुत बड़े थे। वे

भीमकाय थे परन्तु उन्हें चेला बड़ा दुबला-पतला मिला।''

अब उसकी समझ में सारी बात आ गई। उसने बड़े आराम से औषधि ली। स्वामी जी ने उसको औषधि तो दी ही और कोई सेवा भी हो बताइए, यह भी कहा।

''वे बड़े विशालकाय थे, उन्हें चेला बड़ा दुबला-पतला मिला'' यह वाक्य तो अब भी मैं कई बार स्वामी जी व अन्य लोगों को सुनाता हूं तो बड़ी हंसी आती है। इस वाक्य से स्वामी सर्वानन्द जी महाराज की अपने पूज्य गुरुवर के प्रति श्रद्धा भक्ति भी टपकती है।

इतने विनीत हैं पूज्य स्वामी जी

श्री स्वामी जी महाराज ३ मई १९७२ को एक समारोह में भाग लेने के लिए अबोहर पधारे। यहां पहुंचने पर आपको पता चला कि प्रख्यात हिन्दीसेवी व स्वाधीनतासेनानी श्री स्वामी केशवानन्द जी संगरिया से अबोहर आए हैं।

श्री स्वामी जी ने मुझे कहा, ''चलिए, स्वामी केशवानन्द जी के भी दर्शन कर आएं।'' स्वामी केशवानन्द जी उस समय कालेज के समीप ही श्री मास्टर तेगराम जी के निवास पर कोई बातचीत करने गये थे। मैं पूज्य स्वामी जी के साथ हो लिया। स्वामी केशवानन्द जी को सूचना दी कि दीनानगर से स्वामी सर्वानन्द जी महाराज पधारे हैं, आप से मिलना चाहते हैं।

यह सुनकर समाजसेवी तपस्वी स्वामी केशवानन्द अत्यन्त गद्‌गद् हो गये। अपने अतीत को याद कर करके वे बड़ी रोचक कहानियां सुनाया करते थे। उनकी स्मृतियों का स्रोत फूट पड़ा। वे झट से बोले,"पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के दर्शन प्रथम बार मैंने देहली के परेड मैदान की कांग्रेस में किए थे। उस कांग्रेस में श्री विष्णु दिगम्बर ने भी अपना संगीत सुनाया था।'' यह जानकारी हमारे लिए बड़ी महत्त्वपूर्ण थी। और भी बहुत बातें वे सुनाते रहे। स्वामी जी महाराज उस दीन सेवक साधु की बातें सुनते रहे। कोई सेवा हमारे योग्य कहकर विदाई ली और उन्हें कभी मठ में पधारने का भी निमंत्रण दिया।

इस भेंट का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू तो यह था कि स्वामी सर्वानन्द जी महाराज ने वयोवृद्ध देशसेवक साधु के दर्शन करने की इच्छा ही व्यक्त नहीं की प्रत्युत तत्काल किसी के निवास पर उनसे मिलने को चल पड़े। अनेक संस्थाओं से जुड़े हुये और आर्यसमाज के सर्वमान्य साधु होते हुए भी उनमें तनिक भी अभिमान नहीं। श्री महाराज की विनम्रता की कोई सीमा ही नहीं। यह घटना उसी का एक उदाहरण है। विनय भी महापुरुषों की महानता की एक कसौटी होती है और श्री स्वामी जी इस पर कसे जाने पर खरे उतरते हैं।

कुछ काम करें तो भूल क्षम्य है

श्री स्वामी जी जहां स्वयं बड़ी कड़ाई से नियम पालन करते हैं और अपने शिष्यों, भक्तों व सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति से यह अपेक्षा करते हैं कि वह अपने जीवन में अर्थशुचिता और व्यवहारशुद्धि का ध्यान रखेगा परन्तु अब युग का प्रवाह कुछ ऐसा चल पड़ा है कि मर्यादायें भंग हो रही हैं। वस्तुओं के

भाव चढ़ रहे हैं और मनुष्यों के भाव गिर रहे हैं। अच्छे कार्यकर्त्ता मिलते नहीं। तप व त्याग से लोग भागने लगे हैं। सरलता (Simplicity) जो कभी गुण समझा जाता था अब वह अवगुण बन गया है। चतुराई (Diplomacy) व्यक्तित्व की विशेषता समझी जाती है।

अच्छे गृहस्थी नहीं तो अच्छे साधु कहां से मिलेंगे? यह स्वामी जी कई बार कहा करते हैं। ऐसी स्थिति में यदि कोई व्यक्ति किसी साधु, वानप्रस्थी का स्वामी जी को उपालम्भ दे तो आप यह कहा करते हैं, "चलो, कुछ काम तो करता है इस लिए भूल-चूक भी करे तो क्षम्य है। जितना काम करे, अच्छा है।"

श्रीगंगानगर (राजस्थान) में एक बाबा जी ने स्वामी जी के एक चेले के बारे में स्वामी जी से कहा कि वह धन एकत्र करता रहता है और उस दान की राशि का दुरुपयोग करता है। उसका कोई हिसाब नहीं है। अर्थ अशुचिता स्वामी जी को भी अखरती तो बहुत है परन्तु उपालम्भ देने वाले को कहा, "चलो, कुछ खा भी जावे तो भी कुछ काम तो करता ही है। उसे समझायेंगे परन्तु तुम भी सदा यह शोर न मचाते रहो। काम करने वाले तो मिलते नहीं। जब सारा देश व सारा संसार ही बिगड़ रहा है तो भले व्यक्ति लाएं कहां से?"

उपालम्भ देने वाले को समझा-बुझा कर भेजा फिर जिसके बारे में उपालम्भ मिला था, उसे बुलाया। श्री ब्र० नन्दकिशोर जी विद्याभास्कर, एम० ए० ने लेखक को बताया कि पूज्य श्री स्वामी जी ने उस व्यक्ति की बड़ी तर्जना की और कहा, "तुम करते क्या रहते हो? तुम्हारे क्यों इतने उपालम्भ आते हैं? यह कोई कार्य का ढंग है कि लोग आप पर अंगुलियां उठायें और आपको अपने आचरण का कुछ ध्यान ही न हो। अर्थ-शुचिता तो एक सामाजिक कार्यकर्त्ता के लिए अत्यन्त आवश्यक है।"

ब्र० नन्दकिशोर जी ने ही बताया कि हरियाणा के एक और साधु को भी स्वामी जी ने इन्हीं बातों के लिए बड़ा झकझोरा। ऐसी बातें सुन-सुनकर पूज्य स्वामी जी के निर्मल आत्मा को बड़ा दुःख होता है परन्तु वे समझाने के अतिरिक्त कर भी क्या सकते हैं? लठ मारकर संन्यासी किसी का सुधार तो कर नहीं सकता।

सरल स्वभाव व स्वाभाविक सरलता

श्री महाराज के सरल स्वभाव की सभी लोग प्रशंसा करते हैं। वे जहां सरल स्वभाव हैं वहां उनमें स्वाभाविक सरलता का परिचय हमें उनके जीवन में पग-पग पर मिलता है। १९६१ ई० में लेखक एक बार उनके दर्शनार्थ मठ में गया। अपनी कुटिया में आप बैठे हुये थे। मैंने कुछ पूछा तो आप मुझे कुछ लिखवाने लगे। मैंने लिखने के लिए अपनी स्वझर्नी (पैन) निकालना चाहा तो आपने कहा, "यह रहने दीजिए। मैं देता हूं।"

मेरे न-न करने पर भी एक काला पैन मुझे पकड़वा दिया। जो कुछ लिखना था सो लिखकर मैंने वह स्वझर्नी लौटानी चाही परन्तु आपने आग्रहपूर्वक कहा, नहीं! "यह आप ही रखिए।" मैंने बहुत कहा, "मेरे पास तो पैन है। यह आप रखिए।"

आपने कहा,"एक सज्जन विदेश यात्रा से लौटे हैं, वे मुझे मिलने आए थे। यह चायना पैन है। उन्होंने भेंट में दिया। वे कहते थे यह बहुत बढ़िया है और मूल्यवान् है। आप तो लेखक हैं। आपको बहुत-बहुत लिखना पड़ता है। अतः यह आपके लिए ही रखा था।"

मैंने कहा, "स्वामी जी उस सज्जन ने आपको श्रद्धा से एक वस्तु भेंट की। आप भी तो सारा दिन कुछ न कुछ लिखते ही रहते हैं। इसलिए इसे आप ही प्रयोग में लाइए।"

आपने कहा, "नहीं! यह आप रखिए। इतना मूल्यवान् पैन मेरे पास अच्छा नहीं लगता। हम तो साधु हैं। हमने इससे क्या करना है। आपके पास इसका उपयुक्त और अधिक उपयोग होगा।"

पूज्य स्वामी जी की आज्ञा मान कर वह पैन ले लिया। मुझे पता था कि जहां मेरी स्मृति अच्छी मानी जाती है वहां मैं भुलक्कड़ भी उच्चकोटि का हूं। कुछ मास तक तो उसे स्वामी जी का प्रसाद समझकर बड़ा सम्भाला फिर किसी की दृष्टि पड़ी उसने मांगा। मैंने दे दिया और वापस लेना भूल गया।

कोई भक्त वस्त्र, कम्बल, छाता आदि दे जावे तो ऐसे ही आगे विद्वानों, साधुओं ब्रह्मचारियों को बांटते रहते हैं।

और उनके नयन सजल हो गये

एकबार हमने श्री महाराज से विनीत विनती की कि मठ के पुराने सेवकों, साधुओं व नींव का पत्थर बनने वाले ब्रह्मचारियों की कोई प्रेरणाप्रद घटनायें सुनायें। पूज्य स्वामी जी महाराज ने तब कई एक के जीवन की बड़ी रोचक व शिक्षाप्रद घटनायें सुनाईं। श्री वैद्य साईंदास जी व दिवंगत श्री कुन्दनलाल जी मुसाफिर की शिष्टता, विनम्रता, अथक सेवा व सदाचार की कुछ घटनाएं सुनाते हुये श्री स्वामी जी इतने भावुक हो गये कि उनके नयन सजल हो गये। गला रुंध गया। इससे पूर्व कि अश्रु टप-टप गिरते, महाराज ने रूमाल से अपने नयनों को पूछा। हमने पूज्य स्वामी जी के नयनों में प्रथम बार ही तब अश्रु, देखे। जो वीतराग अपने पिताजी के निधन पर न रोया।

जिस यति तथा व्रति को भक्तों ने जन्मदात्री मां की मृत्यु पर रोते नहीं देखा। उसे हमने मठ के नींव के पत्थर महात्मा कुन्दनलाल जी मुसाफिर व मठ के अथक सेवक आर्यरत्न वैद्य साईंदास जी की सेवाओं का व उनके निष्कलंक जीवन का स्मरण करते समय रोते देखा। हमें क़वि के एक पद्य का स्मरण हो आया। एक भजन हम गाया करते थे। प्रभु के लिए भक्त कवि ने लिखा है:—

न जाने कितना सुन्दर तू
जब सुन्दर तेरी माया है

वैद्य साईंदास जी व कुन्दनलाल जी मुसाफिर बड़े नेता व विद्वान् न सही परन्तु चरित्र के धनी, इन आर्यसेवकों का आत्मा कितना निर्मल होगा, जो स्वामी सर्वानन्द जी महाराज जैसा वीतराग संन्यासी उनके सेवा, संयम व शालीनता की चर्चा करते हुए भावुक होकर रो पड़ता है। महापुरुषों की यह भी तो एक विशेषता होती है कि वे छोटे लोगों के

सद्गुणों व सेवाभाव का भी विशेष सम्मान करते हैं।

श्री अशोक आर्य के एक पत्र पर

एक बार गिदड़बाहा के प्रा० अशोक आर्य ने मठ की फार्मेसी को एक पत्र लिखा कि जिज्ञासु जी भ्रमण करते हुये मठ में पहुंच चुके होंगे, उन्हें अमुक औषधि दे देना। मैं पैसे भेज दूंगा। मेरे पहुंचने पर ही यह पत्र भी पहुंचा।

फार्मेसी के व्यवस्थापक जी ने श्री स्वामी जी से पूछा कि ऐसा पत्र आया है। औषधि भेजें अथवा न भेजें?

यह औषधि बड़ी मूल्यवान् थी। इसमें स्वर्ण पड़ता है ऐसा पता चला। मठ की फार्मेसी को तो भेजने में ही आर्थिक लाभ था परन्तु पूज्य स्वामी जी का भी चिन्तन देखिए। व्यवस्थापक जी से पूछा, "किसके लिए मंगवाई है?" उन्होंने कहा, "यह लिखा नहीं है।"

मुझे पूछा, "क्या आपको पता है कि किस के लिए मंगवाई है?" मैंने कहा, "यह बताइए कि यह औषधि किस रोग के लिए है फिर सम्भवतः मैं अनुमान लगा सकूं। वैसे मुझ से कभी ऐसी बात नहीं हुई।" स्वामी जी ने कहा, "हृदय रोग के लिए है।"

मैंने कहा, "अशोक जी के पिताजी को यह कष्ट है।"

इस पर स्वामी जी ने कहा, "फिर मत भेजिए। कुछ और अच्छी औषधियां भेजेंगे। इतनी मूल्यवान् औषधि भेजने से उतना लाभ नहीं हो सकता। यह तो धनीमानी लोगों का भ्रम दूर करने के लिए है। उन्हें सस्ती औषधि दें तो उनकी सन्तुष्टि ही नहीं होती।"

कार्यकर्त्ताओं का इतना ध्यान और साधनहीन लोगों की इतनी चिन्ता करने वाले इस महापुरुष की महिमा महान् है।

उनका सुमन के समान कोमल हृदय

यह कोई बत्तीस वर्ष पहले की घटना है। दयानन्द मठ दीनानगर में आश्रमवासी तथा अतिथिगण दोपहर का भोजन करने बैठे। श्री वैद्य साईंदास जी की एक ही भुजा है, इसलिए वे भोजन के समय पंक्ति के अन्त में बैठा करते हैं। इसका कारण यह है कि दायें हाथ से भोजन करना होता है। दूसरा हाथ स्वच्छ रहता है जिससे दोबारा चपाती मांगने पर स्वच्छ हाथ से पंक्ति से आगे वाला अपने-अपने क्रम से चपाती लेकर पीछे को देता चला जाता है। जिस दिन की यह घटना है तब भी पूज्य स्वामी जी भोजन परोस रहे थे।

मठ का एक नियम है कि भोजन के समय कोई किसी भी प्रकार की बातचीत नहीं कर सकता। पूज्य श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के प्यारे शिष्य वैद्य साईंदास जी के पास उस दिन न जाने कौन आ गया, वैद्य जी उससे बातें करने लगे।

स्वामी सर्वानन्द जी ने टोका, "वैद्य जी बातें मत करें।" वैद्य जी भी कोई कच्चे व बच्चे तो थे नहीं। आश्रम के सबसे पुराने सेवकों में से एक हैं। कोई विवशता होगी, जो बात करते रहे। रोकने-टोकने पर भी बातें करते रहे।

दूर बैठे पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी ने कहा, "चलो वैद्य जी, उठ जाओ, भोजन छोड़ दें।"

वैद्य साईंदास जी अविलम्ब उठे, यज्ञशाला पर आ गये। वहां बैठकर

शान्तिपूर्वक समाचार-पत्र पढ़ने लग गये।

भोजन समाप्त करके सब जन उठ गये। तब स्वामी जी ने वैद्य जी से कहा, "चलिए वैद्य जी भोजन करें।"

वैद्य जी अविलम्ब उठे कुछ कहे सुने बिना फिर भोजन करने बैठ गये। उनका यह समस्त व्यवहार ऐसा था कि मानो कुछ हुआ ही नहीं। उनके मन में किञ्चित भी मनोमालिन्य नहीं था। वैद्य जी ने इस घटना की कभी किसी से चर्चा ही नहीं की।

यह घटना सुनने में तो साधारण सी लगती है परन्तु इस घटना ने पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी के निर्मल आत्मा पर एक गहरी छाप छोड़ी। आप ही ने यह घटना हमें सुनाई। वैद्य जी जैसे पुरुषार्थी, परमार्थी, विनम्र, कर्त्तव्यनिष्ठ तथा शिष्ट-सज्जन संस्थाओं को बड़े भाग्य से ही प्राप्त हुआ करते हैं।

यह घटना इस दृष्टि से भी असाधारण है कि मठ के बावन (५२) वर्ष के इतिहास में ऐसा कभी नहीं हुआ कि किसी को यह कहना पड़ा हो कि नियम भंग करने के कारण भोजन करना छोड़ कर उठ जाइए।

मर्यादा की रक्षा के लिए पूज्य स्वामी जी को यह कठोर पग तो उठाना पड़ा परन्तु सुमन के समान उनके कोमल हृदय पर तब क्या बीती होगी, यह वही जन अनुमान लगा सकते हैं, जो श्री महाराज के स्वभाव व कार्यशैली को जानते हैं।

ये अकना थकना क्या जानें?

यह १९८७ ई० के ग्रीष्मकाल की बात है कि पूज्य स्वामी जी आर्यप्रतिनिधि सभा हरियाणा (पूर्वकाल में पंजाब) की स्थापना शताब्दी पर रोहतक पधारे। दूर-दूर से ग्रामीण स्त्री-पुरुष वहां आए। बहुत से लोग तो आए ही श्री महाराज के दर्शन करने के लिए।

रोगी स्त्रियां तथा पुरुष स्वामी जी को घेरने का कोई भी अवसर हाथ से जाने नहीं देते थे। न तो महाराज जी स्वयं ही विश्राम करते और न भक्त श्रद्धालु कभी पांच-सात मिनट खाट पर लेटने का समय देते।

एकदिन प्रातः स्वामी जी यज्ञ-हवन के पश्चात् प्रवचन करके वेदी से आ रहे थे कि मार्ग में एक-एक पग पर पांच-पांच दस-दस रोगी, स्त्रियां तथा पुरुष और विद्वान् भी अपनी-अपनी व्यथा की कथा सुना कर औषधि पूछते। स्वामी जी किसी से मार्ग में एक सामाजिक बात करने लगे तो प्रसिद्ध विद्वान् श्री डा० वेदपाल जी ने बात करने वाले को संकेत दिया कि उनके परिवार के किसी व्यक्ति को औषधि पूछ लेने दीजिए। वे रोग से बड़े दुखी हैं। दूर से वे महाराज जी से अपने आपको दिखाने आए है।

रेवाड़ी क्षेत्र के श्री परमानन्द जी वसु, उ० प्र० के श्री पं० धर्मपाल जी व लेखक यह सब कुछ देख-सुन रहे थे। एक ने तब पूज्य स्वामी जी के अदम्य उत्साह व सेवाभाव को देखकर कहा,

"ये न तो थकते हैं और न ही कभी सेवा करते हुये उकताते हैं।"

मैंने तब अपने लोकप्रिय भजन **'हम रुकना झुकना क्या जानें'** की इस पंक्ति को बदलकर ऐसे कहा:—

मान-अपमान से सर्वथा ऊपर

हम पीछे बता चुके हैं कि एकबार पूज्य स्वामी जी पुराने समाज सेवियों के संबंध में अपने संस्मरण लिखवाने के लिए अबोहर पधारे। मठ में तो उन्हें चौबीस घण्टे कार्य रहता है। गऊशाला में गऊओं की सेवा, कभी पढ़ाना, रोगियों को देखना व मठ की व्यवस्था आदि में व्यस्त रहते हैं। हमने दो सप्ताह मांगे परन्तु वे पांच दिन के लिए वानप्रस्थी रामकृष्ण जी के साथ हमारे पास आए। श्री वानप्रस्थी जी ने आने की तिथि व पहुंचने के समय की सब सूचना दी थी। लेखक श्री डा० ओम्पाल जी को लेकर बस अड्डा पर स्वामी जी को लेने पहुंचा। बहुत प्रतीक्षा की परन्तु स्वामी जी वहां न दीखे। सोचा कि मास्टर पूर्णचन्द मरणासन्न हैं, सम्भवतः उनकी सेवा के लिए वहीं रुक गये हों। फिर यह विचार आया कि श्री महाराज आर्यसमाज मंदिर में यदि पहुंचे तो कोई उनका निरादर न कर दे। अतः वहां जाकर किसी को कह दिया जावे कि यदि वे वहां पहुंचे तो उन्हें हमारे निवास पर पहुंचाने के लिए रिक्शा वाले को कह दे। आर्यसमाज मंदिर में हमें कोई न मिला।

हम घर लौटे तो सायं सात बजे के लगभग श्री स्वामी जी व वानप्रस्थी जी रिक्शा पर पधारे। रिक्शा चालक एक ५०-५५ वर्षीय दुर्बल परन्तु भले स्वभाव का सिख सज्जन था। उसने हमें आवेश में आकर कहा, "आर्यसमाज मंदिर में ऐसे व्यक्ति को रख छोड़ा है....।" श्री स्वामी जी ने उसे कहा– चलो कोई बात नहीं, बस, बस, बस....। रिक्शा वाले को भी बड़ा कष्ट हुआ। स्वामी जी के पास पता तो हमारा था। रिक्शा वाले को बताया और वह हमारे यहां पूछताछ करके उन्हें ले आया। हम रिक्शा चालक के शब्दों व आवेश के स्वर से समझ गये कि आर्यसमाज मंदिर में स्वामी जी का तिरस्कार किया गया है। अलग करके वानप्रस्थी जी से पूछा कि क्या हुआ है तो पता चला कि अबोहर आर्यसमाज के अनुभवी व कुशल सेवक ने श्री महाराज को आर्यसमाज में पांव ही न धरने दिया। उसे बहुत कहा गया कि हमें यहां कुछ दम तो ले लेने दो, जिज्ञासु जी को सूचना दे दो, उनसे कुछ कार्य है।

सेवक ने उन्हें बहुत दक्षता से डांट-डपट करते हुये कहा, "जाओ, मुझे यहां बहुत काम है। जिज्ञासु जी से काम है तो जिज्ञासु के पास जाओ। यहां रहने का स्थान नहीं।"

इतनी दुत्कार सुनकर भी जब स्वामी जी शान्त ही रहे तो रिक्शा वाले पर महाराज की इस शान्त तथा गम्भीर मुद्रा का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। वह वहीं आवेश में आकर आर्यसमाज के सेवक से साधु का अपमान करने के लिए झगड़ा करने पर उतर आया परन्तु स्वामी जी महाराज ने तो वानप्रस्थी जी को कुछ कहने ही न दिया और न ही रिक्शा वाले को। हमने रिक्शा वाले को पैसे देकर विदा किया ही था कि महाराज ने आवाज़ लगाकर उसे फिर बुलवा लिया और दस रुपये और देने लगे। कहा, "यह लो, तुम्हें बड़ा कष्ट हुआ।" उसने यह कहकर लेने से इन्कार कर दिया कि इन्होंने हमें ठीक पैसे दिये हैं। साधु को रिक्शा चालक भी कितना सज्जन मिला।

श्री डा० ओमुपाल जी रात्रि स्वामी जी का पता करने आए तो इस घटना की जानकारी प्राप्त करके वह भी बहुत दुखी हुये। श्रावणी पर्व के उपलक्ष्य में आप ही की व्याख्यान माला आर्यसमाज वालों ने रखी थी। आपने अपने प्रातः के प्रवचन में यह सारी घटना सुना दी। तब आर्यसमाज में आठ-दस व्यक्ति स्वामी जी से क्षमा मांगने आए। स्वामी जी ने कहा, "कोई बात नहीं, कुछ नहीं हुआ।"

आप आर्यसमाज वालों की विनती पर प्रवचन करने के लिए भी गये। श्रावणी पर प्रवचन करने वालों का सत्कार हुआ तो आर्यसमाज वालों ने अपने उसी सुदक्ष सेवक को भी कर्त्तव्य-परायणता के लिए एक सौ रुपये पुरस्कार स्वरूप दिये। यह जानकारी आर्यसमाज के दो सभासदों ने ही हमें दी।

हमें इस घटना का उज्जवल पक्ष यह लगा है कि इस घटना से यह प्रमाणित हो गया कि आर्यसमाज में अब भी तपस्वी, त्यागी, सच्चे संन्यासी हैं। पुराने आर्यसमाजियों से वीतराग स्वामी सर्वदानन्द जी की ऐसी एक घटना तो कई बार सुनी थी कि कड़ी शीत में उन्हें एक आर्यसमाज मंदिर में ठहरने न दिया गया जबकि उनके उत्सव की शोभा उन्हीं से होने वाली थी। पूज्य स्वामी जी फिर भी शान्त रहे।

सात सितम्बर १९८७ ई० की उपरोक्त घटना से अबोहर का आर्यसमाज व अबोहर नगरी आर्यसमाज के इतिहास में अमर हो गये। स्वामी सर्वानन्द जी महाराज ने कभी उस नगर का नाम नहीं बताया था। स्वामी सर्वानन्द जी के साथ घटित इस घटना का संक्षिप्त वृत्तान्त इतिहास की सुरक्षा के लिए हमने लिख दिया। जहां वीतराग स्वामी सर्वानन्द जी को पाकर आर्यसमाज धन्य-धन्य हो रहा है, वहां अबोहर का आर्यसमाज भी धन्य है, जिस में ऐसे संन्यासी की ठोक पीट कर परीक्षा ली गई। अपमान का विषपान करके भी पूज्य श्री स्वामी जी महाराज मुस्कराते रहे।

स्वामी जी महाराज के इस व्यवहार पर आर्यजाति जितना भी गौरव करे थोड़ा है। आपका सदैव यही यत्न रहता है कि महर्षि दयानन्द जी महाराज के जीवन की एक-एक घटना पर गम्भीर चिन्तन करके ऋषि के व्यवहार को अपने जीवन में उतारा जाये। ऋषि जी का चरित्र पढ़ने व सुनने के लिए ही नहीं है। यह मनन करने के लिए है। कुछ सीखनें के लिए है। ऋषि जी का आचरण व व्यवहार वेद की पावन ऋचाओं का कर्म के रूप में भाष्य है। पूज्य स्वामी जी के सामने ऋषि का आदर्श है।

स्वामी वेदानन्द जी को क्या नहीं आता था?

श्री स्वामी जी महाराज की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि आप गुणियों की (विशेष रूप से यदि वे परोपकार में लगे हुये हों) प्रशंसा करके नवयुवकों को बहुत प्रेरणा व प्रोत्साहन दिया करते हैं। यह कोई सोलह वर्ष पहले की घटना होगी कि मैं मठ में बैठे हुये स्वाध्याय व लेखन कार्य कर रहा था। 'आर्य' साप्ताहिक का १९५६ ई० का एक विशेषांक देखा। उसमें पूज्य स्वामी वेदानन्द जी का एक खोजपूर्ण लेख पढ़कर मैं गद्गद् हो गया।

लेख में अनेक प्रमाण देकर यह सिद्ध किया गया था कि भारत में अंग्रेज़ों के आगमन से पूर्व इतना भाषा भेद नहीं था। पंजाब का थोड़ा पढ़ा-लिखा व्यक्ति गुजरात महाराष्ट्र वाले की बात को समझ लेता था और ऐसे ही गुजरात तथा बंगाल का व्यक्ति पंजाब तथा राजस्थान के व्यक्ति से काम चलाऊ बात कर सकता था।

सुपठित गुजराती, व्यक्ति कन्नड़, तमिल व तैलगू भाषी के भावों को समझ सकता था। इसका कारण यह था कि सब भारतीय भाषाओं में संस्कृत के शब्दों का पुष्कल प्रयोग होता था। अंग्रेजों ने गहरा षड्यन्त्र रचकर 'शुद्ध तमिल', 'शुद्ध कन्नड़', 'शुद्ध तैलगू' व 'शुद्ध मलयालम' तथा शुद्ध गुजराती मराठी का एक शोशा छेड़ा और मद्रास में कुछ पेटार्थी वेतनभोगी विद्वानों को बिठाकर शब्दकोश तैयार करवाया। इनमें शुद्धि के नाम पर संस्कृत के शब्द निकाले गये। भारतीय भाषायें एक-दूसरे से कटती गईं, लोग एक-दूसरे से दूर हो गये और देश के कटने का षड्यन्त्र भी १९४७ में सफल हो गया।

इस लेख में ऐसे-ऐसे प्रमाण थे, जिन्हें कालेजों व विश्वविद्यालयों में बैठे बड़े-बड़े इतिहासज्ञ भी नहीं जानते। इन प्रबल प्रमाणों को कोई झुठला भी नहीं सकता। हमने कुछ वर्ष पूर्व बम्बई से प्रकाशित एक अंग्रेजी साप्ताहिक में एक ऐसे ही लेख में ये सब बातें पढ़ी थीं। वह अंक भी हमारे पास है। स्वामी वेदानन्द जी का लेख उस अंग्रेजी लेख से ६-७ वर्ष पूर्व छपा था। अतः महत्व **'आर्य'** के लेख का ही अधिक माना जावेगा।

श्री स्वामी वेदानन्द जी का लेख उठाकर मैं तत्काल कुटिया पर स्वामी जी के पास गया और यह ऊपर की सारी बात बता कर कहा, 'स्वामी जी मैं तो इतिहास का विद्यार्थी हूं। इतना सूक्ष्मज्ञान तो आज इतिहास के प्राध्यापकों का भी नहीं। यह तो पता था कि स्वामी वेदानन्द जी वेदशास्त्र मर्मज्ञ थे और उन्हें कई भाषाओं पर अधिकार था परन्तु मुझे यह पता नहीं था कि उनको इतिहास का भी ऐसा तलस्पर्शी ज्ञान था।''

गुणियों पर मोहित पूज्य स्वामी जी के मुख से अनायास यह वाक्य निकला, ''स्वामी वेदानन्द जी को क्या नहीं आता था?''

फिर लगे स्वामी जी उनके पाण्डित्य, साहित्य-साधना व लग्न की घटनायें सुनाने। वहां और भी कई ब्रह्मचारी व साधु बैठे थे। सबको ये बातें सुनकर बड़ा आनन्द व प्रेरणा प्राप्त हुई। दूसरे के गुणों को खुले हृदय से स्वीकार करना, यह हमारे स्वामी जी का स्वभाव है।

और वह भक्त दानी रो पड़ा

मठ के एक बड़े सेवक श्री बेलीराम को मठ से संबंधित भाई-बहिनें कभी भूल न पायेंगे। वह श्रमिक थे और स्वामी जी के बड़े विश्वसनीय भक्त थे। वह फार्मेसी में स्वर्णभस्म आदि रगड़ा करते थे। गऊशाला व कृषिकार्य में भी सहायक होते थे। आचार्य जगदीश जी जब व्याकरणाचार्य करने होश्यारपुर जाने लगे तो भक्त बेलीराम दो सहस्र (२०००-००) के नोट लेकर कुटिया में आए और कहा कि ब्र० जगदीश जी की पढ़ाई

का पूरा खर्च मैं दूंगा। वह लीजिए दो सहस्र रुपये और जो चाहिए वो भी दूंगा।

पूज्य स्वामी जी ने उनका दान सधन्यवाद सहित लौटाया और कहा कि तुम चिन्ता न करो। सब प्रबंध हो जावेगा। ब्रेलीराम जी ने फिर आग्रहपूर्वक अपनी भेंट श्री चरणों में धर दी। स्वामी जी ने फिर लौटा दी। इससे भक्त बेलीराम जी को बड़ा दुःख हुआ और वह रो पड़ा। उसकी भावना का आदर करते हुये श्री स्वामी जी ने उस राशि में से केवल बीस रुपये उठाकर आचार्य जगदीश जी को दिये और बहुत समझा-बुझाकर बड़ा दबाव देकर शेष राशि उसे घर ले जाने के लिए मनाया।

ऐसे भक्त और ऐसे दानी इस युग में मुनिवर सर्वानन्द जी महाराज को ही मिले हैं। यह घटना सन् १९७४ की है।

भक्त बेलीराम का सर्वस्व दान और निधन

सन् १९६७ में भक्त बेलीराम जी ने गृह-त्याग करके वानप्रस्थी का जीवन बिताने का निर्णय कर लिया। एकदिन उसने कुटिया में श्री महाराज के चरणों में उपस्थित होकर कर-बद्ध विनती की, "महाराज मेरी दो एकड़ भूमि है। यह मैं मठ को दान देना चाहता हूं। मेरी भेंट स्वीकार कीजिए। मेरा बैंक में दस सहस्र रुपया जमा है। यह लीजिए बैंक की पास-बुक। यह राशि भी मठ के द्वारा किये जा रहे परोपकार के कार्यों में लगाइए। अब मैं मठ में ही शेष दिन रहूंगा। गृह-त्याग का निश्चय कर लिया है।"

स्वामी जी महाराज ने उसे समझाया कि मठ आपका है। आप यहीं रहिए। हम तुम्हारी सेवा करेंगे। परन्तु यह रुपया व भूमि तू अपने पुत्रों में ही बांट दे। हमें आपसे स्नेह है, भूमि व राशि से नहीं है। यदि हम आपका प्रस्ताव स्वीकार कर लें तो कोई यह कह सकता है कि मठ ने धन के व भूमि के लोभ में, बेलीराम को मठ में रख लिया है।"

भक्त बेलीराम अपनी बात पर अड़ा रहा परन्तु स्वामी जी के बहुत समझाने-बुझाने पर स्वामी जी की बात उसके गले के नीचे उतरी।

बेलीराम था तो अनपढ़ परन्तु बड़ा बुद्धिमान् व भला था। स्वामीजी के प्रति उसकी बड़ी गहरी श्रद्धा थी। अतः गुरु की बात टाल न सका।

स्वामी जी ने तत्काल उसके दोनों पुत्रों को अपना व्यक्ति भेजकर बुलवा लिया। दोनों को एक- एक एकड़ भूमि व पांच पांच सहस्र रुपया श्री महाराज ने बांट दिया। वे अति प्रसन्न हुये। पिताजी को उस समय घर ले गये। संयोग की बात ही समझिए कि अगले ही दिन भक्त बेलीराम चल बसे।

यह भी स्मरणीय है कि जीवन के अन्तिम दिनों में बेलीराम जी बिना कुछ लिए फार्मेसी में काम करते रहे। पूज्य श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के समय से ही बेलीराम मठ की सेवा करते चले आ रहे थे। अब बेलीराम जी के दोनों पुत्र मठ में बड़ी श्रद्धा से आते रहते हैं। कभी दोनों को मांस आदि व्यसन लग गये थे। पूज्य स्वामी जी के उपदेशों का यह प्रभाव है कि आज वे दोनों इन सब बुराइयों का परित्याग कर चुके हैं।

साधु को एक ही घर का भोजन नहीं करना चाहिए

कोई पांच-छः वर्ष पहले की घटना है कि पूज्य स्वामी जी कुछ रुग्ण हो गये। ला० देवदत्त जी के सबसे बड़े पुत्र श्री जयचन्द्र जी ने कहा, "आप जब तक ठीक नहीं हो जाते, भिक्षा का भोजन नहीं करिए। हम घर से भोजन भेजा करेंगे। दो दिन लाला जी भेजते रहे। तीसरे दिन पूज्य स्वामी जी ने कहलवा दिया कि अब भोजन मत भेजिए। साधु को निरन्तर किसी एक का भोजन नहीं करना चाहिए। इससे साधु में मोह पैदा हो जाता है। यह ठीक नहीं। जयचन्द्र जी अब विवश थे। बहुत कहा परन्तु श्री महाराज ने उनकी एक न सुनी।

इससे साधु की प्रतिष्ठा घटती है

सन् १९९० के अगस्त मास की बात है कि पूज्य स्वामी जी कुछ ठीक नहीं थे। आपने बिना नमक के उबली हुई सब्जियों का सेवन आरम्भ किया। मठ में जब रात्रि सबके लिए भोजन बनता है तो बहुत लोगों के लिए पाचक को भोजन तैयार करना होता है, इसलिए पकाने में कुछ कमी भी रह जाती है। ब्रह्मचारी तो नवयुवक हैं, वे सब खा-पचा जाते हैं परन्तु स्वामी जी के तो अब दांत भी कृत्रिम हैं। मठ के लोगों ने उनकी इस कठिनाई को (जो वे कभी कहते व बताते नहीं) अनुभव किया।

मठ के एक स्नातक श्री चन्द्रशेखर शास्त्री का अभी-अभी विवाह हुआ है। शास्त्री जी मठ में ही सेवारत हैं। आपने स्वामी जी को बिना बताए उनके लिए घर से सब्जी लानी आरम्भ कर दी। स्वामी जी को कोई पता न चला कि यह भाजी बाहर से आती है। श्री महाराज प्रबंध-पटु तो बहुत हैं। मठ की सब गतिविधियों का उन्हें पता होता है। दो-तीन दिन के पश्चात् मठ के पाचक से आपने पूछा, "क्या भाजी बनाई है?"

उसने कहा, "आलू।"

श्री महाराज बोले, "यह मेरे लिये घिया की सब्जी कहां से आ गई?"

पाचक भी चुप रहा और पास बैठे आचार्य जगदीश जी भी कुछ न बोले। बीच में किसी और ने कुछ बात चला दी जिससे स्वामी जी का ध्यान बदल गया।

अगले दिन फिर भोजन के लिए पाकशाला में आए तो पूछा,

"आज क्या बनाया है?"

पाचक ने कहा, "कड़ी बनाई है महाराज।"

श्री स्वामी जी की थाली में कड़ी की बजाए कुछ और था। आपने कहा, "तो भाजी कहां से आ गई?"

इस पर आचार्य जगदीश जी ने कहा, "शास्त्री शेखर जी की पत्नी ने कहा है कि मैं उबली हुई सब्जी अच्छी प्रकार से बनाकर भेजा करुँगी।"

पूज्य स्वामी जी बोले, "ऐसा नहीं हो सकता। यह मठ की मर्यादा के विरूद्ध है। मैं मठ के नियम नहीं तोड़ सकता। मैं मठ में रहते हुये बाहर का भोजन करुं, यह उचित नहीं लगता। आप शेखर की पत्नी को रोक दें।"

आचार्य जगदीश जी ने कहा, "शेखर तो

मठ का ही व्यक्ति है। वह कोई नगर का तो नहीं है। आप ही का शिष्य है।''

इस पर कहा, ''अच्छा उन्हें कह दें कि रविवार को एक बार वह भाजी भेज दिया करें।''

शास्त्री शेखर जी को पता लगा तो वह स्वयं स्वामी जी से मिले और कहा, ''क्या हमारा कोई कर्त्तव्य आपके प्रति नहीं? क्या हमारा सेवा करने का अधिकार नहीं है? यदि हम सेवा नहीं करेंगे तो हम किस काम आएंगे? हमारा पढ़ना-पढ़ाना सब निरर्थक ही है।''

स्वामी जी ने सब कुछ सुनकर कहा, ''तुम्हारी बात ठीक है परन्तु ऐसा करने से साधु की प्रतिष्ठा कम होती है। मैं कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहता जिससे संन्यास आश्रम की शोभा घटे और लोगों के सामने मर्यादा के विपरीत कोई उदाहरण रखा जावे।''

इस पर सब शिष्यों को चुप होना पड़ा।

जाओ! बाहर हाथ धोकर आओ

वानप्रस्थी ओम्प्रकाश जी ने बताया कि वह कुछ समय मठ में स्वामीजी महाराजके चरणों में रहकर औषधालय में पुड़ियां बांधने की सेवा करते रहे। एकदिन पुड़िया बनाने के लिए कागज लेने लगे तो अंगुली को थूक लगा कर कागजों से कागज अलग किया।

श्री स्वामी जी ने उन्हें ऐसा करते देख लिया और कहा, ''जाओ! बाहर जाकर हाथ धोकर आओ। पुड़िया में रोगी के लिए औषधि जायेगी। क्या झूठी औषधि हम देंगे?'' बात छोटी सी लगती है परन्तु प्रत्येक दृष्टि से कितनी महत्त्वपूर्ण है। वानप्रस्थी जी स्वामी जी द्वारा इस सीख को प्राप्त कर अपने आप को आज भी धन्य मानते हैं। कितना रोगियों का महाराज को ध्यान हैं। श्री महाराज का जीवन ही परहित के लिए है।

बड़े स्वामी जी वह सामने कमरे में हैं

एक व्यक्ति मठ में आया और कुटिया के पास वाले नल पर एक साधु को नाली साफ़ करते देखा। उसने साधु से पूछा, बड़े स्वामी जी कहां हैं? नाली साफ करने में लगे उस महात्मा ने एक कमरे की ओर संकेत करके कहा, ''बड़े स्वामी जी वह सामने कमरे में बैठे हैं।''

वह व्यक्ति वहां गया और चरण-स्पर्श करके नमस्ते की। कुछ पैसे भी भेंट दिये।

वे संन्यासी थे स्वामी सोमानन्द जी। उन्होंने पूछा, ''कहिए! श्रीमान् जी कैसे आए? क्या काम है?''

उस व्यक्ति ने कहा, ''मैंने औषधि लेनी है।'' कोई कष्ट था सो बताया। स्वामी सोमानन्द जी ने कहा, ''भले व्यक्ति औषधि तो बड़े स्वामी जी देते हैं। उनके पास जा। वे सामने नल पर हैं।''

उसने कहा, ''उन्हीं के पास गया था। उन्होंने कहा कि बड़े स्वामी जी आप हैं।''

स्वामी सोमानन्द जी ने कहा, ''अरे बड़े स्वामी जी वे ही हैं। वे ही तुम्हें औषधि देंगे।''

तब वह व्यक्ति स्वामी सर्वानन्द जी महाराज के पास गया और कहा, ''स्वामी जी बड़े स्वामी जी तो आप ही हैं।''

स्वामी जी ने कहा, ''कहो, बात क्या है?''

उसने कहा, ''औषधि लेनी है।''

तब स्वामी जी ने कहा, "भले व्यक्ति तू बात बता, यह काम है। तूने तो पूछा था कि बड़े स्वामी जी कहां हैं। मैंने तुम्हें बता दिया कि बड़े स्वामी जी वहां हैं। उन्होंने पहले संन्यास धारण किया था। अतः वही बडे हैं।"

यह धन मठ को नहीं चाहिए

अवांखा दीनानगर में एक बाबा शंकरानन्द रहता था। मठ ने कोई चालीस वर्ष उसकी सेवा की। रोग होता था तो स्वामी जी इतनी सेवा करते थे कि कोई शब्दों में वर्णन नहीं कर सकता। वह चारपाई, बिस्तर व थाली तक को इतना गन्दा कर देता था कि वानप्रस्थी ओमप्रकाश जी के शब्दों में देखने मात्र से ग्लानि होती थी।

उस बाबा के पास बहुत पैसा था। उसने एक चेला मूण्ड लिया। मठ के नाम की हुई वसीयत कुछ ठीक होने पर उस चेले के नाम कर दी। चेले ने एकदिन अवांखा ही छोड़ दिया और वह राशि मठ को देने को तैयार हो गया।

पूज्य स्वामी जी ने कहा, मठ को शंकरानन्द की राशि व सामान नहीं चाहिए। यह धन पाप का है। इसका परिणाम अच्छा न होगा। वह सारा धन उस चेले को ही दे दिया। सारा सामान भी उसे दे दिया। वह लेकर चला गया।

अवांखा में सेवा-कार्य तथा प्रचार-कार्य स्वामी जी की ओर से होता रहता है।

आत्माराम पाचक ठीक ही कहता है

श्री स्वामी जी पहले रात्रि नौ बजे से दस बजे तक भ्रमण के लिए निकला करते थे। मठ का कुत्ता भी साथ घूमने जाता था। सर्दियों के दिन थे जब लौटकर आए तो देखा कि यज्ञशाला पर मंत्रपाठ के पश्चात् ब्रह्मचारी अपने अपने कमरों में सोने के लिए नहीं गये। सभी वहीं खड़े हैं और पाचक आत्माराम के साथ कुछ लड़कों का झगड़ा हो रहा है।

आत्माराम ऊंचा-ऊंचा बोला करता था और बोलता भी बहुत था। वह अपने काम में तो बड़ा निपुण था परन्तु जिस भी संस्था में रहा, वहां विद्यार्थियों को ऐसे डांट डपट-करता मानो वही आचार्य है। वह हिसार ब्राह्मविद्यालय में भी कई वर्ष रहा था। झगड़े का कारण यह था कि मंत्र पाठ के समय कुछ ब्रह्मचारी हंस पड़े। किसी ने कोई शरारत कर दी होगी। बस, आत्माराम भला अनुशासनहीनता देखकर कैसे चुप रह सकता था। पहुंच गया यज्ञशाला पर। सबकी खिंचाई कर दी। इतने में स्वामी जी पहुंच गये।

स्वामी जी को यह हैरानी हो रही थी कि पाचक व छात्रों के झगड़े का यह कौन सा समय है और झगड़ा पाकशाला में होता तो कुछ बात भी होती। यज्ञशाला में आत्माराम कैसे पहुंच गया? स्वामी जी ने अपनी विशिष्ट शैली में कहा, "आत्माराम क्या झगड़ा कर रहे हो?"

झट से आत्माराम ने उत्तर दिया," यह झगड़ा नहीं। यह जो चौना (पशुओं का टोल) आपने इकट्ठा कर रखा है, यह मेरी जान खाते हैं। आपको क्या पता बच्चे कैसे पाले, सम्भाले जाते हैं। आप तो साधु हैं। साधुओं को इन बातों का क्या ज्ञान?"

अपने कमरे में लेटे स्वामी श्री सोमानन्द जी ने ये शब्द सुन लिये। उन्हें यह बात बहुत

बुरी लगी कि आत्माराम स्वामी जी से यह कह रहा है कि आपको क्या पता?

स्वामी सोमानन्द जी दौड़कर आए और आत्माराम को हाथ से पकड़ कर यज्ञशाला से नीचे उतारकर डांटते हुये कहा, ''तुम्हें पता नहीं, तू किससे बात कर रहा है?''

आत्माराम तो आत्माराम ही था। उसने शब्द भण्डार से एक बड़ा तीखा मुहावरा स्वामी सोमानन्द जी पर भी बरसा दिया। इससे पहले कि स्वामी सोमानन्द जी आगे कुछ कहते पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी ने कहा, 'छोड़ो, छोड़ो जी, स्वामी जी क्या कर रहे हो। आत्माराम ठीक ही तो कहता है कि साधुओं को क्या पता कि बच्चे कैसे पाले जाते हैं।'' बस, इतना कहने से ही सबकी गर्मी दूर हो गई। आत्माराम भी शान्त हो गया। सब ब्रह्मचारी व स्वामी सोमानन्द जी महाराज भी अपने-अपने कमरों को चल दिये।

यह घटना आचार्य जगदीश जी ने सुनाई। आत्माराम को ठण्डा करने की कला स्वामी जी को ही आती थी। उसकी कई रोचक कहानियां मठवासी सुनाया करते हैं। वृद्ध अवस्था के कारण उसकी बोलचाल की भाषा और भी बिगड़ गई थी। वह श्री स्वामी जी को 'तू' तक भी कहा दिया करता था। स्वामी जी उसे अज्ञानी मानकर उसकी सब बातें सुनकर भी इतने शान्त रहते थे कि देखने वाले चकित रह जाया करते थे।

असत्य बात मत कहा करें

एकबार श्री स्वामी जी आचार्य जगदीश जी के साथ कुटिया के सामने वाली क्यारी में गोभी के पौधों को देखते हुये आ रहे थे। एक वृद्ध सज्जन उधर बैठे हुये थे। वह श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के समय मठ में यदा-कदा आया करते थे। स्वामी जी को कृषि-कार्य में इतनी रुचि लेते व श्रम करते हुये देखकर उस वृद्ध ने कहा, स्वामी स्वतंत्रानन्द जी के समय में, मैं एक बार मठ में आया तो वे खुरपा लेकर खेती के काम में लगे हुये थे। मैंने कहा स्वामी जी आप भी यह कार्य करते हैं? स्वामी जी ने तब उत्तर दिया कि जाट घराने में जो जन्म लिया तो फिर कस्सी-खुरपा भी तो चलाना ही है।

पूजनीय स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज को कुछ भी जानने व समझने वाला व्यक्ति एकदम इस बात को सुनते ही कहेगा कि यह कथन एक शुद्ध गप्प है। स्वामी जी के बोल-चाल, व्यवहार, रीति-नीति का ज्ञान रखने वाला प्रत्येक आर्यपुरुष इस काले झूठ की निन्दा ही करेगा। स्वामी जी तो अनजाने से भी अपने कुल की चर्चा नहीं किया करते थे। जाति-पांति के बखान का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

स्वामी सर्वानन्द जी महाराज भला इस असत्य को सुनकर कैसे चुप रहते। आपने उस वृद्ध को डांटते हुये कहा, ''यह झूठ है। स्वामी जी महाराज कभी भी ऐसी बात नहीं किया करते थे। आगे से कभी असत्य वचन मत कहा करें।''

उस वृद्ध ने पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज का यह रूप कभी नहीं देखा था। उसने यह सोचा ही न था कि झूठ बोलने पर वे उस जैसे वृद्ध की भी खिंचाई कर देंगे।

संन्यास देने लगे परन्तु, न दिया

कुछ वर्ष पूर्व उत्तरप्रदेश से एक व्यक्ति मठ में आया और संन्यास की दीक्षा देने के लिए स्वामी जी से विनती की। स्वामी जी ने उससे भी पूछ-ताछ करनी थी, करके, संन्यास की दीक्षा देने की तिथि निश्चित कर दी। वह तिथि भी आ गई। वह व्यक्ति यज्ञवेदी पर आ गया। स्वस्तिवाचन, शान्तिप्रकरण के मंत्रों का पाठ हो लिया। मठ के ब्रह्मचारी व संन्यासी सब बैठे हुए थे। अब यज्ञोपवीत उतारने की क्रिया होनी थी। उसका यज्ञोपवीत था ही नहीं।

स्वामी जी ने कहा, ''तुम्हारा यज्ञोपवीत कहां है?'' उसने कहा, ''इसकी क्या आवश्यकता ?''

उपनयन के संबंध में कुछ और भी भद्दे शब्द कहे। स्वामी जी ने वहीं संस्कार करना रोक दिया और कहा, ''जाओ! तुम संन्यास के अधिकारी नहीं। हम तुम्हें संन्यास नहीं दे सकते। यज्ञोपवीत तुम्हारा नहीं, शिखा तुम्हारी नहीं। धर्मभाव के अभाव में तुम क्या करोगे। संन्यास तुम जैसे लोगों के लिए नहीं है।''

तुम जाओ, पहले जाकर ट्यूशन करो

रोहतक में एक समारोह में घोषणा की गई कि पूज्य स्वामी जी एक सेवामुक्त मास्टर जी को वानप्रस्थ की दीक्षा देंगे। वह यज्ञवेदी पर आ गया। स्वामी जी ने पूछा, तुम वानप्रस्थ लेकर काम क्या करोगे?

उसने कहा, ''ट्यूशन करूँगा।''

श्री स्वामी जी ने कहा, ''जा, फिर पहले ट्यूशन कर ले। वानप्रस्थ आश्रम इस काम के लिए नहीं है।''

यह घटना श्रीमान् वानप्रस्थी ओमप्रकाश जी भटिण्डा वालों ने सुनाई। वह भी तब वहीं थे।

एक को संन्यास देकर उसके कपड़े उतरवा लिए

राजस्थान से एक व्यक्ति मठ में आया। बड़े प्रभावशाली ढंग से बातचीत करता था। उसने श्री स्वामी जी से संन्यास दीक्षा के लिए प्रार्थना की। स्वामी जी ने उसे संन्यासी बना दिया। वह मठ में ही रहने लगा।

वह ब्रह्मचारियों के साथ कमरा नं० १३ में रहा करता था। अपने अतीत की कहानियां ब्रह्मचारियों को सुनाता रहता। कभी कहता, ''मैं शिकार करने जाया करता था। मेरी पत्नी मेरे साथ होती थी। कभी-कभी हम जंगल में सो जाते....।''

ब्रह्मचारियों ने स्वामी जी को बताया कि यह तो ऐसी-ऐसी बातें करता रहता है।

स्वामी जी ने उसे बुलाकर कहा, ''तुम ब्रह्मचारियों को क्या कहानियां सुनाते हो? बच्चों को कुछ अच्छी शिक्षा दिया करें।''

उसने ब्रह्मचारियों के बारे में अपशब्द कह दिये।

स्वामी जी ने कहा, ''तुम सन्यास के अधिकारी नहीं। ये वस्त्र उतार दो और घर चले जाओ।''

उसने कहा, ''मैं जब आया था तो मेरी मूंछें थी। आपने वे कटवा दीं। मेरी मूंछें पहले दो।''

अब स्वामी जी मूंछें कहां से लावें। उसकी बात सुन ली और कहा, ''अच्छा! हमने तुम्हें

संन्यास दिया। हम आप के गुरु और आप हमारे शिष्य हैं। आपको हमारा कहना मानना चाहिए।''

उसने कहा, -''हां, जी।''

स्वामी जी ने कहा, ''तुम एक मास तक बाल नहीं बनवाओगे।'— उसने यह आज्ञा मान ली।

एक मास में उसके सिर के, दाढ़ी-मूंछों के बाल बहुत लम्बे-लम्बे हो गये।

स्वामी जी ने उसे फिर बुलवाया और कहा, ''अब तुम संन्यास के वस्त्र यहीं उतार दो। अपनी मूंछें सम्भालो और चले जाओ।'' उसके पास अब कहने को और कुछ नहीं था। उसको यही पता था कि ये स्वामी जी बड़े शान्त स्वभाव के महापुरुष हैं। उसे यह पता नहीं था कि इन्हें संन्यास की प्रतिष्ठा का कितना ध्यान है। उसने अब देख लिया कि यह अपने सिद्धान्तों पर अड़ना भी जानते हैं।

'ईश्वर सुनता है उसने मेरी तो सुनी'

कुछ ही मास पूर्व की बात है कि पूज्य स्वामी जी बता रहे थे कि जब मैं मठ में आया था तो यह प्रार्थना किया करता था कि ईश्वर मुझे इतना काम दो कि मुझे एक भी मिनट का अवकाश न हो।

ईश्वर ने मेरी प्रार्थना सुनी। मेरे पास अब नहीं। अब मैं प्रार्थना करता हूं कि नाथ मुझे कुछ तो विश्राम दिया करें। ईश्वर मेरी यह प्रार्थना भी सुनेगा।

'अपने जैसे ग्यारह सौ बनाकर दिखाना'

मठ का एक ब्रह्मचारी शास्त्री करके मठ से निकला तो विदाई लेते समय पूज्य स्वामी जी से आशीर्वाद व सन्देश मांगा। स्वामी जी ने कहा, प्राचीनकाल में गुरु शिष्य को कहा करते थे। जा, यह गाय ले जा और एक की ग्यारह सौ बनाकर आना। तू भी अपने जैसे ग्यारह सौ भले पुरुष बनाकर फिर मठ में आना।

वह स्नातक सेना में गुरु के पद पर नियुक्त हो गया। कभी-कभी किसी नगर ग्राम में पूज्य स्वामी जी को मिलता रहा। अब एक दिन मठ में श्री महाराज के चरणों में उपस्थित होकर कहा, आपने मुझे कहा था, ''अपने जैसे ग्यारह सौ भले पुरुष बनाकर मठ में आना। आप अब जब चाहें मेरी Unit (पलटन) में आकर देख लें, गिनती कर लें और जांच-पड़ताल कर लें, आपको ग्यारह सौ मेरे जैसे व्यक्ति मिलेंगे, जो मांस नहीं खाते, सुरापान नहीं करते और देश के लिए, अपने कर्त्तव्य पालन के लिए प्रतिक्षण तत्पर हैं। उनमें धर्म भाव भरा हुआ मिलेगा। आपने जो कार्य सौंपा था सो कर दिया। इस लिए मैं मठ में आने का अधिकारी बना हूं।''

पं० धर्मपाल जी के परिवार का ध्यान रखा

श्री पं० धर्मपाल सिद्धान्तभूषण चल बसे। जीव अल्पज्ञ है। उसमें कई दुर्बलतायें रहती है। श्री पं० धर्मपाल जी भी एक अल्पज्ञ जीव थे, हम सबकी भांति। उनमें एक गुण बड़ा प्रशंसनीय था जिसकी चर्चा बार-बार करते हुये हमें आज भी आनन्द होता है। उन्हें ईश्वर व उसकी वाणी पर अडिग श्रद्धा थी। पं० लेखराम जी व स्वामी श्रद्धानन्द जी के बलिदान पर्व छुट्टी देखकर (रविवार का दिन) नहीं मनाने चाहिए।

जिसदिन किसी महापुरुष का बलिदान हुआ वा जन्म हुआ उसी दिन उनके वे-वे पर्व मनाने चाहिए। आगे-पीछे पर्व मनाना ईश्वर के नियम में अविश्वास जैसी बात है।

जब धर्मपाल जी चल बसे तब उनका पुत्र किसी काम पर नहीं लगा था। परिवार में कोई भी कमाने वाला न था। किसी सभा व संस्था ने उनके परिवार की सुधि न ली। कितना बड़ा पाप है यह!

पूज्य स्वामी जी उनके घर बिना मांगे अन्न पहुंचा देते। उनके पुत्र को फार्मेसी में काम दिया। कुछ सिखाया, पढ़ाया, कमाने योग्य बनाया और काम-धंधा भी आरम्भ करवा दिया। इसका परिणाम यह है कि वह सारा परिवार आज भी मठ से जुड़ा हुआ है। वे स्वामी जी का गुणगान करते हैं और उनके मन में श्रद्धाभाव देखकर प्रसन्नता होती है।

छोटी-छोटी बातों का इतना ध्यान

वानप्रस्थी ओम्प्रकाश जी ने बताया जब मैं मठ में स्वामी जी के साथ औषधालय में काम करता था तो औषधालय का समय समाप्त होने पर औषधालय की खिड़कियां व द्वार मैं ही बन्द किया करता था। वानप्रस्थी जी बताते हैं कि मैं अपने स्वभाव व अभ्यास के अनुसार इन्हें ज़ोर से खींचकर बन्द कर दिया करता।

स्वामी जी ने ऐसा देखा तो एकदिन कहा, "इनको इस पर झटके से न बन्द किया करें। धीरे से इन्हें बन्द करना चाहिए। इससे ये देर तक चलेंगे। झटकों से इनकी आयु घटेगी।" वानप्रस्थी जी ने गुरु की शिक्षा पल्ले बांध ली और इस बड़ी आयु में आकर एक अच्छी आदत ग्रहण कर ली।

वानप्रस्थी ओम्प्रकाश जी को दीक्षा न दी

पूज्य स्वामी जी वानप्रस्थी ओम्प्रकाश जी को तब से जानते हैं जब आप पं० रामचन्द्र जी के रूप में रामां, भटिण्डा, कालांवाली प्रचार करने आया करते थे। मोही में स्वामी स्वतंत्रानन्द जी की जन्मशताब्दी पर ओम्प्रकाश जी वानप्रस्थ की दीक्षा लेने पहुंचे। स्वामी जी ने कहा, "महाशय निहालचन्द्र जी से पूछकर तुम्हें दीक्षा दूंगा।" रामां मण्डी के वयोवृद्ध आर्य महाशय निहालचन्द्र के कहने पर स्वामी जी ने इन्हें दीक्षा न दी।

ओम्प्रकाश जी ने गृह-त्याग का दृढ़ निश्चय कर रखा था। वह घर छोड़कर सेवा-क्षेत्र में कूद पड़े। स्वामी जी भी उनकी लग्न व उत्साह को जानते ही थे। कुछ समय के पश्चात् आप ही कहा, आप अब वानप्रस्थी हैं। आपको दीक्षित करने के लिए अब किसी संस्कार की आवश्यकता नहीं है। उनकी ठोस सेवा को देखकर स्वामी जी बहुत प्रसन्न होते हैं कि एक तपःपूत आर्य महाशय रौनकसिंह का सुपुत्र भी आगे पिता के नाम को चार-चांद लगा रहा है।

एक आदर्श संन्यासी ऐसा होता है

पं० रामचन्द्र जी के ज्येष्ठ भ्राता श्री रिछपाल सिंह जी अब इस संसार में नहीं हैं। वह जब तक जीवित रहे कभी-कभी मठ में आया करते थे और कुछ दिन के लिए मठ में रहते भी थे।

सन् १९७६ में वह अन्तिम बार मठ में आए। उनकी यह यात्रा स्वामी सर्वानन्द जी के जीवनी लेखकों व आर्यसमाज के सेवकों के लिए बड़ी महत्वपूर्ण है।

हरियाणा में अब तो बड़ा परिवर्तन आ गया फिर भी ग्रामों के पुराने बूढ़े चौधरी अब भी कहीं जाना हो तो जैसे भी वस्त्र पहने हों, उन्हीं में चल पड़ते हैं। कहीं कुछ दिन रहना भी हो तो मन में आया तो एक जोड़ी कपड़े साथ ले लिए अन्यथा जो पहन रखे हैं उन्हीं से काम चला लेने का रिवाज रहा है।

हमारे चरित्र नायक के भाई भी तो पुराने समय के थे और यह घटना भी आज से १४ वर्ष पहले की है। ज़ो कपड़े पहन रखे थे, उन्हीं में वह दीनानगर के लिए चल पड़े, साथ और कपड़े लाए ही नहीं। इससे उन्हें कुछ कठिनाई तो आई होगी परन्तु भोले-भाले कृषक ने इस संबंध में किसी से कुछ न कहा।

मठ में कुछ ही लोगों को यह पता था कि यह हरियाणवी कृषक कौन है। एकदिन स्वामी जी ने ब्रह्मचारियों के लिए कपड़ा मंगवाया। सीने वाले को बुलवाया। सब ब्रह्मचारियों को स्वामी जी वस्त्र सिलवा कर दे रहे थे। यह चौधरी भी कहीं ब्रह्मचारियों के पास आकर बैठ गये। एक दो ब्रह्मचारियों ने कहा, "चौधरी साहेब! आज सबके वस्त्र सिलने वाले हैं। सबको स्वामी जी वस्त्र दे रहे हैं। कपड़े की कमी नहीं है। आप के पास भी और वस्त्र नहीं हैं। स्वामी जी कभी किसी को न नहीं करते। आप भी जाइए। एक जोड़ा आप भी सिलवा लें। इससे सुविधा रहेगी।"

श्री रिछपाल विद्यार्थियों के आग्रह करने पर कुटिया में गये और अपने सहज स्वभाव के अनुसार ठेठ हरियाणवी ग्रामीण की शैली से कहा, "राम इसमें से मुझे भी एक कुर्ता सिलवा दे।"

स्वामी जी ने कहा, "यह कपड़ा आपके लिए नहीं है। यह साधुओं ब्रह्मचारियों के लिए आया है।"

श्री रिछपाल सिंह उलटे पांव ब्रह्मचारियों में आकर बैठ गये। कुटिया में स्वामी जी का उत्तर सुनकर एक भी शब्द नहीं कहा। ब्रह्मचारियों ने पूछा, "माप दे आए।"

अब रिछपालसिंह बोले, "यह कहा है कि यह कपड़ा तेरे लिए नहीं है। मुझे पहले ही पता था कि यह मुझे ऐसा कहेगा। इसका तो स्वभाव ही ऐसा है। मैं तो इसे लाहौर तक घी पहुंचाता रहा और अब तक भी कभी खाली नहीं आया। अच्छा! इसकी इच्छा।"

जब रिछपालसिंह ये शब्द कह रहे थे तो उनके शब्दों में किञ्चित्मात्र भी कटुता न थी। उन्हें इतना तो ज्ञान था ही कि भले ही राम उनके सामने था परन्तु उनके लिए मर चुका था। राम साधु हो चुका है और साधु का अपने पूर्व कुल से संबंध टूट जाता है। इसलिए धार्मिक वृत्ति के कृषक का रुष्ट होने का प्रश्न ही न था।

जब आचार्य जगदीश हमें यह संस्मरण सुना रहे थे तो मोही में जन्मे निर्मोही स्वामी स्वतंत्रानन्द जी के इस महान् शिष्य के इस आदर्श जीवन का ध्यान कर आचार्य चमूपति जी की ये पंक्तियां याद आ गईं:—

है संन्यास क्या ग़म में औरों के घुलना।
पराई चिता में पड़े आप जलना।।
कदम तेग[48] की धार पर धार के चलना।
न हरगिज़ फिसलना न हरगिज मचलना।।
इधर तोड़ना बन्द[49] सब खानमां [50] के।

उधर बाप बन जाना सारे जहां के।।
किया जिसने संन्यास का रुतबा[51] आला।
दयानन्द स्वामी तिरा बोल बाला।।

प्रभु की अमृतभरी वेद-वाणी में श्रद्धा रखने वाले स्त्री-पुरुष इस महान् संन्यासी पर जितना भी अभिमान करें कम है।

'यह घी-घा न लाया करें'

अपनी इसी यात्रा के समय मठ में पहुंचते ही जब श्रीमान् रिछपालसिह कुटिया में स्वामी जी से मिलने गये तो घर का बना शुद्ध घी उन्हें भेंट किया। चार किलो घी की पीपी उनसे लेते हुये स्वामी जी ने कहा, "अब घी-घा का कष्ट मत किया करें। इसकी कोई आवश्यकता नहीं।"

श्री रिछपालसिह बोले, "घी तो जब तक मैं हूं, आता ही रहेगा। इतने दिनों से चला आ रहा, यह क्रम तो बन्द न होगा। अब थोड़े दिनों की तो बात है परन्तु जब तक मैं हूं घी तो आवेगा ही। मैं लाऊंगा।"

श्री स्वामी जी यह उत्तर सुनकर चुप हो गये परन्तु दोनों की बात रह गई। रिछपालसिह जी जब तक जीवित रहे, वह घी की पीपी के बिना कभी आए ही नहीं और यह रिछपाल जी की अन्तिम यात्रा और स्वामी जी से अन्तिम भेंट थी। उसी वर्ष उनका शरीर छूट गया इसीलिए वह फिर घी की पीपी लेकर मठ में नहीं आए।

धन को धूलि समझने वाले साधु

श्री चिरञ्जीलाल पहलवान दीनानगर के एक आर्यपुरुष थे। उनका मठ के पास एक बाग है। वह अपनी वसीयत लिखकर ले आए। बाग मठ के नाम कर दिया। श्री स्वामी जी ने पहलवान जी को समझाया कि आपकी भावना का मुझे आदर है। परन्तु आपका यह दान मठ नहीं ले सकता। पिता-पुत्र में कुछ मतभेद थां। स्वामी जी ने कहा, "आप भावुकता में बहकर व पुत्र से रुष्ट होकर यह पग न उठावें।" स्वामी जी की बात वह मोड़ न सकते थे। उन्हें वहीं बिठाया और उनके पुत्र को भी बुलवाया। उसे भी जो कहना था सो कहा।

पहलवान जी ने स्वामी जी की बात मान ली। अब आप इस संसार में नहीं है। आपका पुत्र स्वामी जी के व्यवहार, स्वामी जी के उपदेश व त्याग से ऐसा प्रभावित हुआ कि उसमें एक विशेष परिवर्तन देखा जाता है। वह मठ में आता रहता है। स्वामी जी के प्रति बड़ी श्रद्धा रखता है। वह भी अब पिता के मार्ग पर चलते हुये स्वामी जी का कहा टाल नहीं सकता।

उस युवक में इतना परिवर्तन कैसे हुआ?

वह देखता है कि संन्यासी वेश में भी लोग धन के पीछे बहुत भागते हैं। परोपकार व त्याग की दुहाई देते हैं परन्तु उन्हें गृहस्थों से अधिक धन की चिन्ता रहती है। धन का प्रलोभन वे छोड़ नहीं सकते। इसके विपरीत इस महान् संन्यासी ने लाखों का बाग जिससे प्रतिवर्ष पर्याप्त आय होती है.......... उसे लेने से ही इन्कार कर दिया है। यह बाग है भी मठ के पास। इसे सम्भालना और इसका लाभ उठाना मठ के लिए कितना सुविधाजनक है परन्तु स्वामी जी गृहस्थों के भले व लोक-कल्याण को ध्यान में रखते हैं।

ये फल क्यों ले आए?

श्री स्वामी जी किसी आर्यसमाज के कार्यक्रम में भाग लेने के लिए पधारे। लेखक भी वहीं था। किसी भक्त ने भोजन का निमन्त्रण दिया। भोजन के पश्चात् फल भी रख दिये। आपने कहा, "यह क्या करने लगे हो?"

उसने कहा, "स्वामी जी फल है। कुछ लीजिए।"

आपने कहा, "इसकी क्या आवश्यकता थी? फल बच्चों को दीजिए। मैं कोई फल खाने वाला साधु नहीं हूं।" अब मुझे याद नहीं कि यह घटना कहां की है परन्तु इतना याद है कि स्वामी जी ने ऐसा कहा था। सम्भवतः उस गृहस्थी की आर्थिक स्थिति का श्री महाराज को ध्यान आ गया कि महंगाई के इस युग में इसने फल मंगवा लिये। इतनी गहरी सोच भी सबकी नहीं होती।

गऊओं के बारे में सूक्ष्म ज्ञान

श्री स्वामी जी महाराज आयुर्वेदशास्त्र के अधिकारी विद्वान् तो हैं ही। आपको गऊ आदि पशुओं के शरीरविज्ञान का भी सूक्ष्म ज्ञान है। हमने अनेक बार देखा है कि दूर-दूर के ग्रामों के किसान अपने पशुओं के रोगों के लिए भी पशु-हस्पतालों के डाक्टरों को छोड़कर स्वामी जी से ही औषधि पूछने आते हैं।

सन् १९८७ की घटना है कि मठ की एक गाय पैर मारने लग गई। स्वामी जी कहीं बाहर गये हुये थे। पीछे श्री शेखर शास्त्री जी आदि पशु-हस्पताल के डाक्टर जी को बुलवा लाए। उन्होंने देखा तो कहा कि इसके पेट में इसका बच्चा मर गया है। इसके पेट से बच्चा निकालने के लिए अभी कुछ करना पड़ेगा अन्यथा इसके पेट में दुर्गन्ध पैदा होगी और फिर गाय भी न बच पावेगी।

मठ वालों ने कहा, "जो करना है कीजिए।"

डाक्टर ने देख-दाख कर कहा, "इस गाय के गर्भाशय का मुंह बन्द है। इसलिए बच्चा नहीं निकल सकता। टीका लगाना पड़ेगा। दो टीके लगाए गये और कहा इसकी गर्मी से मुंह खुल जावेगा फिर हम बच्चा निकाल देंगे।"

तीन बजे बाद दोपहर डाक्टर महोदय अपने कर्मचारियों को लेकर बच्चा निकालने आ गये। गाय को रस्सों से बांधा जा रहा था। इतने में पूज्य स्वामी जी मठ में पहुंच गये। गऊशाला की ओर गये तो कहा, "यह क्या कर रहे हो?" उनको सब बात बताई गई। स्वामी जी महाराज को बड़ा दुःख हुआ। शास्त्री जी व अपने अन्य शिष्यों को भी कहा, "ऐसा काम करने से पूर्व हमें तो पूछ लिया करें। इसके पेट में बच्चा नहीं मरा। मरा भी हो तो ईश्वर का नियम है कि गर्भाशय का मुंह अपने आप खुल जाता है। तुम ईश्वर के नियम के विपरीत यह क्या कर रहे हो?"

डाक्टर महोदय को बड़ी कठिनाई से समझाया। फिर पूछा कि इसे क्या दिया है अर्थात् टीके का क्या प्रभाव होगा? स्वामी जी ने उन दो टीकों के प्रभाव को नष्ट करने के लिए आधा लीटर कड़वा तेल तत्काल गाय को दिया। गाय के बच्चा होने में अभी एक मास से ऊपर समय रहता था।

स्वामी जी तब गाय को तो न बचा सके परन्तु उसकी बच्ची बच गई। जिसे डाक्टर ने

तब मृत घोषित किया था, वह आज भी मठ में गोशाला की शोभा बढ़ा रही है। गाय इसलिए मर गई कि स्वामी जी महाराज के यत्न करने पर भी टीकों का कुप्रभाव पूरा-पूरा नष्ट न किया जा सका। यदि आप एक-दो घण्टा पहले मठ में पहुंच जाते तो सम्भवतः कड़वे तेल का और अच्छा परिणाम निकलता।

उस बछड़ी का नाम पूज्य स्वामी जी ने भागो रखा। स्वामी जी कहा करते हैं कि यह तो भाग्य से ही बच गई अन्यथा डाक्टर तो इसे मृत घोषित कर के जीवित को ही मारने लगे थे। उसकी मां के मरने का कोमल हृदय साधु को बड़ा दुःख हुआ।

जब स्वामी सम्पूर्णानन्द जी की खाट को आग लग गई

मठ के बयोवृद्ध संन्यासी स्वामी सम्पूर्णानन्द जी थे तो पर्वतीय क्षेत्र के थे परन्तु उन्हें ठण्ड बहुत लगती थी। बहुत कपड़े पहना करते थे और सोते समय यदा-कदा धधकते अंगारों की कांगड़ी का भी प्रयोग किया करते थे।

एकबार सोने से कुछ पहले कांगड़ी लिए अपनी चारपाई पर बैठे गर्म हो रहे थे कि सर्दी में कोयलों की आंच से ऐसा आनन्द आया कि स्वामी जी महाराज को मीठी-मीठी नींद आने लगी। ऊंघते-ऊंघते सो गये। गहरी नींद आ गई। कांगड़ी कुछ हिल गई। चारपाई और बिस्तरे ने आग पकड़ ली।

कुछ ब्रह्मचारी जाग रहे थे। एक ने कहा, "यह धुंआ कहां से उठ रहा है?" उत्सुकता व घबराहट मिश्रित भाव से मठ के कई ब्रह्मचारी अपने-अपने कमरों से बाहर निकले तो देखा कि स्वामी सम्पूर्णानन्द जी के कमरे से धुंआ उठ रहा है। मठ का एक नियम है कि रात्रि सोते समय कमरे का अन्दर से सांकल नहीं लगाया जाता। द्वार वैसे ही बन्द कर दिया जाता है।

सब मठवासी झटपट इकट्ठे हो गये। पूज्य श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज भी आवाज सुनकर आ गये। स्वामी सम्पूर्णानन्द जी की रजाई उतारी और गहरी नींद से झकझोर कर जगाया। उन्हें खाट से पकड़कर ब्रह्मचारी बाहर बरामदे में लाए।

श्री स्वामी सर्वानन्द जी ने पूछा, "स्वामी जी यह क्या किया? सोते-सोते जलकर मर जाते तो लोग क्या सोचते व क्या कहते?"

स्वामी सम्पूर्णानन्द जी नब्बे की वय को पार करके कभी-कभी तो बहुत चिड़चिड़ापन दिखाया करते परन्तु कभी ऐसी बात कहा करते थे कि सब खिलखिलाकर हंस पड़ते थे। पूज्य श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज को संबोधित करके बहुत भोलेपन व फ़कीरों की मस्ती से बोले, "स्वामी जी गर्मी से बहुत मीठी नींद आई।"

वयोवृद्ध संन्यासी की यह बात सुनकर पूज्य स्वामी जी व सब मठ वासी खूब हंसे।

इतने में स्वामी सर्वानन्द जी ने देखा कि स्वामी जी की टोपी को भी आग लगी हुई है। आपने अपने हाथ से उसे उतार कर परे फेंका और कहा, "स्वामी जी आग तो आपके सिर तक पहुंच चुकी है।"

सब मठवासी जो इस घटना के प्रत्यक्षदर्शी हैं यह बताया करते हैं कि इतनी

बड़ी घटना के घटित होने पर भी श्री सर्वानन्द जी ने स्वामी सम्पूर्णानन्द जी को क्रुद्धित होकर एक भी शब्द नहीं कहा। जो कुछ भी कहा बड़े प्यार से, आदर से कहा। उस समय भी आपके मुख-मंडल पर मन्द-मन्द मुसकान थी। साधु, महात्माओं का जप, तप, संयम किसी असाधारण घटना के घटित होने पर ही तो परखा जाता है। मठ के इतिहास में अपने ढंग की यह पहली ही घटना थी। स्वामी सर्वानन्द जी ने इसे ऐसे लिया मानो कि कुछ हुआ ही नहीं।

यह तो मठ का पुराना ब्रह्मचारी है।

मठ में बनवारी नाम का एक ब्रह्मचारी था। शास्त्री करके घर चला गया। मठ में विद्या-प्राप्त करते हुये उसने अनुशासन व कर्त्तव्य-पालन का बहुत अच्छा परिचय दिया। उसे अपनी मातृ-संस्था से बहुत स्नेह था।

घर जाकर कुछ वर्षों के पश्चात् वह रुग्ण हो गया। उसके गुर्दे खराब हो गये। उसने अपने परिवार के लोगों से कहा, मुझे मठ में छोड़ आओ। घर वाले न माने। वह घर वालों को बिना बताए चोरी ही घर से निकल आया और एक दिन मठ में पहुंच गया। यहां आकर श्री स्वामी जी को सब कहानी सुनाई। स्वामी जी ने कहा, "तुम्हें घर से ऐसे नहीं आना चाहिए था। वहीं रहना चाहिए था।"

उसने कहा, "मैं मठ में मरने के लिए आया हूं।"

स्वामी जी महाराज उसके इस उत्तर को सुनकर द्रवित हो गये और उसे गुरदासपुर के सिविल हस्पताल में भर्ती करवा दिया। मठ के लोग उसकी वहां देखभाल करते। एकदिन उसने दो-चार बार कहा, "स्वामी जी मुझे क्या देखने आएंगे? स्वामी जी कब मेरा पता करने आएंगे?"

स्वामी जी को बड़ा याद किया और स्वामी जी भी पहुंच गये। उसको देखा। कुछ कहा। स्वामी जी मिलकर मठ वापस आ गये और श्री स्वामी जी के लौटने के कुछ समय पश्चात् बनवारी ने शरीर छोड़ दिया।

तभी मठ में एक गाय ने गर्भधारण किया। उसके एक बछड़ा हुआ। उसका नाम स्वामी जी ने बनवारी रखा। बछड़ा जब कुछ बड़ा हुआ तो उसमें एक विचित्र गुण देखा गया। दिन हो वा रात मठ का कोई बैल यदि खुल जाता अथवा हाली-पाली खेंतों में बैलों को लेकर जाता था, कोई गाय अपने खूंटे से खुल जाती तो वह बड़ा-बड़ा चिलाता । जब तक मठवासी गऊशाला में आकर उस गाय या बैल को सम्भाल न लेते वह शोर ही मचाता जाता। वह चुप करता ही नहीं था। जब कभी वह चिल्लाता ब्रह्मचारी समझ जाते कि कोई पशु खुल गया है।

श्री स्वामी जी उसके लिए कहा करते कि यह मठ का पुराना ब्रह्मचारी बनवारी है। यह मरकर फिर बछड़े के रूप में यहीं जन्मा है। इसे मठ का बड़ा हित है। यह मठ की हानि नहीं देख सकता।

स्वामी जी ने सभा अधिकारी को फटकारा

वानप्रस्थी प्रेमप्रकाश जी बताते हैं कि पांच-छः वर्ष पूर्व दयानन्द मठ की यज्ञशाला पर

पंजाब आर्यप्रतिनिधि सभा के अधिकारियों की एक बैठक हुई। तब सभा के अधिकारियों में से एक ने कहा कि उपदेशक हमारे नौकर हैं। स्वामी जी को ये शब्द बहुत बुरे लगे। धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति तो ऐसा सोच ही नहीं सकता। पद-लोलुप, अधार्मिक व्यक्तियों की दुष्प्रवृत्तियों से धर्म-प्रचार को धक्का लगता है।

जब उस अधिकारी ने ये शब्द कहकर अपनी दुष्प्रवृत्ति का परिचय दिया तो स्वामी जी ने तत्काल उसकी डांट-फटकार की।

गऊओं के संबंध में स्वामी जी के सूक्ष्म ज्ञान की एक और घटना

एकबार पूज्य स्वामी जी किसी सामाजिक-कार्य के लिए कहीं गये हुये थे। उनके पीछे गऊशाला की देखभाल करने वाले मठ के व्यक्तियों ने एक बछिया के लिए डाक्टर को मठ में बुलवा लिया।

समस्या यह थी कि उससे एक वर्ष छोटी बछिया तो गाय बन चुकी थी और इसके ब्याहे जाने का कोई लक्षण ही न था।

डाक्टर महोदय आये और बछिया के अन्दर कोई औषधि भरने लगे। इतने में श्री स्वामी जी महाराज आ गये। पूछा, 'क्या कर रहे हो?''

डाक्टर ने बताया कि इस प्रयोजन से औषधि अन्दर भर रहे हैं।

स्वामी जी ने कहा, रुक जाइए। ऐसा मत करें। ऐसे कामों में हमसे पहले पूछ लिया करें।' यह बछिया बच्चा नहीं देगी। कारण यह है कि यह जुड़वां पैदा हुई थी। जुड़वां पैदा होने पर यदि दोनों बछड़े हों वा दोनों ही बछियां हों तो ठीक होते हैं। यदि एक बछड़ा व एक बछिया तो दोनों ही सन्तान-उत्पत्ति के योग्य नहीं होते। इसलिए औषधि देने का लाभ कुछ नहीं।

यह बात न डाक्टर महोदय जानते थे और न ही मठ के व्यक्ति। यह नई जानकारी प्राप्त कर डाक्टर महोदय को भी प्रसन्नता हुई।

नेता लोग मान गये कि स्वामी जी ने ठीक किया

जब स्वामी जी को आर्यप्रतिनिधि सभा के दोनों पक्षों ने रिसीवर स्वीकार किया। उन दिनों सभा पर अधिकार पाने के लिए बहुत वैमनस्य फैल रहा था। पंजाब व देहली के लोग सभा अपने हाथ में करने के लिए वेशों को आगे लाए। उन दिनों दोनों पक्षों का एक-एक साप्ताहिक निकलता था। आर्य मर्यादा के सम्पादक सिद्धान्ती जी थे।

झगड़े में बैंकों के लेने-देन पर रोक न लग जावे इसलिए सभा के पहले अधिकारियों ने बहुत बड़ी राशि बैंक से निकलवा कर दिवंगत रामनाथ भल्ला के पास रख दी। दूसरे पक्ष के लोगों श्री वीरेन्द्र, ला० रामगोपाल शालवाले व श्री सोमनाथ मरवाहा को इस बात का पता लग गया।

इन लोगों ने श्री स्वामी जी से कहा, ''भल्ला से किसी प्रकार से यह रुपया निकलवायें।'' इन लोगों का विचार था कि भल्ला बड़ा चतुर है, यह कभी भी रुपया नहीं लौटाएगा। लौटा भी दे तो पूरा-पूरा नहीं लौटाएगा।

स्वामी जी ने भल्ला जी को पुचकारते हुये एक पत्र लिखा। पत्र निजी था। छपने के लिए न था। श्री भल्ला ने इस पत्र को एक वरदान समझा। उसका तब चारों ओर अपयश फैल रहा था, देहली व पंजाब वाले तो उसका नाम तक न सुन सकते थे। भल्ला जी में कार्यक्षमता तो बहुत थी परन्तु, धार्मिक-प्रवृत्ति न थी, यह तो लेखक अपने अनुभव से जानता है।

ऐसे पूजनीय साधु द्वारा लिखे गये पत्र में अपनी प्रशंसा पढ़कर उसने इसे छपवाने का निश्चय किया। इस पत्र को छापने से आर्यसमाज की हानि ही होगी, यह भल्ला भी जानता था। वह कोई कच्चा-बच्चा न था परन्तु उसका स्वार्थ इसी में था कि यह पत्र छपे। उसने श्री पं० जगदेव सिंह जी सिद्धान्ती पर दबाव डालकर यह पत्र आर्यमर्यादा में छपवा दिया। सिद्धान्ती जी जैसे विद्वान् व अनुभवी नेता ने ऐसा करके भयंकर भूल की।

पत्र का छपना था कि 'पंजाबी दल' के सब छोटे-बड़े सरदार इस पत्र को पढ़कर लाल-पीले होने लगे। स्वामी जी महाराज की निष्पक्षता पर अंगुलि उठाई जाने लगी। सब ओर शोर मचा, "देखो स्वामी जी भल्ला की प्रशंसा करते हैं।"

मानो कि भल्ला ही एक बुरा व्यक्ति था, दूसरे पक्ष के सब लोग दूध के धुले हुये थे।

स्वामी जी को भी इस पत्र का प्रकाशित होना अच्छा न लगा परन्तु आप स्वभाव से इतने शान्त व विरक्त हैं कि पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज का **'अग्नि तत्त्व'** तो बहुत कम प्रयोग में लाते हैं। आप यह सब देख-सुनकर भी शान्त रहे।

आप आर्यसमाज के किसी काम देहली गये। वहां दोनों पक्षों से मिले। लाला सोमनाथ जी , ला० रामगोपाल जी आदि मिले तो इन लोगों ने इस पत्र का प्रश्न उठाया। तब स्वामी जी ने कहा, "आप लोगों ने ही मुझे कहा था ना कि भल्ला रुपया नहीं देगा। आप किसी प्रकार से उससे रुपया निकलवायें। मेरे पास कोई लट्ठ तो है नहीं जिसे चलाकर मैं आपको रुपया निकलवा देता। मेरे पास तो प्यार ही का हथियार है सो मैंने उसका प्रयोग करके आपको रुपया निकलवा दिया है। मैंने क्या बुरा किया? और भी कोई उपाय था क्या?"

स्वामी जी का यह उत्तर सुनकर सब नेताओं की समझ में आ गया कि इस पत्र को लिखने का क्या प्रयोजन था। श्री स्वामी जी की दूरदर्शिता की भले ही वे लोग सार्वजनिक रूप में प्रशंसा न कर सके परन्तु अब वे इस बात से सहमत थे कि पत्र लिखकर स्वामी जी ने ठीक ही किया। देहली में नेताओं से हुई बातचीत स्वामी जी महाराज ने हमें उन्हीं दिनों सुनाई थी।

न्यायमूर्ति ढिल्लों ने तब कहा था

जब हाईकोर्ट में सभा के लिए रिसीवर नियुक्त करने की चर्चा चली तो दोनों पक्षों की ओर से पूज्य स्वामी जी के नाम का सुझाव दिया गया तब न्यायमूर्ति ढिल्लो ने उस महात्मा से भेट करने की इच्छा व्यक्त की जिसके नाम पर दोनों पक्ष सहमत थे। स्वामी जी को बुलवाया गया और न्यायमूर्ति ने बहुत खुलकर स्वामी जी से एकान्त में बातें की। उसने तब दोनों पक्षों के

नेताओं के बारे में अपनी धारणा व्यक्त की। स्वामी जी जब रिसीवर नियुक्त हुये तो माननीय न्यायमूर्ति ढिल्लो ने स्वामी जी से कहा था, ''जो भी आपकी आज्ञा का उल्लंघन करे, आप मुझे सूचित करें। मैं किसी को भी क्षमा नहीं करूंगा।'' वह स्वामी जी के सौम्य स्वभाव से बहुत प्रभावित थे।

मैंने सोच लिया—आप सोच लें

रोहतक के दयानन्द मठ में यतिमण्डल की बैठक थी। स्वामी दीक्षानन्द जी ने बैठक में कहा कि धर्मप्रचार के कार्य को तीव्र गति देने के लिए सब प्रमुख संन्यासी अधिक समय निकालें। अपने-अपने गुरुकुलों, आश्रमों व संस्थाओं के संचालन के लिए अपना-अपना उत्तराधिकारी खोजें और प्रचार के व्यापक क्षेत्र में कूदें।

इस प्रसंग में आपने श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज का भी नाम लिया। आपने बल देकर कहा, ''स्वामी जी महाराज अपना कोई उत्तराधिकारी नियुक्त करें, जो मठ का सारा काम सम्भाले और स्वामी जी सारे आर्यसमाज का काम देखें।''

पूज्य स्वामी सर्वानन्द ज़ी ने तब कहा, ''मैंने उत्तराधिकरी खोज लिया। आप मठ का सब कार्य देखें। मैं आपको इस कार्य के लिए नियुक्त करता हूं।''

स्वामी दीक्षानन्द जी ने यह सोचा ही न था कि श्री स्वामी सर्वानन्द जी एकदम ऐसी बात कहेंगे। आपने कहा, ''स्वामी जी आप सोच लें, फिर निर्णय लें।''

स्वामी जी ने बड़ी शान्ति से कहा, ''मैंने सोच लिया, अब आप सोच लीजिए।''

स्वामी दीक्षानन्द जी के लिए तो देहली महानगरी से निकलना असम्भव-सा ही है परन्तु सर्वानन्द जी महाराज ने तब तुरन्त एक निर्णय लेकर यह सिद्ध कर दिया कि वे संस्था के मोह में बंधे हुये नहीं है। संस्था उनके लिए एक साधन है।

तो ऋषियों के ग्रन्थ कौन पढ़ेगा?

समय के अनुसार उत्तम साहित्य की आवश्यकता रही है। व रहेगी। बदलते युग के साथ साहित्यिक शैलियां भी कुछ बदलती हैं। इसलिए वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार के लिए रुचिकर शैली में वैदिक साहित्य-सृजन की भी आवश्यकता है परन्तु कुछ लोग केवल अपनी पुस्तकों की संख्या बढ़ाने के लिए ही नई-नई पुस्तकें लिखते रहते हैं। श्री स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ के समकक्ष खड़े होने के लिए वेदमंत्रों की व्याख्या के संग्रह निकालते हैं। वेद भाष्यकार बनने का प्रलोभन कई एक को है। संस्कृत में या वैदिक भाषा में व्याख्यान तो दे नहीं सकते परन्तु वेद भाष्यकारों में अपना नाम लिखवाना चाहते हैं। यह प्रवृत्ति कल्याणप्रद नहीं। करणीयकार्य और बहुत से हैं।

एकबार स्वामी सुमेधानन्द जी झज्जर ने श्री स्वामी जी से कहा, ''स्वामी जी आप भी कोई पुस्तक लिख दें जिसमें आपके स्वाध्याय, मनन-चिन्तन का निचोड़ आ जावें।'' आपने कहा ,''यदि मेरे जैसे लोगों ने ग्रन्थ लिखने आरम्भ कर दिये तो फिर ऋषियों के ग्रन्थ कौन पढ़ेगा?''

कितनी श्रद्धा है ऋषि-मुनियों के लिए। नाम की आपको कतई भूख नहीं।

पूज्य गुरुवर का अनादर असह्य

श्रद्धेय श्री स्वामी सदानन्द जी महाराज मैंगलूर (कर्नाटक) से अपने संस्मरणों में लिखते हैं कि एकबार हमारे पूज्य आचार्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज कूप पर स्नान कर रहे थे। एक नटखट लड़का कहीं उधर आ निकला। उसने पूज्य स्वामी जी की हंसी उड़ाई। श्री स्वामी जी तो इतने महान् थे कि एक बालक के इस व्यवहार का उन पर कुछ भी प्रभाव नहीं हो सकता था परन्तु स्वामी सदानन्द जी को स्वामी जी का मखौल उड़ाया जाना चुभा फिर भी इन्होंने उस लड़के को कुछ न कहा।

स्वामी जी स्नान करके कुएं से चले गये। स्वामी सदानन्द जी ने पं० रामचन्द्र को जाकर यह सारी घटना बता दी। पंडित जी ने स्वामी सदानन्द जी को डांटते हुये कहा, "आपने उस लड़के को क्यों न डांट-डपट की?"

पं० रामचन्द्र जी का रोष देखकर स्वामी सदानन्द जी को अब बहुत लज्जा अनुभव हुई और आपको भी इस बात का पछतावा हुआ कि मैंने पूज्य आचार्य जी का निरादर क्यों सहन किया?

पं० रामचन्द्र जी शान्त स्वभाव के हैं। आपकी सहनशीलता की कोई सीमा नहीं परन्तु पूज्य पुरुषों का निरादर उनके लिएअसह्य है।

स्वामी जी को खिलाने में आनन्द आता है

स्वामी सदानन्द जी लिखते हैं कि स्वामी सर्वानन्द जी को दूसरों को खिलाने में एक विशेष आनन्द की अनुभूति होती है। मठ में कोई विशेष अतिथि, विद्वान्, संन्यासी, महात्मा पहुंच जावे तो स्वामी जी उसकी सेवा में कोई कमी नहीं रहने देते।

विशेषता इस सत्कार में यह होती है कि आप मठ में अपने शिष्यों पर ही सेवा का भार व अतिथि का ध्यान नहीं छोड़ देते प्रत्युत्त स्वयं अतिथियों के खान-पान का पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं।

स्वामी सदानन्द जी भोजन कर रहे थे। स्वामी सर्वानन्द जी उन्हें खिलाने के लिए स्वयं आ गये। आपने उनको बहुत रोटियां दे दीं। स्वामी जी ने कहा, "आपने इतनी रोटियां परोस दीं क्या मैं इतनी खा भी सकता हूं?"

स्वामी सदानन्द जी के इस रोषपूर्ण वाक्य पर आपने हंसकर कहा, "मैंने आपके साथ कुछ बुरा तो नहीं किया? खिलाया ही तो है?"

उनके इस रसभरे वाक्य में कुछ भी दिखावा न था, अपने स्वभाव के वशीभूत वे दूसरों की सेवा किए बिना रह ही नहीं सकते। जैसे एक माता को अपने बच्चों को खिलाकर ही आनन्द प्राप्त होता है वैसे ही श्री स्वामी जी को समाज-सेवा में लगे सब विद्वानों को खिलाने-पिलाने में बहुत आनन्द आता है।

जब स्वामी ईशानन्द जी अजमेर से चल पड़े

श्री स्वामी ईशानन्द जी महर्षि बलिदान शताब्दी पर अजमेर पहुंचे तो उनके ठहरने की कुछ व्यवस्था न थी। शरीर भी ठीक नहीं रहता और बुढ़ापा अपने यौवन पर तब भी था। वह वहां से चल पड़े। स्वामी जी को पता चला तो

आपने स्वामी ईशानन्द जी को स्वयं रोक लिया और कहा, "आप मेरे साथ ठहरेंगे। आपका ध्यान हम करेंगे। आप नहीं जा सकते।" स्वामी ईशानन्द जी को इस मृदुल व्यवहार के सामने झुकना पड़ा। वह रुक गये। अजमेर में आपने मुझे यह घटना सुनाई थी।

काम में ही विश्राम है

स्वामी जी महाराज फरवरी १९९० में गुरुकुल झज्जर के महोत्सव पर पधारे। यतिमण्डल की बैठक के कारण भी वहां विशेष चहल-पहल थी। उत्सव में सभी के लिए श्री स्वामी जी आकर्षण का केन्द्र बने हुये थे। जिधर से भी आप निकलते आशीर्वाद लेने वाले, दर्शन करने वाले और चरण स्पर्श करने वाले श्रद्धालु महाराज को घेर लेते।

मुझे दो-तीन रोगियों के लिए औषधि पूछनी थी। कब पूछूं? यह समझ में नहीं आ रहा था। स्वामी जी को कभी खाली देखा ही नहीं। रात्रि को स्वामी जी अपने कमरे में लेटे हुये थे। भक्तों से वार्तालाप भी कर रहे थे। जो कोई दर्शन के लिए आता, उसकी बात बड़े ध्यान से सुनते।

रोगी भी वहां पहुंच गये। महाराज उनको भी निराश नहीं करते थे। आपकी इतनी व्यस्तता देखकर मैंने कहा दो-तीन रोगियों के बारे में औषधी पूछनी थी, परन्तु कल पूछूंगा। आप समय बता दीजिए। मैं आ जाऊंगा।

उदारहृदय स्वामी जी ने कहा, "अभी पूछ लीजिए।" मैंने कहा, "आज आप थके-टूटे हैं। विश्राम करें।"

आपने कहा, "ऐसी कोई बात नहीं। विश्राम ही विश्राम है।"

एक परोपकारी महात्मा ही ऐसा कर सकता है। आज के युग में और कौन दूसरों की सेवा के लिए ऐसी तड़प रखता है।

तभी मैंने पूछा, "स्वामी जी आप को लिखा था कि आपने मेरी पुस्तक 'स्वामी दर्शनानन्द जी' की भूमिका लिखनी है। क्या लिख लाए हैं?"

आपने कहा, "लिखें मैं लिखवाता हूं।"

मैंने कहा, "आप विश्राम करें और सोच रखें। मैं कल लिख लूंगा।"

आपने कहा, "सोच रखा है, आप अभी लिख लें।"

भक्तों से घिरे हुये, चारपाई पर लेटे-लेटे मुझे भूमिका लिखवा दी। इस विषय में आप मनन-चिन्तन करके आए ही थे। भूमिका में परिव्राजकाचार्य स्वामी दर्शनानन्द जी के जीवन की कई-नई घटनाएं आपने लिखवाईं।

स्वामी जी की इतनी व्यस्तता को देखकर कई बार ऐसा लगता है कि परमात्मा ने मानो इनके भोग का राशन कार्ड बनाते हुये उसमें विश्राम तो इनके लिए लिखा ही नहीं।

कभी भी खाली नहीं देखा

स्वामी जी के दो पुराने साथियों श्री पं० शान्तिप्रकाश जी व पं० आशानन्द जी भजनोपदेशक ने अपने-अपने संस्मरणों में लिखा है कि हम जब से इन्हें देख रहे हैं हमने इनको कभी भी खाली बैठे नहीं देखा। पं० रामचन्द्र के रूप में भी किसी न किसी कार्य में

लगे रहते थे और अब इस वृद्ध अवस्था में भी कभी खाली नहीं रहते।

यह खड़िया पलटन किसलिए?

वैदिक यतिमण्डल की एक बैठक में एक बड़े विद्वान् संन्यासी ने श्री स्वामी जी से कहा कि यतिमंडल की प्रत्येक महत्त्वपूर्ण बैठक में सभी प्रकार के साधु, वानप्रस्थी व ब्रह्मचारी आ जाते हैं। इनके आने व बुलवाने का कुछ लाभ नहीं। इनमें से अधिकांश कम पढ़े-लिखे हैं। विद्वान् नहीं। इस 'खड़िया पलटन' को हर-बार मत बुलवाया करें।

श्री स्वामी सर्वानन्द जी ने उनसे कहा, "यह मेरे बस की बात नहीं है। आप बड़े विद्वान् हैं। आप लोग ग्रामों में जाते नहीं। यह खड़िया पलटन वाले ही ग्रामों की सुधि लेते हैं। गायत्री तथा सन्ध्या का प्रचार यही पलटन करती हैं। जब-जब आर्यसमाज को कहीं बलिदान देने, संघर्ष करने, जेल जाने की आवश्यकता होती है, यह खड़िया पलटन ही आगे आती है। घने सयाने तो कार्य करने से पहले सोचते ही रह जाते हैं, यह खड़िया पलटन उस कार्य को करने में देर नहीं लगाती।"

इस उत्तर को पाकर वह साधु चुप हो गये। स्वामी जी के कथन में एक ऐतिहासिक सत्य छिपा हुआ है। स्वामी जी भी जानते हैं कि साधु-वानप्रस्थी अधिक से अधिक विद्वान् होंगें तो अधिक से अधिक लाभ होगा। मठ द्वारा सदा से इस दिशा में प्रयत्न होता रहा है। मठ में आने वाले कितने ही साधुओं को स्वामी जी ने स्वयं पढ़ाया है। पढ़ना अच्छा है परन्तु स्वामी जी का दृष्टिकोण वही है जो ऋषि जी ने व्यवहारभानु में दिया है। वहां ऋषि ने प्रश्न उठाया है कि क्या अविद्वान् भी महात्मा बन सकता है?

ऋषि उत्तर देते हैं अविद्वान् महात्मा भले ही न बन सके परन्तु, धर्मात्मा तो बन ही सकता है। जो धर्मभाव से, प्रचार की तड़प से, वैराग्य से संन्यास लेते हैं, वे भले ही विद्या में न्यून हों, ऐसे साधुओं से तो लाभ ही लाभ होगा। जिन्होंने वोट व नोट के लिए कपड़े रंगे हैं, वे बिगाड़ तो करेंगे ही, संवार कुछ नहीं सकते।

श्री स्वामी ईशानन्द जी ने अब तो बहुत स्वाध्याय कर लिया है परन्तु उनकी विद्या क्या है? वह भाषण भी नहीं दे सकते थे। इस साधु ने देश-धर्म के लिए कितना काम किया है। अंग्रेज़ी शासन को ही इस कर्मवीर ने कंपा दिया। अतीत में भी आर्यसमाज में ऐसे कई संन्यासियों ने ऐतिहासिक कार्य किया है। आर्यसमाज ने सैंकड़ों स्कूल तथा कालेज खोले परन्तु, स्कूलों के प्रिंसिपल, प्राध्यापक व अध्यापक तथा इनकी प्रबंधक समितियों (Managing Comnittees) के कर्त्ता-धर्ता आर्यसमाज पर संकट की घड़ी में कभी काम आए? किसी स्कूल तथा कालेज ने धर्म को शहीद दिया? आर्यसमाज के प्रत्येक आन्दोलन में इस खड़िया पलटन ने जेलें भर दीं और जानें भी वार दीं। शहीद दिये।

पर-पीड़ा-हरण के लिए तत्क्षण महादान

मठ के सामने ही समीपवर्ती मगरांला ग्राम के एक सिख सज्जन की भूमि है। वह सिख सज्जन अब संसार में नहीं रहे। वह स्वामी जी

महाराज के परोपकारमय जीवन से बहुत प्रभावित थे। मठ के बड़े भक्त व सहयोगी थे। आपने अपनी चार एकड़ भूमि की वसीयत मठ के नाम कर दी।

उनके निधन के पश्चात् उनके परिवार ने वह भूमि मठ को दे दी। मठ ने एक वर्ष वहां कृषि भी की। कर्मचक्र ऐसा चला कि दानदांता की सुपुत्री विधवा हो गई। परिवार के लिए यह एक असहय दुःख था। इस दुखिया के बच्चों के पालन-पोषण का प्रश्न था।

दानदाता का सुपुत्र एकदिन स्वामी जी के पास आया और कहा कि हमारे पिता जी ने भूमि मठ को दी थी। यह भूमि अब मठ की है, यह ठीक है, परन्तु यदि आप यह भूमि हमारी विधवा बहिन को दे दें तो आपका उपकार हम नहीं भूल पावेंगे। हमारी बहिन सम्मान से अपने दिन बिता सकेगी।

स्वामी जी महाराज ने अवलिम्ब स्वर्गीय दानदाता की मृत्यु इच्छा (Death Will) निकलवाई और उसी पर लिख दिया कि यह चार एकड़ भूमि उन्हीं की सुपुत्री को दी गई। यह कार्य कोई साधारण नहीं। साधारण व्यक्तियों में इतना नैतिक साहस कहां? स्वामी जी महाराज की इस उदारता का उस परिवार पर तो प्रभाव पड़ा ही और जिस जिसने यह घटना सुनी सब धन्य-धन्य कहने लगे। उस क्षेत्र के लोगों को यह सुनकर आश्चर्य नहीं हुआ। वे लोग पूज्य स्वामी जी महाराज के स्वभाव से बहुत परिचित हैं।

वह सारा परिवार स्वामी जी के इस व्यवहार के कारण स्वामी जी के प्रति पहले से भी अधिक श्रद्धा रखता है। मठ में वे यदा-कदा आते रहते हैं। अपने आचरण से श्री स्वामी जी दूसरों के हृदयों में आसीन हैं।

स्वामी जी की महानता, विनम्रता व निष्पक्षता की एक कहानी

पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के महाप्रयाण के पश्चात् उनके जीवन-चरित्र के लिखने का विचार प्रथम बार श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज की संन्यास-दीक्षा के दिन जिला आर्यमण्डल के सामने आया। मण्डल की बैठक मठ की यज्ञशाला पर हुई। लेखक उसमें उपस्थित था।

तब आर्यसमाज के उर्दू पत्रों व दैनिक 'प्रताप' आदि में मेरे लेख निरन्तर छपते थे। हिन्दी पत्रों के लिए भी लिखता था परन्तु फिर भी एक अनुभवहीन युवक ही तो था। इतना होते हुये भी जिला के आर्यसमाजों ने यह कार्य मुझे ही सौंपा। मैंने 'आर्यवीर' आदि पत्रों में सूचना निकाली कि आर्य भाई जिन्हें स्वामी जी की कोई भी घटना ज्ञात हो, मुझे भेजें। किसी ने एक भी घटना न भेजी। मैंने पुस्तक लिखने का विचार तो छोड़ दिया परन्तु जहां भी जाता स्वामी स्वतंत्रानन्द जी संबंधी घटनायें एकत्र करता रहा।

मुझे यह पता था कि स्वामी जी के कई शिष्य तब नामी विद्वान् व सिद्धहस्त लेखक माने जाते थे। वे क्यों महाराज की जीवनी लिखने का उत्साह नहीं दिखाते? यह मेरी समझ से बाहर था। स्वामी सर्वानन्द जी ने यह कार्य स्वर्गीय श्री पं० शिवदत्त जी मौलवी फाजिल को सौंपा। सबको बड़ी प्रसन्नता हुई कि एक सुयोग्य

विद्वान् ने यह कार्य अपने हाथ में लिया है। वह स्वामी जी की डायरियां व श्री स्वामी ईशानन्द जी द्वारा संग्रहीत थोड़ी परन्तु ठोस सामग्री भी ले गये। मेरे कहने पर श्री स्वामी जी वर्ष में कई-कई बार पण्डित जी को कार्य पूरा करने की याद दिलाते रहे। दस वर्ष ऐसे ही निकल गये और एक भी पृष्ठ न लिखा गया।

मै शोलापुर चला गया और यह कार्य अपने हाथ में लिया। अपने कार्य की कहानी यहां देने की कुछ आवश्यकता नहीं। इस संबंध में पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी के व्यक्तित्व की जो विशेषता तब हमारे सामने आई, वह पाठकों के सामने रखना चाहते हैं। लेखक ने स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के जीवन संबंधी घटनायें प्राप्त करने, प्राप्त की गई घटनाओं की जांच के लिए तथा पुष्टि के लिए तब पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज को पचास-साठ पत्र लिखे होंगे। आप मेरे प्रत्येक पत्र का उत्तर देते। आपने अपनी स्मृति को कुरेद-कुरेद कर बड़ी शिक्षाप्रद व रोचक घटनायें बड़ी सजीव भाषा में लिख लिखकर भेजीं। स्वामी जी के पाण्डित्य को तो सभी जानते ही हैं। आपके अक्षर बड़े सुन्दर होते हैं, यह तो पता था परन्तु आप लिखने में भी किसी से कम नहीं हैं, यह पता तो मुझे उस पत्र-व्यवहार के समय लगा।

मैंने तब शोलापुर में स्वामी ईशानन्द जी से कहा, "यूंही दस वर्ष स्वामी सर्वानन्द जी ने यह कार्य लटका दिया। पं० शिवदत्त जी के भरोसे बैठे रहे, स्वयं इतना बढ़िया लिखते हैं पता नहीं स्वामी जी ने जीवन-चरित्र स्वयं ही क्यों न लिख डाला?"

स्वामी ईशानन्द जी ने कहा, "उनमें योग्यता तो सब प्रकार की है। बस, संकोच अनुभव करते हैं।"

मैंने यही बात 'वीर संन्यासी' छपने पर मठ में पूज्य स्वामी जी से कही तो आपने कहा, "बात तो आपकी ठीक है कि मुझ से अधिक उनके निकट कोई और न रहा। मुझे उनकी अनेक घटनायें याद हैं। मुझे दूसरों से अधिक कुछ पूछने की आवश्यकता भी न थी परन्तु मैंने इसी कारण उनका जीवन-चरित्र न लिखा क्योंकि मैं उनके सर्वाधिक निकट रहा। यही संकोच रहा कि उनकी महिमा का मैं कैसे वर्णन करूं? मेरी उनके प्रति श्रद्धा-भक्ति के कारण कोई पक्षपात किया है, ऐसा न सोचे। स्वामी जी के बड़प्पन का यथार्थस्वरूप पाठकों के सामने न आवे तो यह भी अन्याय की बात है। इसलिए मैंने यही उचित जाना कि कोई अन्य आर्य विद्वान् यह कार्य अपने हाथ में लेवे।"

फिर कहा, "स्वामी वेदानन्द जी महाराज की असामयिक मृत्यु न होती तो यह कार्य कभी का हो गया होता। उन्होंने श्री स्वामी जी का लघु जीवन-चरित्र तो छपवाया ही था। बड़ा ग्रन्थ रचने में उन्हें क्या देर लगती थी। मैं पं० शिवदत्त जी व अन्य विद्वानों (जो स्वामी जी के शिष्य भी थे और कुशल लेखक भी थे) से क्या कहता। चलो अच्छा ही हुआ, जो उन्होंने इसे नहीं किया। आप इतिहास के विद्वान् हैं। आपने जिस सूझबूझ से यह कार्य सम्पन्न किया है, वे लोग ऐसा न कर पाते और फिर आपने स्वामी जी के जीवन की खोज के लिए जितना भ्रमण व श्रम किया है, वे यह भी न कर पाते।"

स्वामी जी के ये विचार सुनकर मुझे पता चला कि आपने क्यों नहीं श्रद्धेय गुरुदेव का जीवन-चरित्र लिख डाला। आपका चिन्तन कितना गहन है और व्यक्तित्व कितना महान् है। यह इस कहानी से पता चलता है। यह सब आपके निर्मल जीवन व विशुद्ध आध्यात्मिक प्रवृत्ति के कारण है।

'यह साधुओं के डेरा ही रहने दो'

श्री यश जी आर्य हायर सैकण्डरी स्कूल दीनानगर के प्रिंसिपल बन कर गये तो एकदिन आर्यप्रतिनिधि सभा के मंत्री श्री वीरेन्द्र जी ने श्री यश जी से कहा, आप अब दीनानगर में रहते हैं। मठ की यज्ञशाला के आसपास की क्यारियों को सुन्दर सुरम्य बनवा दें। अच्छी फुलवाड़ी वहां लगा दें ताकि यह आश्रम दर्शकों के लिए आकर्षण का केन्द्र बन जावे।"

यश जी ने यह विचार स्वामी जी के सामने रखा तो आपने कहा, यहां साधुओं का डेरा ही रहने दो। फुलवाड़ी लगाने से कालेजों के लड़के यहां आने लगेंगे फिर यहां का शान्त वातावरण दूषित हो जावेगा। यह स्थान उल्लास-यात्रा (Picnic spot) वालों का स्थल न होकर धर्म-स्थान के रूप में ही ठीक है। श्री यश जी ने स्वामी जी की बात पर विचार किया तो उन्हें भी यही लगा कि स्वामी जी महाराज का दृष्टिकोण ही ठीक है। स्वामी जी कितनी दूर की सोचते हैं, यह हमारे पाठक इससे जान लें।

व्यापारिक दृष्टिकोण नहीं चाहिए

मठ की फार्मेसी शुद्ध आयुर्वैदिक, औषधियों के निर्माण के लिए देशभर में प्रसिद्ध हो चुकी है। आयुर्वेद-प्रेमी जो विदेशों में बसते हैं उन तक भी इस फार्मेसी की कीर्ति पहुंच चुकी है। मठ की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही फार्मेसी औषधियों का निर्माण व बिक्री करती है। फार्मेसी के कार्य को बढ़ाने के लिए स्वामी जी के पास कई बार कई प्रकार के प्रस्ताव रखे गये हैं। परन्तु आपने सदैव ऐसे प्रस्तावों को यह कहकर निरस्त कर दिया कि मठ के धार्मिक कार्यों के लिए जितनी आय की आवश्यकता है, फार्मेसी उतना ही कार्य करे तो ठीक है। अधिक धन कमाना हमारा लक्ष्य नहीं।

किसी के कहने पर यश जी ने भी एक बार स्वामी जी से कहा, "यदि व्यापारिक दृष्टि से इस कार्य को बढ़ाया जावे तो मठ के साधन बढ़ सकते हैं। फार्मेसी की साख सर्वत्र फैल रही है।"

स्वामी जी ने ऊपर वाला उत्तर देते हुये कहा, "आप गुरुकुल कांगड़ी की फार्मेसी के झगड़ों को क्या नहीं जानते? एक कहता है वह खा गया और दूसरा कहता है अमुक-अमुक इतना खा गया। हमें यहां धन नहीं चाहिए। मठ का काम चलना चाहिए।"

एक बार विदेश से दस लाख रुपये के च्यवनप्राश की मांग भी मठ में पहुंची तब भी आपने कहा था कि अधिक धन आएगा तो यहां सांप इकट्ठे होंगे। औषधियों का स्तर गिरेगा। इससे भारत का अपयश होगा और साधुओं की अपकीर्ति होगी।

स्वामी जी के इस स्वस्थ दृष्टिकोण पर प्रत्येक प्रभु-प्रेमी, वेदभक्त को अभिमान होना चाहिए।

निरंकारी बाबा जी आए हैं कुछ करिए

एकबार सायंकाल के समय गुरदासपुर के एक निकटवर्ती ग्राम बरनाला के कुछ युवक स्वामी जी के पास मठ में आए और कहा कि उनके ग्राम में निरंकारी बाबा जी आए हैं और उनका बड़ा प्रचार है। इससे हानि होगी, इसलिए कुछ उपाय कीजिए। उस समय स्वामी जी के पास प्रिंसिपल यशपाल जी बैठे हुये थे।

स्वामी जी ने कहा, "प्रिंसिपल साहेब आप श्री पं० धर्मपाल जी को लेकर वहां जावें और उनका प्रचार सुनकर अपनी बात कहें।"

पं० धर्मपाल जी व प्रिंसिपल यशपाल जी वहां पहुंच गये। बाबा जी रात को जब बोल रहे थे तो पं० धर्मपाल जी ने भी समय मांग लिया। समय मिल गया। पं० धर्मपाल जी ने निरंकारियों से कहा, "आपका बाबा इतना चमत्कारी है तो एक कार्य करके दिखा दें।"

लोगों ने कहा, "क्या?"

पण्डित जी ने कहा, "बाबा की दाढ़ी का एक बाल निकाला जावे और यदि बाबा जी बिना गूंद के इसे जोड़ दें तो मैं भी इन्हें साक्षात् खुदा मान लूंगा।"

बाबा जी ने भी यह चुनौती सुन ली और चेलों ने भी सब कुछ सुन लिया परन्तु उनसे इसका कुछ भी उत्तर न बन पाया। श्री स्वामी जी ने ही पं० धर्मपाल जी से ऐसा प्रश्न करने को कहा था। वैसे पण्डित जी थे ही बड़ी सूझ-बूझ वाले और उनकी वाणी में बड़ी शक्ति थी।

उत्साही धर्म-प्रेमी युवकों पर इस का बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा।

यह धन लौटा दो, नहीं चाहिये

श्री यश जी ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि चण्डीगढ़ से एक व्यक्ति ने मठ के लिए एक सहस्र रुपया का दान भेजा। स्वामी जी ने कहा, यह धन लौटा दो। यश जी ने पूछा, "स्वामी जी आप ऐसा क्यों कर रहें हैं?"

स्वामी जी ने कहा, उसका तो निर्वाह ही बड़ी कठिनाई से हो रहा था। यह पैसा अवश्यमेव हेरफेर से आया होगा। ऐसा धन यहां नहीं चाहिये। यह जुलाई सन् १९७३ की घटना है।

सारी रात जाग कर बिताई

श्री यश जी ने लिखा है कि एक युवक को साप ने काट लिया। श्री स्वामी जी ने मठ के ब्रह्मचारियों को कहा कि इसे सोने नहीं देना और घी पिलाते जाओ। ऐसा ही किया गया। स्वामी जी महाराज स्वयं उसके लिए सारी रात जागते रहे। आपकी सेवा-सुश्रूषा से वह युवक बच गया।

कामधेनु का अन्तिम संस्कार

पीछे कामधेनु की चर्चा की जा चुकी है। उसका निधन हो गया तो कुछ चर्मकार भाई उसका शव लेने के लिए मठ में आ गये।

श्री स्वामी जी ने उन्हें लौटा दिया। इस गाय ने मठ की बड़ी सेवा की है। इसलिए सम्मान से इसका अन्तिम संस्कार होगा। एक बहुत बड़ा गड्ढा खोदा गया। उसमें कामधेनु के शरीर को रखकर उसमें कई मन नमक डालकर उसे दबा दिया गया।

प्राणीमात्र के लिए श्री स्वामी जी के हृदय में ऐसा प्यार भरा पड़ा है कि उसे शब्दों में

चित्रित कर पाना बड़ा कठिन है।

श्री यश जी दीनानगर कैसे गये?

पूज्य स्वामी जी की प्रबल इच्छा थी कि आर्य हायर सैकण्डरी स्कूल दीनानगर के प्रिं० कर्मचन्द जी के सेवा-मुक्त होने पर कोई आर्यसमाजी प्रिंसिपल दीनानगर के स्कूल को सम्भाले। ऐसा कोई अनुभवी प्रिंसिपल मिल नहीं रहा था।

इधर बरनाला में स्कूल के एक लड़के के प्रश्न को लेकर कुछ स्वार्थी तत्वों ने और यश जी के विरोधियों ने बवण्डर खड़ा करके यश जी को बरनाला छोड़ने पर विवश कर दिया। स्कूल की कमेटी मूक-दर्शक बनी रही। यश जी के सारे परिश्रम व सेवाओं पर पानी फिर गया।

तब मैंने स्वामी जी को एक पत्र लिखकर यह विनती की कि यदि आपके यहां प्रिं० कर्मचन्द जी के स्थान पर मेरे भाई यश जी की नियुक्ति हो सके तो आपको एक अनुभवी प्रिंसिपल व साहसी समाजसेवी मिल जावेगा। बरनाला वालों के दुर्व्यवहार का घाव उनके लिए भी असहय ही है। मैं तो पहले ही जानता था कि बरनाला कैसा है।

स्वामी जी का उत्तर आशा के अनुरूप था। हम दोनों भाई करतारपुर गुरु विरजानन्द स्मारक के उत्सव में भाग लेने पहुंचे तो वहां स्वामी जी ने यश जी से कहा, "चलो, मेरे साथ दीनानगर"।

यश जी दीनानगर चले गये। स्वामी जी ने प्रिं० कर्मचन्द जी को कहा, "आप इन्हें स्कूल का चार्ज दे दें।" उन्होंने यश जी को स्कूल सम्भाल दिया। क्षणभर में यह कार्य हो गया।

यश जी स्वामी जी का ऐसा प्रभाव देखकर चकित रह गये।

दीनानगर में स्वामी स्वतंत्रानन्द जी की स्मृति में कालेज खोलने का वर्षों से विचार हो रहा था परन्तु कुछ बन न सका। यश जी से प्रातः-सायं यह चर्चा होती। कोई मार्ग न सूझता।

एकदिन यश जी ने एक उपाय सोच निकाला। उन्होंने स्वामी जी महाराज को अपना विचार बताया। जो स्वामी जी को जांच गया और कालेज खुल गया। तब पूज्य स्वामी जी यश जी की सूझ-बूझ व संस्थाओं के निर्माण की उनकी क्षमता से बहुत प्रभावित हुये।

अब बरनाला से लोग मठ में जाने लगे और कहा कि हमारा स्कूल नहीं चल रहा, इन्हें हमें वापस दे दें। स्वामी जी ने कहा, "तुम लोग पहले निरादर करते हो फिर पछताते हो। अब यदि ये जाते हैं, तो यह भी पछतायेंगे। फिर वही कुछ होगा।"

जलवायु प्रतिकूल होने के कारण यश जी को दीनानगर छोड़ना पड़ा और बरनाला फिर से आकर जम गये और वहां फिर उनके साथ अपनों ने अगला-पिछला सब वैर निकाला। स्वामी जी का कथन सत्यसिद्ध हुआ।

जब अमृतसर में शल्य चिकित्सा करवाई

कुछ वर्ष पूर्व पूज्य श्री स्वामी जी को अमृतसर में शल्य-चिकित्सा के लिए कई दिन तक रहना पड़ा। स्वामी जी का ओपरेशन हो

गया और वे मठ लौट आए। इसकें कई दिन पश्चात् आर्यजगत् को यह पता चला कि आपकी शल्य-चिकित्सा हुई है। यह सूचना पाकर लेखक ने मठवासियों को एक रोष भरा पत्र लिखा कि इसकी हमें सूचना तक नहीं दी गई। यह कोई अच्छी बात नहीं। पता लगता तो भले ही कुछ सेवा न कर पाते परन्तु, श्री महाराज का पता करने तो पहुंच सकते थे।

मठ से उत्तर आया कि पूज्य स्वामी जी का ही यह आदेश था कि किसी को भी सूचना न देना। ऐसा करने से लोगों को कष्ट होगा। सब मिलने व पता करने के लिए पहुंच जावेंगे। मठवासियों ने व स्वामी जी के अमृतसर के भक्तों ने तब आपकी बहुत सेवा की।

अपने आचरण से ही व्यक्ति महान् बनता है। स्वामी जी महाराज का चिन्तन व व्यवहार कितना अनूठा है। दूसरों का दुःख तो आप से सहा नहीं जाता परन्तु उन्हें कुछ शारीरिक कष्ट हो तो आप नहीं चाहते कि आपके लिए दूसरों को कुछ परेशानी हो।

जब स्वामी जी क्रुद्धित हो गये

दीनानगर के एक सज्जन पं० हंसराज का पुत्र मठ में आया। स्वामी जी ने उसे समझाया कि तुझे अपने पिता का कुछ भी ध्यान नहीं। तेरा पिता कितना दुखी है और कैसे निर्वाह करता है, इसकी तुझे कोई चिन्ता नहीं। तू जुआ खेलता है, पिता को तंग करता है।

उसने अपनी भूल स्वीकार न की। इस पर स्वामी जीं क्रुद्धित हो गये और लाठी उठाकर उसे मठ में पीट दिया। मार खाकर उसने अपनी भूल को स्वीकार किया और अपने आपको सुधारने का वचन दिया। उसके पिता जी को भी सन्तोष हुआ कि लड़के ने जुआ खेलना छोड़ दिया। सन्मार्ग पर चलने लगा। सारे घर का क्लेश मिट गया। धन्य हैं ऐसे महात्मा विद्वान् जिनके सत्योपदेशों व करुणा-कटाक्ष से पथभ्रष्ट जीव कल्याण-मार्ग के पथिक बन जाते हैं।

स्वामी जी हमारे सेनापति हैं

सन् १९७१ के भारत पाक युद्ध के दिनों में तथा युद्ध के पश्चात् भी बहुत लम्बे समय तक मठ के सामने राजवाहे के किनारे वाले आमों के वृक्षों के नीचे व आसपास के खेतों में सैनिक ही सैनिक थे। उनकी आवश्यकता को अनुभव करके पूज्य स्वामी जी ने, सैनिकों की असुविधा को दूर करने के लिए मठ की पाकशाला के पीछे राजवाहे पर भी एक नल लगवा दिया।

सैनिक स्वामी जी महाराज के व्यवहार से बड़े प्रभावित थे। लेखक युद्ध आरम्भ होने के प्रथम दिन भी मठ में था और ७ मार्च १९७२ को स्वामी सत्यप्रकाश जी के साथ फिर मठ में गया तब एक सैनिक ने स्वामी सत्यप्रकाश जी से वार्तालाप करते हुये श्रद्धा-विभोर होकर कहा, "स्वामी जी तो हमारे सेनापति हैं।"

स्वामी जी से उसका अभिप्राय वीतराग स्वामी सर्वानन्द जी महाराज से था।

देश के प्रहरी सैनिकों की सुख-सुविधा का शासन तो ध्यान करता ही है, पूज्य स्वामी जी उन दिनों सैनिकों का ऐसे ध्यान रखते थे मानो कि सैनिक उन्हीं के लिए शत्रु से जूझ रहे हैं।

गुरदासपुर जिला देश की सीमा पर स्थित है। इसलिए सीमा पर सैनिक शिविरों में जवान रहते ही हैं। जब कभी कोई सैनिक अधिकारी अथवा सैनिक किसी कार्य मठ में आता है तो स्वामी जी उनका विशेष ध्यान देते हैं। मातृभूमि के लिए घर-बार से दूर सैनिकों के प्रति उनके हृदय में एक विशेष स्थान है।

श्री कुन्दनलाल मुसाफ़िर के निधन पर

लेखक अपनी डायरियां देख रहा था तो श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज के साथ एक भेंट के कुछ संस्मरण संकेत सामने आ गये। स्वामी जी महाराज ने तब बताया था कि दयानन्द मठ की नींव के एक पत्थर और आर्यसमाज के बलिदानी मूक-सेवक श्री कुन्दनलाल मुसाफिर के निधन पर आप बहुत रोये थे। **"कई दिन स्वतः ही रोता रहा"** ऐसा हमें श्री महाराज ने बताया। वे वीतराग हैं परन्तु चरित्रवान् समाज-सेवियों के लिए आपके मन में स्नेह का एक सागर लहरें मारता है।

स्वामी जी चरण-स्पर्श करने के लिए दौड़े

मुझे इतना तो अब ध्यान नहीं कि यह घटना कब की है व किसने मुझे सुनाई परन्तु मेरी डायरी में इसका स्मरण संकेत अंकित है। यह सन् १९७३ से कुछ पहले की घटना है। श्री स्वामी सोमानन्द जी नूरगढ सेवा आश्रम वाले मठ में आए। इससे पहले कि श्री स्वामी सोमानन्द जी पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी के चरण स्पर्श करके नमस्ते करें श्री स्वामी सर्वानन्द जी ने उन्हें आते देखा तो दौड़कर उनके समीप आकर उनके चरण छूकर नमस्ते की। स्वामी सोमानन्द जी महाराज उनके स्वभाव से परिचित ही थे। इनका यह बड़प्पन देखकर उन्हें कोई आश्चर्य नहीं हुआ। उन्हें अपनी हार पर कुछ विस्मय न हुआ। स्वामी सर्वानन्द जी बड़े हैं। अतः बड़प्पन की जीत होगी, यह स्वाभाविक ही है।

श्री स्वामी जी के जीवन में उनकी इस विनम्रता का परिचय हमें सदा मिलता ही रहता है।

गुरुजी की दृष्टि में राम का महत्त्व

पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज की दृष्टि में श्री रामचन्द्र का क्या महत्त्व था और उस मानव-निर्माण कला के चतुर शिल्पी ने अपने सुशिष्य राम के व्यक्तित्व का कैसे निर्माण किया, इस संबंध में हम 'लौहपुरुष स्वामी स्वतंत्रानन्द' पुस्तक से एक घटना यहां उद्धृत करते हैं। यह घटना लेखक को श्री स्वामी ईशानन्द जी महाराज ने सुनाई थी।

स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज की कुटिया पहले ईंटों की नहीं थी। उसके निर्माण के लिए कारीगर बढ़ई कार्य पर लगाये गये। स्वामी सर्वानन्द जी महाराज तब संन्यासी नहीं थे, पं० रामचन्द्र के रूप में थे। पं० रामचन्द्र जी ने कारीगरों को कहा कि कुटिया का अमुक भाग ऐसा बनाओ। स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज भी यह बात सुन रहे थे। स्वामी ईशानन्द जी भी पास ही बैठे थे। स्वामी ईशानन्द जी को भवन-निर्माण आदि कार्यों का अच्छा ज्ञान है। वह अनुभव करते थे कि पं० रामचन्द्र जी का सुझाव ठीक नहीं। स्वामी ईशानन्द जी ने पं० रामचन्द्र जी के चले जाने

के पश्चात् स्वामी जी से कहा, "पं० रामचन्द्र जी का सुझाव माना जावे तो एक सौ रुपया अधिक व्यय होगा और लाभ कोई विशेष नहीं होगा।"

उन दिनों एक सौ रुपया बहुत बड़ी राशि समझी जाती थी। स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज बोले कि आपका कहना ठीक है। इस पर स्वामी ईशानन्द जी ने कहा कि यदि यह ठीक है तो आप कारीगरों को आज्ञा दें कि ऐसा मत करें और पण्डित जी को ऐसा करने से टोक दें।

स्वामी स्वतंत्रानन्द जी ने कहा कि यह ठीक है कि पण्डितजी भूल कर रहे हैं। सौ रुपया अधिक व्यय हो रहा है परन्तु छोटी छोटी बात पर टोकना-रोकना अच्छा नहीं होता। व्यक्ति का महत्त्व है, रुपये का नहीं। क्या आप समझते हैं कि रामचन्द्र जैसे व्यक्ति से सौ रुपया अधिक महत्त्व रखता है? स्वयं अनुभव से पण्डित जी समझ जायेंगे।

कुछ समय के पश्चात् पं० रामचन्द्र जी स्वयं विचार करके आये और कारीगरों को आदेश दिया कि क़ुटिया का वह भाग वैसा मत बनावें। जो सुझाव स्वामी ईशानन्द जी ने स्वामी जी महाराज को दिया था, उसी प्रकार का सुझाव अब पं० रामचन्द्र जी ने कारीगरों को दिया। तब स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज ने श्री स्वामी ईशानन्द जी से कहा कि देखो स्वयं विचार करके उन्होंने अपनी भूल का सुधार कर दिया है। हमारा कहना इतना उपयुक्त न होता। स्वामी स्वतंत्रानन्द जी का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण सुविज्ञ पाठक इस घटना से समझ गये होंगे।

पूज्य गुरुदेव का यह गुण श्री स्वामी सर्वानन्द जी में हम देखते हैं। स्वामी जी के निकट सम्पर्क में आनेवाले सभी सज्जनों का ऐसा अनुभव है कि जब कभी कोई व्यक्ति किसी दूसरे की कोई भूल स्वामी जी के ध्यान में लाकर यह कहता है कि स्वामी जी ऐसा करना अनुचित है, उसे आप रोकें-टोकें तो आप ऐसी बातें सुनकर कभी भी उत्तेजित नहीं होते। बड़े शान्त भाव से कह दिया करते हैं, "अच्छा, उससे बात करेंगे।"

जिसको जो कार्य सौंपते हैं उसे उसको सम्पन्न करने देते हैं। मार्ग-दर्शन तो करते हैं, व्यर्थ की रोक-टोक नहीं करते। अपने इस व्यवहार के कारण ही पूज्य श्री स्वामी सर्वानन्द जी एक सफल प्रशासक हैं और इतनी संस्थाओं का सञ्चालन कर रहे हैं।

स्वामी जी का एक नीति-सूत्र

प्रायः सभा-संस्थाओं का सञ्चालन करने वाले सभी कुशल प्रशासकों में एक गुण पाया जाता है और श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज में भी यह उत्तम गुण विशेष रूप से पाया जाता है। श्री यश जी जब नये-नये दीनानगर में गये तो आपने एकदिन स्वामीजी के सामने अपनी एक कठिनाई रखी कि कई बार संस्था के हित में प्रिंसिपल के रूप में मुझे कोई निर्णय लेना पड़ता है। प्रत्येक बात प्रबंध-समिति के प्रत्येक सदस्य से पूछकर तो की नहीं जा सकती और न ही प्रत्येक निर्णय से पूर्व प्रबंध-समिति की बैठक बुलाई जा सकती है। ऐसी अवस्था में कई सदस्य समिति की बैठक में फिर अनावश्यक टीका-टिप्पणी करते-रहते हैं और मुझे प्रत्येक बात का उत्तर देना पड़ता है।

स्वामी जी ने कहा, "इसका तो बड़ा सरल उपाय है। आप ऐसी अवस्था में कुछ सदस्यों से पहले ही व्यक्तिगत रूप में बात कर लिया करें फिर समिति की बैठक में आपको अकेले नहीं बोलना पड़ेगा। जब बात कुछ सदस्यों के कान में से पहले निकल चुकी होगी तो फिर वे सदस्य स्वयं आपत्ति करने वालों को उत्तर दिया करेंगे।"

श्री यश जी ने यही नीति-सूत्र पकड़ लिया और इससे उन्हें पूरा-पूरा लाभ हुआ।

शिष्य को नित्यप्रति स्वयं दूध पिलाते

आर्यसमाज सान्ताक्रूज मुम्बई के श्री पं० प्रकाशचन्द्र जी ने अपने संस्मरणों में यह बताया कि कड़ी शीत में मठ की यज्ञशाला में बैठकर पढ़ा करता था। स्वामी जी उधर से आते-जाते मुझे अध्ययन में संलग्न देखते थे। सायंकाल स्वामी जी मठ के सब कार्यों से निवृत्त होकर मेरे लिए दूध का एक गिलास लाकर, यज्ञशाला में रखकर आप चले जाते और फिर आते-ज़ाते और फिर आवाज़ लगाकर कहते, 'बाबू दूध रखा है, पी लेना।"

प्रकाश जी पढ़ाई करने के पश्चात् नित्य जाकर दूध पी लेते। प्रकाश जी तब मन ही मन में सोचते कि यह कितने महान् संन्यासी हैं जो मेरे जैसे एक साधारण विद्यार्थी के लिए प्रतिदिन आप दूध लाकर रख जाते हैं। मेरा इतना ध्यान रखते हैं। फिर आप ही मन में यह कहते कि मैं तो मठ का विद्यार्थी हूं स्वामी जी तो रात्रि सोने से पूर्व मठ में आए हुये प्रत्येक व्यक्ति का पता करके सोते हैं कि कोई असुविधा तो नहीं। भोजन सबका हो गया। मठ के प्रत्येक पशु को जाकर देखते हैं। कहीं ठण्डी में कोई गाय-बैल बाहर तों नहीं। मठ में बिल्ली-कुत्ते को भी दूध व रोटी तो मिल गई क्या? सब प्राणियों के प्रति आपके मन में ऐसी दया है। आपके बड़प्पन का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता।

'कोई बात नहीं सायंकाल तक ज्वर नहीं रहेगा'

श्री प्रकाश जी ने बताया कि एकबार मुझे मठ में बड़ा भीषण ज्वर हो गया। मैं ज्वर के कारण बड़ा व्याकुल था। स्वामी सर्वानन्द जी महाराज मुझे देखने आए। मेरी घबराहट को देखा। मेरे माथे पर हाथ रखकर वड़ी आत्मीयता से कहा, "अरे थोड़ा सा ज्वर होने पर तू रोने लग गया, ले- यह औषधि सेवन कर ले। सायंकाल तक तू ठीक हो जावेगा।

प्रकाश जी ने औषधि तो लेनी ही थी सो ले ली परन्तु साथ ही यह सोचने लगे कि इतना भीषण ज्वर आज-आज में कैसे पीछा छोड़ेगा?

सचमुच ज्वर सायं तक उतर गया। इससे प्रकाश जी के मन में स्वामी जी के प्रति आस्था और भी बढ़ गई। इन्हें विश्वास हो गया कि इनकी औषधि भले ही कुछ देर से अपना प्रभाव दिखावे परन्तु इनकी बात रोगी के अन्तस्तल तक जाकर प्रभाव डालती है जिससे रोगी शीघ्र ही स्वस्थ हो जाता है।

विद्यार्थियों का ध्यान

यह सत्य है कि मैंने मठ में एक आधबार कुछ ऐसे विद्यार्थी भी देखे, जिनके घर पर उनके लिए दो समय की सूखी रोटी भी नहीं थी। मठ में प्रतिदिन दो-तीन बार दूध व आमों की ऋतु में आम चूस-चूस कर वे पहलवान बन गये परन्तु

फिर भी मठ का उपकार नहीं मानते, कुछ विपरीत टिप्पणियां ही उनके मुख से सुनने को मिलीं परन्तु यह संसार है। यहां भले-बुरे सब प्रकार के प्राणी मिलेंगे।

श्री प्रकाश जी ने बताया कि स्वामी सर्वानन्द जी विद्यार्थियों का इतना ध्यान रखते हैं कि ज्यों ही कोई ब्रह्मचारी उनकी कुटिया के सामने जाकर खड़ा हो जावे, श्री महाराज उसके कुछ कहने से पहले ही पूछ लेते, "कहो, क्या चाहिये?"

ब्रह्मचारी साबुन, वस्त्र, घी जो भी वस्तु कह देता आप झट से कह देते, "जाओ, वैद्य साईंदास जी से कह दो, वे दे देंगे।"

हमें सब कुछ उपलब्ध हो जाता। पाकशाला में घृत नहीं तो घृत मांगने पर वह भी मंगवा देते। किसी वस्तु की कमी न रहने देते।

इससे मुझे विशेष लाभ हुआ

श्री प्रकाश जी लिखते हैं कि मैं व मेरा मित्र मनीषीदेव दोनों यज्ञशाला पर बैठकर पढ़ा करते थे। मैं पढ़ाई में कोई बढ़िया न था। कभी-कभी हम दोनों पढ़ते-पढ़ते गप्पों में लग जाते। श्री स्वामी जी आते-जाते पूछ लेते पढ़ रहे हो या गप्पें मार रहे हो? हम भी उन्हें आता हुआ देखकर पढ़ने लग जाते।

एक दिन दोनों मित्रों ने अलग-अलग बैठकर पढ़ने का निर्णय किया। मनीषी अपने कमरे में और प्रकाश यज्ञशाला में बैठकर पढ़ता। कुछ दिन तो प्रकाश जी ने कुछ परेशानी अनुभव की फिर चुपचाप पढ़ते रहते। नींद आने लगती तो यह ऊंचा-ऊंचा बोलकर पढ़ने लगते।

इसका यह विशेष लाभ हुआ कि अब यदि यह धीरे-धीरे बोलकर या मुंह में पढ़ते तो स्वामी जी आते-जाते कहते, "बोल बोल कर पढ़।"

इससे मेरे अशुद्ध उच्चारण को सुनकर पूज्य श्री स्वामी जी तत्काल मेरी भूल का सुधार कर देते। मंत्र, श्लोक, सूत्र जो भी बोलता, मेरा उच्चारण शुद्ध होता। इससे प्रकाश जी में आत्मविश्वास पैदा होने लगा। आप पढ़ाई में अच्छे होते गये। स्वामी जी से विशेष प्रोत्साहन प्राप्त होता रहा।

जब स्वामी जी की कुटिया के सर्प को मारा

श्री पं० प्रकाश जी स्वामी जी की कुटिया में नित्यप्रति झाड़ू लगाने जाया करते थे। गर्मियों के दिन थे। एकदिन प्रातः साढ़े पांच बजे प्रकाशचन्द्र कुटिया में झाड़ू लगाने गये। पूज्य स्वामी जी तो कुटिया में न थे। प्रकाश जी ने ज्यों ही झाड़ू उठाया तो देखा कि वहां एक बहुत लम्बा सर्प आधा द्वार के बाहर और आधा कुटिया के भीतर था। प्रकाश उसे देखकर घबरा गये और भागे-भागे अपने साथियों मनीषी व सत्यव्रत से कहा कि कुटिया में एक बहुत लम्बा सर्प है। इसको मारना चाहिए।

ये तीनों साहस करके लाठियां लेकर कुटिया में गये। इतने में सर्प द्वार पर नहीं था। ये सब कुटिया में घुस कर उसकी खोज करने लगे। वहां एक कोने में टाट पट्टी के नीचे सर्प दिखाई दिया। इनमें से एक ने उस पर अपना नोकदार मोटा लट्ठ टिका कर मारा। लट्ठ की नोक उसके सिर में घुस गई। इसी अवस्था में

उसे कुटिया से बाहर ले आए। उसे धरती में गाड़ दिया।

कुछ ही समय में सबके देखते-देखते वह सर्प मर गया। इतने में स्वामी जी महाराज आ गये। आपको पता लगा कि ब्रह्मचारियों ने कुटिया में घुसे एक सर्प को मार दिया है। आपको युवकों की यह शरारत अच्छी न लगी। स्वामी जी ने कहा, "इसने क्या करना था? यह तो स्वयं ही भाग जाता। क्या यह यहीं बैठा रहता?"

स्वामी जी महाराज के मुख से निकले शब्दों से सभी को ऐसा लगा कि आप तो किसी को दुखी देखकर उसके दुःख निवारण का ही प्रयत्न करते हैं। सर्प जैसे विषैले भयकंर जन्तु का मारा जाना भी आपको अच्छा नहीं लगता। ग्रन्थ में अन्यत्र भी हमने ऐसी कुछ घटनायें दी हैं।

किसी से कभी कुछ नहीं चाहते

श्री स्वामी जी महाराज कभी भी किसी श्रद्धालु से कुछ नहीं चाहते। यदि कोई कुछ देना भी चाहे तो आप यह सोच-विचार करके भेंट लेते हैं कि इससे देने वाले को कुछ कमी तो नहीं आयेगी। एकबार आप आर्य अनाथालय पटौदी हाऊस, दरियागंज के कार्यालय में आए। श्री प्रकाशचन्द्र जी तब वहीं सेवारत थे। आपनें शिष्टाचार के अनुसार शीतल पेय जल स्वामी जी के सामने रखा। आपने पूछा, "यह क्या है?"

प्रकाश जी ने कहा, "ठण्डा शर्बत है।"

स्वामी जी ने कहा, "इससे प्यास तो बुझती तो ही नहीं?"

प्रकाश जी ने सेवक को संकेत दिया, वह झट से एक और गिलास जल ले आया।

स्वामी जी ने कहा, "यह ठीक है परन्तु इतना खर्च नहीं करना चाहिए था।"

इस सेवा सत्कार पर मात्र १-५० (डेढ़ रुपया) रु० व्यय हुआ था परन्तु श्री स्वामी जी को अपने लिए कुछ भी व्यय करना अच्छा नहीं लगता। किसी पर क्यों अनावश्यक भार बना जावे, ऐसी उनकी सोच है। ऐसे सर्वस्व त्यागी का अतिथि-सत्कार करना तो प्रत्येक आर्य स्त्री-पुरुष अपना सौभाग्य मानता है।

आप देव हैं, देना ही जानते हैं

आप जब चलने लगे तो प्रकाश जी ने सोचा कि गुरु जी घर पर पधारे हैं, कुछ भेंट देनी चाहिये। मठ के द्वारा किए जा रहे परोपकार के कार्यों के लिए प्रकाश जी ने अपनी भेंट आगे लाकर रख दी। स्वामी जी महाराज ने कहा, "इतना अधिक क्यों दे रहे हो?"

स्वामी जी के मुख से यह वाक्य सुनकर प्रकाश जी के मन में यह विचार आया कि जब हम विद्यार्थी थे तब हमें स्वामी जी सब कुछ देते थे और हम गृहस्थी के रूप में कमा खा रहे हैं। कुछ देने योग्य भी हैं। हम अपना कर्त्तव्य निभाने के लिए यदि अपनी मातृसंस्था के लिए कुछ देते हैं तो भी स्वामी जी को हमारी ही चिन्ता रहती है कि कहीं इससे इनको कोई कमी न पड़े। गुरु शिष्य को सदैव कुछ देता ही रहता है। ऐसे गुरु का ऋण कौन चुका सकता है? शास्त्र में देव वह है, जो देता ही रहता है और जिसका जीवन दिव्य है सो देव है। आप सच्चे अर्थों में एक ऐसे ही देवपुरुष हैं।

मेरी इच्छा-शक्ति देखकर

श्री पं प्रकाशचन्द्र जी ने अपने विद्यार्थी-जीवन की एक घटना सुनाई। शास्त्री परीक्षा के लिए फार्म भरे जा रहे थे। मठ के एक अध्यापक श्री पं० विश्वामित्र जी ने प्रकाश जी को फार्म भेजने की अनुमति न दी। पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज़ को भी सूचित कर दिया कि प्रकाश की तैयारी ठीक नहीं, यह अगले वर्ष परीक्षा में बैठेगा।

प्रकाश जी पूज्य स्वामी जी के पास गये और कहा कि मेरा फार्म भीं इसी वर्ष जाना चाहिए। स्वामी जी महाराज ने यह अनुभव किया कि विद्यार्थी में पढ़ाई के लिए तड़प है, यह परिश्रम करके निकल तो सकता है। श्री पं० रामचन्द्र जी से विचार-विमर्श हुआ तो उन्होंने भी कहा जब इसकी ऐसी इच्छा शक्ति है तो यह अवश्य उत्तीर्ण हो जावेगा। इसका फार्म भेज देना चाहिए। पं० रामचन्द्र जी ने विश्वविद्यालय का प्रवेश शुल्क जमा करवाने के लिए दे दिया। परीक्षा परिणाम निकल आया। प्रकाश अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हो गया। उस वर्ष मठ का परीक्षा फल बहुत अच्छा रहा। विद्यार्थी का एक वर्ष बच गया। श्री प्रकाश जी अपने जीवन की इस घटना को कभी भूल नहीं सकते।

वे यही कहते हैं कि स्वामी जी ने मेरा दृढ़-संकल्प देख कर मेरा फार्म भिजवा दिया। उनके मुख से निकली बात सत्य निकली और मैं सफल हो गया।

'मैं मूलियां बीज देता हूं'

एकबार श्री स्वामी जी महाराज हमारे यहां अबोहर पधारे तो सायंकाल हमारा माली क्यारियों में कुछ काम करने के लिए आया। स्वामी जी ने उससे पूछा, ''क्या करने लगे हो?''

उसने कहा, ''वट बनाकर मूलियों का बीज बोऊँगा।''

श्री स्वामी जी महाराज ने मुझे कहा, ''मुझे खुरपा दीजिए। यह काम मैं करुंगा।''

मैं उनके मुख से ये शब्द सुनकर चकित रह गया। यह स्वामी जी की कोई आकस्मिक प्रवृत्ति नहीं है। उनके लिए कोई भी काम छोटा नहीं है। कुछ न कुछ करते रहना उनका स्वभाव बन चुका है। मैंने तब कहा, माली कार्य करने के लिए ही आया है। मैं भी कुछ समय नित्य क्यारियों में देता हूं। आपको कोई खुरपा लिए यहां देखेगा तो हमारे बारे में वह क्या सोचेगा?

बहुत कहा-सुना तो आप मान गये फिर भी रामकृष्ण माली को समझाते रहे कि वट ऐसे बनाओ और ऐसे बीज बोने से मूली मोटी-मोटी पैदा होंगी।

कार्यकर्त्ताओं का इतना ध्यान—एक अविस्मरणीय घटना

स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज का जीवन-चरित्र 'वीर संन्यासी' नाम से सन् १९६६ में प्रकाशित हो गया। इसके छपने के पश्चात् लेखक ने अपनी खोज बन्द न की। स्वामी जी के जीवन-संबंधी खोज में, मैं निरन्तर लगा रहा और सन् १९७१ के आसपास यह निश्चय कर लिया कि स्वामी जी का एक बृहद् जीवन-चरित्र छपवाना है। इस कार्य के लिए मैं यहां, वहां, इधर-उधर जाता रहता।

जहां से भी कोई महत्त्वपूर्ण घटना मिलती पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज को पत्रलिखकर सूचित कर देता। स्वामी जी भी प्रसन्नता प्रकट करते हुये आशीर्वाद भेज देते। सन् १९७१ में खोज की दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण वर्ष था। कुछ स्थानों से उस वर्ष विशेष सामग्री प्राप्त हुई। स्वामी जी ने मिलने पर कहा और पत्रों में भी लिखा कि आप स्वामी जी के जीवन संबंधी इतनी खोज करते रहते हैं, स्थान-स्थान पर जाते हैं, पैसा खर्च होता है। आप इसके लिए कुछ राशि सहयोग के रूप में स्वीकार करें।

मैंने कहा, "यह मेरा कर्त्तव्य है। स्वामी जी का ऋण केवल मठ पर ही तो नहीं। मैं गृहस्थी हूं और कमाता हूं। मैं भी उनका ऋणी हूं। मुझे भी उनके ऋण से उऋण होने दीजिए।"

सितम्बर १९७१ के आसपास की बात होगी कि मैं इस कार्य के लिए कहीं गया। बड़ी सफलता मिली। अत्यन्त उपयोगी व ठोस सामग्री की प्राप्ति हुई। मैं गद्‌गद् हो गया। पूज्य श्री स्वामी सर्वानन्द जी को उन यात्राओं की विशेष उपलब्धि की सूचना दी। मैं तब अपने भाग्य पर इतरा रहा था। बड़ा आत्म-सन्तोष हुआ कि मैं अपनी खोज में बहुत आगे निकल गया।

स्वामी जी महाराज ने मेरी खोज व पत्रों की चर्चा मठ में भी की। एकदिन ब्र० गोपाल जी (स्वामी सुमेधानन्द) जी चम्बा) वालों का एक अन्तर्देशीय पत्र मुझे प्राप्त हुआ। यह पत्र पूज्य स्वामी जी ने ही लिखवाया था। अक्टूबर में यह पत्र मिला। इसमें लिखा था कि आप जहां-कहीं जाते हैं, स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के जीवन की सामग्री खोजते रहते हैं। इसके लिए आप कुछ व्यय मत किया करें। आप गृहस्थी हैं। इसका आर्थिक भार मठ के ऊपर होगा, आपको दो सौ (अथवा एक सौ) रुपया धनादेश से भेज रहा हूं? यह आपको स्वीकार करना पड़ेगा। यह स्वामी सर्वानन्द जी महाराज की आज्ञा है। यदि आपने मनीआर्डर लौटाया तो स्वामी जी कहते हैं कि हम केरल के कार्य में भी कुछ सहयोग नहीं करेंगे। इसके पश्चात् भी आप जहां-कहीं इस कार्य के लिए जावें, सूचित कर दिया करें। मठ आगे भी सब व्यय भेजेगा। मेरी धर्मपत्नी ने भी यह पत्र पढ़ा। हम स्वामी जी महाराज की सोच व भावनाओं को जानते ही थे। पत्र की एक पंक्ति पढ़कर हम द्रवित हो गये।

कुछ दिन के पश्चात् धनादेश से राशि मिल गई। यह नवम्बर के तीसरे सप्ताह की बात होगी। राशि लेनी पड़ी। तभी एक घटना हमारे परिवार में घट गई। मेरी सबसे छोटी पुत्री को डिपथीरिया नाम का रोग हो गया। इस रोग में जो टीका लगता है औषधि विक्रेता उसके मुंह मांगे पैसे लेते हैं। वे जानते हैं कि चौबीस घण्टे के भीतर रोगी को टीका न लगाया गया तो वह मर जावेगी। महीना समाप्ति पर हो तो वेतन-भोगी गृहस्थी की जेब खाली ही होती है। मैं गृहस्थी के रूप में अनिवार्य बचत तो करता रहा हूं परन्तु बैंक में मेरे पास कभी कुछ नहीं रहा।

उधर मठ से यह राशि आई और पुत्री प्रियंका रुग्ण हो गई। स्वामी जी

की भेजी इस राशि से हमें किसी मित्र-बंधु से कुछ ऋण न लेना पड़ा। बड़ी सुख-सुविधा से पुत्री का इलाज करवा पाए। वह बच गई। आज पर्यन्त हमारे परिवार में इस राशि की चर्चा होती है। हम कु० प्रियंका को विनोद से कहा करते हैं कि तुम्हें तो स्वामी जी ने बचा लिया अन्यथा हम तो सम्भवत: धन के अभाव में टीके ही न ले पाते। सोचते हैं कि स्वामी जी को भी क्या सूझा कि तभी यह राशि इतने आग्रह से भिजवाई। कार्यकर्त्ताओं का स्वामी जी को इतना ध्यान रहता है। हमारे लिए तो यह एक अविस्मरणीय्र घटना है।

अब आप परीक्षा दें, यह हमारी आज्ञा है

आचार्य जगदीश जी ने कुछ वर्ष पूर्व एक परीक्षा देने के लिए फार्म भर दिया। श्री स्वामी जी से इसकी पूर्व स्वीकृति नहीं ली। पूज्य स्वामी जी को भी पता लग गया कि वह परीक्षा की तैय्यारी में लगे हैं।

जब परीक्षा निकट आई तो एकदिन स्वामी जी से इस विषय में बात की। परीक्षा के लिए छुट्टी चाहिए थी। स्वामी जी ने कहा कि आपने हमसे पूछा ही नहीं। अब आप जावेंगे तो मठ की बड़ी हानि होगी। श्री जगदीश जी ने स्वीकार किया कि पूर्व अनुमति न लेना, उनकी भूल थी। जब देखा कि श्री स्वामी जी उन्हें इस समय परीक्षा के लिए भेजना नहीं चाहते हैं तो उन्होंने परीक्षा का विचार छोड़ दिया और अपने कार्यों में लग गये।

जब परीक्षा में पन्द्रह दिन रह गये तो स्वामी जी ने जगदीश जी को बुलवाया और कहा कि आप परीक्षा देने जायें। श्री जगदीश जी नें कहा कि अब तो अगले वर्ष ही परीक्षा देनी होगी। आपने फार्म रोका तो मैंने तभी पढ़ाई छोड़ दी थी। पूरी तैय्यारी करके ही परीक्षा देने का लाभ है।

स्वामी जी महाराज ने आग्रहपूर्वक कहा कि आपको परीक्षा देनी है। आप जाईए। हमारी आज्ञा है कि आप परीक्षा दें। श्री जगदीश जी को पढ़ाई बन्द किये कई दिन हो गये थे इसलिए अब उन्हें परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने का भय था। स्वामी जी ने कहा, "आप अब जावें। परीक्षा दें। यही हमारी आज्ञा है। हमें पता है कि आप उत्तीर्ण होंगे। अब पीछे मत हटो। पन्द्रह दिन में ठीक तैय्यारी हो जायेगी।"

आचार्य जगदीश जी चले गये। परीक्षा दे दी और सफल भी हो गये।

स्वामी जी ने परीक्षा देने से पहले रोका। उनका कहना ठीक था कि आप जायेंगे तो मठ की हानि होगी। मठ की हानि हुई परन्तु फिर आग्रहपूर्वक कहा कि जाओ, परीक्षा दो। जगदीश जी का मनोबल भी बढ़ाया। ऐसा क्यों?

श्री जगदीश जी का ही इस विषय में कथन है कि स्वामी जी महाराज का हृदय ही कुछ ऐसा है कि वे दया से अभिभूत होकर दूसरे का हित ही सोचते हैं। हमारे विचार में आपने जगदीश जी को उनकी भूल का बोध भी करवा दिया और एक कार्यकर्त्ता की सेवा का सम्मान करते हुये उसकी इच्छा की पूर्ति में सहायक बनकर संस्था का हित भी सोचा।

कोई जावे या कोई आवे

श्री जगदीश जी ने स्वामी जी महाराज के साधु स्वभाव व निर्लेपता के विषय में एक

विशेष बात कही। प्रत्येक संस्था के निर्माता व सञ्चालक की यह इच्छा होती है कि संस्था के लिए उपयोगी व्यक्ति संस्था से पृथक् न हों और अनावश्यक व्यक्ति संस्था पर भार न बनें।

श्री स्वामी सर्वानन्द जी एक ऐसे साधु हैं जो प्रत्येक छोटे से छोटे सेवक का, कार्यकर्त्ता का ध्यान तो पूरा-पूरा रखते हैं परन्तु यदि कोई कह दे कि स्वामी जी मैं मठ से जा रहा हूं तो आपने कभी किसी को रोका नहीं। "अच्छा, आपकी इच्छा।" यह आपकी निर्लेपता है। वीतराग संन्यासी ऐसे ही होते हैं। यदि कोई मठ में आ जाता है तो आप यह नहीं सोचते कि यह भार बनेगा या इसका कोई उपयोग नहीं। कोई आया है तो ठीक है।

कभी फोन पर बात नहीं करते

मठ में अब दूरभाष की भी सुविधा है। इतनी बड़ी संस्था में किसी न किसी का, कहीं न कहीं से फोन आता ही रहता है। स्वामी जी महाराज फोन के पास बैठे हों, घण्टी बज रही हो तो भी फोन नहीं उठाते और कोई कहीं से भी कहे कि स्वामी जी से बात करनी है तो मठ से यही उत्तर जाता है कि जो सन्देश देना है, दे दीजिए। बात करनी है तो आकर कर लीजिए।

स्वामी जी के इस व्यवहार के संबंध में हम इतना ही कहेंगे कि यह संन्यासी के मन की मौज है। महापुरुषों में, विशेष रूप से साधुओं में कुछ बातें बड़ी विलक्षण होती हैं। स्वामी जी की यह बात भी विलक्षण तो है परन्तु इस विलक्षणता में भी साधु की शोभा है। यह व्यवहार उनकी मस्ती का परिचायक है।

वेश द्वय को समझाया

जब आर्यप्रतिनिधि सभा पर वेशों का अधिकार हो गया तो एकदिन आर्यसमाज दीवान हाल के एक ऊपर कमरे में श्री स्वामी जी ने सर्वश्री अग्निवेश व इन्द्रवेश दोनों को एकान्त में समझाया कि अब इतनी बड़ी सभा आपके हाथ में है। आप चाहें तो कुछ अच्छे कार्य करके वाह! वाह! प्राप्त कर सकते हैं परन्तु जैसे कलह का लाभ उठाकर और कलह को बढ़ाकर आपने सभा पर अधिकार किया है यदि ऐसे ही चलता रहा और प्रचार व सेवा में आपने शक्ति न लगाई तो फिर नाश तो निश्चित ही है। श्री स्वामी जी इससे अधिक क्या समझा सकते थे। बुद्धिमान् के लिए संकेत ही पर्याप्त है परन्तु जिन्होंने संन्यास ही राजसत्ता प्राप्ति के लिए लिया हो, उनसे सेवा व धर्म-प्रचार का कार्य कैसे हो सकता है? ऐसे लोगों से ऐसी आशा रखना ही व्यर्थ है। स्वामी सर्वानन्द जी की भविष्यवाणी अक्षरशः ठीक निकली। वेशद्वय की विघटनकारी प्रवृत्तियां सबके सामने हैं।

यहां यह स्मरण रहे कि कुछ वर्ष पूर्व इन वेशद्वय के साथ एक तीसरे वेश का चित्र चंडीगढ़ के दैनिक अंग्रेजी ट्रिब्यून में छपा था और साथ ही इनका साक्षात्कार। उसमें इन्होंने कहा था कि हमने तो संन्यास ही राजसत्ता की प्राप्ति के लिए लिया था। हरियाणा में साधुवेश का विशेष सम्मान है। अतः हमने यह वेश धारण किया। वैराग्य से इनके संन्यास का कोई संबंध नहीं है।

हमारे लिए समस्या खड़ी न करें

जब अमृतसर में स्वामी जी का ओपरेशन हुआ था तो किसी को सूचित न करने पर भी अनेक आर्य स्त्री-पुरुषों को इसकी सूचना मिल गई। श्रद्धालु देवियां व पुरुष इस अवसर पर स्वामी जी से अपने योग्य सेवा पूछते थे। स्वामी जी सबको कहते, "कुछ नहीं चाहिए। सब ठीक-ठाक है।"

फिर भी भक्तजन स्वामी जी के रोकने पर भी उनकी चारपाई पर सिरहाने के नीचे अपनी-अपनी भेंट रख आते।

पंजाब आर्यप्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री वीरेन्द्र जी भी श्री महाराज का पता करने गये और कहा, "हमारे योग्य इस अवसर पर कुछ सेवा?"

स्वामी जी ने अपना तकिया परे करके कहा, "यह देखिए, यहां तो पहले ही इतनी राशि लोग छोड़ गये हैं। आप कुछ भी मत भेंजे अन्यथा हमारे लिए पैसे को सम्भालना भी एक समस्या हो जावेगी। यह समस्या आप खड़ी न करें।"

धन के त्याग की बातें तो बहुत करते हैं परन्तु ऐसे विरले महापुरुष ही इसका त्याग करके दिखा सकते हैं।

गोगामेड़ी अकेले कैसे आ गये?

यह घटना १३ अप्रैल १९८४ की है। गोगामेड़ी में श्री आनन्द मुनि ने स्वामी जी महाराज को एक नई संस्था की आधारशिला रखने के लिए आमन्त्रित किया था। रेत के एक ऊंचे टीले पर बैठे स्वामी सुमेधानन्द जी आदि कई लोग स्वामी जी की प्रतीक्षा कर रहे थे। ये सब जब परस्पर बातें कर ही रहे थे कि स्वामी सुमेधानन्द जी का ध्यान बस अड्डे की ओर चला गया।

उधर से एक वयोवृद्ध संन्यासी आता हुआ दिखाई दिया। हाथ में झोला और कंधे पर काली कम्बली लाठी टेकता वह महात्मा उसी ऊंचे टीले की ओर आ रहा था। श्री स्वामी सुमेधानन्द जी ने कहा, लगता हैं कि स्वामी सर्वानन्द जी आ रहे हैं। सभी ने कहा स्वामी जी कैसे हो सकते हैं? उन्होंने तो गाड़ी पर आना था। गाड़ी का अभी कोई समय नहीं। स्वामी जी ने अकेले भी नहीं आना था। उनक साथ तो एक-दो ब्रह्मचारी या कोई महात्मा होते हैं।

इतने में लाठी टेकते हुये वह संन्यासी और आगे आ गये। अब सुमेधानन्द जी को यह स्पष्ट दीख रहा था कि यह तो पूज्यपाद स्वामी सर्वानन्द जी महाराज ही हैं। वह दौड़कर अड्डे की ओर गये। चरणस्पर्श करके नमस्ते की। झोला पकड़ा और उसी स्थान पर ले आए।

स्वामी जी को बैठते ही सबने पूछा, आप अकेले ही कैसे आ सकते हैं और इतनी लम्बी यात्रा और कोई सीधा मार्ग भी नहीं। श्री स्वामी जी ने कहा, स्वामी सहजानन्द जी ने आना था परन्तु वह तो कहीं अन्यत्र गये हुये थे। ब्रह्मचारियों की परीक्षाएं समीप हैं। अन्य किसी को कष्ट क्यों देना है और संस्था भी यहां नई है, इसलिए सोचा कि मार्गव्यय का भार भी कम पड़ेगा। अकेले चलना ही उचित समझकर मैं चल पड़ा। मार्गव्यय तो क्या लेना था, पता चला कि स्वामी जी ने स्वयं इस संस्था के लिए दान दिया।

ब्यावर में अभिनन्दन

अभी कुछ समय पूर्व आर्यसमाज ब्यावर में पूज्य स्वामी जी का अभिनन्दन किया गया। उनका अभिनन्दन करते हुये उन्हें शाल व कुछ राशि भी भेंट की गई। ब्यावर वालों ने अच्छी श्रद्धा दर्शाई।

पूज्य स्वामी जी को बाद में आशीर्वाद देने के लिए कहा गया। आपने कहा कि दीनानगर के किसी आर्यपुरुष से मैंने सुना था कि ब्यावर आर्यसमाज में अच्छे युवक हैं, इसलिए मैंने यहां आने का विचार बना लिया। यह आर्यसमाज अच्छा कार्य कर रहा है। इसलिए यहां के युवकों का उत्साहवर्द्धन करना चाहता था।

अब आपको धन्यवाद नहीं दूंगा। आपने यह मेरे अभिनन्दन का कार्यक्रम यहां रख दिया। यह ठीक नहीं हुआ। मैं धन्यवाद दूं तो ऐसा लगेगा कि क्योंकि आपने मेरा अभिनन्दन किया है, इसलिए मैं धन्यवाद दे रहा हूं। धन्यवाद तो इस कारण मैं नहीं दूंगा। आपके द्वारा जो अच्छे कार्य हो रहे हैं उसके लिए आशीर्वाद अवश्य देता हूं।

स्वामी जी के आशीर्वाद देने के पश्चात् आचार्य श्री वासुदेव जी ने कहा, स्वामी जी हमने धन्यवाद देने के लिए तो कहा ही नहीं था। हमें तो आपका आशीर्वाद ही चाहिए। धन्यवाद तो आपका, जो हमें दर्शन भी दिये व आशीर्वाद भी दिया। श्री ओमप्रकाश भंवर व उनके सहयोगियों ने अपने आर्यसमाज की परम्परा के अनुसार इस कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए अच्छा पुरुषार्थ किया।

हमारा भोजन तो हो चुका

दिसम्बर १९८८ को आर्यप्रतिनिधि सभा राजस्थान ने अलवर में एक शताब्दी सम्मेलन रखा। स्वामी जी महाराज वहां पधारे। श्री स्वामी सहजानन्द जी साथ थे। स्वामी जी महाराज ने वहां पहले ही चक्र लगा कर देख लिया था कि इस स्थान में कहां क्या हो रहा है। एकदिन दोपहर को भोजन के साथ ऋषि लंगर में पहुंच गये और पंक्ति में बैठकर भोजन कर लिया। भोजन करवाने वाले बालक तो इतना भी न जानते थे कि ये कौन हैं?

जब भोजन करके अपने कमरे में आए तो एक व्यक्ति स्वामी जी का भोजन लेकर वहां आ गया। उसने स्वामी जी से कहा, "महाराज यह आपका भोजन है, कीजिए।"

स्वामी जी ने कहा, "हमारा भोजन तो हो चुका।"

उस सज्जन को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कहा, "आपका भोजन कहां और कैसे हो गया?"

स्वामी जी महाराज ने कहा, "मैं तो ऋषिलंगर में भोजन कर आया।" उस भाई ने कहा, "आपने वहां भोजन क्यों किया? आपके लिए तो भोजन की अलग व्यवस्था है।"

स्वामी जी ने कहा, "भाई हमें भी तो पता चले कि आप जनता को कैसा भोजन करवा रहे हैं और यदि ऋषिलंगर का भोजन अच्छा नहीं है तो फिर आप और लोगों को क्यों खिला रहें हैं?"

उस समय श्री स्वामी सुमेधानन्द जी गुरुकुल झज्जर वाले भी स्वामी जी के कमरे में

ही बैठे थे। आपने ही यह संस्मरण हमें सुनाया। जन-साधारण के साथ जुड़ने की आपकी इस भावना के कारण सब आपको इतनी श्रद्धा व पूज्य दृष्टि से देखते हैं।

किसी को भी दोष न दिया

श्री स्वामी जी के जीवन की घटनाओं का अवलोकन करते हुए व उनके व्यक्तित्त्व व कृतित्त्व पर विचार करते समय हमारा ध्यान सहसा स्वामी जी महाराज लिखित 'वीर संन्यासी' की भूमिका के एक वाक्य की ओर चला गया। आपने उसमें लिखा हैः–

"पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज का स्वर्गवास ३ अप्रैल १९५५ को बम्बई में हुआ था, किन्तु अभी तक जीवनी न लिखी जा सकी। यह दुःख की बात है। कई सज्जनों ने लिखने का निश्चय किया, किन्तु वे अपनी व्यस्तताओं के कारण लिख न सके।"

इस उद्धरण के अन्तिम वाक्य को पाठक बारम्बार पढ़ें और इस पर विचारें। हमने पीछे इसी खण्ड में स्वामी जी का जीवन चरित्र लिखने की कहानी संक्षेप से दे दी है। श्री पं शिवदत्त जी के कारण यह शुभ कार्य पूरे दस वर्ष तक लटका रहा। बार-बार स्मरण करवाने पर भी वह एक भी पंक्ति न लिख सकें। श्री स्वामी ईशानन्द जी को तो उनका प्रमाद कहिए अथवा लापरवाही बड़ी चुभी। स्वामी ईशानन्द जी ने स्वयं मुझे सुनाया था कि उन्होंने पण्डित जी के इस व्यवहार पर बड़ा रोष प्रकट किया। श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज की भी उत्कट इच्छा थी कि पं शिवदत्त जैसा मर्मज्ञ विद्वान् साहित्यकार इस कार्य को करे। पण्डित जी वर्षों स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के चरणों में बैठकर शिक्षा प्राप्त करते रहे।

स्वामी सर्वानन्द जी महाराज के हृदय की विशालता देखिए और उनके हृदय में क्षमा व दया के भाव देखिए कि कैसे सहज स्वभाव से लिखते व कहते हैं, "किन्तु, वे अपनी व्यस्तताओं के कारण न लिख सके।" यह साधु के तरंगित-हृदय का शान्त रस है।

ये मुझे नहीं चाहिए

अब एक परम्परा चल पड़ी है कि यज्ञ व कथा आदि की समाप्ति पर उपस्थितजन यज्ञ के ब्रह्म व कथा करने वाले को कुछ राशि भेंट करते हैं। विद्वानों का सत्कार अच्छी बात है परन्तु स्वामी स्वतंत्रानन्द जी ने भी एक मर्यादा स्थापित की थी। संक्षेप में उनकी एक घटना यहां देनी आवश्यक हो गई है। जुलाई तथा अगस्त के दो मास मठ में प्रतिवर्ष कथा होती है। जब पहले-पहल कथा आरम्भ हुई तो समाप्ति से कोई दो-तीन दिन पूर्व श्री ला० देवदत्त जी ने अपने सहयोगियों से विचार किया कि कथा की समाप्ति पर सबको मठ के लिए कुछ न कुछ भेंट करना चाहिए। सबको यह बात जंची।

स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज को इस बात का पता चल गया। आपने अपनी कथा ३१ अगस्त की बजाए ३० अगस्त को समाप्त करने की घोषणा कर दी। यह घोषणा सुनकर सभी दंग रह गये। उसदिन लोग अपनी-अपनी भेंट लाए नहीं थे। कार्यक्रम की समाप्ति पर लोगों ने एकदिन पूर्व कथा समाप्त करने का कारण पूछा तो स्वामी जी ने कहा "कथा कोई

बिक्री की वस्तु नहीं है। पौराणिक ऐसा करते हैं कि कथा के अन्त में इसे धन-संग्रह का साधन बना लिया है। हमने कथा केवल वेद-प्रचार के लिए की है।"

यह घटना हमें अलवर के १९८८ के सम्मेलन में तब याद आ गई जब प्रातः यज्ञ की समाप्ति पर स्वामी सर्वानन्द जी महाराज का प्रवचन हुआ। प्रवचन के पश्चात् हम भी श्री महाराज के चरणस्पर्श करने यज्ञशाला में आगे गये। तब एक महिला ने कुछ रुपये निकाले और आधे ब्रह्मा जी को व आधे श्री स्वामी जी को देने लगी। स्वामी जी ने कहा, "यह किसलिए?"

ब्रह्माजी ने कहा, "यह आपको भेंट दे रही हैं।"

स्वामी जी ने कहा, "नहीं, मुझे नहीं चाहिए।" यह कहकर वे रुपये लौटा दिये।

हम पास में खड़े यह देख रहे थे। इकदम स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज की उपरोक्त घटना स्मरण हो आई। हमें यह समझने में तनिक भी देर न लगी कि महाराज ने, **"नहीं, मुझे नहीं चाहिए।"** ये शब्द क्यों कहें? महान् गुरु के महान् शिष्य आप धन्य हैं। अनायास ये शब्द हमारे अधरों पर आ गये। गुरु जी के द्वारा एक उत्तम मर्यादा का आप पालन कर रहे हैं। आपका त्याग धन्य है। **आपका व्रत धन्य है और आपको पाकर हम सब धन्य हैं।**

शुभकर्मों में सदैव सहायक व प्रेरक

धर्मरक्षा, जब कल्याण व सद्विचारों के प्रसार के प्रत्येक कार्य में श्री स्वामी जी महाराज सदैव सहायक होते हैं। जन-कल्याण का व सद्धर्म के प्रकाश करने का उन्हें अवसर मिल जावे तो हाथ से जाने नहीं देते। इसका एक अच्छा उदाहरण श्री चौधरी रामसिंह जी की जीवनी का प्रकाशन है।

विद्यामंदिर लखनऊ ने सन् १९६२ में हिन्दी साहित्यकोष नाम का ग्रन्थ प्रकाशित किया। हिमाचल के विख्यात साहित्यिक ग्राम घण्डरां, ज़िला कांगड़ा का विस्तृत परिचय पढ़ा तो आप चकित रह गये। हिमाचल के इतने बड़े विद्वान् साहित्य सेवी, राष्ट्र भाषा के उन्नायक का आपने नाम ही कभी नहीं सुना था। आपके मन में आया कि हम कितने कृतघ्न हैं जो अपने ऐसे ऐसे पूज्य पुरुषों को विसार देते हैं। हृदय को टीस लगी।

आप घण्डरां ग्राम की खोज को निकले। वहां पहुंचकर चौधरी जी के परिवार का अता-पता किया। उस क्षेत्र में चौधरी जी को सभी जानते हैं। उनके जीवन की कुछ घटनायें जाननी चाही। उन्हें कहा गया कि आप दीनानगर दयानन्द मठ के स्वामी श्री सर्वानन्द से सम्पर्क करें। वे उनके बारे में अधिक बता सकेंगे। डा० विद्याधर जी ने स्वामी जी को एक बड़ा भावपूर्ण पत्र लिखा और सूचित किया कि मैंने चौधरी जी की जीवनी लिखी है, इसे छपवाना चाहिए। स्वामी जी ने यह सामग्री मेरे पास भेजे देने के लिए उन्हें लिखा।

सामग्री उत्तम थी ही। मैंने स्वामी जी को लिखा, यह तो केवल आठ पृष्ठ बनते हैं। इसको प्रकाशित करने का विशेष लाभ न होगा। आप आज्ञा दें तो इसे कम से कम ५०-६० पृष्ठ की तो बनाया जावे। तभी पुस्तकालयों में सुरक्षित हो सकेगी।

स्वामी जी ने इस प्रस्ताव को स्वीकार करके चौधरी जी की डायरियां उनके ग्राम से प्राप्त की। कुछ संस्मरण भी भेजे। मेरे पास भी कुछ सामग्री थी। सबका उपयोग करके 'नींव का एक पत्थर चौधरी रामसिंह' पुस्तक प्रकाशित कर दी गई।

यदि पूज्य स्वामी जी इस कार्य के लिए आगे न आते और अपना सहयोग न करते तो यह कार्य तीन काल तक भी न हो पाता। मठ ने पुस्तक पर सारा पैसा लगाया और पुस्तक लगभग निःशुल्क ही वितरित कर दी। विद्वानों ने इसके प्रकाशन पर बधाइयां दीं और चौधरी जी के जीवन की ओर खोज का मार्ग खुल गया। उनकी अप्राप्य पुस्तकों व लेखों की खोज जारी है। इसका सारा श्रेय स्वामी जी को ही जाता है।

मठ में सामान की भीड़ क्यों?

श्री डा० ओम्प्रकाश जी गुप्त करनाल, धूरी के आर्यसमाज में स्वामी जी से वार्तालाप कर रहे थे। तब स्वामी जी ने एक घटना सुनाई। पठानकोट से एक श्रद्धालु आर्यसज्जन मठ में आए और स्वामी जी से कहा कि स्वामी जी! मेरे छोटे पुत्र का विवाह अभी हुआ है। सम्बंधियों ने सोफा सैट भी आग्रहपूर्वक दिया है। हमारे घर में तो पहले ही सोफा सैट था फिर बड़े पुत्रों के विवाह पर भी मिले। घर में इतने सोफा सैट क्या करने हैं। और भी सामान होता है। इस नये सोफा सैट ने तो और भी स्थान घेर लिया है। मुझे यह अच्छा नहीं लगता। मठ में सोफा सैट नहीं है। आप किसी को भेज कर मंगवा लें अथवा मैं जब आऊंगा तो लेता आऊंगा।

श्री स्वामी जी ने कहा, मठ में तो सोफा सैट चाहिए नहीं। यह साधु-आश्रम है। यहां गुदगुदे सोफे शोभा नहीं देते। इसे साधु-आश्रम ही रहने दें। आपके घर में तो इसने एक कमरा घेर रखा है फिर इससे हमारा कमरा घिर जावेगा। सामान ही कमरे घेर लेगा तो हमारे ब्रह्मचारी तथा साधु कहां जावेंगे? इसलिए मठ में सामान की भीड़ हम क्यों करें?

तब स्वामी जी ने डाक्टर साहेब से यह भी कहा कि आज गृहस्थों में सामान की अनावश्यक होड़ व दौड़ के कारण बड़े-बड़े नगरों में आवास की तंगी के साथ सामान की भीड़ ने घरों को और भी तंग बना दिया है। इस होड़ के कारण गृहस्थी और भी तंग हो रहे हैं।

पठानकोट के उस सज्जन से स्वामी जी ने यह भी कहा था कि आज आप सोफा सैट भेजेंगे, आपकी देखादेखी कल को कोई और श्रद्धालु अपने पुत्र के विवाह पर या किसी और अवसर पर कुछ और सामान भेज देगा। सामान की भीड़-भाड़ से मठ का वातावरण ही और का और हो जावेगा।

हमारे पाठक इस घटना पर विचार करें। कैसी प्यारी सोच है श्री स्वामी जी महाराज की। पश्िंचमी सभ्यता के प्रभाव से आज आपको ऐसे साधु भी मिलेंगे जो अपने आश्रमों को तपोवन बनाने के स्थान पर सुविधा सम्पन्न बंगलों का रूप देकर इतराते हैं।

ऐसा त्यागी-तपस्वी है मिलना कठिन

हम अन्यत्र भी लिख चुके हैं कि पूज्य स्वामी जी मठ की कोई भी संस्था तथा

औषधालय हो व संस्कृत-विद्यालय हो किसी के लिए भी सरकार से अनुदान नहीं लेते। एकबार संसद के कुछ संस्कृत-प्रेमियों के दबाव से सरकार ने संस्कृत-विद्यालयों को कुछ अनुदान दिया। एक शिक्षा अधिकारी अनुदान के कागज लेकर मठ में भी पहुंचा और स्वामी जी से निवेदन किया कि सरकार आपके विद्यालय को अनुदान देना चाहती है। इस कागज पर मठ के किसी व्यक्ति के हस्ताक्षर होने चाहिए।

स्वामी जी ने अनुदान लेना अस्वीकार कर दिया। इस पर उस शिक्षा अधिकारी ने कहा, **"महाराज! बार-बार शिक्षा अधिकारी अनुदान देने नहीं आयेंगे।"**

मुनिवर बोले, "स्वयं प्राप्त सरकारी अनुदान को अस्वीकार करने वाले भी पुनः आपको नहीं मिलेंगे।"

श्री महाराज से यह उत्तर पाकर वह शिक्षा अधिकारी नत मस्तक होकर मठ से विदा हुआ।

और उस महात्मा की सन्ध्या और लम्बी होती गई

मठ में एक शान्तस्वभाव संन्यासी सुव्रतानन्द जी बैठे-बैठे भी जप करते रहते थे। सन्ध्या-हवन करते थे तो बड़ी मस्ती से। वे भी मठ के निर्माताओं की दूसरी पंक्ति में आते हैं। उनके जीवन-काल में पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी कार्य अत्यधिक करने से दो-तीन बार बहुत रुग्ण हो गये।

स्वामी सुव्रतानन्द जी सन्ध्या करने बैठते तो उठने का नाम ही न लें। एकदिन स्वामी सुमेधानन्द जी ने उन्हें कहा, "स्वामी जी आप की सन्ध्या बहुत लम्बी होती जा रही है।" श्री स्वामी सुव्रतानन्द जी ने उत्तर में कहा, "प्रार्थना लम्बी करता हूं।"

स्वामी सुमेधानन्द जी ने कहा, 'भला प्रार्थना में क्या करते हो? इतनी लम्बी प्रार्थना में प्रभु से क्या कहते हो?"

वयोवृद्ध संन्यासी महात्मा का उत्तर सुनने-सुनाने योग्य हैं, पढ़ने व पढ़ाने योग्य है। अपने उत्तर में भक्त हृदय स्वामी सुव्रतानन्द जी ने सेवामूर्ति स्वामी सर्वानन्द जी के जीवन के एक पक्ष का अद्भुत चित्र चित्रण कर दिया। आपने कहा, 'श्री स्वामी जी जिस प्रकार से हमारी सबकी रक्षा व पोषण करते हैं, वह विलक्षण है। जब कभी वे अस्वस्थ हो जाते हैं तो चिन्ता हो जाती है और यह सोचकर तो एक सिहरन-सी पैदा हो जाती है कि कहीं इन्हें कुछ हो गया तो हमारा क्या बनेगा? अतः देर तक प्रातः-सायं प्रभु जी से प्रार्थना किया करता हूं कि हे प्रभो! मुझे स्वामी जी से पूर्व ही उठा लेना। जब तक जियूं उनकी छत्रछाया में ही जियूं। इन्हें दीर्घ-जीवन हो मेरे प्रभु!" ऐसी प्रार्थना मठ के वह अथक सेवक किया करते थे। ब्रह्मचारी उन्हें बूढ़े स्वामी जी कहा करते थे।

मठ के अन्तेवासी पूज्य स्वामी जी को किस दृष्टि से देखते हैं और उन पर सब अन्तेवासी कितना भरोसा करते हैं, यह इस उपरोक्त उत्तर में स्पष्ट है। संसार में यह तो देखने में आता है कि हिन्दु देवियां पति के जीवनकाल में ही शरीर छोड़ने की कामना करती हैं परन्तु एक महात्मा दूसरे परोपकारी

महात्मा के हाथों में शरीर त्यागने की प्रार्थना करे, यह एक निराली घटना है। इसका कारण श्री महाराज का अद्भुत सेवाभाव।

यहां इसी प्रसंग में हमें एक छोटी सी घटना याद आ गई। लेखक आर्यसमाज मंदिर नयाबांस में बैठा हुआ था कि आर्यसमाज मंदिर के एक कमरे में वयोवृद्ध भजनोपदेशक श्री पं० आशानन्द जी (तब कुछ अस्वस्थ थे) अपनी रसभरी आवाज़ से अपनी बनाई एक कविता गा रहे थे। उसका भाव यह था, "हे युवको! कभी हम भी नौजवान थे। अब हम इस संसार से विदा होने वाले हैं। युवको! तुम्हें बता दें कि इस संसार में वृद्धों को पूछने वाला मात्र एक ही महामानव है और वह है दीनानगर वाला सन्त स्वामी सर्वानन्द।"

जानने वाले जानते हैं कि पं० आशानन्द जी के कण्ठ में करुणारस भरा हुआ है। उनकी आवाज बड़ी दर्दीली है। उनका यह गाना सुनकर मेरे मन में आया कि स्वामी जी ने वृद्धों की सेवा के लिए जो ख्याति अर्जित की है सो तो की है परन्तु इनका इस क्षेत्र में कोई स्थान लेने वाला है क्या?

कभी पत्रों में अपनी चर्चा नहीं होने देते। भ्रष्टाचार में डूबे देश के भ्रष्ट कर्णधारों का ध्यान कभी इस महामुनि की ओर गया क्या? दूरदर्शन द्वारा देश के युवक-युवतियों को बिगाड़ने वाली बातें तो आएंगी। ऐसे दीनबंधु के प्रेरणाओं से भरपूर जीवन की चर्चा हमारे दूरदर्शन पर हुई क्या?

जब ब्रह्मचारी सन्ध्या-हवन के लिए जाते, तब

स्वामी जी महाराज के जीवन की कई घटनायें ऐसी हैं जिन्हें सुनकर व्यक्ति सोच के गहरे सागर में डूब जाता है और अनायास मुख से यह वाक्य निकलता है कि क्या सचमुच आज के गये बीते युग में भी इस धरती पर एक ऐसी पुण्यात्मा है। श्री आचार्य महावीर जी चम्बा ने अपने संस्मरणों में किसी बाबा सुबोधानन्द के मठ में रुग्ण होने की एक घटना लिखी है। संभवतः यह वही व्यक्ति है, जिनके पक्षाघात से रुग्ण होने के बारे में लेखक ने भी पीछे अपना एक संस्मरण दिया है।

मठ में स्वामी जी महाराज की कथा चल रही थी। संध्याहवन की घंटी बजने पर सब ब्रह्मचारी यज्ञशाला में पहुंच जाते। मठवासियों को यज्ञशाला में बिठाकर स्वामी सर्वानन्द जी महाराज अधरंग के रोगी सुबोधानन्द के मल मूत्र का कमोड उठाकर निकासी में फेंक आते। यह रोगी उन दिनों बिस्तरे से उठ भी नहीं सकते थे। बिस्तर में पड़े हुए ही शौच करना पड़ता था।

स्वामी जी महाराज ने कमोड उठाने का यह समय इसलिए चुना था कि कथा के पश्चात् यदि कमोड उठाया तो ब्रह्मचारी मुझसे कमोड ले लेंगे। वे नहीं चाहते थे कि ब्रह्मचारी प्रातःकाल ही इस कार्य में लग जायें। हम स्वामी जी के इस भाव को ऐसे कहेंगे कि उनके मन में तो सेवा की इक आग धधक रही है।

सुख-सुविधा का ध्यान नहीं

अपने शरीर की सुख-सुविधा की आपने कभी सोच ही नहीं की। एकबार मेरे लिखने पर

भी एक आर्यसमाज ने स्वामी जी महाराज का लौटती बार का आरक्षण न करवाया। यात्रा बड़ी लम्बी थी। इसका कारण कार्यकर्त्ताओं की सामाजिक कामों में व्यस्तता भी था और वे प्रभावशाली भी थे, उन्हें पता था कि हम रेल विभाग से स्वामी जी महाराज के लिए सीट ले ही लेंगे। वहां जाने पर स्वामी जी को भी यह पता लगा और मुझे भी। मुझे यह जानकर अत्यधिक कष्ट हुआ कि आर्यसमाज वालों ने कितना बुरा किया, जो इतनी दूर से स्वामी जी को बुलवा तो लिया, इस वृद्ध अवस्था में सैकड़ों किलोमीटर की बीस घण्टे की यात्रा आप कैसे करेंगे? गाड़ी में तो कोई घुसने भी नहीं देता। महाराज क्या खड़े-खड़े जावेंगे? मैं तो यह सोच सोचकर दुखी हो रहा था परन्तु स्वामी जी पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं देखा गया। वे तब भी सर्वथा शान्त रहे।

जब आपका चलने का समय हुआ तो पता चला कि आर्यसमाज के अधिकारियों ने निकट के एक स्टेशन से आपके लिए आरक्षण की व्यवस्था कर ली है। जब तक यह व्यवस्था नहीं हुई थी तब भी स्वामी जी ने इतना भी तो नहीं कहा कि मैं कैसे जाऊंगा। मेरे जाने की व्यवस्था कुछ तो करो। जब यह आरक्षण हो गया तब भी इतना ही कहा, "अच्छा किया।" वे प्रत्येक अवस्था में शान्त ही देखे जा सकते हैं। उनकी इस अन्तःस्थिति पर किसे गौरव न होगा और कौन है जिसे इस मनःस्थिति से स्पर्धा न हो परन्तु यह स्थिति चाहने मात्र से तो प्राप्त नहीं हो सकती। यह तो जन्म-जन्मान्तरों की सतत-साधना का फल है। इसकी प्राप्ति के लिए तो साधु को बहुत जप-तप करना पड़ता है। ऋषि ने लिखा है कि प्रार्थना से पूर्व पुरुषार्थ का होना आवश्यक है। अतः इस स्थिति की प्राप्ति के इच्छुक प्रत्येक पुरुष को अपनी चाहना को पुरुषार्थ से जोड़ना होगा।

चुपचाप यात्रा पर निकल पड़े, भक्त को पता न चल जावे

एकबार श्री स्वामी जी ने अजमेर ऋषि मेला पर जाना था। लेखक का भी वहां का कार्यक्रम था। यहां से लिखा कि यदि आप यहां पहुंच जावें तो गंगानगर से आरक्षण करवा दूं, मैं भी साथ चलूंगा। स्वामी जी किसी और मार्ग से अजमेर समय पर पहुंच गये। मैंने वहां पूछा, आप यहां कैसे पहुंचे?

स्वामी जी ने कहा, एक सिख सज्जन जो कि एक बैंक के मैनेजर हैं, ने कहा था कि बड़ा बुरा समय जा रहा है। आतंकवाद के कारण यात्रा करना भी कठिन हो गया है। स्वामी जी मैं आपको अपनी गाड़ी पर अजमेर पहुंचाऊंगा। वह आगे- पीछे भी आग्रह करते रहते हैं कि स्वामी जी जहां भी जावें, मेरी गाड़ी आपके लिए उपस्थित है। इस पर जाया करें। मैंने सोचा किसी को कष्ट क्यों देना है। मैं बिना बताए चुपचाप निकल आया। उन्हें पता चल जाता तो मेरे कारण काम छोड़कर घर से चलना पड़ता। मुझे तो मार्ग में कई स्थानों पर रुकना पड़ा और यहां भी तीन दिन लग ही जावेंगे।"

उस सज्जन के सौजन्य के लिए स्वामी जी ने उसकी प्रशंसा की और उसे तो वहीं धन्यवाद भी दिया परन्तु मेरे कारण किसी को असुविधा

न हो, इस विचार से 'चोरी-चोरी' दीनानगर से चल पड़े। जिसको सदा दूसरों का इतना ध्यान रहता है वह महात्मा सदा यही यत्न करते हैं कि उनके लिए किसी को कुछ न करना पड़े।

जिसके उपकार से लाखों नर-नारी, आबाल-वृद्ध दबे हुये हैं, उस विभूति का ऐसा चिन्तन! जन-जन के हृदय की यह आवाज है, ''महात्मन् आप धन्य हों! वह जननी धन्य थी। जिसने ऐसे नर-रत्न को जन्म दिया।

जब श्री मनीषीदेव के पिता पुत्र का उपालम्भ लेकर आए

मठ के एक पुराने विद्यार्थी श्री मनीषीदेव अब अमृतसर के एक आर्यसमाज में पुरोहित हैं। ये दीनानगर के एक समीपवर्ती ग्राम के निवासी हैं। एकबार लेखक के सामने मनीषी जी के पिता जी अपने पुत्र का उपालम्भ लेकर पूज्य स्वामी जी के पास आए और कहा कि आप मनीषी को समझाओ और डांट कर यह कहो, वह कहो। पिता को पुत्र पर किसी कारण रोष था। यहं मठ की एक परम्परा-सी बन गई है कि पहले स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के पास भी गृहस्थी अपने घर-गृहस्थी की सब प्रकार की समस्यायें लेकर आया करते थे और अब स्वामी सर्वानन्द जी के पास आते हैं। स्वामी जी सबका रोना सुनते हैं और सबके सहायक बनते हैं।

श्री मनीषी के पिताजी भी मठ में आते ही रहते थे। इसलिए स्वामी जी ने ध्यान से उनकी बात सुनी फिर उन्हें डाँटकर कहा, ''आज तुम अपने पुत्र का उपालम्भ लेकर हमारे पास आ गये हो और हमें कहते हो कि उसे डाँट-डपट करो और समझाओ। तुम्हीं ने उसे बिगाड़ा है। तुम्हारा पुत्र पढ़ने में अच्छा था। हम उसे बहुत बड़ा विद्वान पण्डित और आचार्य बनाना चाहते थे। तूने बाल्यकाल में उसका विवाह करके उसका नाश कर दिया। उसका सारा भविष्य बिगाड़ दिया। मनीषी की हानि की, मठ की हानि की और समाज की हानि की। क्या तूने हमसे पूछकर उसका छोटी आयु में विवाह किया? क्या तू नहीं जानता था कि हम बाल विवाह के विरोधी हैं?''

सहृदय पाठक इस डाँट-डपट के एक-एक शब्द पर विचार करें। इस डाँट-डपट में श्री महाराज की हृदय की कोमलता छिपी हुई है। मनीषी ऊँचे विद्वान् बन जाते तो मठ का इसमें क्या स्वार्थ था? मनीषी व उनके परिवार का ही यशोगान व कल्याण होता। पिता पुत्र की ही शोभा होती परन्तु इस साधु के मनोभावों को देखिए। महात्मा परोपकार के लिए छटपटा रहे हैं। मनीषीं व उसके पिता को अपनी हानि पर कोई पछतावा नहीं और यह देव-पुरुष हानि-लाभ का विचार कर के उन्हें डाँट सुनकर चुप हो गये। क्या कहते? फिर हाथ जोड़कर अपनी विनती की तो स्वामी जी ने कहा, ''अच्छा, आवेगा तो उससे पूछेंगे।''

एक मूक-पशु की सेवा में

दयानन्द मंठ घण्डरां से मठ के पुराने स्नातक श्री धर्मपाल शास्त्री ने एक संस्करण भेजा है। श्री धर्मपाल नें शास्त्री प्रथम वर्ष कक्षा में दीनानगर में प्रवेश लिया था। उन दिनों मठ में तीन कुत्ते थे। एक कुत्ते का नाम राहु रखा हुआ था। उसकी एक आँख फूटी हुई थी। उस

आँख में मैल (डीड) बहुत पैदा होती जाती थी। उस आँख को देखकर सबको ग्लानि-सी होती थी। ब्र० धर्मपाल जी को तो विशेष रूप से यह मैल देखकर बहुत घृणा हुआ करती थी।

एकदिन श्री ब्र० धर्मपाल ने देखा कि श्री स्वामी जी महाराज एक पत्ता लेकर उस मूक-पशु की उस फूटी आँख से मैल निकाल रहे हैं। यह दृश्य देखकर ब्रह्मचारी जी को बड़ा विस्मय-सा हुआ। यह मठ में नये-नये आए थे। इन्हें यह पता नहीं था कि स्वामी जी महाराज के लिए तो यह एक Routine का (दैनिक परिपाटी) बात है। ब्रह्मचारी ने दूसरे विद्यार्थियों को कहा, "देखो तो! स्वामी जी राहु की फूटी आँख से मैल निकाल रहे हैं। इनको मैल से तनिक भी घृणा नहीं होती है?"

तब पुराने ब्रह्मचारियों ने कहा, "स्वामी जी महाराज को जब कभी कुत्ते की आंख में मैल दिखाई दे तो साफ कर देते हैं। आप ग्लानि की बात करते हैं, महाराज को तो गाय, बैल, कुत्ता, बिल्ली किसी भी मूक-पशु की सेवा करके अद्भुत आनन्द की प्राप्ति होती है।"

फिर ब्रह्मचारी जी ने देखा गऊओं की आंखों को भी अपने हाथों से धोते रहते हैं।

हमारे परिवार में भी गऊ आदि पशुओं का पालन होता रहा है और मैंने अनेक कृषकों के घरों में भी पशु देखे हैं परन्तु मैंने आजतक किसी को गऊओं की आंखों की मैल धोते नहीं देखा। ब्रह्मचारी जी के संस्मरणों से ही मुझे यह नई जानकारी मिली है कि हमारे पूज्य स्वामी जी गऊओं की सेवा कितने भक्ति भाव से करते हैं तभी तो मठ की गऊएं अपनी बात मनवाने के लिए स्वामी जी के सामने सत्याग्रह भी करती हैं। गऊ के सत्याग्रह की घटना हम आगे देंगे। ब्रह्मचारी जी का राहु विषयक संस्मरण पढ़कर कहना पड़ता है:—

"महाराज महामहिमा तुमरी"

मठ में एक गऊ माता का सत्याग्रह

लेखक सपरिवार कुछ दिन के लिए मठ में गया। गर्मियों के दिन थे। एक बछड़ा कुछ रुग्ण था। मठ के ब्रह्मचारियों ने स्वामी जी से विचार करके उसे पशु हस्पताल में दिखाने का निश्चय किया। स्वामी जी ने कहा कि इसे एक रेड़ी में डालकर ले जाओ। चला कर मत ले जावें।

रेड़ी का प्रबन्ध हो गया। दोपहर का समय था। यज्ञशाला से गऊशाला को जाने वाले मार्ग पर ब्रह्मचारियों ने बछड़े को रेड़ी में डाला। लेकर चलने ही लगे थे कि बछड़े की मां रस्सा तुड़वाकर शोर मचाती वहां पहुंच गई। वह यह समझी कि मेरे बच्चे को मुझ से पृथक् किया जा रहा है। वह मारने को दौड़ती थी। यह दयानन्द मठ है। गाय को लाठी आदि से मारकर तो ब्रह्मचारी उसे दूर हटा नहीं सकते। वहां गऊ को मारने की कोई सोच ही नहीं सकता। अब क्या करें?

ब्रह्मचारियों ने आचार्य जगदीश जी आदि गुरुजनों को पुकारा। वे सब आ गये। हमारा परिवार भी यह शोर सुनकर वहां पहुंच गया। गऊशाला में गऊओं की सेवा करने वाले सब ब्रह्मचारियों ने गऊ को प्यार देकर बछड़े से पीछे करना चाहा परन्तु वह तो घूरती व सींग दिखाती। पूज्य स्वामी जी महाराज भी आ गये। उनके आते ही गाय महाराज की छाती से लिपट

गई। अब लगे हमारे स्वामी जी उस गऊ का नाम लेकर उससे मीठी-मीठी बातें करने। उस पर हाथ भी फेरते रहे। उसको समझाते भी रहे। मेरी छोटी पुत्रियां कु० कविता आर्या व कु० प्रियंका आर्या महाराज का वार्तालाप सुन-सुनकर गद्गद् हो रही थीं। गऊ माता सब को घूरती थी परन्तु स्वामी जी को घूरती तो नहीं थी, उनकी छाती से सिर लगाकर उनकी बातें ध्यान से सुनती। जब महाराज कहते, "अच्छा। अब बच्चे को जाने दे, इसे अभी दिखाकर ले आवेंगे, अब तू पीछे हो।"

इस पर वह और हठ पर उतर आती। छाती से और चिपटती और अपनी फर्याद करती। फिर पन्द्रह मिनट का महाराज का उपदेश होता। गऊ फिर भी अपनी ही बात कहती। उसकी आंखें ही उसका भाव बताती थीं और उसके शोर को महाराज ही समझते थे। इसप्रकार कई बार स्वामी जी ने अपनी अमृतभरी वाणी से उसे उपदेश दिया परन्तु उपदेश का उस पर इतना ही प्रभाव हमने देखा कि वह स्वामी जी की सुन लेती, उन्हें घूरती भी नहीं थी परन्तु उपदेश सुनने के पश्चात् उन्हें लिपट-चिपटकर अपना यह सत्याग्रह कर देती कि रेड़ी यहां से नहीं जाने पावे। उसका आन्दोलन स्वामी जी के कारण अहिंसात्मक तो रहा परन्तु यह सत्याग्रह किसी प्रकार भी ठण्डा न पड़ा। यह दृश्य और यह घटना मेरे लिए सदा अविस्मरणीय रहेगी।

अन्त में सत्याग्रही गऊमाता का सत्याग्रह पूर्णरूपेण सफल रहा। स्वामी जी महाराज ने उसकी मांग स्वीकार कर ली। सारा मठ हार गया। श्री महाराज ने गऊ माता की विजय की घोषणा करते हुये ब्रह्मचारियों से कहा, "डाक्टर साहेब से कहो कि स्वामी जी ने कहा है कि बछड़े को यहीं आकर देखें।

जिन लोगों के लिए मानव-जीवन केवल पञ्चभूतों का ही पुतला है। इसमें आत्मा नहीं है, ऐसे व्यक्ति इस घटना का मर्म क्या समझेंगे? इस घटना का आनन्द वही लूट सकते हैं जो प्रकृति के अतिरिक्त आत्मा की सत्ता को भी स्वीकार करते हैं और जिन में जीव दया का कुछ भाव है। पशु पालन करने वाले और पशुओं में अपने जैसे आत्मा का दर्शन करने वाले मनुष्य इस घटना का रसास्वादन कर पायेंगे।

हा! मालटे का एक पेड़ टूट गया

श्री पं० रामचन्द्र जी का छोटा भतीजा अमीरसिंह मठ में प्रविष्ट हुआ। यह स्वामी स्वतंत्रानन्द काल की बात है। ब्र० अमीर सिंह के मठ में होते ही श्री पं० रामचन्द्र जी ने संन्यास लिया था। एकबार मठ के एक खेत में रात्रि को हल चलाना था। मठ का हाली कहीं गया हुआ था बैलों की जोड़ी में एक बैल ऐसा था जिससे कोई अनुभवी हाली ही काम ले सकता था।

स्वामी सर्वानन्द जी ने अमीरसिंह को जगाकर कहा कि ब्रह्मचारी जी आपने तीन बजे अमुक खेत में हल चलाना है। अमीरसिंह बैलों को लेकर खेत में हल चलाने चला गया। एक बैल बहुत भागता था। उसे सम्भालना कठिन था। जैसे कैसे अमीर सिंह जी ने उससे काम लिया फिर भी उसने अपनी भाग-दौड़ में उस खेत में लगे एक मालटे का पड़े तोड़ डाला।

ब्र० अमीरसिंह ने स्वामी जी को बताया कि पेड़ टूट गया। यह सुनकर स्वामी जी को बड़ा दुःख हुआ और बोले, "इतने सालों में यह पेड़ तैयार हुआ था, तुझे पता है?"

ब्र० अमीरसिंह ने कहा, "बचाने का तो पूरा-पूरा यत्न किया परन्तु बैल ने भागते हुए तोड़ ही दिया।"

स्वामी जी ने कहा, "अच्छा!" यह कहकर फ़िर हंस दिये। अमीरसिंह जी ने बताया कि पेड़ के टूटने का जो दुःख उन्हें हुआ, यह तो उनके चेहरे से ही पता लग रहा था, कभी भी किसी पेड़ को कोई क्षति पहुंचे, यह स्वामी जी को बहुत अखरता है। उन्हें पेड़ों से भी बहुत प्यार है।

डा० शिवपूजन सिंह जी कुशवाहा ने बताया

आर्यसमाज शताब्दी महासम्मेलन दिल्ली की घटना है। पिण्डाल की ओर जाने वाले मार्ग पर नीचे धरती पर अपनी कुछ पुस्तकें लगाए श्रीमान् डा० शिवपूजन सिंह जी कुशवाहा बैठे थे। उन्हें देखकर मैं तथा प्रा० अशोक आर्य गिदड़बाहा वहां रुक गये और बैठकर उनका कुशल-क्षेम पूछा। मैंने यह भी पूछ लिया—आप अपना साहित्य जो लाए हो कुछ बिका भी?

कुशवाहा जी बोले, बैठने का तो स्थान नहीं मिला। साहित्य कौन लेता है? हां! दीनानगर वाले पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज ने बड़ी कृपा कर दी। वे इधर से निकले तो इधर जितने भी मार्ग पर बैठे पुस्तकें बेचने वाले हैं, उन सबसे कुछ साहित्य क्रय करके ले गये। उनके साथ वहां के आश्रम के कुछ ब्रह्मचारी भी थे। मेरे पास भी आ गये। पुस्तकें देखते हुये मेरा परिचय भी पूछ लिया। मैंने अपना नाम बताया तो स्वामी जी ने कहा, "कोई सेवा हमें भी बताओ।"

उनके इन प्यार भरे शब्दों को सुनकर ही मैं तो तृप्त हो गया। उन्होंने अपने ब्रह्मचारियों को कहा—इनका सारा साहित्य ले लो। वे बहुत-सा माल ले गये। राशि भी मुझे बताई, जो अब मुझे याद नहीं है। कुशवाहा जी ने कहा, "मैंने तो ऐसा ग्राहक ही कभी नहीं देखा।" स्वामी जी के साथ अपनी इस भेंट का वृत्तान्त सुनाते हुये उनका चेहरा खिल उठा। ऐसा साधु धन्य है। ऐसे महापुरुष कहां मिलते हैं? **संन्यासी हो तो ऐसा। स्वामी जी का नाम लेते ही कुशवाहा जी की सब उदासी भाग गई।**

सबके सद्गुणों की व समाज-सेवा की प्रशंसा

प्रजातन्त्रीय ढांचे के कारण आर्यसमाज में दलबन्दी तो थोड़ी-बहुत सदा ही रही है। विदेशीशासन के गुप्तचर रायबहादुर मूलराज के कारण आरम्भ में दलबन्दी उग्र हुई और स्वातंत्र्योत्तर काल में राजनैतिक लोगों की लालसा के कारण दलबन्दी उग्र हुई। पूज्य स्वामी जी को कभी भी किसी ने दलबंन्दी में लिप्त नहीं पाया। उनके मुख से आप सदैव दूसरों के सद्गुणों व समाज-सेवा की प्रशंसा ही सुनेंगे। कोई भी व्यक्ति किसी भी गुट का क्यों न हो, जिसमें जो गुण होगा, वे उस गुण के लिए

उस व्यक्ति की प्रशंसा ही करेंगे, भले ही उसका संबंध किसी भी दल से क्यों न हो।

आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब में कुछ पदलोलुप लोगों ने जब हरियाणा व पंजाब के आर्यों में प्रान्तवाद का विष फैलाया था, उन दिनों मठ में किसी भाई ने इस दुखद स्थिति की चर्चा छिड़ जाने पर श्री महाशय कृष्ण जी की नीतियों की कड़ी आलोचना की। स्वामी जी ने बड़े शान्तभाव से उसकी बात सुनी और कहा महाशय जी में एक विशेष गुण यह है कि यदि किसी आर्यपुरुष पर आपत्ति आए तो बिना किसी को बताएं उसकी सहायता करते हैं। आपने कहा कि एक बार सभा के लिपिक श्री मुंशीराम बड़े रुग्ण हो गये। बचने की आशा ही नहीं थी। मुंशीराम जी खर्चीला इलाज करवाने में समर्थ ही न थे।

महाशय जी मुंशीराम जी का पता करने गये तो आने से पहले चुपचाप उनके सिरहाने के नीचे पांच-छः सौ रुपये रख आए। यह देश-विभाजन से पहले की बात है। मुंशीराम जी ने स्वयं यह बात सभी को कृतज्ञतापूर्वक सुनाई। स्वामी जी के मुख से यह बात सुनकर उस भाई सहित सब सज्जन जो वहां यह चर्चा कर रहे थे, बहुत-बहुत प्रभावित हुये।

उन्हीं दिनों स्वामी वेदानन्द जी सभा के महामंत्री चुने गये तो दलबन्दी में किसी ने उनके बारे में भी कुछ कहा तो स्वामी जी ने कहा, स्वामी जी अकेले इतना काम करते हैं, जो बीस व्यक्ति मिलकर भी नहीं कर सकते। 'स्वाध्याय सन्दोह' जैसा ज्ञानकोश कुछ ही दिनों में लिख देना स्वामी वेदानन्द जी का ही काम था। कोई लिख सकता है ऐसा ग्रन्थ और इतने स्वल्पकाल में?

श्री सिद्धान्ती जी की चर्चा यदि कोई करता तो स्वामी जी सुनाया करते कि देखो यह वह व्यक्ति है जिसने सेना में रहकर भी अपनी कट्टरता व दृढ़ता दिखाई। मांस को छुआ तक नहीं। लाहौर में दंगा हुआ तो स्वामी स्वतंत्रानन्द जी ने इन्हें देवतास्वरूप भाई परमानन्द जी के जीवन की रक्षा का काम सौंपा। सिर हथैली पर धर कर श्री सिद्धान्ती जी भाई परमानन्द के निवास पर पहरा देते रहे।

स्वामी जी दोनों पक्षों की अच्छी बातों की चर्चा करके सबको जोड़ने का ही यत्न करते थे। ऐसी बात नहीं कि समाज की हानि देखकर आपको दुःख न होता था। आप दोनों पक्षों के महारथियों को उनकी भूलों के बारे में एकान्त में समझाया करते थे। स्वामी जी बुरी बात को अच्छा कभी भी नहीं कहते। बुरी को बुरा ही कहते हैं।

उनकी साख— उनकी सिद्धान्तनिष्ठा

अमृतसर की एक विख्यात फार्मेसी के सञ्चालक दयानन्द मठ दीनानगर आए और पूज्यपाद स्वामी सर्वानन्द जी महाराज से कहा, "हमें आप मठ की फार्मेसी का स्थान दे दें और इसी नाम का प्रयोग करने दीजिए। हम बैठे बिठाए आपको एक बड़ी राशि प्रतिवर्ष दे दिया करेंगे। मठ की इस फार्मेसी से मठ के सेवा कार्यों व वैदिक धर्म-प्रचार के लिए, जो फार्मेसी को आय होती है, उससे कहीं अधिक हम मठ को देंगे।"

पूज्य स्वामी जी ने यह विनती इकदम अस्वीकार कर दी और कहा, ''हमें धन नहीं चाहिए। हम न तो अपनी संस्था का नाम बेचेंगे और न ही व्यवसाय के लिए किसी को मठ का स्थान देंगे। आपका उद्देश्य तो धनोपार्जन है। यहां औषधियां घटिया बनेंगी तो अपयश आश्रम को मिलेगा। हम मठ की साख नहीं बेच सकते।''

यही है धर्मानुराग! यही है त्याग भाव! यही है संन्यास-धर्म!

हमें किसी आर्यपुरुष से इस घटना की जानकारी मिली थी। हमने पूज्य स्वामी जी से इस घटना की सच्चाई के बारे में जानना चाहा तो आपने इसकी पुष्टि करते हुये कहा कि उन्होंने बहुत आग्रह किया, विनती की परन्तु, हमने स्पष्ट कह दिया कि न हमें आपका धन चाहिए और न ही हम मठ का नाम धन के लिए बेचेंगे।

इस पर हमें श्रद्धेय स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज की एक घटना याद आती है। हैदराबाद के निजाम पर विजय पाकर जब श्री महाराज देहली पधारे तो सेठ जुगलकिशोर ज़ी बिड़ला ने स्वामी जी के शिष्य श्री पं० रुचिराम जी को स्वामी जी के पास विनती करने के लिए भेजा कि हमारे निवास पर दर्शन दीजिए, हम एक बहुत बड़ी दक्षिणा आपको भेंट करेंगे। सेठ जी स्वामी जी के प्रति श्रद्धा तो बहुत दिनों से रखते थे परन्तु यह निमंत्रण का ढंग फ़कीर को न जंचा और दर्शनों के साथ राशि को जोड़कर तो सेठ जी ने और भी विचित्र काम कर दिया।

स्वामी स्वतंत्रानन्द जी ने उत्तर दिया, ''जाओ! सेठ जी से कह दो कि आपको दर्शन देने वाले और बहुत हैं।''

ऐसे निर्लेप साधु ने इस पूज्य संन्यासी को घड़-घड़ कर बनाया है। श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज को ऋषि-जीवन की दो घटनाओं से विशेष लगाव है। ऋषि ने सत्य के लिए, प्रभु के लिए ओखी मठ की गद्दी ठुकरा दी। ऋषि ने सद्धर्म का प्रकाश करते हुये एकलिंग महाराज की गद्दी, महाराणा सज्जन सिंह के कहते ही ठुकरा दी। ये हैं आदर्श हमारे स्वामी जी के। ये आदर्श उनकी वाणी पर नहीं रहते, आपने इन्हें अपने जीवन में अनुपाणित करके दिखया है।

परोपकार का ऐसा ऊंचा भाव

श्री स्वामी सुमेधानन्द जी वानप्रस्थी व देवदत्त जी ने एकबार लेखक को मठ में एक घटना सुनाई। च्यवनप्राश बन रहा था। पूज्य स्वामी जी डिब्बों में च्यवनप्राश भरने से पूर्व एकबार स्वयं उसका निरीक्षण अवश्य करते हैं। एक कड़ाहा च्यवनप्राश का कुछ ठीक न बना। स्वामी जी महाराज ने कहा, ''इसे डिब्बों में मत भरें।'' फार्मेसी में कार्य करने वाले सब लोगों ने कहा, कारण का तो पता नहीं कि यह कड़ाहा इतना बढ़िया क्यों नहीं बना। इसमें भी शास्त्रीयविधि के अनुसार सब कुछ ठीक-ठीक अनुपात से ही डाला गया। कोई हानि नहीं। जाने दो, इसे डिब्बों में भर देते हैं।

स्वामी जी ने कहा, ''नहीं, रुकिए। इसे डिब्बों में मत डालें।'' इस पर किसी ने पूछा तो क्या इतने बड़े कड़ाहे का यह माल फेंक दिया जावे?

स्वामी जी ने कहा, किसी के पास जावे तो बढ़िया ही वस्तु जावे। जब इसमें कुछ कमी रह

गई है तो इसे क्यों किसी को बेचा जावे? इसमें कमी तो कुछ नहीं। तैयार करते हुये आंच ठीक नहीं दी गई। इसको भी ठीक करने की शास्त्र में विधि है। उस कड़ाहे को दोबारा आग पर चढ़ाया गया। उसमें जो वस्तु मिलानी थी और मिला दी गई। वह कड़ाहा भी ठीक तैयार हो गया। उसकी कमी दूर हो गई। तब कहीं जाकर स्वामी जी ने उस च्यवनप्राश को पैक करने दिया। है कोई फार्मेमी जिसमें आत्मवत् व्यवहार के ऊंचे आदर्श के अनुसार औषधि के गुण व शुद्धता का इतना ध्यान रखा जावे।

स्वामी सुमेधानन्द जी ने बताया कि यदि किसी औषधि में ऐसा दोष हो जो दूर न किया जा सकता हो तो स्वामी जी फेंकवा देंगे, दोषयुक्त कोई भी औषधि यहां फार्मेसी में नहीं रखी जा सकती है, न बेची जा सकती है। और न ही तनूपा औषाधालय में किसी रोगी को घटिया औषधि दी जाती है। यह घटना सन् १९७२ की होगी।

जब पूज्य स्वामी जी गुरुकुल कांगड़ी के रिसीवर थे तो गुरुकुल का वैद्य मण्डल मठ में स्वामी जी से मिलने गया। स्वामी जी उस समय खेतों में किसी काम गये हुये थे। फार्मेसी में तब च्यवनप्राश बन रहा था। मठ में व्यक्तियों ने वैद्य मण्डल से कहा कि हम आपकी क्या सेवा करें? यह च्यवनप्राश तैयार हो रहा है। इसे ही चखिए। उन्होंने थोड़ा-थोड़ा च्यवनप्राश लिया। इसे चख कर कहा, इस युग में इतनी महंगाई में आप इतना बढ़िया स्वादिष्ट च्यवनप्राश कैसे बना लेते हैं। आपके च्यवनप्राश का भाव भी हम से व अन्य फार्मेसियों से कम है। आप इतना शुद्ध मधु डालते हैं। सड़ा-गला आमला मण्डी से नहीं लेते, अपनी वाटिका के ताजा तथा बढ़िया आमला का प्रयोग करते हैं। हमारी च्यवनप्राश की बिक्री आपसे कहीं अधिक है परन्तु हम तो ऐसा उत्तम च्यवनप्राश उपलब्ध नहीं करा सकते।

मठ वालों ने कहा, आपके सब प्रश्नों का एक ही उत्तर है, "हमारे पूज्य स्वामी जी।"

स्वामी जी व्यापारिक दृष्टिकोण से नहीं, परोपकार को मुख्य रखकर फार्मेसी को चलाने का निर्देश देते हैं। हमारे जैसे व्यक्ति जो चालीस वर्ष से मठ के च्यवनप्राश का सेवन करते आ रहे हैं, स्वयं चकित हैं कि मठ अपने च्यवनप्राश को इतना सस्ता कैसे दे पाता है।

पं० रामचन्द्र भाग-भाग कर मिट्टी ढोते रहे

श्री स्वामी ओमानन्द सुनाते हैं कि जब स्वामी जी लाहौर के दुर्ग से छूट कर आए तो मैं भी कुछ समय के पश्चात् स्वामी जी से वेदान्त दर्शन पढ़ने मठ में गया था। वहां मैं एक मास रहा। वहां प्रतिदिन एक घण्टा सबको श्रम करना होता है। मठ की भूमि बहुत नीची थी। स्वामी जी की कुटिया के पीछे आमों के पेड़ों के साथ जो टीले हैं, वहां से मिट्टी ढो-ढो कर अन्दर डाली जाती थी। तब आचार्य भगवान्देव जी जवान ही थे और पं० रामचन्द्र जी भी। आचार्य भगवान्देव (स्वाभी ओमानन्द जी) कस्सी से बट्ठल भर-भर कर देते गये। पं० रामचन्द्र भाग-भाग कर मिट्टी ढोते रहे। तब उनका बल, उत्साह व श्रद्धा सब देखे ही बनते थे।

ऐसी ही एक घटना विद्याभूषण श्री पं० शिवकुमार जी शास्त्री सुनाया करते थे।

आचार्य दिनकर शास्त्री का एक संस्मरण

धाराशिव महाराष्ट्र के श्री दिनकरराव शास्त्री सन् १९७५ से १९८८ तक मठ में रहे। आप अपने संस्मरणों में आचार्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज के संबंध में अपने मनोभावों को इन शब्दों में लिखते हैं, "स्वामी सर्वानन्द जी महाराज एक सच्चे पिता, सच्चे बंधु, सच्चे मित्र और एक सच्ची माता की भूमिका निभाते हैं। उनके सहवास में रहते-रहते हमें अपने घर की और माता-पिता की कभी याद नहीं आती थी।"

आपने एक घटना इस प्रकार से लिखी है कि एकबार मैं अपने अध्ययन काल में स्वामी जी की आज्ञा के बिना चंडीगढ़ चला गया फिर एक सप्ताह के पश्चात् मठ में लौटा। मैं वहां स्वामी जी महाराज तथा मठ के रमणीय वातावरण के बिना उदास हो गया। मेरा वहां मन कतई न लगा। मठ में पहुंचकर मैं पूज्यपाद स्वामी जी के चरणों में पहुंचा तो आपने केवल इतना ही कहा, "आप थक कर आए होंगे। आप कुछ विश्राम कीजिए ।"

बस और कुछ भी न कहा। नियम पालन में सुकठोर पूज्य स्वामी जी महाराज के इन कोमल शब्दों व मृदुल व्यवहार से अबोध अनुभवहीन शिष्य भाव विभोर हो गया। दिनकर जी ने लिखा है कि मुझे ऐसा लगा कि जैसे किसी माता-पिता का पुत्र घर से भाग जाता है और फिर घर आ जाता है तो उसे पुनः अपने पास पाकर माता-पिता आनन्दित हो जाते हैं, वैसे ही मुझे मठ में फिर से पाकर गुरुवर्य स्वामी जी महाराज मेरे वापिस आने पर प्रसन्न हो गये।

उनके ऐसे मृदुल व्यवहार का स्मरण करते हुये मैं सदा यही अनुभव करता हूं कि आप मेरे लिए आदर्श पिता, माता, बंधु व सखा हैं।

छोटे बच्चों के स्वामी जी

श्री स्वामी जी महाराज वृद्ध, युवक, बाल सबसे निभाना जानते हैं। आपको सभी से काम लेने की कला आती है। बच्चे भी आपके प्रति बहुत आकर्षित होते हैं। इस समय तो देश में विशेष रूप से पंजाब में अराजकता व अशान्ति है। गुरदासपुर जिला की स्थिति और भी दयनीय है। बारह-चौदह वर्ष पहले की बात है कि आसपास के ग्रामों के कुछ सिख सज्जनों ने अपने बच्चों के सुधार के लिए उन्हें शिष्ट व गुणी बनाने के लिए स्वामी जी से कहकर मठ में छोटे बालकों की पढ़ाई की व्यवस्था करवाई थी। मठ में छोटे बच्चे तो रखे नहीं जाते परन्तु तब स्वामी जी को भक्तों की बात माननी पड़ी। वे बालक पढ़कर घर चले जाते थे। इन बालकों में उस क्षेत्र के अत्यन्त प्रतिष्ठित सिख भाइयों के बच्चे भी थे। सभी को संस्कृत भी पढ़ाई जाती थी। जब वे भोले भाले बालक पूज्य स्वामी जी के चरण छूते थे और मठ में आने वाले व्यक्तियों को सादर नमस्ते करते थे तो उन बच्चों के माता-पिता भी यह दृश्य देखकर आनन्दित हो जाते थे। वातावरण दूषित हो जाने के कारण यह विद्यालय बन्द करना पड़ा।

इस नन्हीं पाठशाला के लिए न तो कोई कमरा बनवाया गया और न ही कोई बैंच व कुर्सी मंगवाई गई। किसी से कुछ फ़ीस या धन लेने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। गुरुकुलीय पद्धति से वे बालक यज्ञशाला में बैठकर पढ़ते थे। किलकारियां मारते हुये वे घरों से मठ की ओर आते थे। जब स्वामी जी महाराज कहते कि जाओ, अब घरों को, तो वे बालक घर जाने को विवश होते थे।

बालकों के मन में स्वामी जी महाराज के प्रति कितना आकर्षण है। इसकी एक छोटी सी घटना हमें नहीं भूलती। श्री यश जी जब दीनानगर में प्रिंसिपल थे तो आप प्रायः प्रतिदिन सायंकाल मठ में जाया करते थे। संस्थाओं व आर्यसमाज संबंधी स्वामी जी से चर्चा होती रहती थी। एकदिन आपका मठ जाने का समय निकल गया परन्तु आप तैयार नहीं हुये। आपके सबसे छोटे पुत्र अजय भारती ने कहा, "पिता जी! आज स्वामी जी के पास नहीं जाना क्या?" बच्चे ने यह प्रश्न इसलिए किया क्योंकि वह नित्यप्रति पिता जी के साथ मठ में जाया करता था।

पिता ने हंस कर कहा "क्यों, स्वामी जी का तेरे बिना कौन सा काम रुका हुआ है?"

उसने फिर आग्रह किया कि नहीं स्वामी जी के पास चलो, मैंने भी जाना है।

'महाराज महामहिमा तुमरी'

श्री स्वामी जी महाराज की महिमा का वर्णन करना बड़ा कठिन कार्य है? यह ग्रन्थ लिखते हुये आपका एक पुराना पत्र हमारे सामने आ गया। रक्तसाक्षी पं० लेखराम का बृहद् जीवन चरित्र हम लिख रहे थे। पंडित जी का वास्तविक चित्र चाहिए था। प्रायः प्रचलित चित्रों में उनकी दाढ़ी होती है। यात्राओं के कारण दाढ़ी बढ़ जाती थी अन्यथा पण्डित जी दाढ़ी नहीं रखते थे।

हमें ध्यान आया कि मठ के पुस्तकालय में एक पुस्तक में यह चित्र है। हमने आपसे विनती की कि यह चित्र किसी कुशल फोटोग्राफर से बनवाकर भेजें। एक सप्ताह के भीतर आपने चित्र भेज दिया।

जब कभी हमने लिखा कि मठ में पुस्तकालय में अमुक पुस्तक से अमुक प्रमाण पूरा-पूरा लिखवाकर भेजने की कृपा करें तो तत्काल वह कार्य हो जाता है। स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज के जीवन-चरित्र के लिए श्री प० चमूपति जी की कुछ पंक्तियां आपसे मंगवाईं तो आपनें बड़ी प्रसन्नता से यह कार्य कर दिया। आपको प्रत्येक भले कार्य में सहयोग करते हुये एक अद्भुत आनन्द की अनुभूति होती है। महापुरुषों की यही तो विशेषता होती है।

इसके विपरीत जब आपको निज जीवन संबंधी कुछ प्रश्न भिजवाए तो आप चुप्पी ही साध गये। आप नहीं चाहते कि आप द्वारा किए गये किसी भी कार्य की कोई चर्चा करे। कहां-कहां पढ़े और कब-कब पढ़े— ऐसे तथ्यों को बताते हुए भी आप सुकचाते हैं। किसलिए? आप समझते हैं कि ऐसा पता लगने पर भक्तजन मेरे जीवन-चरित्र का प्रचार करेंगे। आपके इस व्यवहार को देखकर हमारे मुख से अनायास यह पंक्ति निकलती है:—

स्वामी जी की गुरु भक्ति और नम्रता की पराकाष्ठा

पूज्य आचार्य प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति जब मठ में कथा करने के लिए आमन्त्रित किये गये तो प्रथम दिन श्रद्धेय श्री स्वामी जी ने आचार्य जी के चरण-स्पर्श करके नमस्ते की। आचार्य जी का इस प्रकार से अभिवादन करके आपने दर्शा दिया कि आपके हृदय में वेद-वाणी के एक मर्मज्ञ विद्वान् के प्रति कैसी अगाध श्रद्धा है। आप आचार्य जी के शिष्य भी रहे हैं और सहयोगी अध्यापक भी। आपने अपने इस व्यवहार से सिद्ध कर दिया कि इस यशस्वी विद्वान् का शिष्य भी कोई साधारण व्यक्ति नहीं है। आचार्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज की विनम्रता पर कुछ लिखने में हमारी लेखनी सर्वथा असमर्थ है।

इस संबंध में दयानन्द मठ, दीनानगर के श्री आचार्य जगदीश जी से कुछ प्रश्न पूछे। वह कथा के दिनों में मठ में ही थे। आपने एक प्रश्न के उत्तर में कहा कि आचार्य प्रियव्रत जी ने कहा, "आप मेरे शिष्य रहे हैं, यह तो ठीक है परन्तु आप मुझसे बहुत आगे निकल चुके हैं। मैं एक गृहस्थी हूं और आप एक संन्यासी। अतः आप चरण-स्पर्श करके नमस्ते न किया करें। पूज्य आचार्य जी अब प्रतिदिन स्वामी जी के नमस्ते करने से पूर्व ही नमस्ते कर देते और चरण छूने का अवसर ही न देते।

स्वामी जी महाराज के हृदय की गहराई को समझने के लिए इसी संबंध में एक और घटना का पता चला। आपने कुछ समय पूर्व श्रद्धेय आचार्य जी को एक पत्र लिखा। उसमें बहुत भावपूर्ण ढंग से आचार्य पत्नी के प्रति अत्यन्त आदर से ये शब्द लिखे, **"माता जी को मेरा नमस्ते कहिए।"**

गाय को डांटते नहीं

गाय के संबंध में श्री स्वामी जी की अनेक घटनाएं भक्तों से सुनने को मिलती रहती हैं। श्री महाराज की गो-भक्ति व गो-सेवा को लेखक ने स्वयं भी निकट रहकर देखा है। श्री तिलकराज जी दिल्ली ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि एक गाय स्वामी जी के पास आकर खड़ी हो गई। स्वामी जी उसकी पीठ पर हाथ फेरते रहे। कुछ समय के पश्चात् एक ब्रह्मचारी ने गाय को डांटते हुये कहा, "अब बस कर, चली जा।"

श्री स्वामी जी ने ब्रह्मचारी से कहा, गाय को डांटते नहीं। प्यार से हटाते हैं। कोई बात नहीं, अभी उसका मन नहीं भरा। और कुछ देर में चली जाएगी।" स्वामी जी हाथ फेरते रहे। कुछ समय तक वह प्यार लेती रही फिर चली गई।

यात्रा में इतना सामान?

नेपाल जब जाने लगे तो देहली में लुधियाना से पहुंची दो वानप्रस्थी मातायें भी थीं। उनका सामान देखकर स्वामी जी ने कहा, "इतना सामान लेकर आप चलेंगी। यात्रा में सामान थोड़ा होना चाहिए। यदि आप थोड़ा नहीं कर सकते तो नगों की गिनती कम करो। इनको इस प्रकार से बांधो कि नग कम हो जावें ताकि चढ़ने तथा उतरने में सुविधा रहे।

बिल्ली कुछ कहना चाहती थी

दीनानगर में स्वामी जी के आश्रम में बिल्ली व कुत्ते इकट्ठे खेलते रहते हैं। "दैनिक वीर प्रताप" में कोई पन्द्रह वर्ष पूर्व एक चित्र छपा था। एक बिल्ली ने कुत्ते के मुख में अपना मुख दे रखा था। दोनों खेल रहे थे। यह चित्र दयानन्द मठ के कुत्ते-बिल्ली का था। इन पंक्तियों के लेखक ने कई बार मठ में ऐसा दृश्य देखा है। प्राचीनकाल में ऋषि-मुनियों के आश्रम ऐसे ही दृश्य उपस्थित किया करते थे। हिंसक मांसाहारी पशु भी महात्माओं के आश्रमों में रहकर अहिंसक व शान्तिप्रिय बन जाते हैं।

श्री तिलकराज ने ही बताया कि श्री स्वामी जी कुटिया के पीछे वाले द्वार के पास खड़े थे कि बिल्ली ने आकर बार-बार उनकी धोती का किनारा खींचा। दर्शक यह देखकर चकित हो रहे थे कि बिल्ली भी अपनी गुहार लेकर महाराज के दरबार में आई है। वह चाहती थी कि स्वामी जी उसे बाहर घुमाकर लावें। स्वामी जी उसके मनोभावों को समझ गये और उसको बाहर साथ ले गये। जब बिल्ली महाराज की धोती का पल्लू खींच रही थी तो स्वामी-भक्त कुत्ता भी वहां खड़ा था परन्तु उसने बिल्ली को कुछ भी न कहा। कारण यह कि उसे इतनी समझ है कि यह बिल्ली भी आश्रम की है।

श्रीमान् डा० भवानी लाल जी भारतीय का एक संस्मरण

श्रीयुत डा० भवानीलाल जी भारतीय ने स्वामीजी महाराज के सेवा भाव का संस्मरण देते हुये लिखा है कि १९८६ ई० में भारतीय जी को मूत्र-रोग ने धर दबाया। कई सुयोग्य डाक्टरों से परामर्श किया। रोग बढ़ता ही गया। आप कई मास तक इससे पीड़ित रहे। यात्रा करना, प्रचारार्थ कहीं भी आना-जाना बड़ा कठिन हो गया।

सन् १९८७ के ऋषि मेला पर श्री स्वामी जी अजमेर पधारे। अजमेर से स्वामी जी को देहली जाना था। डा० भारतीय जी को भी उसी गाड़ी से देहली जाना था। प्लेट फार्म पर कुछ समय इकट्ठे बिताने का अवसर मिल गया। श्री भारतीय जी ने अपनी कष्ट कथा स्वामी जी महाराज को सुना दी। स्वामी जी ने आप को आश्वस्त किया और दीनानगर जाते ही औषधालय से आपको औषधि भेज दी। पथ्य तथा आहारादि का जो निर्देश देना था सो भी दिया। कुछ ही समय में डा० भारतीय जी रोग-मुक्त हो गये।

स्वामी जी महाराज का तो स्वभाव ही कुछ ऐसा बन चुका है कि उन्हें पता लगना चाहिए कि अमुक-तमुक व्यक्ति रुग्ण है और उसे औषधि उपचार की आवश्यकता है बस, फिर आप उसकी सेवा के लिए तत्पर हो जाते हैं।[5]

मैं मठ छोड़कर आ गया आप....

नेपाल में मार्च सन् १९९१ में वेद-प्रचार सम्मेलन के अवसर पर यति मण्डल की भी बैठक रखी गई। इस बैठक में स्वामी दीक्षानन्द जी ने एक बार पुनः अपनी पुरानी बात दोहराई कि सब साधु अपने-अपने आश्रम, संस्थान व गुरुकुल छोड़कर कार्यक्षेत्र में सक्रिय हों। श्री

स्वामी जी महाराज की ओर विशेष रूप से संकेत किया।

पूज्य स्वामी जी ने तत्काल कहा– "मैं तो मठ छोड़कर आया हूं। आप भी छोड़ दें और बोलो क्या करना है। मैं निकलता हूं।" स्वामी दीक्षानन्द जी इस बार भी अपने बारे में कोई निर्णय लेने में असमर्थ रहे। स्वामी जी ने तो इस बार भी उनका सुझाव मान लिया परन्तु वह स्वयं अपने सुझाव को मूर्त्तरूप देने के लिए आगे आने से सुकचा गये।

मठ का लेखा-जोखा दूसरों के पास

हमारे पाठकों को यह जानकर आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि जब से श्री महाराज ने संन्यास धारण किया है तबसे लेकर आज पर्यन्त आपने मठ का आय-व्यय का लेखा-जोखा स्वयं कभी नहीं रखा। मठ के अन्य व्यक्ति ही सब हिसाब-किताब रखते हैं। हां! इतना तो अवश्य है कि मठ परोपकार के जिस-जिस कार्य पर भी धन व्यय करता है, वह सब पूज्य स्वामी जी के आदेश निर्देश पर ही होता है। पूज्य स्वामी जी की नीति सदा यह रहती है कि मठ के खाते में कभी भी दो चार सहस्र से अधिक की राशि न हो। साथ के साथ ही किसी सेवा-कार्य में मठ का सहयोग करवा देते हैं।

कल से दलिया न लावें

अपनी दूसरी नेपाल यात्रा से स्वामी जी लौटे तो बहुत रुग्ण हो गये। एक माता ने बड़ी श्रद्धा से आग्रह किया कि हम प्रतिदिन स्वामी जी के लिए दलिया बनाकर भेज दिया करें। अच्छा हो यदि मठ का कोई ब्रह्मचारी आकर दलिया ले जाया करे। उनकी श्रद्धा को देखकर मठ के एक ब्रह्मचारी इन्द्र नगर में जाकर दलिया ले आते। एक दिन स्वामी जी ने कहा, "कल से दलिया न लाया करें। ब्र० इन्द्र को आज्ञा दी कि आज नगर में जाकर यह कह आना कि कल से दलिया नहीं लेंगे।" आचार्य जगदीश जी ने बाद में पूछा कि स्वामी जी वह श्रद्धा से दलिया बनाकर भजेते हैं तो लेने से क्यों इनकार करते हैं? स्वामी जी ने कहा, "उनके घर में किसी का ओपरेशन होगा।" यह बात अपनी सहज अनुभूति से कही।

ब्र० इन्द्र नगर से आया तो स्वामी जी ने पूछा, "क्या उन्हें कह आए कि अब दलिया नहीं लेंगे?"

ब्र० इन्द्र ने कहा, "स्वामी जी वह कह रहे थे कि कल हमने भी अपनी पुत्री का ओपरेशन करवाने अमृतसर जाना है। हम भी सोच रहे थे कि दलिया कल कैसे भिजवाया जावे।"

ब्रह्मचारी जी की यह बात सुनकर जगदीश जी को बड़ा आश्चर्य हुआ।

'इसे क्यों रोकता है? जाने दे'

मठ में एक सोमा हाली है। न जाने उसके मन में क्या आया कि एक दिन उसने एक दुर्बलता का परिचय दिया। मठ के भण्डार से दो तीन किलो कच्ची दाल लेकर घर को चल दिया। जब मठ से बाहर लेकर निकला तो उधर से एक ब्रह्मचारी खेतों से आ गया। उसको कुछ सन्देह हुआ। उसने कहा, "यह क्या लिये जा रहा हैं?" उसने कहा, "दाल है।"

ब्रह्मचारी ने कहा, "यह क्यों ले ली है?"

हाली ने कहा, "स्वामी जी ने मुझे दी है।"

ब्रह्मचारी ने कहा,"मठ का तो यह नियम है कि मठ में बैठकर कोई चाहे कितना खाले, स्वामी जी कच्चा अन्न तो किसी को देते नहीं। यह कैसे हो सकता है कि स्वामी जी ने तुम्हारे लिए आज मठ का नियम तोड़ दिया है। चल मठ में स्वामी जी के पास।"

ब्रह्मचारी सोमा को खींचकर मठ में ला रहा था। स्वामी जी ने दूर से देखकर कहा, "छोड़ इसे। इसे जाने दे। इसे मैंने ही दाल दी है।"

सबको यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि ब्रह्मचारी के बिना बताए स्वामी जी को कैसे पता लग गया कि इसने दाल चुराई है और उसने ब्रह्मचारी से यह कहा है कि मुझे स्वामी जी ने दाल दी है। स्वामी जी ने हाली की भूल क्षमा कर दी।

बिना कुछ कहे उपदेश दे दिया

श्री शेखर शास्त्री का विवाह हुआ। उसके माता पिता जी अपने पुत्र व पुत्र वधू को लेकर मठ में आए। पूज्य स्वामी जी को मिठाई का डिब्बा भेंट करते हुए कहा, "स्वामी जी इन्हें उपदेश दीजिए।" स्वामी जी ने शास्त्री जी के माता पिता को मिठाई का एक-एक टुकड़ा दिया और एक टुकड़ा तोड़कर शास्त्री जी व उनकी पत्नी श्रीमती निशा को दिया।

शास्त्री जी के माता पिता जी ने, फिर कहा, "स्वामी जी इन्हें कुछ उपदेश भी दें।"

स्वामी जी ने कहा, "बस दे दिया।"

वे न समझ सके कि बिना एक शब्द कहे उपदेश कैसे दिया। उन्होंने पूछ ही लिया, "महाराज कुछ कहा तो है नहीं। उपदेश कब दिया?"

स्वामी जी ने कहा, "हमने अभी इन्हें मिठाई का एक टुकड़ा आधा आधा करके दिया। बस इनके लिए यही उपदेश है कि गृहस्थ में बांट-बांट कर खावें। यदि कभी एक ही चपाती है तो आधी-आधी बांट कर खा लें। यही सुख का मार्ग है। इसी में कल्याण है।"

कुत्ते से क्यों स्नेह करते हैं?

एक दिन आचार्य जगदीश जी ने श्री महाराज से पूछा, "महाराज सब साधु महात्मा, विद्वान् कुत्ते से घृणा करते हैं परन्तु आप कुत्ते से बड़ा स्नेह करते हैं। इसका कारण?

स्वामी जी ने कहा, "कुत्ता स्वामी भक्त है। रूखी सूखी खाकर भी अपने स्वामी को नहीं भूलता। हमभी इससे यह शिक्षा ले कर उस परमपिता परमात्मा को सदा स्मरण किया करें।"

'वकील न करना, सच्च सच्च ही बोलना'

मठ के एक व्यक्ति पं० धर्मपाल जी ने गुगरां ग्राम में आर्यसमाज स्थापित करके वहां आर्य मन्दिर भी बनाया है। उसी में उनका परिवार रहता है। मठ के एक स्नातक सहदेव शास्त्री जी ने वहीं स्कूल खोल दिया और कुछ समय के लिए समाज मन्दिर मांग लिया। वचन दिया कि शीघ्र इसे खाली कर दूंगा। परन्तु आज करता हूं, कल करता हूं–– ऐसा टालता गया। श्री धर्मपाल ने स्वामी जी को आकर

बताया। स्वामी जी ने उसे भी बुलवा लिया। अब उसने वचन दिया कि मैं दिसम्बर में समाज मन्दिर खाली कर दूंगा।

दिसम्बर आ गया। सहदेव जी ने किसी सहयोगी को आगे करके पं० धर्मपाल जी के विरुद्ध अभियोग चला दिया कि यह स्थान मेरा है। यह तो स्कूल है। इसने अनुचित यहां अधिकार जमा रखा है।

धर्मपाल दौड़े दौड़े मठ में आए और स्वामी जी को यह कहानी बता दी।

स्वामी जी ने कहा, "डरो मत। तुम न्यायालय में जो कुछ यहां बात हुई थी। सब सच्च-सच्च बता देना। वकील न करना। जीत तुम्हारी होगी।"

धर्मपाल जी ने कहा, "स्वामी जी वकील के बिना मेरी बात वहां कौन सुनेगा? वकील तो करना ही पड़ेगा।" स्वामी जी ने कहा, "मैंने जो कहा है कि वकील नहीं करना। सच्च-सच्च बोलना है।" पेशी वाले दिन धर्मपाल न्यायालय में गये। न्यायाधीश ने कहा, तुम स्कूल खाली क्यों नहीं करते? देखो यह व्यक्ति कह रहा है कि हमारे स्कूल में तुम अनुचित रूप से घुसे बैठे हो।

धर्मपाल जी ने कहा,"महाराज इसका व मेरा तो कोई झगड़ा ही नहीं। न इसका स्कूल है। झगड़ा तो सहदेव ने मुझ से कर रखा है। वह भी स्वामी सर्वानन्द जी का शिष्य है और मैं भी उन्हीं का एक शिष्य हूं। हम दोनों एक ही गुरु के शिष्य हैं। गुरु के सामने यह निर्णय हुआ था। अब वह गुरुद्रोही निकला है। वचन भंग कर रहा है। आर्य समाज मंदिर खाली नहीं कर रहा।" पूज्य स्वामी जी का नाम सुनते ही न्यायाधीश ने बिना श्री स्वामी जी को बुलवाए और उनकी बात सुने बिना ही उस व्यक्ति को डांटा। स्कूल खाली करवा दिया। धर्मपाल जी की जीत हुई। सहदेव जी लज्जित हुए। पश्चाताप करने पत्नी सहित मठ आए। उन्हें यह डर था कि न जाने स्वामी जी क्या कहेंगे। स्वामी जी ने यह बात ही न छेड़ी। इस विषय में एक भी शब्द उसे न कहा। अब सहदेव पूर्ववत् मठ के साथ जुड़कर थोड़ा बहुत सेवा कार्य कर रहा है।

जब इतने वर्षों तक यही नियम रहा तो

नेपाल से लौटने पर स्वामी जी महाराज की रुग्णता को देखते हुए मठ वासियों ने उन्हें कुटिया की बजाए मठ के कमरा नं० १५ में रखना उचित जाना। वहां चौबीस घण्टे दो मठ वासी उनकी सेवा में रहते। डाक्टर ने कहा कि श्री स्वामी जी पूर्ण विश्राम करें। कोई काम न करें, कहीं आना जाना नहीं। बस लेटे रहें। पूज्य स्वामी जी रात्रि एक बजे उठ कर ध्यान में बैठ गये। आचार्य जगदीश जी सेवा के लिए उसी कमरे में सोये थे। उन्होंने कहा, "स्वामी जी डाक्टर ने आप को लेटे रहने के लिए कहा है आप उठकर मत बैठें। विश्राम ही करें। डाक्टर का कहा मानें।"

"श्री महाराज ने कहा, जब आज तक हमारा यही नियम रहा है और इतनी आयु हो गई तो अब डाक्टर महोदय के कहने पर अपने नियम को कैसे तोड़ दें? मैं नियम भग नहीं कर सकता। मर्यादा का पालन करना ही चाहिए। ऐसी स्थिति में भी पूज्य स्वामी जी एक बजे से पांच बजे तक प्रभु के ध्यान में बैठते।"

यह धन रोगियों की सेवा में ही लगे

देहली के एक चड्ढा परिवार ने पूज्य स्वामी जी को अभी इन्हीं दिनों ५५००-०० रुपये की राशि भेंट की। स्वामी जी ने पूछा, ''यह किस कार्य पर लगावें?'' दान दाता ने कहा, ''रोगियों की सेवा के लिए। आप निर्धनों का इतना ध्यान रखते हैं। हमारी यह भेंट उन्हीं के कल्याण के लिए है।'' स्वामी जी ने दयानन्द मठ घण्डरां में आंखों का शिविर लगाया। यह राशि भी वहीं भेज दी। आचार्य जगदीश जी को विशेष रूप से घण्डरां भेजा और कहा, ''वहां मठ वासियों से कहें कि यह सब राशि रोगियों की सेवा में ही लगे। मठ के अन्य किसी कार्य पर इसमें से एक भी पैसा व्यय न हो।''

इन्द्र बढ़िया चटनी बनाता है

श्री स्वामी जी महाराज को डाक्टर ने कहा कि भूख न भी हो तो भी भोजन अवश्य लें अन्यथा निर्बलता और बढ़ेगी। स्वामी जी की भोजन में रुचि ही न रही। मठवासियों का भी आग्रह रहता था कि आप भोजन अवश्य लिया करें। तब आपने कहा, ''अच्छा! पोदीना व अनारदाना की चटनी भोजन के साथ बनाया करें। इससे भूख लगेगी।'' श्री स्वामी जी ने यह कार्य ब्र० इन्द्र को सौंप दिया। ब्र० इन्द्र ने आगे यह कार्य श्री शेखर शास्त्री की पत्नी श्रीमती निशा को सौंप दिया।

एक दिन स्वामी जी महाराज ने प्रसन्न होकर इन्द्र से कहा, 'इन्द्र बढ़िया चटनी बना कर लाता है।'' आचार्य जगदीश पास बैठे थे। आपने हंसते हुये कहा, ''चटनी इन्द्र नहीं बनाता यह तो शास्त्री जी की पत्नी बनाकर भेजती हैं।'' स्वामी जी ने कहा, ''जब यह कार्य इन्द्र को सौंपा गया तो ब्र. इन्द्र ने इसे आगे दूसरे को क्यों सौंप दिया? यह तो ठीक बात नहीं। अच्छा अब कल से चटनी मत लाया करें। हम चटनी नहीं लेंगे।'' अब सब मठवासी इससे चिन्तित हुए। स्वामी जी से बहुत कहा गया कि इस बात को ध्यान में न लावें और स्वास्थ्य के लिए पोदीना की चटनी अवश्य ग्रहण करें। स्वामी जी ने कहा, ''इसकी कोई आवश्यकता नहीं।'' मठ में एक नेकराम ब्रह्मचारी है। वह मैट्रिक करके मठ में आया था। स्वामी जी उसे छोटा ब्रह्मचारी कहा करते और उसका बड़ा ध्यान रखते। अब तो वह बहुत बड़ा हो गया है। फिर भी उसे सभी छोटा ब्राह्मचारी ही कहते हैं। वह चटनी बनाकर ले गया। स्वामी जी ने कहा, ''रहने दें। हम चटनी नहीं लेंगे। आप कोई चिन्ता न करें। हमने स्वयं को यह दण्ड इस लिए दिया है ब्र० इन्द्र ने सत्य नहीं बोला।'' कई दिन तक महाराज ने चटनी न ली। अब छोटे ब्राह्मचारी ने कहा कि आप चटनी नहीं लेंगे तो मैं भी भोजन नहीं करूंगा।'' बहुत कहा सुना तो पूज्य स्वामी जी ने चटनी लेनी आरम्भ की।

'अच्छा! यह हमारा इन्द्र बाबू है'

श्री स्वामी जी महाराज दिसम्बर १९९० के प्रथम सप्ताह दुनेरा हिमाचल प्रदेश में प्रचारार्थ गये। ब्र० इन्द्र साथ था। सांयकाल श्री महाराज दिशा जंगल के लिए निकले। स्वामी जी जब शौच के लिए हो आए तो ब्र० इन्द्र ने कहा, ''अब आप चलें, मैं शौच होकर आ जाऊंगा।'' श्री स्वामी जी ने उसे बता दिया

कि शौच होने के पश्चात् इस ओर खड्ड में जल है। वहां से जल ले लेना। ब्र० इन्द्र कुछ देर के पश्चात् घूमता हुआ उधर आ निकला। बहुत धुंध थी। उसे यह ध्यान था कि स्वामी जी महाराज तो कमरे में जा चुके होंगे और अपने नित्य नियम में लगे होंगे। अंधेरे के कारण उसे दिखाई भी न दिया।

ब्र० इन्द्र ने बीड़ी सुलगा रखी थी। वह बीड़ी पीता हुआ आ रहा था। स्वामी जी ने सोचा इन्द्र का कद छोटा है। सम्भव है जल तक उसका हाथ न पहुंचे। वह उसके लिए कमण्डल में जल लिए वहां खड़े थे। स्वामी जी महाराज को अपने सामने पाकर वह हतप्रभ सा हो गया। स्वामीजी ने केवल इतना ही कहा, "अच्छा! यह हमारा इन्द्र बाबू है।" बस और कुछ न कहा।

ब्र० इन्द्र ने लज्जित होकर बीड़ी वहीं फेंक दी फिर आज तक बीड़ी को हाथ नहीं लगाया। उसे स्वयं ही इस व्यसन से ग्लानि हो गई। स्वामीजी ने उसे कोई तर्जना नहीं की। न ही उसकी भूल जतलाई। "अच्छा! यह हमारा इन्द्र बाबू है" --- बस यही वाक्य उसके लिए श्रीमहाराज का एक करुणा-कटाक्ष सिद्ध हुआ। इन्द्र ने यज्ञवेदी पर आत्म-सुधार की प्रतिज्ञा कर ली।

एक बार ऐसा न्याय किया

यह १९७० की घटना होगी। दो ब्रह्मचारियों में कुछ झगड़ा हो गया। एक ने दूसरे को सोटी मार दी। अभियोग श्री स्वामी जी के पास ले जाया गया। स्वामी जी महाराज ने दोनों को रात्रि नौ बजे कुटिया पर बुलवा लिया।

एक से पूछा, "क्या बात है? किस लिए झगड़ते हो?" उसने कहा, "इसने मुझे सोटी मारी।"

"आपने सोटी क्यों मारी?" दूसरे से श्री स्वामी जी ने पूछा। उसने कहा, "इसने मुझे गाली दी।"

स्वामी जी ने उससे पूछा, "क्यों भाई आपने इसे गाली क्यों दी?" इस प्रकार प्रश्नोत्तर करते हुए एक से कहा, "देखो नंगे सिर पर सोटी नहीं मारनी थी। कहीं और सोटी लगा देते।" दूसरे से कहा, "सिर को नंगा न रखा करो। सिर पर कोई कपड़ा बांधा करो। इससे चोट नहीं लगती।" इस प्रकार समझाबुझा कर उन्हें भेज दिया।

इस अभियोग का एक रोचक पहलू यह है कि उनकी बात सुनने व अपना उपदेश देने से पूर्व स्वामी जी ने उन्हें बुलवा कर एक घण्टा तक इस संबंध में कोई बात ही नहीं पूछी। एक को कहा, "जाओ यह कटोरी साफ़ करके लाओ।"

दूसरे को कह देते, "जाओ गोशाला में, यह देखकर आओ।" कभी स्वयं लिखने पढ़ने व अपने कामों में लग जाते। इस प्रकार एक घण्टे तक विभिन्न कार्य करते हुए उनके मन की कटुता का निवारण हो गया। वे स्वयं ही एक दूसरे से कहने लगे। बड़ी भूल हो गई। आज तो स्वामी जी के पास फंस गये। स्वामी जी भी उनकी मनः स्थिति को समझ गये। उनके हावभाव को पहचाना और समझाबुझाकर कहा, जाओ, "झगड़ते नहीं। शान्ति से मिलकर रहा करो।"

'पुत्र शब्द ही हमने शब्दकोश से निकाल दिया'

एक दिन मठ में कुछ बच्चे खेल रहे थे। किसी बच्चे ने कोई शरारत की तो आचार्य जगदीश जी ने उसे कहा, "पुत्र ऐसे नहीं करते।" पूज्य स्वामी जी ने यह वाक्य सुन लिया। आचार्य श्री जगदीश जी को बुलवाया और कहा, "गुरु जी ने हमसे पुत्रेषणा छुड़वाई तो हमने स्वयं ही अपने शब्दकोश में से 'पुत्र' शब्द ही निकाल दिया। ब्रह्मचारी को संन्यासी को कभी पुत्र शब्द का प्रयोग ही नहीं करना चाहिए।" आचार्य जगदीश जी गुरुजी का यह उपदेश सुनकर तृप्त हो गये। आजके गये बीते युग में ऐसे वीतराग परमहंस का होना धरती के लिए एक ईश्वरीय वरदान ही तो है। धन्य है वह संस्था व समाज जिसे ऐसे पूज्य महात्मा तपस्वी का मार्गदर्शन प्राप्त है।

'स्वामी जी तो मुझे कुछ नहीं कहते

मठ में रसोई में बैठकर कोई भोजन नहीं करता। भोजनकक्ष पाकशाला के समीप ही है। एक दिन छोटा ब्रह्मचारी नेकराम रसोई में भोजन कर रहा था। किसी ब्रह्मचारी ने उसे देखकर कहा, "यहां भोजन नहीं किया करते। स्वामी जी को पता लगा तो स्वामी जी तुम्हें डांटेंगे।" छोटा ब्रह्मचारी अपने अनूठे ढंग से बोला, "मुझे तो आचार्य जी से डर लगता है। स्वामी जी तो मुझे कुछ भी नहीं कहते।"

जिस महापुरुष को अपने जीवन में प्रत्येक छोटी-छोटी बात का इतना ध्यान रहता है। मर्यादा के पालन में जो दृढ़ प्रतिज्ञ है। बच्चों के लिए वह कितना कोमल हृदय रखता है। छोटे ब्रह्मचारी का स्वाभाविक उत्तर वीतराग संन्यासी के बालकों के प्रति स्नेह का परिचायक है।

लो! पशु हस्पताल भी चला रहे हैं

दीनानगर के समीप एक डीडा ग्राम है। वहां के एक अति निर्धन व्यक्ति की भैंस की टांग टूट गई। वह स्वामी जी के पास आया और अपनी व्यथा की कथा सुनाई। स्वामी जी ने उसे कहा, हम पशुओं का इलाज तो करते नहीं। आप पशु हस्पताल में भैंस को दिखाएं। हम भी डाक्टर से कह देंगे। वह पशु-हस्पताल में भैंस को ले गया। वहां डाक्टर ने उसे कहा कि रूई की आवश्यकता है। पट्टिया भी लाओ। कुछ औषधियां भी लिखकर दी। उसके लिए यह बहुत बड़ा खर्चा था।

वह निर्धन व्यक्ति स्वामी जी के पास फिर आया और अपमी असमर्थता बतलाई। अब स्वामी जी ने डाक्टर को बुलवाया और पूछा, "क्या सरकार आपको रूई पट्टियां औषधियां नहीं देती?" उसने कहा, "हस्पताल नगर पालिका का है। मेरा वेतन मात्र सरकार देती है। मैं औषधियां कहा से दूं?"

स्वामी जी ने पूछा, "हस्पताल का कितना वार्षिक व्यय है।" डाक्टर महोदय ने बता दिया। इस घटना को कोई पन्द्रह वर्ष हो चुके हैं। तब से लेकर आज पर्यन्त हमारे पूज्य स्वामी जी पशु हस्पताल का सारा खर्चा दे रहे हैं। तभी श्री महाराज ने ब्र० गोपाल को बुलवा कर कहा, जब मठ में कलई करवाया करें तो साथ के साथ पशु हस्पताल की भी सफेदी होनी चाहिए।

यह घटना सुनकर हमें करुणा सागर महर्षि दयानन्द की बैलों को कीचड़ से निकालने वाली घटना का स्मरण हो आया। आचार्य चमूपति जी ने उस घटना के संबंध में यह लिखा है कि ऋषि को गाड़ी बान पर दया आई या बैलों पर? आचार्य प्रवर उत्तर देते हैं कि गाड़ीबान के दहलते दिल से पूछिए अथवा सिसकते मूक बैलों से पूछिए कि ऋषि को किस पर दया आई। आगे लिखते हैः–

सिसकतौं को दलदल से जिसने निकाला।
दयानन्द स्वामी तिरा बोल बाला।।

इस उपरोक्त घटना के विषय में भी हमारे लिए यह निर्णय करना कठिन है कि मुनिवर सर्वानन्द जी को मूक पशुओं पर दया आई या डीडा ग्राम के उस अकिंचन दीन व्यक्ति पर दया आई। मूक पशुओं का कृतज्ञ हृदय मुनि के उपकार का गुणगान कर रहा है तो दूसरी ओर सहस्रों निर्धन भी श्री महाराज की कीर्ति पताका फहरा रहे हैं।

आश्चर्य तो इस बात का है कि स्वामी जी महाराज ने आज तक किसी को यह नहीं बताया कि वह पशु हस्पताल भी चला रहे हैं। हमारे जैसे सेवक जो वर्षो से मठ से जुड़े हुए हैं, इस तथ्य से अब तक अनभिज्ञ थे। यह तो प्रसंगवश किसी चर्चा में आचार्य जगदीश जी ने हमें ऊपर की घटना सुना दी।

जब शास्त्री धर्मपाल को पीट पीट कर....

हिसार के स्वामी देवानन्द जी ने धर्मपाल नाम के एक नवयुवक को नैष्ठिक ब्रह्मचारी बना दिया। उसने गेरु में कपड़े डुबो लिए और बाबा जी बन गया। विद्या पास भी नहीं। किसी से मठ की कीर्ति सुनकर दीनानगर पहुंच गया।

कुटिया में श्री महाराज बैठे थे। नवयुवक बाबा ने जाकर कहा, "मैं आपके पास विद्या–अध्ययन के लिए आया हूं। श्री स्वामी जी ने कहा, ''गेरू वस्त्रधारी नहीं पढ़ा करते।'' धर्मपाल ने बार-बार दृढ़तापूर्वक कहा कि मैं पढूंगा। शास्त्री करके रहूंगा। स्वामी जी ने विद्यालय में प्रवेश दे दिया। कुछ समय तक धर्मपाल पढ़ता रहा। एक दिन कहा, ''मैं अब जांऊगा। नहीं पढूंगा, बस इतना ही पर्याप्त है।''

स्वामी जी ने समझा बुझाकर रोका। वह लगा फिर से पढ़ने। एक दिन फिर कहा, ''बस! मैं तो अब चलूंगा।'' श्री स्वामी जी ने अपनी सोटी उठा ली और लगे पीटने। वह भाग कर रसोई में चला गया। पूज्य स्वामी जी महाराज पीछे पीछे गये। वहां जाकर भी उसको पीटा और कहा कि तुम्हें शास्त्री करके विद्वान् बनना होगा। धर्मपाल ने वचन दिया कि मैं अब नहीं जाऊंगा। शास्त्री करुंगा। वह शास्त्री कर भी गया। वही धर्मपाल जो विद्या-प्राप्ति से इतना डरता था इस समय दयानन्द मठ घण्डरां में संस्कृत विद्यालय चला रहा है। देव वाणी और वेद-वाणी की सेवा का यश लूट रहा है। यह किस की दया से यश लूट रहा है। यह किसकी दया का प्रसाद है? परमहंस परिव्राजकाचार्य स्वामी सर्वानन्द जी के कृपा कटाक्ष का ही यह सुखद फल है।

जब भक्त का इकलौता पुत्र चल बसा

दीनानगर के पास एक उदीपुर नाम का

ग्राम है। वहां के एक बहुत बड़े चौधरी का इकलौता पुत्र खेतों में जल में पड़े बिजली के तार से करण्ट लगने से भरी जवानी में मर गया। मृतक की पांच छः मास की एक पुत्री है। थोड़ा समय पूर्व ही उसका विवाह हुआ था।

पूज्य श्री स्वामी जी वृद्ध पिता को धीरज बंधाने उसके ग्राम में गये। उसने कहा, "महाराज मैं अब क्या करुं? आगे क्या होगा?" आपने दुःखी हृदय को कहा, "अशरण शरण प्रभु पर सब छोड़ दो। जो हुआ सो ठीक। वह आगे भी जो करेंगे उसे उस दयालु न्यायकारी की दया व न्याय मानकर शिरोधार्य करना।"

'यह प्रभु का कार्य है, चलता रहेगा।'

एक बार श्री ला० देवदत्त जी के पौत्र श्री भारती अमृतसर गये तो श्री बाबू जागीरी लाल जी ने उन्हें कहा, "आप स्वामी जी महाराज से कहिए कि आपने कार्य तो इतना पसार दिया। आप बहुत बृद्ध हो गये हैं। अपना कोई उत्तराधिकारी भी बनाया है क्या?" श्री भारती ने कहा, "हम तो ऐसी बात उनसे नहीं कर सकते। आप बड़े हैं। यह आप ही पूछिए।"

श्री बाबू जागीरीलाल जी ने यह प्रश्न पूछ ही लिया। स्वामी जी महाराज ने उत्तर में कहा, मैंने क्या पसारा है। यह तो परेमश्वर का ही सारा पसारा है। उसकी प्रेरणा व कृपा से सब कार्य किए जा रहे हैं। आगे की चिन्ता क्यों करें। इतना बड़ा संसार है। यहां इतने साधु हैं कितने ब्रह्मचारी हैं। कितने अध्यापक हैं। हमारे कई शास्त्री और आचार्य हैं। चम्बा में, घण्डरां में, यहां भी और अन्य अन्य स्थानों पर हमारे व्यक्ति वेद-प्रचार व लोक सेवा में लगे हुए हैं। मुझे आशा है कि प्यारे प्रभु की कृपा से मेरे पश्चात् भी यह कार्य चलते रहेंगे। परमेश्वर की वेद-वाणी का प्रचार नहीं रुकेगा।

'हमारे गुरु जी ने एक दिन कहा था'

एक दिन आचार्य जगदीश जी ने कहा, "स्वामी जी यह प्रतिदिन वस्त्र धोने का क्या नियम आपने बना रखा है?" स्वामी जी महाराज ने कहा, जब मैं संन्यासी नहीं था तो श्वेत वस्त्र थे। खेतों मे और बाग में भी काम करना होता था। मट्टी धूलि से कपड़े मैले होते ही थे। एक दिन पूज्य स्वामी श्री स्वतंत्रानन्द जी ने बातचीत करते हुए कहा पं० शिवदत्त जी सिद्धान्त शिरोमणि श्वेत वस्त्र होने से उन्हें नित्य धोया करते थे। ऐसा पण्डित जी ने लाहौर में ही नियम बना लिया। मैंने यह बात सुन ली। स्वामी जी ने इस संबंध में और कुछ न कहा और और बातें ही होती रहीं।

बस मैंने उसी दिन प्रतिदिन कपड़े धोने का नियम बना दिया। संन्यास लिया तो भी प्रतिदिन कपड़े धोने का वही नियम रखा। स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज का समझाने का भी अपना ही ढंग था। गुरुजी ने ऐसे समझा दिया और मैंने सीख पल्ले बांध ली।"

और लो! देसी चाय भी छोड़ दी

नेपाल से जब महाराज रुग्ण लौटे तो डाक्टर ने यह भी कहा कि जल भी अधिक पिया करें परन्तु, प्यास विशेष नहीं लगती थी। शिष्यों ने कहा, "महाराज न भी इच्छा हो तो जल लेते रहें।" तब आपने कहा, "अच्छा! ऐसा कीजिए दिन में दो तीन बार मठ की

आयुर्वैदिक चाय बना दिया करें। दूध के साथ जल भी अपने आप शरीर में चला जावेगा।' स्वामी जी के कमरा में ब्र० सुरेश व ब्र० रवीन्द्र दिन में दो तीन बार स्टोव पर देसी चाय बना देते। ये दोनों ब्रह्मचारी बाज़ार से दूसरी चाय पत्ती भी ले आए और चोरी छुपे बनाकर आप भी पीते रहे। एक दिन स्वामी जी महाराज ने उन्हें चाय पीते देख लिया।

अपनी अनूठी शैली में श्रद्धेय मुनिवर बोले, ''अच्छा! आपने यह हमसे चाय पीना सीखा है। लो! अब हम कभी देसी चाय भी नहीं लेंगे।'' उसी दिन से आयुर्वैदिक चाय का परित्याग कर दिया। शिष्यों को और कुछ भी न कहा। श्री महाराज का उपदेश देने का कैसा ढंग है! यह मुनि किस कोटि का है, इसका पता उनका सम्पूर्ण व्यवहार दे रहा है। स्वामी जी ने तब इतना तो कहा था कि तुम्हारी दोनों कीं रोटी बन्द करनी चाहिए।

उन दोनों ने प्रायश्चित करते हुए उपवास किया।

भिक्षा की झोली का रंग

ब्रह्मचारी भिक्षा के लिए जाते हैं तो झोली भी गेरुआ ही होती है। उसका रंग पक्का नहीं होता। ब्रह्मचारियों को क्या सूझी कि दो तीन ने मिलकर झोली का रंग पक्का गाढ़ा लाल करवा लिया।

ब्रह्मचारी भिक्षा के लिए निकले तो स्वामी जी ने उनके पास लाल लाल झोलियां देख लीं। पूछा, ''यह क्या?'' सब बात सुनकर कहा, "रखो इन्हें यहीं और पुरानी झोलियां ही ले कर जावें। भिक्षा की झोली का रंग भी वही होना चाहिए जो हमारे वस्त्रों का है।'' यह बात छोटी सी लगती है। भिक्षा की झोली का रंग कैसा हो यह कोई बहुत बड़ा सैद्धान्तिक प्रश्न नहीं। एक परम्परा है। परम्परा के पीछे एक भावना है। भावना के पीछे वेद के नित्य अनादि सिद्धान्त हैं। भावना से ही व्यक्ति फांसी का फंदा चूम लेते हैं। भावना से ही कर्मवीर और धर्मवीर जीवन आहूत कर देते हैं। इसी बात को ध्यान में रखकर हमारे पूज्य स्वामी जी ने इसके लिए इतनी दृढ़ता दिखाई। श्री महाराज के कुर्ते व धोती पगड़ी का गेरुआ रंग भी कच्चा ही है। यह तो पाठक अब जान गये परन्तु यह रंग कितना गूढ़ा व पक्का है, यह आपने देख लिया है। यही तो भजन में कहा गया है:

ऐसा रंग अनूठा होवे दुनिया कर दंग दे।

स्वामी जी का बिल

स्वामी जी चण्डीगढ़ में एक कार्यक्रम में भाग लेने के लिए गये। कार्यक्रम वहां रद्द हो गया। स्वामी जी को सूचना न दी गई। आप वहां एक आर्यसमाज मन्दिर में रात्रि ठहरे। वहां किसी ने आपको तथा स्वामी सहजानन्द जी को दूध पिला दिया। श्री स्वामी जी ने उसकी भावना का आदर करते हुए दूध पीना स्वीकार कर लिया। प्रातः आप वहां से मोही के लिए चल पड़े।

दूध पिलाने वाले ने श्री स्वामी जी के नाम पर समाज को एक सौ रुपये का बिल दे दिया। बिल पर समाज में कुछ विवाद हो गया। मठ के एक भक्त को इस बात का पता चला तो उसने मठ में आचार्य जगदीश जी को लिख दिया कि स्वामी जी के नाम पर ऐसा हुआ है। आचार्य जी

ने स्वामी जी से पूछा, "आप चण्डीगढ़ किसके पास रुके? क्या कुछ सेवन किया था?" आचार्य जी के लिए भी एक सौ रुपये के व्यय की बात समझ से बाहर थी। स्वामी जी ने कहा, "अमुक व्यक्ति ने हम दोनों को एक एक ग्लास दूध अवश्य पिलाया था।" आचार्य जी ने उस व्यक्ति को लिखा कि श्री स्वामी जी का बिल कितना है? हमें शीघ्र भेज दें ताकि मठ बिल का भुगतान कर सके। वह व्यक्ति बड़ा लज्जित हुआ और इस बात को भूल जाने के लिए प्रार्थना की।

किस गाड़ी आएंगे?

श्री स्वामी जी जब स्वामी स्वतंत्रानन्द जन्म शताब्दी के लिए मठ से मोही तक पदयात्रा के लिए निकले तो उस यात्रा की बड़ी धूम मची। जब मोही का समारोह हो चुका तो दीनानगर के समाज ने आचार्य जगदीश जी द्वारा स्वामी जी से पूछा कि आप कब और किस गाड़ी से दीनानगर पहुंचेंगे। स्वामी जी ने दिन व गाड़ी बता दी।

समाज वालों ने स्वागत के सब प्रबंध किए। स्वागती द्वार भी बनाए गये। स्वामी जी ने सब मठ वासियों को उस गाड़ी से भेज दिया। स्वयं पठानकोट उतर गये। वहां से बस पर परमानन्द तक आए और परमानन्द से पैदल मठ पहुंच गये। मठ पहुंच कर कुटियां के पीछे वाले द्वार से अपने आश्रम में प्रविष्ट हुए। लोकैषणा से इतना दूर भी तो कोई कोई ही हो सकता है।

भूपेन्द्र दास अब भूपेन्द्रानन्द बने

स्वामी जी महाराज औषधालय से निकले तो देखा कि एक साधु ने सामने अपने वस्त्र सुखाने के लिए डाल रखे हैं। साधु ने वहीं मठ में स्नान किया था। श्री स्वामी जी ने पूछा, "महाराज आप कहां से आए है? कहां जा रहे हैं? क्या शुभ नाम है आपका?"

साधु ने कहा, "मेरा नाम भूपेन्द्रदास है। मैं माता के दर्शन करने के लिए जम्मू की ओर जा रहा हूं।"

स्वामी जी ने कहा, "क्या विचित्र बात हैं कि माता पिता का घर बार छोड़कर तो साधु बनते हैं। अपनी माता तो छोड़ दी और अब फिर किसी माता के दर्शन को निकले हैं। यह साधुओं के काम नहीं हैं। साधु का तो यही धर्म है कि परमपिता परमात्मा के दर्शन करने के लिए कुछ करे।" यह बात भूपेन्द्रदास साधु को लग गई। वह वहीं मठ मे ठहर गया। श्री स्वामी जी की संगत की रंगत से वह श्री महाराज का शिष्य बन गया। अब वह भूपेन्द्रानन्द के रूप में वेद-प्रचार के कार्य में लगे हुए है। प्रभु का भजन व प्रभु की वेदवाणी का प्रचार ही उनका सर्वस्व है।

स्वामी जी स्नान कर लिया क्या?

एक दिन मठ में किसी ने पूछा, "स्वामी जी आपने स्नान कर लिया क्या?" स्वामी जी ने कहा, "नहीं।"

स्वामी जी वास्तव में स्नान कर चुके थे। प्रश्नकर्त्ता को जब पता चला कि श्री स्वामी जी तो स्नान कर चुके हैं तो उसने पूछा, "आप तो स्नान कर चुके हैं फिर कैसे कहा कि नहीं किया।"

श्री स्वामी जी ने कहा, "स्नान तो तीन ही

बार होता है। जन्म के समय, मृत्यु के पश्चात् और तीसरा दीक्षा के समय। जिसे आप स्नान कह रहे हैं यह तो नित्य कर्म है सो मैंने नित्य कर्म किया था। स्नान नहीं किया। स्नान तो अब शरीर के छूटने पर ही करवाया जावेगा।''

'स्वामी जी मेरी तो आप पर बहुत श्रद्धा है'

अवांखा (दीनानगर) का एक सिख पत्रकार कभी कभी पत्रों में स्वामी जी व मठ के बारे लेख देता रहता है। एक बार उसने श्री स्वामी जी के जीवन पर कुछ लिखने का विचार बनाया। मठ में आकर पूज्य स्वामी जी से पूछा, ''आप का जन्म कहां का है? आपका जन्म कब हुआ?''

स्वामी जी ने कहा, ''मेरा जन्म दीनानगर में हुआ। मैं १ मई १९५५ ई० को जन्मा था।'' उस श्रद्धालु सिख सज्जन ने कहा, ''स्वामी जी मेरी तो आप पर बहुत श्रद्धा है परन्तु आपने सच्च-सच्च नहीं बताया। आपका जन्म तो दीनानगर का किसी ने नहीं बताया और आप तो नव्वे वर्ष के लगते हैं परन्तु मुझे आयु पैंतीस वर्ष बता रहे हैं। यह क्या बात है?''

स्वामी जी ने कहा, ''नहीं! हमने ठीक ठीक ही बताया है। आपने सर्वानन्द के बारे में जानना चाहा है। सर्वानन्द का जन्म तो यहीं यज्ञशाला पर हुआ था। हम साधु हैं। साधु का जन्म गुरु की कोख से माना जाता हैं। माता की कोख से जन्मा राम तो अब रहा नहीं।'' अब उस बंधु की समझ में आ गया कि स्वामी जी ने सत्य ही बोला है। झूठ कुछ नहीं कहा।

'दो लड़ें तो तीसरा छुड़ाने वाला भी चाहिए'

मठ का एक श्रमिक था मनोहर। उसके चार पुत्रियां ही थीं। उसने श्री महाराज से विनती की कि मुझे पुत्रदा वटी दें। स्वामी जी ने उसे औषधि दी। ईश्वर की कृपा से उसके घर पुत्र ने जन्म लिया। उसने फिर अनुनय विनय करते हुए कहा कि मुझे पुनः औषधि दें। एक पुत्र ठीक नहीं। गांव में दो भाई लड़ेंगे तो पता चलेगा कि मनोहर के पुत्रों का किसी से या परस्पर लड़ाई झगड़ा हुआ है। एक से क्या पता चलेगा। स्वामी जी एक ही बार यह औषधि देते हैं परन्तु भक्त की बात मान ली। उसके फिर दूसरा पुत्र पैदा हुआ। अब उसने तीसरी बार औषधि मांगी तो स्वामी ने कहा, ''नहीं! अब बस। हम तो एक ही बार दिया करते हैं। तुम्हें दो बार दे दी।''

उसने कहा, ''मुझे तो अवश्य दीजिए। जब मेरे दो पुत्र लड़ेंगे तो तीसरा छुड़ाने वाला चाहिए। नहीं तो कौन छुड़ाएगा।'' यह सुनकर स्वामी जी हंस पड़े परन्तु औषधि न दी।

मनोहर जब मरने लगा

मठ का वही श्रमिक मनोहर रुग्ण हो गया। स्वामी जी उसके घर उसका पता करने गये। उसने कहा, ''स्वामी जी मुझे विधवा मां ने पाला। अब मैं उसकी आंखों के सामने जा रहा हूं। मेरी मां का क्या बनेगा? मेरे बच्चे भी छोटे-छोटे हैं। महाराज इनका ध्यान आप ही रखना।'' जब तक मनोहर की मां जीवित रही, मठ से प्रतिमास मनोहर का वेतन उसके घर पर भेजा जाता रहा। उसके बच्चों

की पढ़ाई की भी सब व्यवस्था आर्य स्कूल में करवा दी गई।

इस युग में ऐसे परोपकारी महापुरुष का गुण कीर्तन कौन कर सकता है?

जब ज्ञानचन्द मरने लगा

मठ का एक और श्रमिक भक्त ज्ञानचन्द रुग्ण हो गया। श्री स्वामी जी उसका पता करने गये। मरते हुए ज्ञानचन्द ने स्वामी जी से कहा कि मेरे बच्चे बेघर हो जावेंगे। वकफ बोर्ड ने उन पर घर खाली करने के लिए अभियोग चला रखा था। स्वामी जी ने उसे सान्त्वना दी। उसके निधन के पश्चात् स्वामी जी ने बाबू जयचन्द्र जी से कहा कि बोली देकर इन्हें यह घर ले दें। श्री जयचन्द्र ने यह कार्य कर दिया। वे बच्चे बेघर होने से बच गये। स्वामी जी असहाय के सहाय बने।

अब उसके घर न जावें

मठ के एक सेवक व श्री महाराज के एक बड़े भक्त श्री मिलखीराम की पत्नी रुग्ण हो गई। उसने स्वामी जी से कहा, "यदि अमृतसर में इसका इलाज हो तो वह बच जावेगी। इलाज पर दस सहस्र का व्यय बताया गया।" स्वामी जी ने आचार्य जगदीश जी से पूछा कि हम कितना सहयोग कर सकते हैं?

आचार्य जी ने कहा, "हमारे पास तो दो तीन सहस्र रुपये से ऊपर आप होने नहीं देते परन्तु, यदि आप एक संस्था (नाम बताया) से रुपया दिलवा दें तो हम कुछ दिन में उन्हें यह राशि लौटा देंगे।"

स्वामी जी को बात जंच गई। मिलखी राम जी को दस सहस्र मिल गया। उसकी पत्नी का इलाज तो हुआ परन्तु वह चल बसी। उसका दाह कर्म भी सब मठ ने किया। दाहकर्म पर सब व्यय भी मठ का ही हुआ।

स्वामी जी के कानों में यह बात पड़ी कि कुछ लोगों ने यह कहा है कि मिल्खीराम अपनी दो एकड़ भूमि मठ को देगा। मठ वाले भी वह भूमि लेना चाहते हैं। वह भूमि है भी मठ के पास। स्वामी जी ने मठ के सब कार्यकर्त्ताओं को आदेश दिया कि अब कोई भी मिलखी राम के घर न जावे। ऐसा न हो कि किसी को यह भ्रम हो कि हमने भूमि के लोभ से अथवा किसी और प्रयोजन से उसकी विपत्ति मे उसकी सेवा व सहयोग किया है।

ऐसी पवित्र भावना से आज कौन दीन दुखी की सेवा करता है?

पूज्य पाद स्वामी सर्वानन्द

वचन–सुधा–२

संग्रहकर्त्ता :– श्री आचार्य जगदीश जी दयानन्द मठ, दीनानगर

१. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।

२. जो सम्पूर्ण जगत को बनाने वाला, पालन करने वाला और अन्त में सुधार करने वाला है, जो समस्त विश्व में व्याप्त है, ऐसे परमात्मा को हमेशा याद रखना चाहिए।

३. जो दुष्कर्मों से मुंह नहीं मोड़ता, जो इन्द्रियों को वश में नहीं करता, ऐसा आदमी कदापि परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता।

४. पापी लोग समझते हैं उनको पाप

करते हुए कोई नहीं देख रहा है, परन्तु उसकी अन्तरात्मा से आवाज आती है कि यह पाप है तथा परमेश्वर उसकी सब कृतियों को देखता है।

५. जिस तरह 'पानी' को कोई जल, कोई आब, कोई वाटर कहते हैं, उसी तरह परमपिता परमात्मा को भी भक्तजन उसके गुणों के आधार पर उस सच्चिदानन्द को अनेक नामों से पुकारते हैं।

६. धर्म से धन मिलता है, धर्म से सुख मिलता है। सभी वस्तुएं धर्म से प्राप्त होती हैं। इस संसार में धर्म ही सार वस्तु है।

७. उठो, आलस्य त्यागो, सच्चे धर्म का आश्रय करो। धर्म-आचरण करने वाले इस लोक तथा परलोक में सुखी होते हैं। बुरे मार्ग में कभी मत जाओ।

८. जहां दया है वहीं धर्म है, जहां लोभ है वहीं पाप है, जहां क्रोध है वहीं काल है, जहां क्षमा है वहीं भगवान् है।

९. लोगों को दिखाने के लिए धर्म का आचरण मत करो, यदि ऐसा करोगे तो आप लोगों की आध्यात्मिक उन्नति कम होगी। अतः मन, वचन, कर्म से धर्म का पालन करो।

१०. धर्म बुद्धि वाले मनुष्य दूसरे की स्त्री को माता के तुल्य, दूसरे के धन को मिट्टी के समान तथा अपने सदृश सब प्राणियों को जानते हैं।

११. शरीर अनित्य है, ऐश्वर्य सदा नहीं रहता, मृत्यु भी समीप है। ऐसा विचार करके मनुष्य को धर्म का संग्रह करना चाहिए।

१२. अपने दोषों को न देखना और न ढूंढना धर्मान्धता है।

१३. बड़ा वही है जो अधिक सेवा करे।

१४. सेवा के बिना नम्रता और विवेक की प्राप्ति नहीं हो सकती।

१५. सेवा धर्म बड़ा गहन है, योगियों द्वारा भी यह अगम्य है।

१६. असहायों की एवं रोगियों की सेवा करना परम धर्म है।

१७. यदि देश-सेवा में आप लोगों के प्राण चले जाएं तो तुम अपने आप को सार्थक समझो और अपने को परमवीर मानो।

१८. दया सब धर्मों का मूल है परन्तु पूर्ण रूप से दया करने के लिए क्षमा, नम्रता, शीलता, पवित्रता, संयम, तप, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन सब धर्मों का सेवन अवश्य करना चाहिए।

१९. क्षण मात्र के लिए जीभ के स्वाद के लिए प्राणी की हत्या करना नृशंसता है। ईश्वर के भेदों से परिपूर्ण उदर को जानवरों की कब्र मत बनाओ, ऐसा करना ईश्वर का निरादर करना है। जहां तक हो सके चींटी को भी कष्ट मत दो क्योंकि वह भी जीवधारी है और जीवन सबको प्यारा है।

२०. दान लेने की अपेक्षा दान देना अधिक श्रेयस्कर है।

२१. दीन के दुःख को सुनना चाहिए और उसे दूर करने की कोशिश करनी चाहिए।

२२. कुपात्र पर दया दिखलाना पापों को बढ़ाना है।

२३. दया और कृपा कितनी ही की जावे, कम है।

२४. पशु-पक्षी भी अपने शरीर की पीड़ा को जानते हैं, बुद्धिमान वही है जो दूसरों की पीड़ा को जाने।

२५. सच्चा मित्र आनन्द को दुगना तथा क्लेश को आधा कर देता है।

२६. जिसका आचार बुरा है, जिसका चित्त सर्वदा पाप में लीन रहता है, जो बुरे स्थान में रहता है, जो दुर्जन है, इनसे जो मनुष्य मित्रता करता है वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

२७. न कोई किसी का मित्र है, न कोई किसी का शत्रु है, शत्रुता और मित्रता केवल व्यवहार से ही होती है।

२८. अच्छी स्थिति में सभी बन्धु होते हैं, बुरी स्थिति में बन्धु होना दुर्लभ है, सच्चा बन्धु वही है जो बुरी अवस्था में साथ दे। मित्र वही है जो आपत्ति में मनुष्य का साथ दे, बीती हुई बातों के लिए उलाहना देना कोई पाण्डित्य नहीं है।

२९. मित्रता करना तो सरल है परन्तुचिरकाल तक निभाना कठिन है।

३०. कुलटा स्त्री, कपटी मित्र, उत्तर देने वाला नौकर तथा जिस घर में सर्प हो, वहां रहना निःसन्देह मृत्यु का कारण होता है।

३१. पण्डित वही है जो श्रेष्ठ कर्मों को करता है तथा निन्दित कर्मों से दूर रहता है तथा जो श्रद्धावान है और नास्तिक नहीं है।

३२. चिन्ता करने से कोई लाभ नहीं, चिन्ता करने वाला केवल दुःख भोगता है। जो मनुष्य सुख और दुःख दोनों को त्याग देता है, जो ज्ञान से तृप्त और बुद्धिमान है, वही संसार में सुख प्राप्त करता है।

३३. बुद्धिमान लोग या तो किसी कार्य को आरम्भ नहीं करते और यदि कर लेते हैं तो बिना उसका अन्त किए नहीं छोड़ते।

३४. बुद्धिमान पुरुष को सर्वदा बड़ों का संग करना चाहिए, इसी से सुख मिलता है। जो पक्षी बड़े वृक्ष का आश्रय करते हैं, उनको खाने को पर्याप्त फल भी मिलते हैं और वृक्ष की छाया भी मिलती है।

३५. जब तक मन में काम, क्रोध, मद और लोभ की खान बनी हुई है तब तक पण्डित और मूर्ख समान ही हैं।

३६. बुद्धिमान मनुष्य किसी भी बात में शीघ्रता नहीं करता, परन्तु धर्म के कार्य आते ही वह इसके करने में तुरन्त उद्यत हो जाता है।

३७. मूर्ख से पण्डित उतना ही अच्छा है जितना अन्धकार से प्रकाश।

३८. जब मुझे थोड़ा सा ज्ञान था तब मैं हाथी की तरह मदान्ध था और मेरे चित्त में यह गर्व था कि मैं सर्वज्ञ हूं, परन्तु जब विद्वानों के सत्संग से मुझे ज्ञान आया तब मेरा मद रूपी ज्वर उतर गया और मुझे ज्ञान हुआ कि मैं मूर्ख हूं।

३९. माता-पिता-गुरु के अभ्यास कराने से ही बालक गुणी होता है। जन्म से कोई बालक पण्डित नहीं होता।

४०. सज्जन आदमी को चाहिए किसी भले या बुरे काम को करने से पहले यत्नपूर्वक

उसके परिणाम को विचार लें क्योंकि बिना विचार किये हुए कर्म का फल मरण पर्यन्त कांटे की तरह दुःख देते हैं।

४१. जो स्वयं दोषयुक्त होकर दूसरों को दोषी बतलाता है और जो असमर्थ होकर सबसे क्रोध करता है, वह अति मूर्ख है।

४२. जो केवल जीवित रहने के लिए भोजन करते हैं, सन्तानवान होने के लिए विवाह करते हैं तथा जिनकी वाणी केवल सत्य बोलने के लिए ही है। ऐसे ज्ञानी लोग दुर्गम-पथ को भी सहज में पार कर लेते हैं।

४३. अज्ञान, हठ धर्म की माता है।

४४. मनुष्य का जीवन अज्ञानता से कम होता है।

४५. सैंकड़ों मूर्ख पुत्रों की अपेक्षा एक गुणी पुत्र अच्छा है। जैसे बहुत से तारों से अन्धकार दूर नहीं हो सकता, एक चन्द्रमा ही अन्धकार को हटाता है।

४६. दुर्जन यदि विद्या से भूषित हो तो भी उसका त्यांग करना चाहिए, देखो, मणि से विभूषित सर्प भयंकर होता है।

४७. धूर्त लोगों ने, जो यज्ञ में पशुओं की बली देते हैं; वे बड़े मूर्ख हैं। वे वेदों का सच्चा अर्थ नहीं जानते। वेदों में अजों से यज्ञ करना लिखा है, अज का अर्थ औषधी विशेष है, बकरे का नहीं।

४८. जो बिना बुलाये जाता है, बिना पूछे सलाह देता है, अविश्वासी में विश्वास करता है, वह मूर्ख है।

४९. मनुष्य को चाहिए कि वह अपना ही काम देखे, दूसरे के कार्यों में छिद्रान्वेषण करना मूर्खता है।

५०. जो मूर्ख अपनी मूर्खता को जानता है वह धीरे-धीरे सीख सकता है।

५१. जो मूर्ख अपने को बुद्धिमान समझता है, उसका रोग असाध्य है।

५२. सत्त्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सदा उद्यत रहना चाहिए।

५३. जो वचन देश, काल के अनुकूल न हों तथा भविष्यकाल के अयोग्य हो तथा क्षुद्रता को प्रगट करता हो, ऐसे निर्मूल वचन को जो कहता है, वह विष का ही प्रयोग करता है।

५४. स्मरण रखो कि जो बातें तुम दूसरों के विषय में कहते हो, वही बातें दूसरे भी तुम्हारे बारे में कहते होंगे।

५५. किसी मनुष्य के बारे में ऐसी बातें मत कहो, जिसको तुम उसके सम्मुख कहने का साहस नहीं रखते हो।

५६. तुम्हारी जीभ तुम्हारे मन का दर्पण है और तुम्हारा चेहरा तुम्हारे हृदय का शीशा है।

५७. विनाशकाल में तथा मृत्यु समीप आनेपर किसी को हित की बातें अच्छी नहीं लगती।

५८. ऋण का न होना, परदेस में निवास न होना, सज्जनों का संग और अपने अनुकूल जीविका, स्त्री तथा पुत्र, आज्ञाकारी नौकर, ये छः जीव लोक के सुख हैं।

५९. अपमान को सहन करने वाला आदमी सुख की नींद सोता है, जागता है और

इस संसार में सुखी रहता है। अपमान करने वाला ही नष्ट होता है।

६०. यदि कोई तुम पर उपकार करे तो जीवन भर उसको याद रखो, यदि तुम स्वयं किसी का उपकार करो तो उसको भूल जाओ।

६१. चन्द्रमा और हिमालय पर्वत भी इतने शीतल नहीं हैं, कदली वृक्ष और चन्दन भी इतने शीतल नहीं, जितनी तृष्णा रहित चित्त शीतल रहता है।

६२. ऐश्वर्य चाहने वालों को अतिनिद्रा, आलस्य, भय, क्रोध तथा दीर्घसूत्रता अवश्य ही त्याग देनी चाहिए।

६३. किसी बात को भला आदमी तुमसे न कहना चाहे तो खोद-खोद कर उससे मत पूछो, ऐसा करने से उसको वृथा कष्ट होगा और संकोचवश व तुमसे मिथ्या वार्ता कह देगा।

६४. किसी कार्य को करने से अशुभ और शुभ फल होगा– ऐसा विचार कर मनुष्य को कार्य करना चाहिए। बिना विचारे कभी कोई कार्य न करना चाहिए।

६५. जिस कुटुम्ब में पति-पत्नी परस्पर सन्तुष्ट रहते हैं, उस कुटुम्ब की सर्वदा उन्नति होती है।

६६. अपने मन पर विजय प्राप्त करना ही सबसे बड़ी विजय है। जिसने अपने मन पर विजय प्राप्त कर ली उसने मानो सारे संसार पर विजय प्राप्त कर ली।

६७. समाज में सब मनुष्यों की मानसिक, शारीरिक, सामाजिक उन्नति के लिए प्रयत्न करना हमारा परम कर्त्तव्य हैं।

६८. यदि तुम्हारी इच्छा फूलों से सजे सिंहासन पर बैठने की हो, तो वहां तक पहुंचने के लिए मार्ग में जितने कांटे मिलें; उनको अपने पैरों से कुचल दो। रास्ते के समस्त रोड़ों को पीस कर विजय प्राप्त करो।

६९. शत्रु से शत्रुता करने से वैर दुगना बढ़ता है। वैर को दूर करने का उपाय प्रेम ही है।

७०. यदि कोई तुम्हारी अनुमति के अनुसार न चले तो उससे कदापि बुरा मत मानो, परन्तु उसके साथ प्रेम रखो।

७१. परमात्मा पूजा का नहीं, प्रेम का भूखा है।

७२. दूसरे के धन का हरण करना, परस्त्री से प्रेम करना, मित्रों का त्याग करना, ये तीनों नाशकारक होती हैं।

७३. यदि मनुष्य धन से अपने को धनी समझता है, जिसका न तो वह उपभोग करता है और न ही दूसरों को देता है, तो पृथ्वी में गाड़े धन से क्या हम लोग धनी नहीं होते?

७४. धन कमाने में दुःख, व्यय करने में दुःख, रक्षा करने में दुःख, विपत्ति में भी यह सन्ताप देता है, अतएव धन सुख देने वाला कैसे कहा जा सकता है?

७५. अपार धनशाली कुबेर भी यदि अपनी आय से अधिक खर्च करे तो वह भी कुछ दिन में भिखारी हो जायेगा।

७६. निर्धन को भी सताना नहीं चाहिए, यद्यपि वह निर्बल है क्योंकि मरी खाल की धौंकनी लोहे को भस्म कर देती है वैसे ही

निर्धन की आह सम्राट को भी भस्म कर देती है।

७७. प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह सत्य से मन को शुद्ध करे, ज्ञान से बुद्धि को शुद्ध करे।

७८. चरित्र से कभी पतित न होना चाहिए, गिर जाने में कोई गौरव नहीं है, गिर-गिर कर खड़े होने में गौरव है।

७९. दोष होने पर भी किसी का अपमान मत करो। किसी के दोष को उसके प्रिय बनकर हटाने की चेष्टा करो।

स्वामी सर्वानन्द वचन सुधा—भाग—३

श्रीमान् आचार्य जगदीश जी द्वारा संग्रहीत

(१) मन की चंचलता से सावधान रहो।

(२) कुत्ते से भी शिक्षा मिलती है। स्वामी भक्ति की। हम भी अपने स्वामी परमपिता परमेश्वर की आज्ञा में रहें।

(३) हे मनुष्य जब भी अवकाश मिले परमेश्वर का ध्यान कर। पर हित के कार्य करने की सोच। चलते फिरते, उठते बैठते, सोते जागते ऐसे विचार रहें।

(४) अशुभ कर्म करने से पूर्व, उसके दुःख रूप फल का विचार कर।

(५) मन में सदैव शुभ संकल्प किया कर।

(६) दूसरे की बुराई करने से पूर्व अपनी न्यूनताओं पर भी विचार करना चाहिए।

(७) हे मानव! यदि तू किसी को लाभ नहीं पहुंचा सकता तो तुझ से बबूल का कांटा ही अच्छा जिसे खाकर ऊंट अपना पेट भर लेता है।

(८) जब कोई तुझ पर क्रोध करे तो अपने आप को इस विचार में डाल दो कि चुप रहना है। अगला अपने आप बोल कर थक जायेगा और तुम्हारी सहन शक्ति उसके क्रोध को जीत लेगी।

(९) शुभ कर्मों को त्याग कर सुख शान्ति की आशा करना भूल नहीं तो क्या है?

(१०) व्यर्थ व असम्भव बातों की चिन्ता करके सिर को मत दुखाओ।

(११) सन्तोष का धन ही वास्तविक सम्पदा है।

(१२) हे मानव! भागों की तृष्णा तुझे कंगाल व दीन बना देगी।

(१३) जगत् से प्रीति छोड़नी कठिन है परन्तु एक बार छोड़ कर देख।

(१४) जब मृत्यु ने एक दिन तुझ से सब कुछ छुड़वा देना है तो तू मृत्यु से पूर्व ही छोड़ दे।

(१५) आत्मा परमात्मा का यथार्थ स्वरूप सत्संग से समझ में आता है और फिर शोक मोह नहीं रहता।

(१६) हे आर्यों! केवल वर्णाश्रम के अभिमान पर मत बैठे रहो। इनके अनुसार कर्म करो।

(१७) हे नर! खाते खाते तेरे दाँत घिस गये परन्तु तेरी तृष्णा नहीं गई।

(१८) रत्नों का भाव गंवार से तथा संन्यास व वैराग्य का सुख सांसारिक मनुष्य से मत पूछो।

(१९) कई साधु लोग भांग कूट कूट कर खाते हैं परन्तु संसार से चित्त नहीं हटाते।

(२०) नित्य सुख चाहता है तो संसार के अनित्य सुखों से हाथ खींच।

(२१) जो कुछ मन में होता है वही वाणी पर हो तो झगड़े न हों।

(२२) ईश्वर के द्वार को तज कर क्यों मनुष्य के बनाए द्वार पर माथा रगड़ता है।

(२३) तृष्णा रूपी कोढ के रोग में यदि फंस गया तो तू इससे बच नहीं सकेगा।

(२४) ईश्वरेच्छा में चलने वाले महात्माओं के वचन सच्चे मोतियों की लड़ी है।

(२५) ऐसे महात्माओं के वचनों का मूल्य कोई सच्चा पारखी ही जान सकता है।

(२६) मित्रता करनी है तो श्रेष्ठ पुरुषों से कर।

(२७) बोल कम, सुन अधिक। क्योंकि परमेश्वर की यही आज्ञा है।

(२८) निराशा बुरी बला है शुभ कामों में इसे अपने पास मत आने दें।

(२९) पृथ्वी तो यहीं रहेगी परन्तु मेरी तेरी करने वाले नहीं रहेंगे।

(३०) जो अपने सुख छोड़कर दूसरों के सुख की इच्छा करते हैं, वहीं जन भले हैं।

(३१) जो अपने सुख के लिए दूसरों की हानि करते हैं, वे अधर्मी कहे जाते हैं।

(३२) जो प्रयोजन निष्प्रयोजन दूसरों को कष्ट देते हैं, उनको हम क्या कहें?

(३३) जितने अधिक मन में संकल्प विकल्प होते रहेंगे उतना ही मन मैला होता रहेगा।

(३४) परेमश्वर से अधिक दयालु किसी को मत मान।

(३५) रुपये इकट्ठे करने से यश प्राप्त नहीं होता किन्तु दान से कीर्ति बढ़ती है।

(३६) दान देना सर्वोत्तम कर्म है।

(३७) शोक इस बात का है कि तुमने अपना स्वरूप नही जाना।

(३८) सब इच्छाओं को मन से बाहर निकाल दे तो सब इच्छायें पूर्ण हो जाती हैं।

(३९) ईंट पत्थर से बने स्थान का नाम ईश्वर का घर नहीं है। ईश्वर का वास्तविक घर तो तेरा मन है।

(४०) मिलने का स्वाद तब है कि जीते जी मिल। मरकर मिले तो क्या मिले।

(४१) यदि संसार के दुखों से बचना चाहता है तो घड़ी दो घड़ी सत्संग और परमात्मा से बात किया कर।

(४२) पहले अपने आपको जान फिर परमात्मा को जानने का यत्न कर।

(४३) जो काम विचार कर किया जाता है उसका फल सुखकारी होता है।

(४४) यदि सत्य से प्यार है तो सत्य ही बोला करो।

(४५) यदि धर्मात्मा बनना चाहते हो तो धर्म का आचरण तथा धर्म को व्यवहार में लाओ।

(४६) जब तक किसी काम में तेरे स्वार्थ की गंध है तो तू परोपकार का दम्भ मत कर।

(४७) परमात्मा की वाणी, ऋषि कृत ग्रन्थ, विद्वानों के ग्रन्थ पढ़कर हृदय में रखकर आगे बढ़ो। इन्हें अल्मारियों व सन्दूकों में मत रखो।

(४८) जब हम जानते हैं कि दुःख हमारे

ही कर्मों का फल हैं तो फिर दुखों से दुखी क्यों?

(४९) जब कभी कोई सूक्ष्म वासना उठे तो तत्काल ज्ञान ध्यान से समाप्त कर दे। नहीं तो बादलों की भांति दुखों की वर्षा तुझ पर कर देंगी।

(५०) अनेक जन्मों के पाप तत्काल नहीं छूटते। पुरुषार्थ करता चल। धैर्य रख।

(५१) ऋद्धि सिद्धि के चक्र में मत पड़। यह परमात्मा से प्रेम को पनपने नहीं देती।

(५२) साधु को अपने स्वार्थ के लिए किसी के सामने हाथ नहीं पसारने चाहिए।

(५३) जैसे छिद्र वाले घड़े में जल नहीं ठहर सकता। वैसे ही एक अवगुण वाला मनुष्य परमात्मा को नहीं पा सकता।

(५४) यदि आप में विनय का भाव नहीं और परेमश्वर के प्रति सच्चा प्रेम नहीं तो सारे शास्त्रों को पढ़ लिया तो क्या।

(५५) कर्म वही है जो बंधन का कारण न बने। ज्ञान वही है जो मुक्ति का साधन हो।

(५६) हमारा कर्त्तव्य तो कर्म करना है। फल की इच्छा नहीं है।

(५७) जैसे महासागर में लहरों का उठना स्वाभाविक है वैसे ही परमात्मा की सृष्टि में अनेक घटनाओं का होना भी स्वाभाविक है।

(५८) निष्काम कर्म करने वाले विवेकी पुरुष कोई बाधा उपस्थित होने से विचलित नहीं होते।

(५९) पहले अपने आपको शुद्ध करो फिर औरों को शुद्धि का उपदेश करो।

(६०) यदि लोग हमारी बातों को नहीं सुनते हैं तो हमें व्याकुल नहीं होना चाहिए। विचार करना चाहिए।

(६१) जो व्यक्ति अपनी इच्छा पूर्ति में दिनरात तत्पर है, वह सुख की नींद नहीं सो सकता।

(६२) जो व्यक्ति दिनरात अपने दोषों को जानने व उनके निवारण में तत्पर है वह दूसरों के छिद्र जानने के लिए उत्सुक नहीं होता।

(६३) हे जगदीश आपकी प्रसन्नता जिस प्रकार से हो, वही भाव हमारे अन्तःकरण में प्रकट हो।

(६४) क्रोध तो विष से भी बुरा है। क्योंकि विष अपने आप को त्याग कर दूसरों को; सेवन करने वालों को मारता है।

(६५) किसी ने ठीक ही तो कहा है कि जन्म के समय तू रोता था, लोग हंसते थे अब ऐसे कर्म कर कि तू हंसता हुआ जावे और जग के लोग रोयें।

(६६) जैसे चन्द्र में शीतलता स्वाभाविक है वैसे ही तू भी अपने स्वभाव को बना। वाणी में शीतलता ला।

(६७) कष्ट में पड़े शत्रु की भीं सहायता कर।

(६८) ऊंचे आसन पर बैठने से कोई ऊंचा नहीं होता। गुणों व आचरण से व्यक्ति ऊंचा उठता है।

(६९) लाखों मनोरथों की प्राप्ति होने पर समाप्ति नहीं होती। एक मनोरथ पूरा होता है तो एक नया मनोरथ उत्पन्न हो जाता है।

(७०) समय पर खाना चाहिए और ऋतुनुसार थोड़ा खाना चाहिए।

(७१) ईश्वर का नाम लो और बांट कर खाओ।

(७२) हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई—

सभी एक ही जाति है। सभी की रगों में एक ही पूर्वजों का रक्त बहता है।

(७३) सबको अपने समान समझो। यही एकता का प्रथम सूत्र है।

(७४) न्याय पूर्वक कमाए हुए धन से पालित पोषित सन्तान निष्ठावान् व धार्मिक होगी।

(७५) तीर्थ यात्रा की कामना करने वाली स्त्री के लिए पति ही सबसे बड़ा तीर्थ है और ऐसे ही पुरुष को जानना चाहिए।

(७६) चल अचल के भेंद से परमात्मा ने दो प्रकार की सृष्टि रची है।

(७७) संन्यास आश्रम धारण करके भी जो गंध, स्पर्श, रूप, रस, शब्द इन पांचों विषयों में प्रीति करता है तो वह संन्यासी नहीं। ऐसा व्यक्ति संन्यास से गिर चुका है।

(७८) एकान्त वास अल्पाहार, थोड़ा बोलना, किसी वस्तु की आशा न रखनी, इन्द्रियों को विषयों से रोक रखना तथा प्राणों को कम चलाने का अभ्यास करना – ये सन्यासी के नित्य कर्त्तव्य हैं।

(७९) अज्ञानता सन्यासी के लिए बहुत बड़ा शत्रु है।

(८०) भोजन से पूर्व व पश्चात् परमपिता परमात्मा का धन्यवाद करना चाहिए।

(८१) हमने खण्डन तो बहुत किया। मण्डन करना छोड़ ही दिया।

(८२) भोजन को पचाने के लिए ऊपर से मूली खाएं। यदि मूली न पचे तो ऊपर से गुड़ खाएं।

(८३) गाय देखी नहीं जाती। गाय के तो दर्शन किए जाते हैं।

(८४) हमने सत्कर्मों के करने वाले को कभी दुखी नहीं देखा। यदि कोई भला व्यक्ति दुखी है तो जान लो कि उसके दुःख का कारण उसके वर्तमान के शुभ कर्म नहीं अपितु कहीं पहले के किए हुए खोटे कर्म हैं।

(८५) स्त्री का त्याग एक सच्चे साधु से कम नहीं है।

(८६) परमेश्वर से नित्य प्रति ज्ञान धन, विद्या धन, आचरण धन, यश धन मागना चाहिए।

(८७) महापुरुषों का यह कथन एक अटल सत्य है कि जिस कुल में पति पत्नी से, पत्नी पति से प्रसन्न हैं वही कुल स्वर्ग है।

(८८) जिसकी पुत्र पुत्रियां आज्ञा में हैं, उस गृहस्थी से बड़ा भाग्यशाली कौन है?

(८९) असहाय की सेवा करना मानव धर्म है।

(९०) गाय का दूध दूध नहीं होता। वह तो अमृत है।

(९१) अव्यवस्था भी अपनी व्यवस्था में व्यवस्थित है।

(९२) आर्य शब्द जाति वाचक नहीं है। यह गुणवाचक है।

(९३) आर्य सृष्टि के आदि काल से हैं और अन्त तक रहेंगे।

(९४) क्रूर पड़ोसी को भी प्रेम से जीतने का यत्न करो।

(९५) यदि अच्छा मित्र चाहते हो तो अपने मित्र को सत्य हृदय दो।

(९६) मन में अच्छे विचार रखिए। धन से परोपकार करिए। तन से सेवा कीजिए। सारा विश्व तुम्हारे साथ होगा।

(९७) हे मानव! धन की तीसरी गति न होने दे।

(९८) गर्मी की ऋतु में धीमी गति से चलना चाहिए। पानी पी कर चलना चाहिए। शरद ऋतु में तेज तेज चलना चाहिए।

(९९) साधुओं का काम मिलाना है। झगड़े मिटाना हमारा काम है। जो झगड़ों में पड़े, स्वयं दलबन्दी की दलदल में फंस औरोंको भी फंसावे वह संन्यास धर्म को नहीं समझा।

(१०१) आज लोगों के पास डिग्रियां तो बहुत हो गई हैं परन्तु विद्या का ह्रास हो गया है। पं० गणपति शर्मा, पं० आर्य मुनि, आचार्य मुक्तिराम जी उपाध्याय, स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ के पास डिग्रियां तो नहीं थी परन्तु, उनकी विद्वता की, उनके ज्ञान की सब पर धाक थी।

(१०२) विद्या वही जानिए जो उपस्थित हो।

बच्चों से इतना प्यार

ब्र० नेकराम जब नया नया मठ में आया तो एक दिन भोजन करने नहीं आया। श्री स्वामी जी ने उसे बुलवा कर पूछा, "भोजन क्यों नहीं किया?" उसने कहा , "मैंने भोजन नहीं करना।" श्री महाराज ने कारण पूछा तो उसने कहा, "मेरी मां मुझे सूखी सब्जी भाजी दिया करती थी। मुझे तरी वाली सब्जी भाजी कतई रुचिकर नहीं।"

स्वामी जी ने तत्काल उसे करेले की सब्जी दी और कहा, "यह ले सूखी सब्जी। खा ले।"

इसके पश्चात् पूज्य स्वामी जी सदा भिक्षा की झोली से सूखी सब्जियां निकाल कर देते। जब कभी भी आप कुछ दिन के लिए बाहर जाते हैं तो मठ में यह आदेश देकर जाते हैं कि छोटे ब्रह्मचारी को सूखी सब्ज़ी देना। अब ब्रह्मचारी नेकराम तरी वाली सब्ज़ी भी ले लेता है परन्तु श्री महाराज को उसका इतना ध्यान है कि वे उसके लिए अब भी सूखी सब्ज़ी की व्यवस्था करते हैं।

इस महापुरुष का बड़प्पन तो यह है कि अपने लिए तो कभी रुचिकर न अरुचिकर भोजन की सोची ही नहीं। सुख सुविधा का कभी ध्यान नहीं आया परन्तु दूसरों का इतना ध्यान करते हैं।

'मेरी दक्षिणा आप नहीं दे सकते'

यह १९९० की घटना है कि बीकानेर के एक आर्यसमाज ने पूज्य स्वामी जी को अपने यहां पधारने का निमन्त्रण दिया और साथ ही यह पूछा लिया कि आपकी दक्षिणा क्या है। पूज्य स्वामी जी ने उत्तर में लिखा है कि मेरी दक्षिणा आप नहीं दे सकते। मेरी दक्षिणा निश्चित नहीं है। आप उन लोगों को बुलावें जिनकी दक्षिणा निश्चित है।

न जाने वे स्वामी जी के भाव को समझे अथवा नहीं परन्तु स्वामी जी महाराज को जहां उपदेशकों, विद्वानों संन्यासियों का तिरस्कार व उनके प्रति किसी का भी श्रद्धाविहीन व्यवहार बुरा लगता है नहीं पर संन्यासी बनकर व्याख्यानों प्रवचनों को व्यापार , धन संग्रह की प्रवृत्ति भी अत्यन्त बुरी लगती है।

तो मैं नेपाल अवश्य जाऊंगा

श्री ब्र० नन्द किशोर जी ने मार्च १९९१ में नेपाल में पुनः एक बड़ा समारोह करने का

निश्चय किया। आपने झज्जर में पूज्य स्वामी जी से कहा कि आपने इस बार भी नेपाल चलना है। स्वामी जी तब कुछ अस्वस्थ थे। वृद्ध अवस्था के कारण शरीर शिथिल था। आपने कहा इतनी लम्बी यात्रा इस समय नहीं कर सकता। फिर कभी चलूंगा।

भोले भाले भक्त ने बड़े सीधे से शब्दों में कहा, "क्या पता फिर आप रहें न रहें। आप मर गये तो फिर कैसे जायेंगे?" श्रद्धेय स्वामी जी यह सुनकर हंस पड़े और कहा, "अच्छा! तो फिर में नेपाल अवश्य चलूंगा।" यह कहकर श्रद्धेय महाराज ने अपने भक्तों शिष्यों को नेपाल चलने की प्रेरणा दी और अपनी मंडली सहित वहां गये।

विमान की आवश्यकता नहीं

नेपाल में आपको बहुत व्यस्त रहना पड़ा। वहां ज्वर भी हो गया। आपको विमान द्वारा देहली लौटने के लिए कहा गया। आप नहीं माने। किसी भक्त ने कहा, "स्वामी जी जब लोग श्रद्धा से आपकी व्यवस्था कर रहे हैं और आप ठीक नहीं तो विमान से जाने की स्वीकृति दे दीजिए।"

आपने कहा, मैं अब भी दस किलोमीटर पैदल चल सकता हूं तो फिर दुर्बलता का क्या प्रश्न? आप मुझे ऐसा बृद्ध तो न समझें जो सर्वथा अशक्य हो। इसलिए मैं तो रेल मार्ग से ही जाऊंगा।" और आप रेल द्वारा ही आए।

नेपाल की दूसरी प्रचार यात्रा

मार्च १९९१ में पूज्य स्वामी जी ने दूसरी बार अपनी मण्डली सहित नेपाल की प्रचार यात्रा की। ब्र० नन्द किशोर जी ने इस बार रक्त साक्षी शुक्रराज की बलिदान अर्द्ध शताब्दी मनाने का सकंल्प किया। पूज्य महाराज जी को वहां यति मण्डल की ओर से वेद-प्रचार के लिए सम्मेलन करने का निमंत्रण दिया। पूज्य स्वामी जी ने कहा कि मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं चल रहा अतः इस बार इतनी लम्बी यात्रा नहीं कर सकूंगा फिर चलूंगा। श्री ब्र० नन्द किशोर जी ने कहा कि जैसे भी हो चलिए। आप बहुत वृद्ध हो चुके हैं। क्या पता फिर आप मर जावें। यह उत्तर पाकर स्वामी जी हंस पड़े और कहा, ठीक है मैं चलूंगा।

२४ संन्यासियों, वानप्रस्थियों व ब्रह्मचारियों की मण्डली के साथ आपने ११ मार्च को देहली से प्रस्थान किया। मार्ग में दो दिन लगे। पूर्ववत् मार्ग के लिए खानपान की सब सामग्री आंर्यसमाज नया बांस ने दी। आर्यसमाज नया बांस वालों के धर्म भाव व श्रद्धा से पूज्य स्वामी जी बड़े प्रभावित हुए।

नेपाल में ब्र० नन्दकिशोर जी की देखरेख में जो कार्य हो रहा है, उसका अच्छा प्रभाव पड़ा है। इस बार यज्ञ में, प्रवचनों में, शोभा यात्रा में नेपाली जनता नें भारी संख्या में भाग लिया। तीन किलो मीटर की लम्बी शोभा यात्रा ने सभी को प्रभावित किया। ज्वर के कारण स्वामी जी को कहा गया कि आप रथ पर बैठ जावें परन्तु, आप पैदल ही शोभा यात्रा के आगे आगे चलते रहे। विराटनगर के वीरेन्द्र हाल में हुतात्मा शुक्रराज बलिदान अर्द्ध शताब्दी समारोह मनाया गया। उपस्थिति बहुत अच्छी रही। दो पूर्व प्रधान मन्त्रियों ने कार्यक्रम में भाग लिया।

इस अवसर पर बालकों के गुरुकुल में यज्ञशाला की आधार शिला रखी गई। विराटनगर से कुछ दूर एक कन्या गुरुकुल की आधार शिला रखी गई। इस गुरुकुल के लिए एक श्रद्धालु लाल बहादुर राय जी ने तीन एकड़ उर्वरा भूमि दान में दी है। लाखों रुपये के इस सात्विक दान से नेपाल में वैदिक धर्म प्रचार का एक नया युग आरम्भ हुआ है। कभी महाशय कृष्ण जी ने लिखा था कि आर्यसमाज की चक्की चलती तो धीरे-धीरे है परन्तु पीसती बारीक है। यह उक्ति इस समय यदि किसी पर चरितार्थ होती है तो वे है हमारे पूज्यपाद स्वामी जी महाराज। क्या नेपाल, क्या उड़ीसा, क्या मध्यप्रदेश, क्या केरल, क्या महाराष्ट्र, और क्या कर्नाटक जहां-जहां भी इनके भक्त व शिष्य महाराज की प्रेरणा से सेवा कार्य कर रहे हैं वहां वहां आप देखेंगे कि बिना शोर मचाए विपरीत परिस्थितियों में वैदिक धर्म-प्रचार का आन्दोलन आगे बढ़ा है व बढ़ रहा है।

लड़कों के जिस गुरुकुल की महाराज ने दो वर्ष पूर्व नींव रखी थी, वहां इस समय ७६ ब्रह्मचारी शिक्षा पा रहे हैं। गुरुकुल में सात अध्यापक अध्यापन कार्य कर रहे हैं। नेपाली जनता पर इस बार इस बात का विशेष प्रभाव पड़ा कि यज्ञ में बिना किसी भेद भाव के सब लोग आहुति डाल सकते हैं। ऋषि दयानन्द ने सबके लिए वेद के द्वार खोल दिये हैं। प्रभु की विमलवांणी वेद आज किसी वर्ग विशेष अथवा देश विशेष की सम्पदाकिंवा जागीर नहीं है।

१३-१४-१५ और १६ मार्च तक श्री महाराज ने नेपाल के धर्म प्रेमी भाई बहिनों को अपने प्रवचनों से तृप्त किया। नेपाल राष्ट्र को शुभ कामनायें अर्पित करके आप चार दिन के पश्चात् वहां से लौट आए। आपका आशीर्वाद प्राप्त कर वहां के नेता व साधारण जनता सभी आनन्दित हुए। अपने ८ अप्रैल १९९१ के पत्र में पूज्य स्वामी जी ने कार्य के विस्तार गुरुकुल की उन्नति तथा इस आयोजन की सफलता का सारा श्रेय ब्र० नन्दकिशोर जी को दिया है। अग्रज पर्यन्त हमने तो कभी भी आपके मुख से यह नहीं सुना कि मैंने यह कार्य किया है। ऐसे निष्काम कर्मयोगी की उपलब्धियों का वर्णन करने में हमारी लेखनी सर्वथा अक्षम है। यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि वैसे तो श्री महाराज वहां नियमित आर्थिक सहयोग भिजवाते हैं परन्तु इस बार वहां गये तो आशीर्वादों की वृष्टि तो की ही साथ ही पुष्कल धन राशि भी भेंट की।

अपने एक तपस्वी शिष्य स्वामी सगुणानन्द जी को वहीं प्रचारार्थ छोड़ आए। दो मास तक नेपाल में प्रचार करके नेपाल से पैदल ही प्रचार करते हुए मठ पहुंचेंगे। आज के युग में ऐसे साधु कितने हैं?

जब कोई गऊ ब्याही जावे

स्वामी जी महाराज की सेवा की चर्चा चल निकली तो आचार्य जगदीश जी ने श्री पं० आशानन्द जी को बताया जब कोई गऊ ब्याही जाती है तो रात्रि समय उस गाय के लिए किसी ब्रह्मचारी के सेवा सौंपी जाती है। रातभर गऊशाला में ब्रह्मचारी को जागना पड़ता है फिर भी श्री स्वामी जी स्वयं उठ उठकर गऊशाला के चक्र लगाते हैं ताकि ब्रह्मचारी के

सो जाने से गऊ जेर न खा जावे।

न्यायाधीश ने स्वामीजी का इतना सन्मान किया

जब स्वामीजी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के रिसीवर थे तो उन दिनों पंजाब हाईकोट के न्यामूर्ति ढिल्लों एक बार जालंधर आए। श्री स्वामीजी बी उस दिन जांलधर में ही थे। सभा का विवाद न्यायमूर्ति ढिल्लों ही के सामने थे। स्वामीजी ने दूरभाष से न्यायमूर्ति ढ़िल्लों को सन्देश भिजवाया कि वह मिलने का समय दें। उन्होंने स्वामीजी महाराज को सर्कट हाऊस पहुचने के लिए कहा। ठीक समय पर स्वामी जी वहां पहुंच गये। न्यायमूर्ति महोदय ने कमिशनर व अन्य सभी राज्य अधिकारियों को कहा, "आप अभी एक ओर चले जावे मैं श्री स्वामी जी कुछ विचार विमर्श करुगा। जब बातचीत हो गई तो न्यायमूर्ति ढिल्लों द्वार तक स्वामी जी महाराज को विदा करने आए। वहां पर उपस्थित सभी लोग यह बहुत चकित थे कि रिक्शा पर आए इस दुबले पतले सीधे सादे आडम्बर रहित साधु में क्या विशेषता है कि न्यायमूर्ति ढिल्लों इन्हें द्वार तक छोड़ने आए है। सभी लोग यह जानने के इच्छुक थे कि यह महात्मा है कौन?

जब श्री रामचन्द्र जी जावेद को इस घटना की जानकारी मिल तो आपने अपने 'वैदिक धर्म' में इस पर एक सम्पादकीय लिखा था। यह ठीक है कि संसार में सब प्रकार के लोग होते हं। भक्त अमींचन्द तो ऋषि के कृपा कटाक्ष से सुधर गये, तर गये और साथ रहने वाले पाचक ने विष तक दे दिया। ऐसे ही जहां दो-दो चार-चार वर्ष मठ में रहकर पढ़ने वाले अनेक युवक स्वामीजी के सत्संग को पाकर भी जीवन में कुछ न बन पाए वहीं ऐसे भी सज्जन है जो श्री महाराज के साथ अपने स्वल्पकालीन सम्पर्क से बहुत प्रभावित हुए और उनका गुणगान करते हुए नहीं थकते।

जब कभी कोई निर्धन दुखिया आता है

ब्र० रवीन्द्र ने बताया कि निर्धन दुखिया रोगी मठ में आते ही रहते हैं। जब रोग पुराना हो और रोगी निर्धन हो तो उसकी निराशा का हम अनुमान लगा सकते हैं। श्री स्वामीजी ऐसे रोगी को अपने समीप बिठाकर अपने समुधर वचनों से उसका मनोबल बढ़ाते है। उसे सान्त्वना देते हैं। धीरज बंधाते हैं। आपके ऐसे मृदुल व्यवहार से दुखिया निर्धन रोगियों को विशेष शान्ति प्राप्त होती है। औषधि तो बाद में देते हैं पहले मानसिक व आत्मिक भोजन देते हैं।

विद्या चहिए उपाधि नहीं

एक दिन मैंने एक प्रश्न पूछा तो आपने उत्तर में कहा, "एक बार लाहौर में मैंने स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज से जाकर कहा कि मैं सिद्धान्त शिरोमणि की परीक्षा नहीं दूंगा वैसे ही विद्या अभ्यास करता रहूंगा।

स्वामी जी महाराज ने जब आदेश दे दिया तो फ़िर मैंने और क्या कहना था। उनकी आज्ञा के पालन में तत्पर रहना मैं अपना कर्त्तव्य समझता था। उनका आदेश पाकर परीक्षा की तैयारी करने में लग गया। लक्ष्य तो विद्या प्राप्ति ही था। श्री स्वामीजी की आज्ञा थी इस लिए परीक्षा के लिएं या उपाधि के लिए भी पढ़ना पंड़ा। इसी में अपना हित जाना।

श्री स्वामी जी कहा करते हैं

जीवन में आगे बढ़ने व उन्नति करने के लिए स्वामी जी का एक नीति सूत्र है:– **'आओ और जाओ'**। इसकी व्याख्या आप एक कहानी के द्वारा किया करते हैं। दो कृषक थे। दोनों के घर पास-पास थे। दोनों के खेत भी साथ-साथ लगते थे। एक अपने पुत्रों व सेवकों को सदा यही कहा करता था, "आओ हल चलाएं। आओ पशु चरायें। आओ खेतों को पानी लगावें। आओ दूध निकालें। आओं पशुओं को पानी पिलावें" इत्यादि इत्यादि। दूसरा सदा ऐसे कहा करता था कि जाओ खेत में हल चलाओ। जाओ गऊओं का दूध निकालो। जाओ खेतों में पानी लगाओ।

दोनों की इस रीति-नीति का यह परिणाम निकला कि पहले वाला कृषक फूलता-फलता गया और दूसरा जीवन में पिछड़ता ही गया। आओ कार्य करें और जाओ कार्य करो में बस यही अन्तर है।

जब मठ में एक साधु ने झूठन छोड़ी

वयोवृद्ध श्री पं० आशानन्द जी भजनोपदेशक ने सुनाया कि एकबार हम दोपहर के समय मठ में भोजन कर रहे थे। दोपहर के समय मठ में भिक्षा का भोजन मिलता है। बाहर से किसी डेरे से एक साधु आ गया। स्वामी जी ने उसे भी भोजन करने के लिए कहा। पता नहीं, उसे भिक्षा का भोजन रुचिकर न लगा। उसने झूठन छोड़ दी। मठ में झूठन नहीं छोड़ी जाती।

स्वामीजी ने उसे कहा, "आपने झूठन क्यों छोड़ी" उसने कहा, "कुत्ते के लिए।"

स्वामी जी ने कहा, "हमारे आश्रम में तो कुत्ते को भी हम झूठा नहीं देते।"

उसने कहा, "कोई बात नहीं।" यह कहकर वह उठ गया। उस पर स्वामी जी के कहने का कुछ प्रभाव पड़ा या नहीं, यह तो हम क्या कह सकते हैं परन्तु स्वामी जी पर उस साधु का कोई अच्छा प्रभाव न पड़ा। श्री पं० आशानन्द जी समझ गये कि यह साधु नहीं स्वादु है। संन्यास लेकर भी स्वाद के पीछे पड़ा है।

जब पं० प्रकाशवीर शास्त्री दीनानगर आए

श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी के जीवन-काल की घटना है कि श्री पं० प्रकाशवीर जी शास्त्री दीनानगर आए। आर्य समाज में उनकी कथा रखी गई। दीनानगर के स्वर्गीय ला० देवराज जी गुप्त ने उनको भोजन का निमन्त्रण दिया। शास्त्रीजी ने कहा, "आप तो दो-तीन सब्जियां खिलाएंगे। मैं तो मठ में भोजन करुंगा। वहां तो मुझे पांच-दस प्रकार के व्यञ्जन मिलेंगे।" इस प्रकार शास्त्री जी ने भिक्षा के भोजन को प्राथमिकता देकर अपनी आस्था व बड़प्पन का परिचय दिया। श्री स्वामी सर्वानन्द जी आज पर्यन्त प्रकाशवीर जी की यह घटना सुनाया करते हैं। जिन्हें मठ के भिक्षा के भोजन में संकोच है या भय लगता है, उन्हें अपने आपको एकबार अवश्य टटोलना चाहिए।

"लो ये पैसे तुम्हारे काम आएंगे"

यह जनवरी १९९१ की घटना है कि ब्र० इन्द्र को कुछ पैसों की आवश्यकता थी। उसे स्वामी जी से अपनी आवश्यकता कहते हुए

संकोच-सा होता था। दो दिन ऐसे निकल गये। ब्रह्मचारी यही सोचता रहा कि मैं कैसे पैसे मांगू। तीसरे दिन सायंकाल स्वामी जी ने अपने आप ब्र० इन्द्र से कहा, "ये ले पैसे तुम्हारे काम आएंगे।"

ब्र० इन्द्र पैसे पाकर बड़ा चकित हो गया कि बिन मांगे ही स्वामी जी ने मुझे पैसे दे दिये। सहज रीति से स्वामी जी को ब्रह्मचारी के मनोभावों का आभास हो गया।

भक्त ज्ञानसिंह की इतनी श्रद्धा

श्री महाराज के एक भक्त सरदार ज्ञानसिंह जी नित्य प्रति मठ में आते हैं। उनके मठ के प्रति ऐसी श्रद्धा है कि वे दो घण्टे तो मठ में रहते ही हैं। कोई दो-तीन वर्ष पूर्व जम्मू की ओर से बहुत से गुर्जर (गुज्जर) अपने पशुओं सहित दीनानगर आए। मठ के खेतों में गेहूं की फ़सल खड़ी थी। उन्होंने अपने पशु लहलहाते हरे खेतों में छोड़ दिये। ब्रह्मचारियों को पता लगा। कई ब्रह्मचारी भागकर खेत में गये। पशुओं को निकाल दिया। गुर्जरों से झगड़ा हो गया। अपनी भूल तो क्या स्वीकार करनी थी वे तो उल्टा ब्रह्मचारियों से लड़ने लग गये। ब्रह्मचारियों ने उन्हें पीट दिया।

गुज्जरों ने शोर मचा दिया कि हमारा एक व्यक्ति ब्रह्मचारियों ने जान से मार दिया है। गुज्जर स्त्रियों ने रोना-पीटाना आरम्भ कर दिया। थाने में आकर रिर्पोट भी अंकित करवा दी। पुलिस मठ में आ गई। मठ में आकर पुलिस ने पूज्य स्वामी जी से मिलना चाहा। आचार्य जगदीश जी ने स्वामी जी को जाकर सूचना दी कि पुलिस ऐसे-ऐसे आई है। श्री स्वामीजी को इस झगड़े की पूर्व सूचना नहीं थी। दोपहर का समय था। भोजन के पश्चात् उन्हें आग्रहपूर्वक विश्राम करने को कहा गया था। उस समय यह झगड़ा हुआ था। श्री स्वामी जी ने कहा, "मैं ठहर कर आऊंगा। अभी नहीं आ सकता। उन्हें कहो जितने ब्रह्मचारियों को पकड़ना है व जिस-जिस को भी पकड़ना है, पकड़ कर ले जावें।"

पुलिस वालों ने कहा ऐसे-कैसे हो सकता है? हम स्वामी जी से बिना पूछे व उनसे बात किए बिना कुछ नहीं करेंगे। इतने में नगर से कुछ प्रतिष्ठित आर्य पुरुष भी आ गये। सरदार ज्ञानसिंह भी अपने ग्राम से आ गये। आपको जब झगड़े का पता चला तो आपने कहा, "यदि गुज्जरों का कोई व्यक्ति मरा है तो मैं कहूंगा कि किसी ब्रह्मचारी ने नहीं मारा, मैंने उसे मारा है। ब्रह्मचारी दूर-दूर से यहां पढ़ने के लिए आते हैं। हम उन पर कोई विपत्ति न आने देंगे। स्वामी जी महाराज अपने निश्चित समय पर कुटिया से बाहर आए। पूछताछ आरम्भ हुई। स्वामी जी ने पुलिस वालों को कहा, "जिस-जिस को आप चाहते हैं, थाने ले जावें।"

जांच-पड़ताल आरम्भ हुई। पुलिस ने कहा कि शव दिखाओ। कोई मरा तो था ही नहीं। व्यक्ति को कुछ चोटें लगीं थी। वह भी ठीक-ठाक था। अपने अपराध को छुपाने के लिए गुज्जरों व उनकी स्त्रियों ने एक नाटक-सा किया था। पुलिस दो ब्रह्मचारियों को ले गई। उन्हें आदरपूर्वक थाने में ले जाकर बिठा दिया। जब गुज्जरों के झूठ की पोल खुली और उनके अपराध का पता चल गया तो वे क्षमा मांगने

लगे। पुलिस अब उन्हें छोड़ती नहीं थी। स्वामी जी महाराज के हस्ताक्षेप करने से पुलिस ने उन्हें छोड़ दिया। क्षमाशील साधु ने उनकी भूल-चूक पर मिट्टी डाल दी।

मठ सेवा करेगा, धन नहीं लेगा

यह मई सन् १९९१ की बात है। श्री पं० आशानन्द जी मठ में पहुंचे। उनका स्वास्थ्य कुछ ढीला था। दो-तीन दिन में ही ये ठीक हो गये। पण्डित जी चलने-फिरने लगे और घण्टों फार्मेसी में सेवा भी करते। स्वामी जी ने उन्हें कहा, "पण्डित जी अब मठ में ही रहिए। मठ आपकी सेवा करेंगा।"

पं० आशानन्द जी ने मठ को कुछ धन देने की इच्छा व्यक्त की तो स्वामी जी ने कहा, "मठ सेवा करेगा, धन नहीं लेगा। धन कहीं और अच्छे कार्य में लगा दें।" लेखक इस घटना का प्रत्यक्षदर्शी है।

डाक्टर को भेंट कैसे दी

श्री स्वामीजी पठानकोट में डाक्टर जसवन्तसिंह जी के क्लिनिक में उपचार करवा रहे थे। ब्र० रवीन्द्र सेवा के लिए साथ था। डाक्टर महोदय एक विनम्र सज्जन पुरुष हैं। आपने बड़ी श्रद्धा से आपका उपचार किया। स्वामी जी शीघ्र ठीक हो गये। आपने ब्रह्मचारी जी से कहा कि एक लिफाफे में यह राशि डालकर डाक्टर जी को भेंट कर आवें। ब्रह्मचारी जी ने जाकर डाक्टर मोहदय को वह भेंट देनी चाही।

डाक्टर ने कुछ लेने से इंकार कर दिया। श्री स्वामी जी ने उससे कुछ और राशि मिलाकर फिर ब्रह्मचारी जी को भेजा। राशि के थोड़ी या अधिक होने का तो प्रश्न ही न था। वह तो श्रद्धा के कारण कुछ न ले रहे थे। डाक्टर महोदय स्वयं चलकर आए और कहा कि मुझे बस आपका आशीर्वाद ही चाहिए।

स्वामीजी ने कहा कि यह मेरा आदेश है। इसे लेना ही पड़ेगा। श्रद्धालु डाक्टर ने कहा, अब मैं यह कैसे कंहू कि मैं आपकी आज्ञा नहीं मानता। विवश होकर उसने वह भेंट स्वीकार की।

इसे अभी पता नहीं

श्री स्वामी जी महाराज में गऊओं के लिए जितना प्यार है, इसका दूसरा उदाहरण मिलना अति कठिन है। मठ में एक नई गऊ आई। श्री महाराज उस पर हाथ फैरने लगे तो उस मही नाम की गऊ ने स्वामी जी को लात मार दी। लात भी मारी तो स्वामीजी की लात पर। कुछ मठवासी पास ही खड़े थे। आपको सम्भाल लिया गया। बृद्ध अवस्था में टांग पर अधिक चोट भी लग सकती थी। स्वामीजी को गाय के इस व्यवहार पर किञ्चित् मात्र भी रोष न आया।

ब्र० रवीन्द्र ने बताया कि आपने तब केवल इतना ही कहा, "यह नई-नई आई है। इसे अभी मठ के नियमों का पता नहीं है।"

श्री स्वामी जी को हम शान्ति का भण्डार कह दें तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं होगी।

जब बछिया ने मारा गिराया

ब्र० रवीन्द्र जी ने ही बताया कि एकबार स्वामीजी एक गाय 'पा' को प्यार कर रहे थे तो पीछे से एक बछिया 'गंगा' आ गई। स्वामी जी ने उसे नहीं देखा। बछिया ने पीछे से आकर श्री

स्वामी जी को अपना सिर इस ढंग से दे मारा कि आप आगे को गिर गये। मठ वालों ने आपको झट से उठा लिया। कोई चोट तो न लगी परन्तु बृद्ध अवस्था में गिरने से कुछ तो कष्ट हुआ ही।

आपको जब उठाया गया तो अपने मेघ गम्भीर स्वर से बोले, "यह बछिया चाहती है कि पहले उस पर हाथ फेरा जावे।"

बात भी यही थी। बछिया अपना प्रार्थना पत्र महाराज के सामने कैसे रखती? उसे यही ढंग सूझा। मुनिवर स्वामी सर्वानन्द जी के धीरज की तो नित्यप्रति परख होती है। उनके हृदय की इस शान्ति को देखकर किसे स्पर्धा नहीं हो सकती?

यतिवर! ऐसी नियमबद्धता

आचार्य जगदीश जी ने पं० आशानन्द जी को बताया कि श्री स्वामी जी ने किंसी के लिए भी फार्मेसी से कोई औषधि लेनी हो तो कभी भी अपने आप कोई औषधि नहीं लेते। फार्मेसी के व्यवस्थापक या फार्मेसी में काम करने वाले ब्रह्मचारियों से आकर कहते हैं अमुक औषधि दे दें। यह बात छोटी-सी लगती है परन्तु बहुत बड़ी है। यही बड़ों को बड़प्पन है।

सदा विचार कर निर्णय देते हैं

मठ से कोई भी सहायता मांगे। स्वामी जी अपने आप सहायता नहीं देंगे। मठ के प्रमुख व्यक्तियों यथा स्वामी सोमानन्द जी आचार्य श्री जगदीश जी से विचार-विमर्श करके ही सहायता देते हैं। भले ही यह सहयोग पाच-दस रुपये का भी क्यों न हो?

आपको यह धन कैसे दिला दूं?

पं० आशानन्द जी ने बताया कि मई सन् १९९१ के दूसरे सप्ताह कोई सज्जन मठ में आए। कुछ राशि भेंट करनी चाही। स्वामी जी ने कहा— नहीं चाहिए। वानप्रस्थी रामकृष्ण जी ने कहा, "स्वामी जी! आप यह राशि हमें पं० लेखराम स्मारक के लिए ही दिलवा दें।"

आपने कहा, "आपको कैसे दिलवा दूँ? जब मैंने यह दान स्वीकार ही नहीं किया तो कैसे कह दूं कि आपको दे दो।"

यह पता नहीं कि श्री स्वामी जी ने उस व्यक्ति से क्यों दान न लिया।

"मुझे किसी ने भी कभी नहीं डांटा"

लेखक ने श्री महाराज से पूछा, "क्या आप को पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज ने कभी डांट-डपड की?" आपने अत्यन्त विनम्रता से कहा, "मुझे जीवन में पूज्यपाद स्वामी जी ने या किसी अन्य गुरु या बड़े व्यक्ति ने कभी नहीं डांटा। केवल एकबार प्राथमिक शाला में पढ़ते हुए गुरुवर तोताराम जी ने मारा था।"

यह वाक्य कहते समय श्री स्वामी जी को चहरे की चमक देखने योग्य थी।

'मुझे कभी पछताना नहीं पड़ा'

लेखक ने पूछा, "स्वामी जी सार्वजनिक जीवन में क्या किसी निर्णय लेने पर आपको बाद में पछतावा भी हुआ?"

आपने कहा, "मुझे कभी किसी निर्णय के लिए बाद में पछताना नहीं पड़ा।"

"मैं जिस गुरु का शिष्य हूं"

स्वामी जी ने सुनाया कि जब मैं सभा का रिसीवर नियुक्त किया गया तब कई सज्जनों ने मुझे कहा कि आप किस काम में पड़ गये। सभा के झगड़े में महात्मा आनन्द स्वामी पड़े। वे सफल न हुए। अमुक इस झगड़े में पड़ा और तमुक पड़ा, सभी मैदान छोड़ गये।

ऐसी बातें सुनकर मैंने कहा थ, "मैं जिस गुरु का शिष्य हूं उसने मुझे भागना नहीं सिखाया।"

मठ की बड़ी हानि हुई परन्तु....

आपने कहा जब मैं रिसीवर बनाया गया तो सभा के कामों में मुझे बहुत बाहर आना-जाना-पड़ता था। इससे मठ की बड़ी हानि हुई। रोगी मेरे यहां न होने से किसी अन्य से औषधि न लेते थे। फार्मेसी की आय भी घट गई। आर्य जाति के हित में मठ ने यह सब कुछ सहा और मुझे इस पर कभी कोई खेद या दुःख नहीं हुआ। सामाजिक जीवन में लोकहित में जो कुछं मुझे करना चाहिए था सो मैंने किया।

स्वामी जी ने कुछ न बताया

लेखक ने श्री स्वामी जी से पूछा, 'स्वाध्याय सन्दोह' की भूमिका में श्री स्वामी वेदानन्द जी ने और 'आर्यसमाज के महाधन' की भूमिका में श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने ग्रन्थ लेखन में आपके सहयोग के लिए आपको धन्यवाद दिया है। आपने इन दोनों महापुरुषों को इन पुस्तकों के लेखन में क्या-क्या सहयोग दिया?

श्री स्वामी सर्वानन्द जी ने इस विषय में हमें कुछ भी न बताया। कहा, "कुछ ध्यान नहीं। गुरुजन जो कार्य सौंपते थे वह कर दिया करता था। और क्या?"

वैदिक साहित्य के इतिहास में 'स्वाध्याय सन्दोह' का अपना ही एक स्थान है। आज भले ही वेद मंत्रों की व्याख्या के कई संग्रह छप चुके हैं तथापि इस ग्रन्थ को हम बेजोड़ ही कहेंगे। इसकी रचना व प्रकाशन वैदिक साहित्य के इतिहास में एक मील पत्थर था। ऐसे लोकप्रिय व पाण्डित्यपूर्ण उच्चकोटि के इस पवित्र ग्रन्थ के लेखन में सहयोग देकर भी अपने योगदान के बारे में मौन धारण कर लेना, यह इसी मुनि महान् का कार्य है।

श्री स्वामी जी के मुख से हमने स्वाध्याय सन्दोह की चर्चा तो सुनी है परन्तु आपने कभी भूल कर भी यह नहीं कहा कि इस ग्रन्थ के लेखन के समय मैं स्वामी वेदानन्द जी महाराज की सेवा में था और मेरा भी इसमें कुछ सहयोग रहा है।

तपड़ी वाले शास्त्री जी पर रंग चढ़ा दिया

गुरुदासपुर व जम्मू क्षेत्र में एक द्वारिकानाथ शास्त्री हैं। वह **'तपड़ी वाला शास्त्री'** के नाम से उस क्षेत्र में बड़े प्रसिद्ध हैं। उनके बहुत चेले हैं। जब कहीं ये जाते हैं तो इनके आगे-पीछे इनके जयकारे लगाने वाले बहुत से चेले साथ चलते हैं। गुरुदासपुर के क्षेत्र में यह कई साधुओं के डेरे पर गये। सभी से विवाद किया। सबका निरादर किया। एकदिन अपने चेले सहित आप मठ में भी आए। कुटिया पर स्वामीजी से वार्तालाप आरम्भ करते हुए कहा, "आपने लाल कपड़े (भगवे वस्त्र) क्यों पहने हैं?"

स्वामी जी महाराज ने अपनी बात व अपना उत्तर संस्कृत भाषा में दिया। भगवे वस्त्रों की शास्त्रोक्त महिमा बतलाते हुए स्वामी जी ने कहा— मैंने तो सोचा था कि आप कोई वेद वेदांग की बात करेंगे। श्री स्वामी जी ने तपड़ी वाले शास्त्री जी से शास्त्री शब्द की निरुक्ति पूछ ली।

जब वह कुछ कहने लगा तो स्वामी जी ने टोकते हुए कहा, "संस्कृत में ही बोलिये।" शास्त्री जी चुप हो गये। कुछ बोल न सके। भक्तजन यह देखकर एक दूसरे की ओर ताकने लगे। जब वह आए थे तो भक्त उनके जयकारे लगा रहे थे।

अब एक भक्त उठा और शास्त्री जी का पांव दाबने लगा। स्वामी जी ने पूछ लिया, "शास्त्री जी आप बोल क्यों नहीं रहे? आप क्या रुग्ण हैं जो पांव दबवा रहे हैं? पैर तो रोगी व बूढ़े के दबाए जाते हैं।"

शास्त्री जी ये सब कुछ सुनकर कुछ सोच में पड़ गये। पैर दबाने वाले चेले को परे हटाकर शास्त्री जी बैंच से उठे और स्वामी जी महाराज के चरणों में पड़ गये। स्वामी जी से कहा, "मेरे लिए कोई आदेश?"

स्वामीजी ने कहना आरम्भ किया, "यहां तेरे जैसे कई कृष्ण आए और चले गये। अन्त में लड़कियां भगाकर ले जाते हैं। आज आवश्यकता है आर्य (हिन्दू) जाति को जगाने व संगठित करने की। जो बात वेदोक्त हो वही कहा करें। वेदोक्त बात ही बुद्धिपरक हो सकती है। राम व कृष्ण की विशेषतायें बताया करो। उनके नाम पर कोई गलत बात मत कहा व किया करें। विद्वानों को बुलाकर बड़े-बड़े यज्ञ किया करें।

सबको कहा करो कि वेद ईश्वर की वाणी है। वेद हमारा धर्म है। ईश्वर निराकार है। ओ३म् उसका मुख्य नाम है। मैं कृष्ण नहीं हूं। अपनी पूजा मत करवाओ। स्त्रियों को अपने पास मत आने दिया करें। पाखण्ड तो पहले ही बहुत हैं। आप पाखण्डों से सब को बचावें।"

शास्त्री जी ने कहा, "सत्य वचन महाराज।" चरण स्पर्श करके वह चले गये। उसी रात्रि दीनानगर के माता के मन्दिर में शास्त्री जी ने प्रवचन किया। श्री स्वामी सर्वानन्द जी का नाम ले-ले कर सब वेदोक्त बातें कहीं। अब वह मठ से सामग्री मंगवा कर यज्ञ करवाते रहते हैं। गुरुदासपुर वैदिक साधन आश्रम में कहा, ऋषि हमारा हितैषी था। उसने पाखण्डों का खण्डन करके और वेदोक्त सिद्धातों का मण्डन करके सत्यार्थप्रकाश में सद्धर्म का प्रकाश किया है।" तपड़ी वाले शास्त्री जी का यह हृदय परिवर्तन श्री स्वामी जी के उपदेश व जीवन का ही प्रभाव है।

और वे गोबर उठा रहे थे

श्री पं० आशानन्द जी ने बताया कि जब मैं मई सन् १९९१ के दूसरे सप्ताह मठ में पहुंचा तो श्री स्वामी जी मेरे पहुंचने पर एक गाय का गोबर उठा रहे थे। इस वृद्ध अवस्था में भी आप आराम से नहीं बैठ सकते। जिस कार्य को लोग बहुत तुच्छ समझते है, वे इसे बड़ी श्रद्धा से करते हैं। स्वामी जी महाराज मठ के किसी भी व्यक्ति को कहकर गोबर उठवा सकते हैं परन्तु सेवा मूर्ति महाराज जी अपने आचरण से दूसरों को उपदेश दिया करते हैं।

''चलता-फिरता हूं इसीलिए ठीक-ठाक रहूं''

डाक्टर ने श्री स्वामी जी महाराज से कहा कि आप आठ-नौ मास तक विश्राम करें परन्तु 'विश्राम' शब्द तो आपके शब्दकोश में ही नहीं। लेखक ने गऊओं के बीच खड़े गऊओं की सेवा में मस्त पूज्य स्वामीजी से कहा, आप कभी विश्राम भी कर लिया करें। आपका जीवन मूल्यवान् हैं। अधिक देर जियेंगें तो हमारा अधिक लाभ होगा। जनहित में ही थोड़ा विश्राम कर लिया करें। आपने उत्तर में कहा, ''चलता-फिरता हूं इसीलिए तो ठीक हूं। कार्य नहीं करूंगा तो फिर कैसे जीवित रहूंगा?''

कभी इतना तप किया

श्री स्वामी जी ने अपने जीवन की एक बात प्रथम बार लेखक को बताई। कहा- 'मैंने यह बात आज तक किसी को भी नहीं बताई। प्रथम बार आप को बताने लगा हूं।''

इन पंक्तियों के लेखक ने पूछा ''हैदराबाद सत्याग्रह के दिनों में आपको कितने महीने ज्वर रहा था? महात्मा विष्णुदास जी लताले वालों ने कैसे रोग-मुक्त किया?'' कुछ इसी प्रकार के प्रश्न थे। ज्वरग्रस्त होने की कहानी पाठक पीछे पढ़ चुके हैं। स्वामी जी ने कहा कि स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज ने लाहौर के सब बड़े-बड़े डाक्टरों से मेरा इलाज करवाया परन्तु ज्वर नहीं गया। स्वामी जी ने रणभूमि शोलापुर से मुझे लिखा कि लताले चले जाओ वहां, पं० विष्णुदास जी से औषधि लें। जब मैं लताला पहुंचा तो पण्डित जी ने देखकर कहा ज्वर नहीं है। जिगर में गर्मी है उसी के कारण ज्वर रहता है। जिगर ठीक होगा तो ज्वर अपने आप चला जावेगा। बस, सारी बात मेरी समझ में आ गई कि जिगर में गर्मी कैसे हो गई और ज्वर क्यों हुआ।''

फिर अपने जीवन की एक बात इस प्रकार से बताई, ''मैं दिन में दो घंटे कड़कती धूप में कहीं बैठ जाता था। शरीर को गर्मी तथा सर्दी के सहन करने का अभ्यास हो। इसके लिए ऐसा किया करता था। दिन में जिस समय धूप सर्वाधिक होती उसी समय कहीं धूप में बैठ जाया करता था। इसका मेरे अतिरिक्त किसी और को पता नहीं था। जब महात्मा विष्णुदास जी ने यह कहा कि ज्वर भीतर की गर्मी के कारण है तब मुझे समझ में आया कि कड़कती धूप में बैठने के कारण गर्मी हुई है और रुग्ण होने का कारण बन गई।''

गऊ माता रास्ता रोक लेती है

'पा' वृद्धा हो गई है। जब पूज्य स्वामी जी महाराज कहीं यात्रा पर जाते हैं तो वृद्धा 'पा' को पता चल जाता है कि मुनिवर कहीं जाने वाले हैं। वह पहले ही मठ के बड़े द्वार के समीप पहुंच जाती है। पूज्य स्वामी जी का रास्ता रोक कर सत्याग्रह कर देती है। जाने नहीं देती। स्वामी जी हाथ फेरते हुए उसे समझाते जाते हैं। उपदेश सुन-सुनकर वह तृप्त होती है परन्तु मानती फिर भी नहीं। महाराज फिर अत्यन्त विनम्रता से विनती करते हैं कि 'पा' मुझे जाने दे। बड़ा आवश्यक कार्य है। शीघ्र लौट आऊंगा। तब वह जाने देती है।

बिल्ली का इतना ध्यान

इन दिनों (मई १९९१) में स्वामी जी को

कुटिया सें पन्द्रह नम्बर कमरा में रखा गया है। वहां ब्र० रवीन्द्र उनकी सेवा में रहता है। कुटिया वाली बिल्ली को भी पता है कि स्वामी जी अब कमरा नम्बर पन्द्रह में रहते हैं। वह वहां पहुंच जाती है और कभी-कभी रात्रि नौ बजे जाकर अलख जगा देती है। उसकी आवाज सुनकर स्वामी जी रवीन्द्र से कहते है, ''भूखी है, इसे दूध दो। कुछ खिला दो।'' प्राणियों का इतना ध्यान!

'राहु' स्वामी जी की शरण में

मठ में एक राहु नाम का कुत्ता था। वह बड़ा शरारती था। ब्रह्मचारी उसे तंग किया करते थे। वह कुटिया में रहता था। स्वामी जी के पास औषधालय के बाहर बैठा रहता। स्वामीजी तो ब्रह्मचारियों को उसे तग करने से रोक देते। इसलिए वह ब्रह्मचारियों से दूर-दूर स्वामीजी की शरण में रहा करता था। जब कभी स्वामीजी दीनानगर में किसी बैठक में जाते अथवा प्रचार यात्रा पर जाते तो राहु मठ के अन्दर घुसता हीं नहीं था। स्वामीजी महाराज के मठ में लौटते ही कुटिया पर पहुंच जाता। उसे इतना ज्ञान था कि महाराज की शरण में आ गया तो फिर उसे किसी प्रकार का कोई भय नहीं हो सकता।

गऊओं को कैसे रखा जाता है

जब ब्रह्मचारी गऊओं को खेतों में घुमाने चराने ले जाते हैं तो कभी-कभी स्वामीजी दूर खड़े-खड़े उनका निरीक्षण भी करते रहते हैं। कोई गऊ इधर-उधर हो जावे ओर कुछ तंग करे तो कई बार कोई ब्रह्मचारी ऐसी गऊ को सोटी भी मार देता है। दूर खड़े स्वामी जी महाराज यदि कभी किसी को गऊ को सोटी मारते देख लें तो दूर से ही आवाज़ दे देते हैं, ''यह क्या कर रहे हो? तुम जानते नहीं हो कि गऊओं को कैसे रखते हैं। गऊ को मारा नहीं करते।''

'गौ को मारा नहीं करते' मानो कि इस वाक्य रूपी घड़े में श्री महाराज का हृदय बन्द पड़ा है। हमने अपने जीवन में बहुत से पशु-पक्षी प्रेमियों को देखा है परन्तु गऊ के प्रति इतनी श्रद्धा रखने वाला व ऐसा गऊ पालक हमने तो कोई देखा-सुना नहीं। स्वामी जी महाराज तो ग्रन्थों में वर्णित प्राचीन मुनियों का रूप हैं। आपका आश्रम इस दृष्टि से प्राचीन ऋषियों के आश्रमों का दृश्य उपस्थित करता है। श्री स्वामीजी की गऊ आदि प्राणियों के प्रति प्रेम व सेवा की कहानियां सुनाते-सुनाते उनका शिष्य ब्र० रवीन्द्र भावों में ऐसा बह गया कि उसके मुख से ये घटनायें सुनते हुए लेखक का हृदय तरंगित हो उठा। जी में आया कि श्रद्धेय स्वामीजी महाराज की गऊ भक्ति की सैकड़ों घटनाओं का एक पृथक् संग्रह तैयार किया जावे।

श्रद्धेय उपाध्याय जी ने अपनी पुस्तक Vedic Culture में एक स्थान पर लिखा है "Wholesale slaughter of animals have meade us callour hearted." अर्थात् पशुओं के थोक में नरसंहार ने मनुष्य जाति को पाषाणहृदय बना दिया है। मनुष्य सर्वथा हृदयहीन हो गया है। ऐसी घटनाओं के प्रचार से मनुष्य के हृदय में दया, करुणा, प्यार, श्रद्धा, त्याग व सेवा के भाव जाग सकते हैं।

रक्तपिपासु मनुष्य को दानव से देव बनाया जा सकता है। मानवता की लाज बच सकती है। धरती तल के प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि घृणा द्वेष, क्रूरता व स्वार्थ की होली जलाने के लिए तथा पशु-पक्षियों के प्रति सहानुभूति पैदा करने के लिए सच्ची प्रेरणाप्रद कहानियों का नई पीढ़ी में अधिक से अधिक प्रचार करें। इसी प्रयोजन से हमने इस ग्रन्थ में ऐसी अनेक घटनायें दी हैं।

सारी बातें डाक्टरों की ही मत माना करें

मठ यदा-कदा अपनी गऊओं के लिए पशुओं के डाक्टरों की सेवा लेता रहता है। जब भी मठ वाले डाक्टर को बुलाते हैं, डाक्टर सहर्ष मठ की गऊशाला में रुग्ण गऊ को देखने आ जाते हैं। एकदिन लेखक की उपस्थिति में डाक्टर महोदय दो गऊओं को देखने के लिए आए। एक गऊ के लिए तो वह कह गये कि इसको जो कष्ट है उसको लिए कोई औषधि नहीं। बस, आप लोग गऊ का थोड़ा ध्यान रखें और उसकी सेवा करते जावें। दूसरी के लिए उसके खानपान के लिए कुछ निर्देश दे गये।

श्री स्वामीजी गऊशाला में आए तो उन दोनों गऊओं के बारे में विशेषरूप से पूछा। आचार्य जगदीश जी ने जो कुछ डाक्टर ने कहा था बता दिया। इस पर स्वामी जी ने कहा, सारी बात डाक्टर की ही न माना करें। हम से पूछकर गऊओं का उपचार किया करें। भला यह कैसे हो सकता है कि रोग तो हो और उसकी औषधि न हो। प्रत्येक कष्ट के निवारण का भी ईश्वर की सृष्टि में कोई न कोई उपाय है भले ही हमें उसका ज्ञान न हो। अतः जिस गाय के लिए कुछ न करने के लिए वे कह गये हैं उसके लिए भी कुछ सोच कर करेंगे। दूसरी के लिए भी जो कुछ डाक्टर ने देने को कहा था उसमें कुछ परिवर्तन करके देने को कहा। मूकपशुओं के कष्ट निवारण की जिस पुण्यात्मा को इतनी चिन्ता हो, परमेश्वर की दृष्टि में वह कितना महान् है, यह हम समझ सकते हैं।

१. अथर्ववेद ११-५-२२

२. सत्यार्थ प्रकाशः एकादश समुल्लासः

३. पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज की ओर संकेत है।

४. जलियांवाला बाग अमृतसर के प्रसिद्ध काण्ड के एक जन नायक श्री डा० सत्यपाल जी ने स्वामी जी से यह बात कही थी। 'जिज्ञासु'

५. द्रष्टव्य 'रिफार्मर' उर्दू साप्ताहिक लाहौर दिनांक १६ जनवरी सन् १९४४ पृष्ठ पांच तथा आठ पर छपा स्वामी जी का लेख।

६. द्रष्टव्य वही पृष्ठ पांच पर।

७. द्रष्टव्य रिफार्मर साप्ताहिक १६ जनवरी सन् १९४४ का वही लेख पृष्ठ आठ।

८. ओ३म्। यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बहृस्पतितर्मे तद्दधातु। शन्नो भवतु भुवनस्य यम्पतिः। यजुर्वेद ३६-२

९. नम्रता

१०. चरित्र का सौन्दर्य

११.सत्य व उपकार

१२. शत्रु

१३. दया

१४. जाति सेवक – जाति का भिक्षु

१५. पदवी

१६. सम्राटों

१७. ऊंचा

१८. पवित्र

१९. अधरों पर

२०. दूई द्वेष रहित हृदय

२१. ईश्वरीय ज्योति

२२. अमानतदार यहां प्रकाश पुन्ज अर्थ होगा।

२३. सच्चाई

२४. परायों

२५. माथा।

२६. द्रष्टव्य लौह पुरुष स्वामी स्वतन्त्रानन्द पृष्ठ ४६१

२७. श्री पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति कृत ईशोपनिषद्भाष्य पृष्ठ १३

२८. तीव्रार्थ तरमुदात्तम् (निरु० ४/२)।

२९. अल्पीयोऽर्थतरमनुदात्तम् (निरु० २/२५)।

३०. इस पर विशेष विचार हमने रा० ला० क० ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित ३१. संस्कार विधि के शताब्दी संस्करण के अन्त में किया है।

यह पृष्ठ संख्या रामलाल कपूर ट्रस द्वारा प्रकाशित **'दयानन्दीय लघुग्रन्थ-संग्रह'** के अन्तर्गत छपे तत्तत् ग्रन्थों की है।

३२. द्र० – पूर्व पृष्ठ, टि० १।

३३. महाभाष्य में 'वसिः प्रसारिणी' पाठ है।

३४. 'उपाकरणम्, उपानयनम् श्लष्णयां बन्दः यूपे नियोजनय्, संज्ञपनम्, विशासनमित्येवमादय', शाबरभाष्य।

३५. यजुर्वेद ३४-१

३६. इन दो पत्रों में चौधरी रामसिंह जी की जीवनी की ओर संकेत है।

३७. श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के जीवन संबंधी खोज की ओर संकेत है।

३८. यहां 'छपी है' होना चाहिएं था। 'है' शक छूट गया है।

३९. पहले ४,५ व ६ नवम्बर १९८६ को यह शताब्दी रखी गई थी फिर तिथियों में परिवर्तन किया गया।

४०. तारीख का संक्षिप्त रूप है।

४१. यहां जैसे के पश्चात् **'लेनी'** शब्द छूटा हुआ है।

४२. द्रष्टव्य स्मारिका आर्यसमाज शताब्दी अमृतसर सन् १९७३ पृष्ठ १४ पर

४३. स्मारिका आर्यसमाज शताब्दी अमृतसर सन् १९७३ पृष्ठ १४

४४. पूज्य स्वामी जी महाराज के एक प्रवचन से।

४५. योग दर्शन २-३५

४६. ऋग्वेद १-८-७१

४७. तलवार

४८. बंधन

४९. परिवार कुटुम्ब

५०. पदवी

५१. द्रष्टव्य 'सर्वहितकारी' साप्ताहिक १४-११-१९९० का अंक

अपने पुराने साथी गुरु भाई शास्त्रार्थ महारथी पं० शान्तिप्रकाश जी के साथ वैदिक धर्म प्रचारार्थ विचार विमर्श करते हुए।

नेपाल के पूर्व प्रधान मंत्री श्री नगेन्द्र प्रसाद जी के साथ वार्तालाप करते हुए।

दयानन्द मठ में ऋषि बोध पर्व पर लंगर की व्यवस्था करने वाले भक्तों के साथ

प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु' को हिण्डौन सिटी में घूड़मल आर्य पुरस्कार देते हुए

चम्बा में शराबबंदी आन्दोलन के कार्यकर्ताओं के साथ स्वामी सुमेधानन्द जी व स्वामी सर्वानन्दजी महाराज
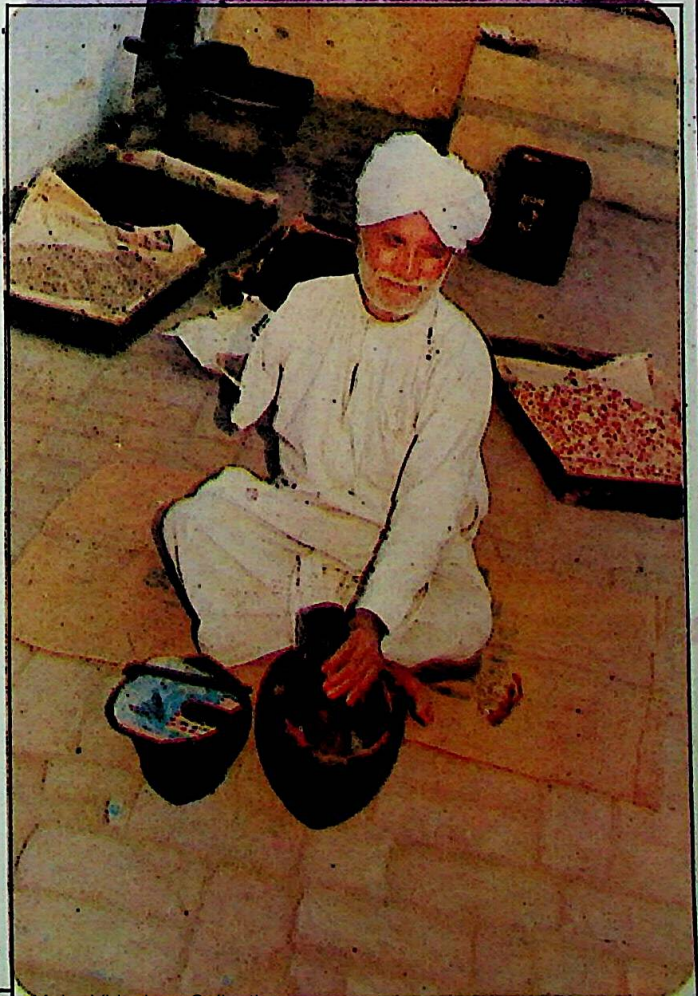
मठ के पुराने स्तंभ श्रीमान् वैद्य साईंदास जी
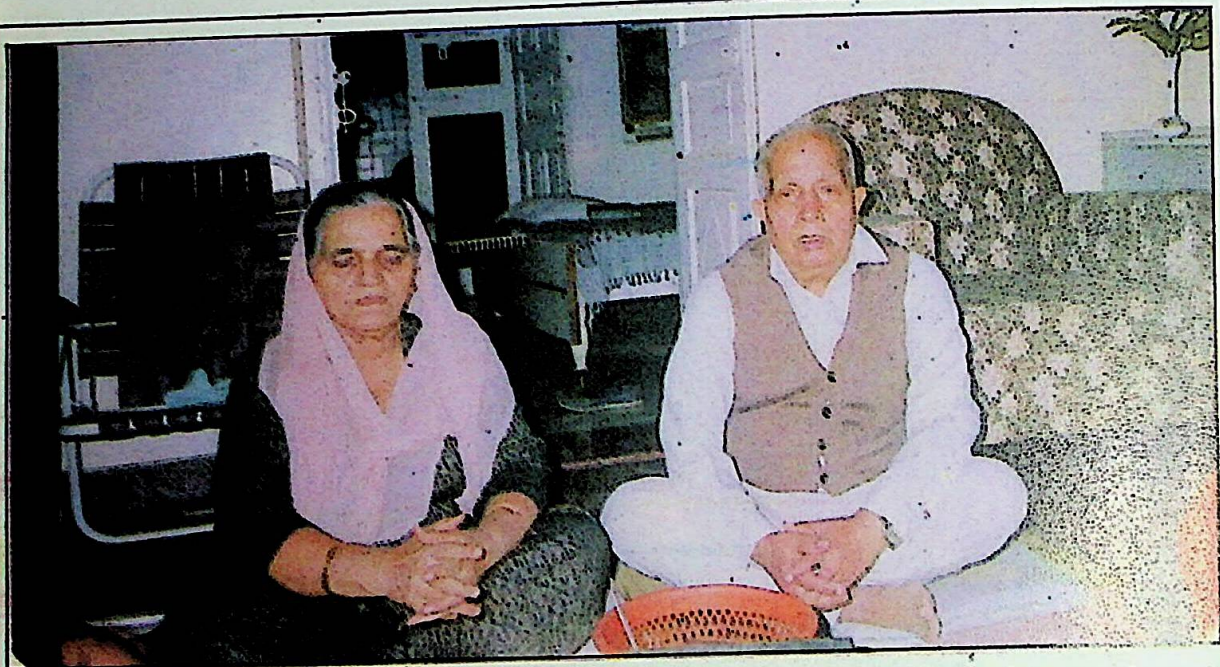
दीनानगर दयानन्द मठ के अनन्य सेवक डा० [illegible] जी
व उनकी पत्नी मनोरमा देवी।

स्वामीजी के शिष्य स्वामी सुवृतानन्द जी महाराज
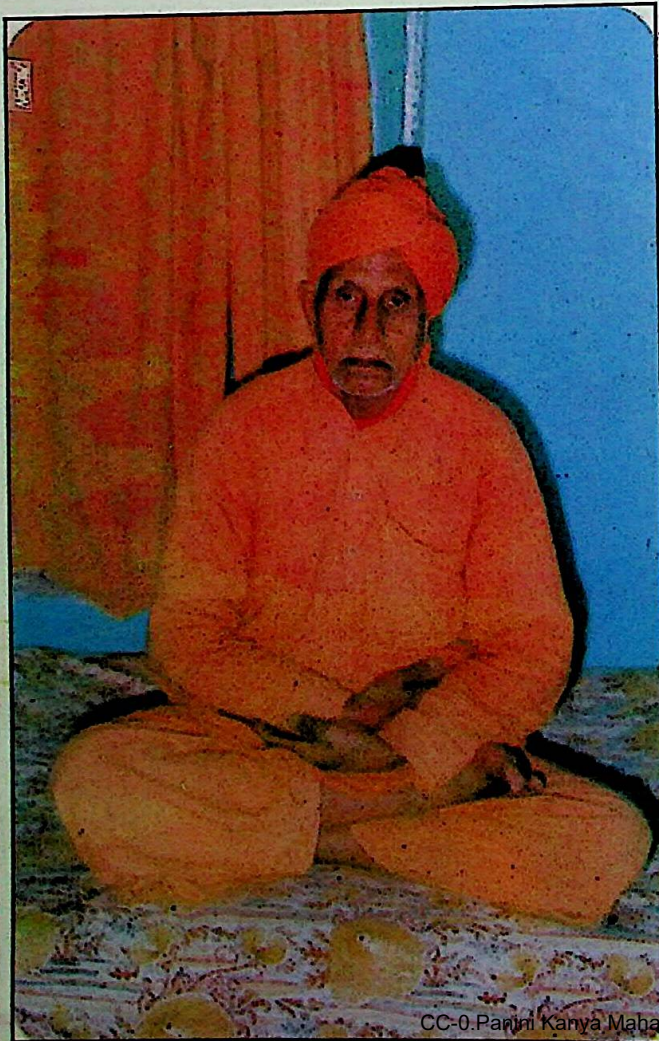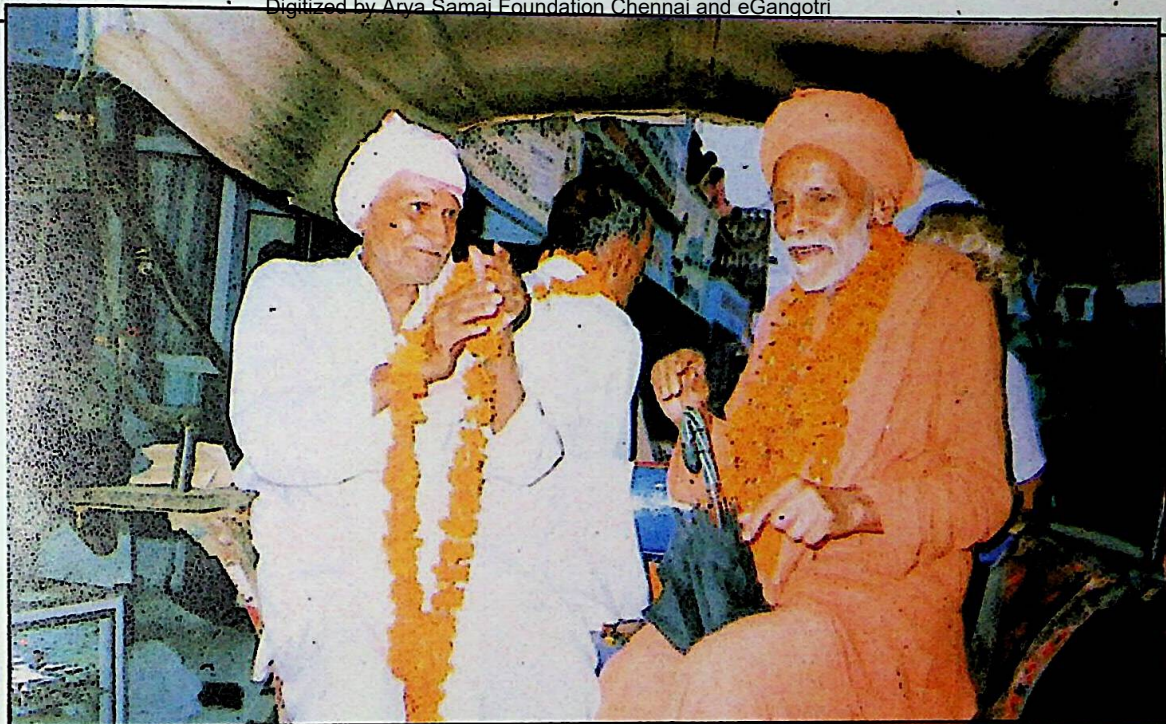
हिण्डौन सिटी राजस्थान में पूज्य पं० शान्ति प्रकाश जी के साथ

हिण्डौन में जन्माष्टमी पर प्रवचन करते हुए
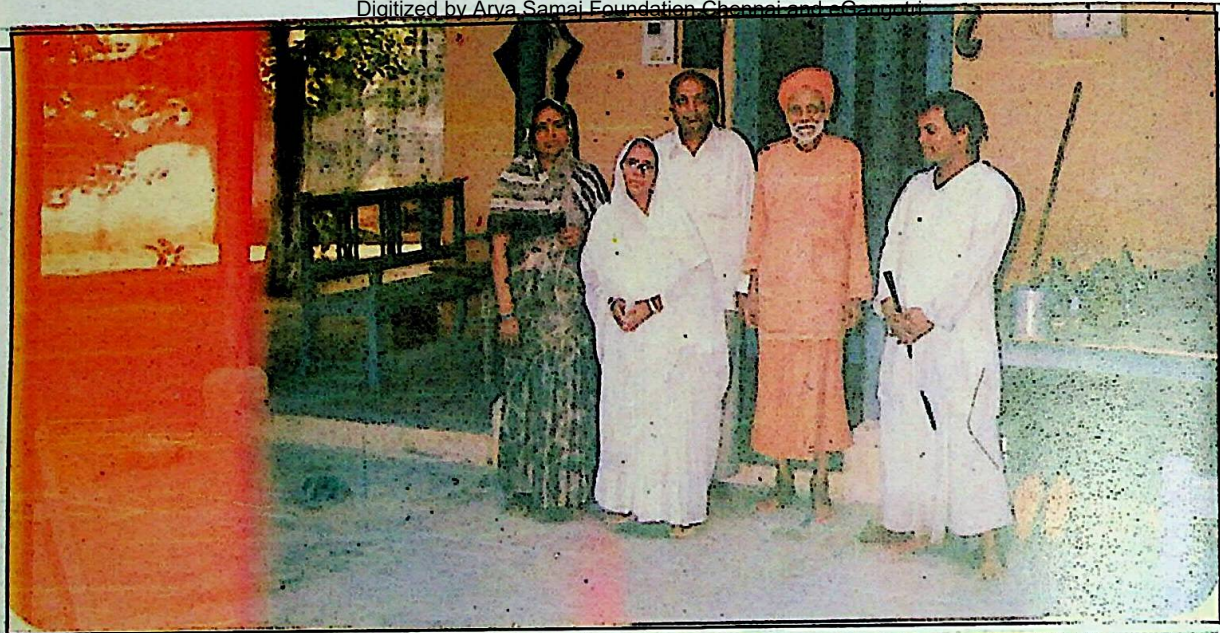
पानीपत के ला० आदित्य प्रकाश जी आर्य, उनकी माता जी तथा ब्र० नन्द किशोर जी

आचार्य जगदीश जी दयानन्द मठ दीनानगर
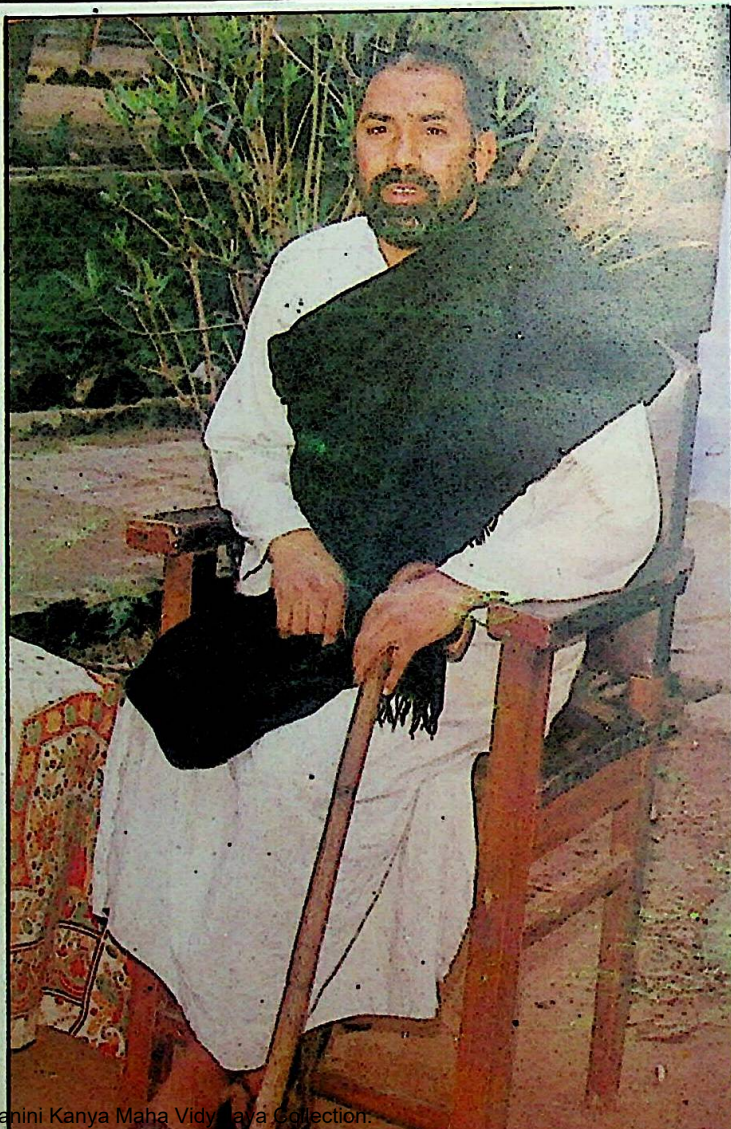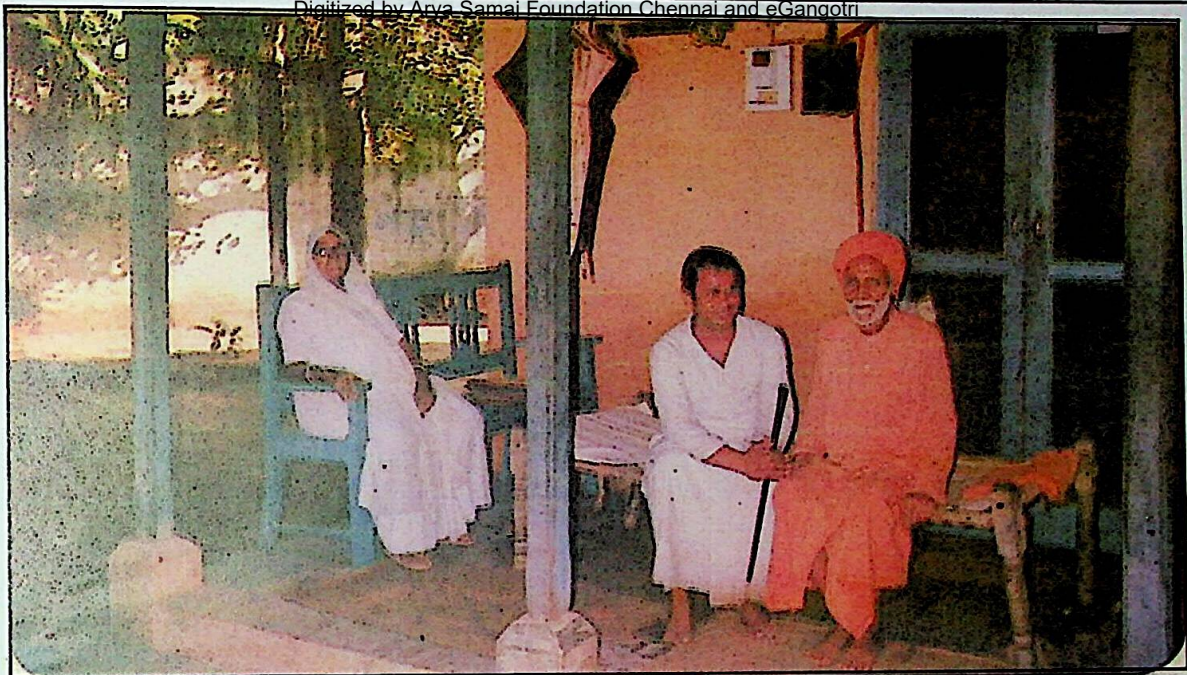
दयानन्द मठ दीनानगर में ब्र० नन्द किशोर जी के साथ

स्वामी जी के भक्त

श्री जयचन्द्र जी दीनानगर

श्री बलराम जी गुप्त

गौ भक्त महाशय बालमुकन्द जी